स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य : एक अनुशीलन
(इक्कीसवीं सदी के विशेष सन्दर्भ में)

Stree Hindi Atmakatha-Sahitya : Ek Anusheelan
(Ikkisavin Sadi ke Vishesh Sandarbh Mein)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

की

पीएच.डी. (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–प्रबन्ध

कला संकाय

शोधार्थी

प्रीति दुबे

शोध पर्यवेक्षक

डॉ. (श्रीमती) कंचना सक्सेना

सह–आचार्य एवं विभागाध्यक्ष

हिन्दी विभाग

राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा (राज.)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

वर्ष 2019

प्रमाण–पत्र

मुझे यह प्रमाणित करते हुए प्रसन्नता है कि शोध–प्रबन्ध **"स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य : एक अनुशीलन (इक्कीसवीं सदी के विशेष सन्दर्भ में)"** शोधार्थी प्रीति दुबे ने कोटा विश्वविद्यालय, कोटा की पीएच.डी. के नियमों के अनुसार निम्नलिखित आवश्यकताओं के साथ पूर्ण किया है–

1. शोधार्थी ने विश्वविद्यालय के नियमानुसार कोर्स वर्क किया है।
2. शोधार्थी ने विश्वविद्यालय के 200 दिन के आवासीय आवश्यकता नियम को पूर्ण किया है।
3. शोधार्थी ने नियमित रूप से अपना कार्य प्रगति प्रतिवेदन दिया है।
4. शोधार्थी ने विभाग एवं संस्था प्रधान के समक्ष अपना शोध कार्य प्रस्तुत किया है।
5. शोधार्थी को बताई गई शोध पत्रिका में शोध–पत्र का प्रकाशन हुआ है।

मैं इस शोध–प्रबन्ध को कोटा विश्वविद्यालय कोटा की पीएच.डी. (हिन्दी) की उपाधि हेतु मूल्यांकनार्थ प्रस्तुत करने की अनुमति देती हूँ।

दिनांक :

हस्ताक्षर शोध पर्यवेक्षक

डॉ. (श्रीमती) कंचना सक्सेना
सह–आचार्य एवं विभागाध्यक्ष
हिन्दी विभाग
राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा (राज.)

ANTI-PLAGIARISM CERTIFICATE

It is certified that PhD Thesis **"स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य : एक अनुशीलन (इक्कीसवीं सदी के विशेष सन्दर्भ में)"** by **Preeti Dubey** has been examined by us with the following anti-plagiarism tools. We undertake the follows:

a. Thesis has significant new work/knowledge as compared already published or are under consideration to be published elsewhere. No sentence, equation, diagram, table, paragraph or section has been copied verbatim from previous work unless it is placed under quotation marks and duly referenced.

b. The work presented is original and own work of the author (i.e. there is no plagiarism). No ideas, processes, results or words of others have been presented as author's own work.

c. There is no fabrication of data or results which have been compiled and analyzed.

d. There is no falsification by manipulating research materials, equipment of processes, or changing or omitting data or results such that the research is not accurately represented inthe research record.

e. The thesis has been checked using Plagiarism checker plagiarismchecker.com, and found within limits as per HEC plagiarism Policy and instructions issued from time to time.

(Name & Signature of Research Scholar)	**(Name & Signature and Seal)**
Preeti Dubey	**Dr. (Smt.) Kanchana Saxena**
	Research Supervisor
Place :	Place :
Date :	Date :

शोध–सार

पुरुष प्रधान समाज में स्त्री, बेटी, बहन, पत्नी, माँ के रूप में पनाह पाए हुए हैं, उसका अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। सदियों से वह अपने अस्तित्व को मिटाकर पुरुष की छत्रछाया में जीवन बिताने के लिए अभिशप्त है। उसकी स्वयं की कोई पहचान, आइडैंटिटी नहीं है। विवाह से पूर्व पिता एवं विवाह के पश्चात् पति परमेश्वर ही उसका निर्णायक एवं भाग्य विधाता होता है। उसके जीवन–जीने के तौर–तरीके, रहन–सहन, वेशभूषा, शिक्षा–दीक्षा इत्यादि सभी फैसले घर के पुरुषों द्वारा ही लिए जाते रहे हैं। समाज में रूप–रंग, लिंग और जन्म के आधार पर स्त्री के साथ भेदभाव के बीज इस उर्वरक भूमि में कुछ इस तरह से रौंप दिए गए हैं कि उससे पुरुष प्रधान समाज की मानसिकता को बदलना आज भी एक जटिल कार्य है। समाज को इस जड़ मानसिकता से मुक्त कराने में नारी संघर्षों की एक लम्बी फ़ेहरिस्त है। पुंसवादी समाज में नारी को वस्तु समझकर खरीदा व बेचा गया और आज भी स्त्रियाँ बाजार में बेची एवं खरीदी जा रही हैं।

इन दुर्गम राहों से गुजरते हुए जो स्त्रियाँ पढ़–लिखकर साहित्यकार बनती हैं, उनमें कुछ ऐसी निर्भीक, साहसिक स्त्रियाँ भी हुई हैं, जो अपने जीवन के संघर्ष, पीड़ा, अन्याय, शोषण के साथ–साथ स्त्री–अस्तित्व, स्त्री–अधिकार, स्त्री–स्वतंत्रता को आत्मकथा–साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त कर एक नई मिसल कायम करते हुए स्त्री–विमर्श, स्त्री–प्रतिरोध एवं बोल्ड–लेखन के एक से बढ़कर एक अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। वास्तविक तौर पर यह सभी स्त्री आत्मकथाएँ स्त्री–शोषण, स्त्री–अन्याय, स्त्री–संघर्ष के विरुद्ध प्रतिरोध का सच्चा दस्तावेज है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में मैंने स्त्री शक्ति के वैविध्य उनका अस्तित्व, स्त्री–अधिकार, स्त्री–स्वतंत्रता, स्त्री–आत्मसम्मान, स्त्री–अस्मिता को लेकर लिखी गई स्त्री आत्मकथाओं को अपने शोध का प्रमुख विषय बनाया है। स्त्री–विमर्श के इन्हीं पहलुओं पर इस शोध–प्रबन्ध में मेरे द्वारा मौलिक दृष्टि से पड़ताल की गई है। इन स्त्री लेखिकाओं द्वारा लिखी गई आत्मकथाओं को पढ़कर अन्य स्त्रियों का स्वविवेक जाग्रत होगा। स्त्री समाज में एक नये अध्याय का भी श्री गणेश होगा। इसलिए मैंने आलोच्य शीर्षक 'स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य : एक अनुशीलन' (इक्कीसवीं सदी के विशेष सन्दर्भ में) को शोध विषय के रूप में चुना है।

हिंदी साहित्य में गद्य की सभी विधाओं पर बहुत कार्य हुआ है, किन्तु स्त्री आत्मकथा–साहित्य पर लेखन कार्य न के बराबर हुआ है। रिसर्च पेपर के रूप में इन स्त्री–आत्मकथाकारों के आत्मकथा–साहित्य पर अवश्य विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में झिटपुट रूप से लेख, शोध लेख, शोध पत्र इत्यादि मिलते हैं, किन्तु सम्पूर्ण रूप से स्त्री आत्मकथा–साहित्य पर शोध कार्य नहीं हुए हैं।

"स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य : एक अनुशीलन (इक्कीसवीं सदी के विशेष सन्दर्भ में)" प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध को अध्याय योजना के अन्तर्गत पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है–

प्रथम अध्याय : 'आत्मकथा : एक सामान्य परिचय' से सम्बंधित है, जिसमें आत्मकथा की व्युत्पत्ति, परिभाषा एवं स्वरूप, आत्मकथा के तत्त्व, आत्मकथा लेखन का प्रयोजन, आत्मकथा की विशेषताएँ इत्यादि पर प्रकाश डाला गया है। स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य का इतिहास के अन्तर्गत प्रारम्भिक युग (1876 ई. से 1927 ई.), विकास युग (1928 ई.से 1946 ई.), उत्कर्ष युग (1947 ई. से 2000 ई. तक) पर प्रकाश डालते हुए बीसवीं सदी के अन्तिम दशक एवं इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक तक की स्त्री हिन्दी आत्मकथाओं पर प्रकाश डाला गया है। स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य : परिचय (इक्कीसवीं सदी के विशेष सन्दर्भ में) प्रकाश डालते हुए मैत्रेयी पुष्पा (कस्तूरी कुण्डल बसै, 2002 ई.), रमणिका गुप्ता (हादसे, 2005 ई.), मन्नू भण्डारी (एक कहानी यह भी, 2007 ई.), प्रभा खेतान (अन्या से अनन्या, 2007 ई), मैत्रेयी पुष्पा (गुड़िया भीतर गुड़िया, 2008 ई.) रमणिका गुप्ता (आपहुदरी, 2014–15 ई.), सुषम बेदी (आरोह–अवरोह, 2014–15 ई.), इत्यादि आत्मकथाओं का गहन अध्ययन करते हुए सदियों से शोषित हो रही स्त्रियों का चित्रण किया गया है। इन आत्मकथा लेखिकाओं ने अपने आत्मकथा–साहित्य के माध्यम से शोषण, दमन, अन्याय के विरुद्ध जहाँ इतिहास रचा, वहीं स्त्री–अधिकार, स्त्री–स्वतंत्रता, स्त्री–अस्तित्व के शंखनाद का उद्घोष भी किया है।

द्वितीय अध्याय : 'इक्कीसवीं सदी के स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य में चेतना के विविध आयाम के अन्तर्गत' राजनीतिक चेतना, सामाजिक चेतना, आर्थिक चेतना, सांस्कृतिक चेतना पर दृष्टिपात किया गया है। अंततः समग्र अवलोकन की प्रक्रिया द्वारा अध्याय के अंत में निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय : 'इक्कसवीं सदी के स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य में बोल्ड–लेखन' से संबंधित हैं, जिसमें मैत्रेयी पुष्पा, रमणिका गुप्ता, मन्नू भण्डारी, प्रभा खेतान, सुषम बेदी इत्यादि सभी आत्मकथा लेखिकाओं के आत्मकथा–साहित्य में बोल्ड–लेखन को विभिन्न उदाहरणों द्वारा प्रस्तुत किया गया है। यह सभी लेखिकाएँ सदियों से स्त्री के विरुद्ध खड़ी सामाजिक कुरुतियों एवं

अन्तर्बाह्य आघातों की बाढ़ से उबरने के लिए संघर्षरत है। अंततः समग्र अवलोकन की प्रक्रिया द्वारा अध्याय के अंत में निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है।

चतुर्थ अध्याय : 'इक्कीसवीं सदी के स्त्री हिन्दी सदी आत्मकथा–साहित्य में अस्मिता के प्रश्न' से संबंधित हैं, जिसमें स्त्री–अस्मिता, स्त्री–अधिकार, स्त्री–समानता, स्त्री–स्वतंत्रता, स्त्री–आत्मसम्मान के प्रश्नों पर विचार प्रस्तुत किए गए हैं। यह सभी आत्मकथा लेखिकाएँ स्त्री–मुक्ति एवं पुरुष प्रधान समाज की परम्परागत बेड़ियों से अपने को मुक्त कराने की बैचेनी को स्त्री–अस्मिता के विविध प्रश्नों द्वारा आवाज उठाती हैं। स्त्री होने के कारण अत्याचार सहने की पीड़ा के विरुद्ध विद्रोहिणी के रूप में दिखाई देती हैं। अवलोकन के उपरान्त अध्याय के अंत में निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया हैं।

पंचम अध्याय : 'इक्कीसवीं सदी के स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य में शिल्प–विधान' से संबंधित है, जिसमें भाषा, शैली, शब्द–चयन कहावतें एवं मुहावरे आदि को आधार स्वरूप में ग्रहण किया गया है। अवलोकन के उपरान्त अध्याय के अन्त में निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है।

उपसंहार में सम्पूर्ण शोध–प्रबन्ध की पुर्नसमीक्षा एवं सिंहावलोकन किया गया है। **शोध–सारांश** के अन्तर्गत शोध–प्रबन्ध का संक्षिप्तिकरण प्रस्तुत किया गया है।

इस शोध–प्रबन्ध में स्त्री–विमर्श के सभी पक्षों पर प्रकाश डालने का सतत् प्रयास किया गया है। प्रत्येक अध्याय के अन्त में सूक्ष्म अवलोकन की प्रक्रिया द्वारा निष्कर्षों को प्रस्तुत करते हुए अध्याय के अंत में संदर्भानुक्रम को भी यथासम्भव वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देने का मेरा प्रयास रहा है। परिशिष्ट के अन्तर्गत संदर्भ ग्रन्थ–सूची, आधार एवं सहायक ग्रन्थ, पत्र–पत्रिकाओं की सूची प्रस्तुत की गई हैं।

♦♦♦♦

Candidate Declaration

I hereby certify that the work, which is being presented in this thesis, entitled "स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य : एक अनुशीलन (इक्कीसवीं सदी के विशेष सन्दर्भ में)" in partial fulfillment of the requirement for the award of the Degree of Doctor of philosophy, carried under the supervision of Dr. (Smt.) Kanchana Saxena and submitted to the research center University of Kota, University of kota, kota represents my ideas in my own words and whenever other ideas or words have been included I have adequately cited and referenced the original sources. The work presented in this thesis has not been submitted else where for the award any other degree or diploma from any institution. I also declare that I have adhered to all principles of academics honesty and integrity and have not misrepresented or fabricated or falsified any idea/date/fact/source in my submission. I understand that violation of the above will be a cause for disciplinary action by the university and can also evoke penal action from the sources which have thus not been properly cited from whom proper permission has not been taken when needed.

Date :

Preeti Dubey

This is to certify that the above statement made by Preeti Dubey (Registration No. RS/1431/16 is correct to the best of my knowledge

Dr. (Smt.) Kanchana Saxena

Associate Professor

Supervisor

प्राक्कथन

आभार प्रदर्शन में मैं सर्वप्रथम विद्या की अधिष्ठात्री देवी माँ सरस्वती के श्री चरणों में नमन करती हूँ। प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध का पूर्ण होना मेरे लिए किसी स्वर्णिम स्वप्न के साकार होने जैसा है, जिसका सर्वाधिक श्रेय मैं विदुषी गुरु मार्गदर्शिका डॉ. (श्रीमती) कंचना सक्सेना, सह–आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा (राज.) के प्रति कृतज्ञता अर्पित करना अपना परमकर्त्तव्य मानती हूँ। विषय चयन से लेकर सामग्री संकलन, विश्लेषण एवं लेखन कार्य में इनके निर्देशन के लिए आभार को किसी भी शब्द सीमा में बाँध पाना बड़ा ही जटिल कार्य है। मातृस्वरूपा, प्रातः स्मरणीय मेरी शोध निर्देशिका डॉ. (श्रीमती) कंचना सक्सेना के प्रति श्रद्धा और ऋण भाव मेरी पूंजी है। उनका पग–पग पर सहयोग एवं शोध की सूक्ष्म दृष्टि का लाभ पाना मेरे लिए गर्व का विषय है। आपने मुझे मातृत्वभाव, स्नेह, उत्साह प्रदान कर इस शोध–प्रबन्ध को परिणति तक पहुँचाया। आपके सफल निर्देशन एवं आत्मीयता पूर्ण सहयोग से ही मेरी यह शोध–यात्रा सफल हो सकी है। कार्यों की व्यस्तताओं से समय निकालकर आपने अपना बहुमूल्य समय मुझे प्रदान किया। आपके सहृदयी एवं स्नेहपूर्ण व्यवहार ने न केवल मेरा मार्ग–प्रशस्त किया अपितु मुझे शोध–प्रबन्ध को समय पर पूर्ण करने का हौंसला भी प्रदान किया।

प्राचार्य राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा की अन्तःस्थल से आभारी हूँ। उनके कुशल निर्देशन एवं संचालन से यह असाध्य कार्य समय पर परिपूर्ण हो सका। इसके साथ ही हिन्दी विभाग के समस्त गुरुजनों की भी मैं हृदय से आभारी हूँ, जिनकी प्रेरणा एवं सुझावों ने मुझे सतत् प्रेरित किया। धन्यवाद तहेदिल से आप सभी का।

इसके साथ ही परम आदरणीय गुरुवर डॉ. श्री विवेक शंकर, एसोसिएट प्रोफेसर, राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मैं अपना पुनीत कर्त्तव्य समझती हूँ। इस शोध–प्रबन्ध की पूर्णता में आपका सहयोग चिरस्मरणीय रहेगा। आपके प्रतिऋण निर्देश करना औपचारिकता होगी, किन्तु यह मेरा परम कर्त्तव्य है। आपने अमूल्य सुझाव, आत्मीयतापूर्ण व्यवहार एवं सहयोग कर स्नेहशीलता का परिचय दिया है। आपकी टिप्पणियों से मुझे जो सहायता मिली है वह मेरे लिए अविस्मरणीय है। यहाँ मैं मेरी गुरु माता श्रीमती रीना शंकर के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ, जिन्होंने अपने आशीष वचनों एवं सद्व्यवहार कर मुझे इस असाध्य कार्य को पूर्ण करने के लिए प्रेरित किया।

इस शोध–प्रबन्ध की पूर्णता में पुस्तकालयाध्यक्ष कोटा विश्वविद्यालय, कोटा, पुस्तकालयाध्यक्ष राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा, पुस्तकालयाध्यक्ष जानकी देवी बजाज कन्या कला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटा, पुस्तकालयाध्यक्ष सार्वजनिक मण्डल पुस्तकालय कोटा, पुस्तकालयाध्यक्ष वर्धमान खुला विश्वविद्यालय कोटा अधिकारियों एवं कर्मचारियों के सहयोग के लिए भी आभार प्रकट करती हूँ, जिन्होंने शोध से सम्बन्धित सामग्री उपलब्ध करवाने में मेरा पूर्ण सहयोग किया।

इस शोध–प्रबन्ध के लिए मैं अपने ईश्वरतुल्य पिता एवं देवी स्वरूपा माता के प्रति भी श्रद्धानवत हूँ, जिन्होंने मुझे इस योग्य बनाया कि मैं इस ज्ञान की ओर अग्रसर हो सकी। उनके इस ऋण से उऋणी हो पाना मेरे लिए इस जन्म में तो सम्भव नहीं है। माता–पिता के आशीष एवं उनके द्वारा प्रदत्त संस्कारों से ही आज मैं इस शोध–प्रबन्ध को समय पर पूर्ण कर सकी हूँ। अपनी अनुजा वन्दना दुबे, राधा दुबे का भी हृदय से आभार प्रकट करती हूँ, जिन्होंने मेरे तनाव के क्षणों को अपने सहयोग एवं सद्भाव से कम करने का प्रयास किया। अपने अनुज अंकुर दुबे का भी विशेष धन्यवाद देती हूँ, जिसने मुश्किल क्षणों में मेरा हौंसला बढ़ाया। मैं उन सभी परिजनों का भी आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने इस शोध–यात्रा में किसी न किसी रूप में मेरा सहयोग किया।

मेरे सभी शोधार्थी मित्रगण शोध–प्रबन्ध की सम्पन्नता के अधिकारी है। उनके प्रति आभार प्रदर्शन औपचारिकता होगी क्योंकि मित्रता में आभार व्यक्त कर, मैं उनके सहयोग को फीका नहीं पड़ने देना चाहती हूँ। इस शोध–प्रबन्ध की पूर्णता में मेरी शोधार्थी मित्र (श्रीमती) मधु मीना, (श्रीमती) कृष्णा कुमारी जी का योगदान रहा है।

मैं हिन्दी विषय की अल्पज्ञ शोधार्थी हूँ। इक्कीसवीं सदी की लेखिकाओं की आत्मकथाओं पर लेखन कार्य करने में मैंने अपनी बुद्धि का यथा संभव उपयोग किया है। यदि शोध–प्रबन्ध के पुनीत कार्य में कहीं कोई त्रुटि या भूलचूक रह गयी हो, तो मैं इन सभी लेखिकाओं से हृदय से क्षमा प्रार्थी हूँ। मैं उन सभी विद्वानों की आभारी हूँ, जिनके ग्रन्थों से मैंने सामग्री संकलित की है।

अन्त में मैं कुशल, अत्रुटिपूर्ण एवं तत्परता से टंकण कार्य करने के लिए शबनम खान (परम कम्प्यूटर) स्टेशन, कोटा को धन्यवाद देना चाहती हूँ, जिन्होंने इस शोध–प्रबन्ध को साकार रूप दिया, वह प्रशंसनीय हैं। वर्तनी संबंधी अशुद्धियों को शुद्ध करने का मैंने यथा सम्भव प्रयास किया हैं फिर भी टंकण संबंधी कोई त्रुटियाँ रह गयी हो, तो मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।

मैं उन सभी महानुभावों के प्रति आभार प्रकट करती हूँ, जिनसे प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध को पूर्ण करने में प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से सहायता प्राप्त हुई है। समस्त गुरुजनों की भी ऋणी हूँ, जिन्होंने समय–समय पर अपना अमूल्य सहयोग प्रदान किया।

मैं अपने प्रयास में कहाँ तक सफल हुई हूँ। उसका मूल्यांकन तो नीर–क्षीर विज्ञजन ही करेंगे, फिर भी मुझे इस बात की सन्तुष्टि अवश्य है, कि मैंने **"स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य : एक अनुशीलन (इक्कीसवीं सदी के विशेष सन्दर्भ में)"** शोध कार्य को पूर्ण करने का यथा संभव प्रयास किया है। शोध–प्रबन्ध में यदि त्रुटियाँ रह भी गई हैं, तो मैं क्षमा प्रार्थी हूँ क्योंकि त्रुटि करना मानव स्वभाव है। अतः मैं आशा करती हूँ कि शोध–प्रबन्ध में हुई त्रुटियों के लिए आप मुझे क्षमा करेंगे। अन्त में मैं इस श्रम साधना का पूरा श्रेय परमपिता परमेश्वर को ही देना चाहूँगी क्योंकि परमात्मा की इच्छा एवं कृपा बिना कोई कार्य पूर्ण हो पाना सम्भव नहीं होता।

इस शोध–प्रबन्ध की पूर्णता में सहयोग के लिए मैं बस इतना ही कहना चाहूँगी–

निः शब्द हूँ मैं क्या कहूँ,
आप सबका हृदय से आभार है।
आप सब का प्यार ही, मेरी
प्रेरणा का मात्र आधार है।

शोधार्थी

प्रीति दुबे

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय–वस्तु	पृष्ठ सं.
	शोध सार	i - iii
	प्राक्कथन	iv - vi
	प्रथम अध्याय	1–97
1.0	**आत्मकथा : एक सामान्य परिचय**	
1.1	सामान्य परिचय	
1.1.1	आत्मकथा : एक सामान्य परिचय	
1.1.2	आत्मकथा : व्युत्पत्ति, परिभाषा एवं स्वरूप	
1.1.3	आत्मकथा के तत्त्व	
1.1.4	आत्मकथा लेखन का प्रयोजन	
1.1.5	आत्मकथा की विशेषताएँ	
1.2	स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य का इतिहास	
1.2.1	प्रारम्भिक युग (1876 ई. से 1927 ई.)	
1.2.2	विकास युग (1928 ई. से 1946 ई.)	
1.2.3	उत्कर्ष युग (1947 ई. से 2000 ई. तक)	
1.3	स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य : परिचय (इक्कीसवीं सदी के विशेष सन्दर्भ में)	
1.3.1	मैत्रेयी पुष्पा (कस्तूरी कुण्डल बसै, 2002 ई.)	
1.3.2	रमणिका गुप्ता (हादसे, 2005 ई.)	
1.3.3	मन्नू भण्डारी (एक कहानी यह भी, 2007 ई.)	
1.3.4	प्रभा खेतान (अन्या से अनन्या, 2007 ई.)	
1.3.5	मैत्रेयी पुष्पा (गुड़िया भीतर गुड़िया, 2008 ई.)	
1.3.6	रमणिका गुप्ता (आपहुदरी एक जिद्दी लड़की की आत्मकथा, 2014–15 ई.)	
1.3.7	सुषम बेदी (आरोह–अवरोह, 2014–15 ई.)	
	सन्दर्भ सूची	
	द्वितीय अध्याय	98–129
2.0	**इक्कीसवीं सदी के स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य में चेतना के विविध आयाम**	
2.1	राजनीतिक चेतना	
2.2.	सामाजिक चेतना	

क्र.सं.	विषय–वस्तु	पृष्ठ सं.
2.3	आर्थिक चेतना	
2.4	सांस्कृतिक चेतना	
	सन्दर्भ सूची	
	तृतीय अध्याय	**130–149**
3.0	**इक्कीसवीं सदी के स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य में बोल्ड–लेखन**	
3.1	मैत्रेयी पुष्पा	
3.2	रमणिका गुप्ता	
3.3	मन्नू भण्डारी	
3.4	प्रभा खेतान	
3.5	सुषम बेदी	
	सन्दर्भ सूची	
	चतुर्थ अध्याय	**150–189**
4.0	**इक्कीसवीं सदी के स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य में अस्मिता के प्रश्न**	
4.1	स्त्री–अस्मिता	
4.2	स्त्री–अधिकार	
4.3	स्त्री–समानता	
4.4	स्त्री–स्वतन्त्रता	
4.5	स्त्री–आत्मसम्मान	
	सन्दर्भ सूची	
	पंचम अध्याय	**190–280**
5.0	**इक्कीसवीं सदी के स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य में शिल्प–विधान**	
5.1	भाषा (भाषा के विविध प्रयोग)	
	सहज, सरल एवं प्रभावी भाषा	
	काव्यात्मकता	
	चित्रात्मकता	
	वातावरण प्रयोग	
	ध्वन्यात्मकता	

क्र.सं.	विषय–वस्तु	पृष्ठ सं.
5.2	शैली	
	भावात्मक	
	विचारात्मक	
	वर्णनात्मक	
	व्यंग्यात्मक	
	अहंवादी	
5.3	शब्द–चयन	
	तत्सम	
	तद्‌भव	
	देशज	
	विदेशी (अंग्रेजी, अरबी–फ़ारसी)	
5.4	कहावतें एवं मुहावरे	
	सन्दर्भ सूची	
	उपसंहार	**281–286**
	शोध सारांश	**287–305**
	सन्दर्भ ग्रन्थ सूची	**306–312**
	आधार एवं सहायक ग्रन्थ	
	पत्र–पत्रिकाएँ	
	शोध–पत्र	

प्रथम अध्याय

आत्मकथा : एक सामान्य परिचय

प्रथम अध्याय

आत्मकथा : एक सामान्य परिचय

1.1 सामान्य परिचय

1.1.1 आत्मकथा : एक सामान्य परिचय

"आत्मनः विषये कथ्यते यस्मां सा आत्मकथा"[1]

अर्थात् जहाँ स्वयं के संबंध में बात कही जायें, वही आत्मकथा है। 'आत्मकथा' शब्द दो शब्दों के योग से मिलकर बना है। 'आत्म'+ 'कथा'। 'आत्म' शब्द का अर्थ है अपना, निज का, आत्मा का, मन का। 'कथा' का अर्थ है– कहानी, गाथा, जीवन की कहानी। आत्मकथा का शाब्दिक अर्थ हुआ–स्वयं की कहानी या स्वयं के जीवन की कहानी। आत्मकथा अंग्रेजी के **'ऑटोबायोग्राफी'** (Autobiography) का हिंदी रूपान्तरण है। आत्मकथा हिंदी गद्य साहित्य के क्षेत्र में एक नवीन चेतना की देन है। आत्मकथा जीवन की कलात्मक अनुकृति है। 'आत्मकथा' आत्ममंथन, आत्मविश्लेषण के द्वारा अपने जीवन में घटित तमाम घटनाओं को शब्दगतरूप में प्रस्तुत करने वाला वह सच्चा दस्तावेज है, जो अतीत की स्मृतियों, भोगे हुए जीवन की मुख्य घटनाओं का विवरण सत्य एवं यथार्थ की पृष्ठभूमि पर आत्मनिरीक्षण, आत्मन्याय, आत्मज्ञान को प्रस्तुत करने के उद्देश्य से लिखी जाती है। हिंदी साहित्य में आत्मकथा के लिए 'आत्मचरित' और 'आत्मचरित्र' ये दो शब्द भी संज्ञा के रूप में प्रयुक्त किए जाते रहे हैं। इनमें सूक्ष्म अंतर स्पष्टतयाः यह है कि 'आत्मचरित्र' में आत्मकथाकार अपने जीवन और मस्तिष्क का गहन विश्लेषण कर जीवन और संसार के बाहरी एवं आन्तरिक पक्षों का अध्ययन करता है। यह एक मानसिक श्रम है, वहीं दूसरी ओर 'आत्मचरित' के अन्तर्गत लेखक आत्म–निरीक्षण की प्रक्रिया से गुजरता है, जिसके कारण रचना अधिक रोचक, सुपाठ्य एवं आकर्षित हो जाती है।

आत्मकथा के स्वरूपनिर्माण, तत्त्वों का विश्लेषण तथा आत्मकथा लेखन के प्रयोजन पर विचार–विमर्श करने से पूर्व आत्मकथा की व्युत्पत्ति पर विचार करते हुए उसे किसी सुनिश्चित एवं अर्थपूर्ण परिभाषा में व्यक्त करना एक जटिल प्रक्रिया है। आत्मकथा हिन्दी साहित्य की अत्यन्त गौण एवं जटिल, किन्तु अर्थपूर्ण विधा है। इस विधा में व्यक्ति स्वयं का आत्मीय चित्रण प्रस्तुत करता है। आत्मकथा शब्द का पहली बार प्रयोग सन् 1796 ई. में हुआ था। इस शब्द का पहली बार प्रयोग 'हर्डर' नामक व्यक्ति ने किया था, जो जर्मनी के रहने वाले थे। उस समय आत्मकथा

को जीवनी के समकक्ष माना गया था, इसलिए इसे 'आत्मजीवनी' नाम से जाना जाता था। अठारहवीं शतब्दी के उत्तरार्द्ध और मुख्य रूप से 19वीं शताब्दी के आरम्भ में आत्मकथा को जीवनी से पृथक् करते हुए एक स्वतंत्र विधा के रूप में लिखा एवं पढ़ा जाने लगा। साहित्य की यह विधा अपने वैशिष्ट्य तथा अन्य विधाओं से सूक्ष्म भेद के कारण विलक्षण है। हिंदी साहित्य के अन्तर्गत आत्मकथा का सैद्धान्तिक विवेचन न के बराबर होने पर भी विद्वानों द्वारा आत्मकथा के विषय में कई परिभाषाएँ रची जा रही है। आत्मकथा की परिभाषाओं को नवीन स्वरूप में प्रस्तुत करने का कार्य बहुलता से हो रहा है, जो आत्मकथा–साहित्य के वैशिष्ट्य को इंगित करता है।

1.1.2 आत्मकथा : व्युत्पत्ति, परिभाषाएँ एवं स्वरूप

प्राचीन भारतीय आर्यभाषा काल में वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत दो भाषाएँ थी। चारों वेद, ब्राह्मण ग्रंथ, उपनिषद् इसी काल की देन है। संस्कृत का प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद है। वैदिकयुग में यत्र–तत्र रूप से ही आत्मकथा के उद्भव की मद्धम–मद्धम किरणें परिलक्षित होने लगी थीं। भारतीय मनीषियों को वैदिककाल में ही आत्मकथा के प्रति ज्ञान प्राप्त हो चुका था किन्तु उस काल में साहित्य की इस विधा का स्वतंत्र अस्तित्त्व नहीं था। इसका मुख्य कारण था कि हमारे प्राचीन मनीषियों, विद्वानों ने अपने विषय में लिखना उचित नहीं समझा। उन्होंने अपनी ऋचाओं में मंत्रों को अपने नाम से समायोजित किया। उनका यह कृत्य ही उनकी आत्मकथा विषयक रूचि का ही परिचायक है। गौंण रूप में ही सही, किन्तु धीरे–धीरे यह विधा अपने स्वरूप को पाने लगी। आत्मकथा का उद्भव वेदकाल में ही हुआ है। वेदकाल के पश्चात् यह विधा अपने कुछ विकसित रूप में पालि साहित्य के अन्तर्गत थेर–थेरी (भिक्षुण–भिक्षुणी) गाथाओं के रूप में उपलब्ध होती है। भारतीय–साहित्य में विकास क्रम की महत्त्वपूर्ण श्रृंखला पालि साहित्य में ही स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। संस्कृत साहित्य में लगभग सभी विधाओं पर सफलतापूर्वक लेखन कार्य हुआ, किन्तु आत्मकथा–साहित्य में यह कार्य बहुत कम है। बाणभट्ट द्वारा रचित 'हर्षचरित' को आत्मकथा के समकक्ष रखकर देख सकते हैं, किन्तु यह रचना आत्मकथा कम जीवनी साहित्य के अधिक निकट दिखाई देती है। संस्कृत साहित्य से यदि हम आगे बढ़ते है, तो अपभ्रंश साहित्य में हमें आत्मकथा–साहित्य का परिमार्जित एवं शुद्ध स्वरूप दिखाई देता है।

आधुनिक हिंदी गद्य का उदय भारतेन्दु युग से हुआ। हिंदी आत्मकथा–साहित्य का विकास भी इस काल में ही मानना समीचीन है। इस काल में हिंदी गद्य की अनेक विधाएँ जैसे–कहानी, उपन्यास, नाटक, संस्मरण, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, आत्मकथा, जीवनी इत्यादि विधाएँ विकसित होने लगी। आधुनिक हिंदी खड़ी बोली का विकास भी भारतेन्दु युग की ही देन है। भारतेन्दु युग की खड़ी बोली को आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने परिष्कृत एवं परिमार्जित किया। '1903' में

सरस्वती पत्रिका का प्रकाशन हुआ। इस प्रकार हिंदी गद्य साहित्य अपने विकास के चर्मोत्कर्ष तक पहुँच गया। हिंदी की प्रथम आत्मकथा बनारसीदास जैन द्वारा रचित 'अर्द्धकथानक' को माना गया है, जिसका पहली बार प्रकाशन जुलाई 1943 ई. में हिंदी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई से हुआ।

संस्कृत में दी गई परिभाषा

"जीवनचरितस्यैव प्रकार विशेष आत्मकथा।"[2]

जीवनचरित का प्रकार विशेष ही आत्मकथा है। कवि या प्रणेता अपने चरित का वर्णन स्वयं करता है। इसमें आद्यन्त उत्तम पुरुष का प्रयोग होना चाहिए। अहंकार और साक्ष्य अलंकार उसके सौन्दर्य में वृद्धि करते हैं। अंग्रेजी में बट्रेण्ट रसेल, विस्टन चर्चिल या जवाहर लाल नेहरू और महात्मा गाँधी की आत्मकथा इसका उत्कृष्ट उदाहरण है।

विभिन्न शब्दकोशों के अनुसार आत्मकथा की परिभाषाएँ

बृहद् हिंदीकोश में – 'आत्मकथा', 'आत्मन्' और 'कथा' का सामासिक रूप है, जिसका अर्थ है, अपना, निज का, आत्मा का, मन का और 'कथा' का अर्थ है 'अपनी जीवन कहानी'। इस प्रकार 'आत्मकथा' का अर्थ हुआ–'अपने जीवन की कहानी'।[3]

हिंदी साहित्य कोश भाग–1 में – "आत्मकथा लेखक के अपने जीवन से सम्बद्ध वर्णन है। आत्मकथा के द्वारा अपने बीते हुए जीवन का सिंहावलोकन और एक–एक व्यापक पृष्ठभूमि में अपने जीवन का महत्त्व दिखलाया जाना संभव है।"[4]

आदर्श हिंदी कोश में – "जीवन के 'वृतान्त' या 'हाल' को जीवन–चरित्र कहा गया है।"[5]

हिंदी शब्द सागर में – "जीवन–चरित्र को जीवन भर का वृत्तान्त कहा है।"[6]

हिंदी रत्नकोश में – "जीवन के हाल को ही जीवन–चरित्र कहा गया है।"[7]

मानक हिंदी कोश में – "जीवन की मुख्य–मुख्य बातों के वर्णन को आत्मकथा का प्रधान गुण माना है।"[8]

मानविकी पारिभाषिक कोश में – अपने आन्तरिक जीवन के ब्यौरेवार वर्णन को आत्मकथा कहा है।[9]

अंग्रेजी कोश में दी गई परिभाषाएँ

ऑक्सफॉर्ड डिक्शनरी में – आत्मकथा की परिभाषा देते हुए कहा गया है कि "(अ) आत्मकथा स्वयं का स्वलिखित इतिहास है (ख) स्वयं के द्वारा लिखी गयी स्वयं की कहानी।"[10]

इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में – "आत्मकथा सामान्य रूप से किसी व्यक्ति द्वारा लिखित स्वयं का जीवन चरित्र है। उसके अनेक उद्देश्यों में आत्म–निरीक्षण, आत्मज्ञान और आत्मन्याय है।"[11]

मॉडर्न एनसाइक्लोपीडिया में – "आत्मकथा को 'व्यक्ति के निजी जीवन का लगातार प्रस्तुत किया गया विवरण' बताया गया है और यह कहा गया है कि आत्मकथा लेखक के जीवन तथा जीवन यात्रा का वास्तविक एहवाल होती है और उसके वैयक्तिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक विश्वासों को प्रस्तुत करती है। इस प्रकार आत्मकथा व्यक्तिलक्षी भी होती है और वस्तुलक्षी भी।"[12]

एनसाइक्लोपीडिया ऑफ लिटरेचर में – "आत्मकथा को परिभाषित करते हुए कैसेल महोदय कहते हैं– आत्मकथा व्यक्ति के जीवन का विवरण है, जो स्वयं के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। इसमें जीवनी के अन्य प्रकारों से सत्य का अधिकतम समावेश होना चाहिए।"[13]

इनसाइक्लोपीडिया अमेरिका में – कहा गया है कि "व्यापक अर्थ में आत्मकथा लेखक के व्यक्तिगत जीवन की कहानी है, जो स्मृति, डायरी, पत्र इत्यादि के रूप में अभिव्यक्त होती है।"[14]

यूनिवर्सल इंग्लिश डिक्शनरी में – "आत्मकथा को कला और लेखन क्षमता का परिचायक मानते हुए उसे स्वयं का लेखा–जोखा बतलाया है।"[15]

आत्मकथा की भारतीय परिभाषाएँ

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार – "आत्मकथा वस्तुतः रहस्य के प्रकाशन के लिए लिखी जाती है।....व्यक्ति का जो स्वरूप सामान्यतया, साधारणतया समाज के सामने नहीं आता, उसे लाना ही आत्मकथा का प्रयोजन है।"[16]

डॉ. नित्यानंद तिवारी के अनुसार – "आत्मकथा स्वयं लेखक के द्वारा उसके अपने जीवन का सम्बद्ध वर्णन है। प्रायः 2 उद्देश्यों को लेकर आत्मकथा लिखी जाती है–1. आत्म–निर्माण या आत्म–परीक्षण और 2. दुनिया और समाज के जटिल परिवेश में अपने आपको जानने समझने की इच्छा।"[17]

श्री रामावतार अरुण के अनुसार – "आत्मकथा व्यक्ति के संघर्ष का सत्यांकित इतिहास है।"[18]

डॉ. त्रिगुणायत के अनुसार – "आत्मकथा लेखक के जीवन की दुर्बलताओं, सफलताओं इत्यादि का संतुलन और व्यवस्थित चित्रण है, जो उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व के निष्पक्ष उद्घाटन करने में समर्थ होता है।"[19]

श्री जैनेन्द्र के अनुसार – 'ये और वे' नामक पुस्तक में अपनी 'कैफियत' शीर्षक के अन्तर्गत आत्मकथा के संबंध में कहा है कि– "आत्म–चरित लिखना एक प्रकार से आत्म–दान का ही रूप है।"[20]

हरिवंशराय बच्चन के अनुसार – "आत्मकथा जीवन की तस्वीर है।"[21]

अमृता प्रीतम (पंजाबी साहित्य लेखिका) के शब्दों में – "आत्मकथा लेखक की अपनी आवश्यकता मनाते हुए यथार्थ से यथार्थ तक पहुँचने की प्रक्रिया है।"[22]

श्री इंद वंदन दबे के शब्दों में – "आत्मकथा सत्यग्रहण, सत्यनिरूपण और सत्यसंवेदना के सर्जनात्मक पूर्ण प्रतिबिंब को आत्मकथा माना है।"[23]

आचार्य श्री प्रेमशंकर भट्ट के अनुसार – "आत्मकथा अपने हाथ से खींचा गया अपना चित्र है।"[24]

श्री विजय कुमार शुक्ल के शब्दों में – "आत्मकथा अनुभूतियों का सर्जनात्मक विन्यास है।"[25]

श्री रविन्द्रनाथ ठाकुर के शब्दों में – "आत्मकथा 'जीवन की स्मृति', 'जीवन का इतिहास' नहीं है, वह तो किसी अदृश्य चित्रकार की अपने हाथ की रचना है।"[26]

पण्डित जवाहर लाल नेहरू के अनुसार – "आत्मकथा स्वयं का मानसिक विकास अंकित करने का प्रयास है।"[27]

डॉ. नगेन्द्र के अनुसार – "आत्मकथा अपने सम्बन्ध में किसी मिथक की रचना नहीं करता, कोई स्वप्न–सृष्टि नहीं रचता, वरन् अपने गत जीवन के खट्टे–मीठे, उजले–अन्धेरे, प्रसन्न–विपष्ण, साधारण–असाधारण संचरण पर मुड़कर एक दृष्टि डालता है। अतीत को पुनः कुछ क्षणों के लिए स्मृति में जी लेता है और अपने वर्तमान तथा अतीत के मध्य संबंध सूत्रों का अन्वेषण करता है।"[28]

डॉ. श्याम सुन्दर दास ने अपनी आत्मकथा लेखन के संबंध में कहा है– "जिस समय जैसी भावना मेरे मन में थी और जिन उद्देश्यों से प्रेरित होकर जो काम मैंने किया है तथा जिस प्रकार मेरे कार्यों में विघ्न–बाधाएँ उपस्थित हुई हैं, उनका मैंने यथातथ्य वर्णन किया है।"[29]

भोलानाथ तिवारी के अनुसार – "अपने द्वारा लिखी हुई अपनी जीवनी ही आत्मकथा है।"[30]

श्री यशपाल ने अपनी रचना सिंहावलोकन की भूमिका में आत्मकथा के संबंध में स्पष्ट किया है कि "आत्मकथा या आपबीती लिखकर मैं पाठकों के सम्मुख आदर्श–मार्ग रखने का संतोष अनुभव नहीं कर सकता। इसलिए इस कहानी को केवल स्मृतियों और अनुभवों का विचारार्थ वर्णन ही समझना चाहिए।"[31]

आत्मकथा की पाश्चात्य परिभाषाएँ

शिप्ले के अनुसार – "आत्मकथा लेखक के जीवन का एक श्रृंख्लाबद्ध ऐसा विवरण है, जिसमें वह अपने विशाल जीवन सामग्री की पृष्ठभूमि में से कुछ महत्त्वपूर्ण बातों को लेकर उनको व्यवस्थित ढंग से सामने रखता है या फिर अपनी अन्तर्दृष्टि से उनको संस्मरण के रूप में प्रस्तुत करता है।"[32]

कवि गेटे के शब्दों में – "जिसमें एक विद्वान वर्तमान से तथा सानुकूल परिस्थितियों द्वारा क्रमशः लिप्त होता है।"[33]

वेनशीमेकर के शब्दों में– "आत्मकथा व्यक्ति विशेष के द्वारा लिखी गई एवं प्रतिपादित एक सच्चा अभिलेख है, जिसमें लेखक के जीवन की सम्पूर्ण घटनाएँ यथासंभव स्वयं लेखक द्वारा लिखी जाती है।"[34]

विसकाउण्ट स्नोडन के अनुसार– "हर व्यक्ति के पास कहने के लिए अपनी जीवन–गाथा और कोई भी आत्मचरित कभी भी, यथार्थ में, बुरी पुस्तक नहीं होती।"[35]

स्टीफनज्वीग के अनुसार – "आत्मकथा जीवन स्मृति और जीवन के सत्यों का वर्णन है।"[36]

जार्ज मिच के अनुसार – "आत्मकथा जीवनी की उपशाखा नहीं है वस्तुतः यह आत्मकथा को एक स्पष्ट, पूर्ण और स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान करने का एक प्रयास है।"[37]

संस्कृत, हिन्दी, विभिन्न कोशों, भारतीय एवं पाश्चात्य आत्मकथा विषयक परिभाषाओं के अवलोकन के उपरांत मेरी दृष्टि में यह कहा जा सकता है कि आत्मकथा लेखक के जीवन से संबंद्ध रखने वाला वह वृत्तान्त है, जो सम्पूर्ण मानव समाज के लिए एक आदर्श प्रस्तुत करता है। पथ–प्रदर्शक की भूमिका का निर्वाह करता है, जिसमें आत्मकथाकार की जीवन यात्रा एवं उनसे प्राप्त अनुभव व्यापक पटल पर अभिव्यक्त होते हैं। मानव जीवन अपने आप में ही एक रहस्य है और आत्मकथा उस रहस्यमय जीवन का उद्घाटन आत्मनिरीक्षण, आत्मन्याय, आत्मज्ञान के धरातल पर अभिव्यक्त करता है।

1.1.3 आत्मकथा के तत्त्व

हिंदी आत्मकथा–साहित्य के अध्ययन के पश्चात् उसके प्रमुख एवं गौंण तत्त्वों को निम्नरूपों में देखा जा सकता है।

(i) **विषय–वस्तु :** हिंदी आत्मकथा–साहित्य में विषय–वस्तु का अपना ही महत्त्व है। विषय–वस्तु के अन्तर्गत आत्मकथाकार स्वयं का जीवन वृत्तान्त प्रस्तुत करता है।

आत्मकथा में आत्मकथाकार अपने जीये हुए जीवन, उससे प्राप्त कटु एवं मधुर अनुभव, अतीत में भोगे हुए दुःख, सुख का पुनः परीक्षण के रूप में क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित ढंग से पूर्णतया सत्यता, ईमानदारी से अभिव्यक्त करता है। आत्मकथा–साहित्य में यथातथ्यता, क्रमबद्धता एवं तटस्थता का होना अनिवार्य हैं। आत्मकथा–साहित्य में 'यथातथ्यता' को आत्मकथा की आत्मा के रूप में देखा गया है। इसकी पुष्टि स्वयं **बैजनाथ सिंघल** ने अपनी आत्मकथा में की है। उनका मानना है कि "चूँकि आत्मकथा लेखक के भोगे हुए यथातथ्य जीवन का चित्रण है इसलिए इसका मूलभूत तत्त्व यथातथ्य जीवन ही है।"[38]

आत्मकथा की विषय–वस्तु का क्षेत्र विस्तृत एवं व्यापक है। वर्तमान में आत्मकथा के कई क्षेत्रीय रूप देखने को मिलते हैं जैसे–सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, साहित्यिक इत्यादि। आत्मकथा की विषय–वस्तु सुनियोजित, सुसंगठित, सुव्यवस्थित, श्रृंखलाबद्ध संक्षिप्त रूप से वास्तविक जीवन के निकट होती है। आत्मकथा में सुनिश्चित प्रतिमान न होने से पाठक को रसाघात होगा और आनन्दानुभूति प्राप्त नहीं होगी। अतः आत्मकथा–साहित्य की विषय–वस्तु के अध्ययन के आधार पर हम कह सकते हैं कि कथा तत्त्व पूर्णतया सत्याधारित होता है काल्पनिक नहीं। इसलिए इसमें रोचकता, सत्यता, संक्षिप्तता, क्रमबद्धता, स्वाभाविकता, स्पष्टवादिता इत्यादि गुणों का समावेश होना नितान्त आवश्यक है।

(ii) **निष्पक्षता :** आत्मकथा–साहित्य के लिए निष्पक्षता अनिवार्य तत्त्व है। आत्मकथा आत्मविश्लेषण के द्वारा स्वयं का चित्रण है। आत्मकथा लिखना इतना सरल कार्य नहीं है क्योंकि आत्मकथा लिखते समय आत्मकथाकार को जीवन की उपलब्धियों के साथ–साथ अपने जीवन की असफलताओं को भी दर्शाना होता है। अपने जीवन की उपलब्धियों का वर्णन तो सभी सहजता से कर लेते हैं परन्तु विफलताओं का चित्रण करने का साहस तो एक आत्मकथाकार ही सच्चे ढंग से कर सकता है। निष्पक्षतापूर्वक जीवन चित्रण ही आत्मकथा को रोचक बनाता है। आत्मकथाकार को सत्य का उद्घाटन निष्पक्ष भाव से, ईमानदारीपूर्वक, स्व के भाव से ऊपर उठकर निर्मल शुद्ध अन्तः स्थल से प्रस्तुत करना चाहिए। 'निष्पक्षता' आत्मकथा का वह महत्त्वपूर्ण घटक है, जो न केवल आत्मकथाकार को अपितु उसकी कृति को भी जीवंत, रोचक, प्रभावशाली, विश्वसनीय एवं प्रमाणित बनाता है। अतः हम कह सकते है कि निष्पक्षता के अभाव में आत्मकथा की सजीवता नष्ट हो जाती है। इसलिए निष्पक्षता को आत्मकथा के प्रमुख तत्त्व के रूप में स्वीकार करना उचित ही है।

(iii) वैयक्तिकता (व्यक्तित्व–चित्रण) : साहित्य की अन्य विधाओं की भाँति आत्मकथा–साहित्य में वैयक्तिकता की प्रधानता रहती है। आत्मकथा–साहित्य में साहित्यकार अपने ही जीवन में घटित घटनाओं का क्रमबद्ध सिलसिलेवार विश्लेषण करता है। 'आत्मकथा' स्वयं का स्वलिखित इतिहास है। साहित्य की अन्य विधाओं में व्यक्तित्व चित्रण के अन्तर्गत मुख्य पात्र के साथ–साथ अन्य पात्रों की योजना होती है परन्तु आत्मकथा–साहित्य में अन्य पात्रों की योजना न्यूनाधिक के बराबर रहती है क्योंकि आत्मकथा–साहित्य में स्वयं आत्मकार पाठक के आकर्षण का केन्द्र होता है। अन्य पात्र आत्मकथाकार के चरित्र के निमित्त मात्र ही होते हैं। आत्मकथा लेखन के समय आत्मकथाकार को इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि उसमें 'स्व' या 'अहं' भाव न उत्पन्न हो सकें। यदि ऐसा होता है, तो कृति की विश्वसनीयता खत्म हो जाती है। वह कृति आलोचना का विषय बन जाती है। इसलिए आत्मकथाकार को निष्पक्ष भाव से बिना किसी दोष के स्पष्टतापूर्वक आत्मकथा में आत्म–विश्लेषण करने की नितान्त आवश्यकता होती है। आत्मकथा लेखन का कार्य एक प्रकार का मानसिक श्रम भी है, जिसमें आत्मकथाकार स्वयं अपने मस्तिष्क का गहन अध्ययन करता है। अतीत में घटित तमाम घटनाओं को, जीवन में जीये हुए महत्त्वपूर्ण क्षणों को, स्मृतियों के वास्तविक पटल पर उकेरकर उसे लिपिबद्ध करता है। इसी संदर्भ में प्रसिद्ध आत्मकथाकार **अब्राहम काउली** ने लिखा है कि–किसी आदमी को अपने बारे में खुद लिखना मुश्किल भी है और दिलचस्प भी क्योंकि अपनी बुराई या निंदा लिखना खुद हमें बुरा मालूम होता है और अगर हम तारीफ करें, तो पाठक को उसे सुनना नागवार मालूम होता है।

श्रेष्ठ आत्मकथा वहीं हैं, जिसमें लेखक यथार्थ और वास्तविक तथ्यों को बिना किसी कल्पना अथवा विकृति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के साथ निःसंकोच भाव से प्रस्तुत करें। इस दृष्टि से हिंदी में स्त्री आत्मकथा–साहित्य जो सृजित हुए है वह है– मैत्रेयी पुष्पा **(कस्तूरी कुण्डल बसै, 2002 ई.)**, रमणिका गुप्ता **(हादसे, 2005 ई.)**, मन्नू भण्डारी **(एक कहानी यह भी, 2007 ई.)**, प्रभा खेतान **(अन्या से अनन्या, 2007 ई.)**, मैत्रेयी पुष्पा **(गुड़िया भीतर गुड़िया, 2008 ई.)**, चन्द्रकिरण सौनरेक्सा **(पिंजरे की मैना)**, रमणिका गुप्ता **(आपहुदरी 2014–15 ई.)**, सुषम बेदी **(आरोह–अवरोह 2014–15 ई.)** इत्यादि लेखिकाओं ने बेबाक लेखन किया है।

स्त्री आत्मकथाएँ स्त्री के आन्तरिक व्यक्तित्व–चित्रण को उजागर करने वाली श्रेष्ठ रचनाएँ है। पंजाब की मशहूर लेखिका अमृता प्रीतम की 'रसीदी टिकट' समूचे स्त्री आत्मकथा–साहित्य में अग्रपांक्तेय रचना है, जिसमें स्त्री–विमर्श एवं बोल्ड–लेखन का उदाहरण पहली बार मिलता है।

अमृता अत्यन्त बेबाकी के साथ रसीदी टिकट में अपने प्रेमी इमरोज से कहती हैं कि “तुम मुझे संध्या बेला में क्यों मिले? जिन्दगी का सफ़र खत्म होने वाला है। तुम्हें मिलना था तो जिन्दगी की दोपहर के समय मिलते, उस दोपहर का सेंक तो देख लेते।”[39] यद्यपि व्यक्तित्व का चित्रण पूर्ण ईमानदारी, सच्चाई, तटस्थता, यथार्थ से करना चाहिए। इन वैयक्तित्व गुणों के अभाव में आत्मकथा, आत्मकथा न होकर कबंध (हाथ, पांव और सिरविहीन शरीर) है। वह एक अपूर्ण कहानी है।

(iv) **ऐतिहासिक तथ्य :** आत्मकथा आत्माभिव्यक्ति के माध्यम से जीवन का चित्रण करने वाला वह वास्तविक आलेख है, जो यथार्थ की पृष्ठभूमि पर लिखी–पढ़ी एवं समझी जाती है। इस जीवन्त गाथा में सजीवता एवं स्वाभाविकता लाने के लिए ऐतिहासिक तथ्यों का बड़ा महत्त्व है। मुंशी प्रेमचन्द के अनुसार–मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह जिस समाज में रहता है उसमें घटित घटनाओं से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता है। समाज में जिस समय जो वातावरण एवं परिस्थितियाँ व्याप्त होती है। उसका प्रभाव लेखक और उसकी कृति पर स्पष्ट पड़ता हुआ दिखाई देता है। इसी प्रकार आत्मकथाकार भी एक सामाजिक प्राणी है। वह जिस समाज में रहता है उस समाज में घटित तमाम घटनाओं, वातावरण एवं परिस्थितियों से अछूता नहीं रह सकता। इसका प्रभाव लेखक एवं उसकी कृति में स्पष्ट दिखाई देता है। आत्मकथा–साहित्य अन्य साहित्यिक विधाओं से कुछ भिन्नता लिए हुए है क्योंकि इस विधा में लेखक ही मुख्य होता है तथा अन्य पात्रों की भूमिका गौंण होती है। आत्मकथाकार का व्यक्तित्व बाह्य जगत की परिस्थितियों (पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, साहित्यिक इत्यादि) के मध्य फलताफूलता है और यही परिस्थितियाँ उसके बाह्य एवं आन्तरिक व्यक्तित्व को प्रकट करने एवं उभारने में सहायक होती हैं। आत्मकथाकार इन परिस्थितियों के संदर्भ में ही अपनी आत्मकथा में अपने आन्तरिक एवं बाह्य संसार का वर्णन करते समय अपने जीवन की अनुभूतियों, जटिलताओं, संघर्षों, अंतद्वंद्वों, वेदनाओं एवं संवेदनाओं इत्यादि को विशिष्ट स्थान प्रदान करता है। आत्मकथा में लेखक के आंतरिक मनोभावों की भी स्पष्ट अभिव्यक्ति होती है। निःसन्देह आत्मकथा–साहित्य में देशकाल एवं वातावरण आत्मकथा के महत्त्वपूर्ण घटकों में से एक है।

(v) **भाषा–शैली :** आत्मकथा–साहित्य में शैली का विशेष महत्त्व है क्योंकि आत्मकथा–साहित्य में ‘शैली ही व्यक्ति’ है। शैली ही आत्मकथाकार के व्यक्तित्व को स्पष्ट रूप से उजागर करती हैं। आत्मकथा–साहित्य में आत्मकथाकार कई प्रकार की शैलियाँ

प्रसंगानुसार प्रयोग करता है जैसे–वर्णनात्मक, पत्रात्मक, संस्मरणात्मक, दैनंदिनी, तुलनात्मक, संवादात्मक, औपन्यासिक, स्वगत, हास्य–व्यंग्यात्मक शैली इत्यादि।

शैली से हमारा तात्पर्य बात कहने के उस अनोखे ढंग से है, जो श्रोता को अपनी ओर आकर्षित करें एवं सही भाव ग्रहण करने में सहायक हो। इस संदर्भ में **प्रो. जयनाथ नलिन** क्या खूब लिखते हैं कि "बात सभी कहते हैं, तब क्यों एक की कलेजे में बैठती है और एक की कानों में भी नहीं? एक की बात से गुदगुदी के घुंघरू बज उठते हैं, एक की बात से बातों का आलस्य भी नहीं उतरता। बात के कहने का ढंग है, यही शैली।"[40] आत्मकथाकार की शैली सुसंगठित, सुस्पष्ट, व्यवस्थित, क्रमबद्ध, प्रभावशाली, प्रभावोत्पादक, रोचक एवं आकर्षित होनी चाहिए। यही गुण आत्मकथा–साहित्य को अन्य साहित्यिक विधाओं से पृथक् करता है। आत्मकथा की भाषा जीवान्त और लोक व्यवहृत होनी चाहिए। अतः हम कह सकते हैं कि आत्मकथा अपनी भाषा–शैली वैशिष्ट्य के कारण ही पहचानी जाती है।

(vi) **उद्देश्य** : मनुष्य एक जिज्ञासु प्राणी है। उसके मस्तिष्क में कब? क्या? क्यों? कैसे? इत्यादि प्रश्न उठते रहते हैं आत्मकथा लेखन के पीछे लेखक का क्या उद्देश्य रहा होगा? पाठक इस विषय में जानने को सदैव उत्सुक रहता है। निश्चय ही आत्मकथा लेखन के पीछे लेखक का कोई न कोई उद्देश्य रहा होगा क्योंकि साहित्य की कोई भी विधा निरुद्देश्य नहीं होती। आत्मकथा लेखन के पीछे आत्मकथाकार का उद्देश्य आत्म–परीक्षण, आत्म–विश्लेषण, आत्मोन्नति, अतीत की स्मृति का पुनः परीक्षण, जीवन के कटु, मधु क्षणों, उपलब्धियों एवं विफलताओं को प्रस्तुत करना है। आत्मकथा लेखन का उद्देश्य यहीं पूरा नहीं होता अपितु आत्मकथा का दूसरा मुख्य उद्देश्य पथ–प्रदर्शक के रूप में मार्ग–प्रशस्त करना भी है, ताकि पाठक उसे पढ़कर उसका लाभ उठा सके। वस्तुतः आत्मकथाकार के अन्तःकरण में लोक–कल्याण, लोक मंगल का भाव उद्भूत रहता है। आत्मकथा लिखते समय कभी–कभी आत्मकथाकार के मन में आत्मभिव्यक्ति की भावना प्रबल हो जाती है। इसी संदर्भ में **सेठ गोविन्ददास जी** ने लिखा है कि "आत्मकथा में आत्म प्रशंसा थोड़ी बहुत अवश्य आ जाती है और यदि उसकी मात्रा बहुत अधिक न हो तो वह क्षम्य है।"[41]

पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने आत्मकथा का उद्देश्य रहस्य का प्रकाशन बताया है। **महापंडित राहुलसांकृत्यायन** ने अपनी आत्मकथा (मेरी जीवन यात्रा) का उद्देश्य समाज के लोगों का उत्थान करना, **महात्मा गांधी** (सत्य के बे प्रयोग) की दृष्टि में आत्मकथा संसार के लिए एक जीवन–दर्शन प्रस्तुत करती है। **डॉ. श्यामसुन्दर दास** ने आत्मकथा का उद्देश्य घटनाओं का

यथातथ्य वर्णन करना बताया है, वही पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपनी आत्मकथा लेखन का उद्देश्य स्वयं का मानसिक विकास अंकित करने का एक प्रयास बताया है। **पंजाबी साहित्य लेखिका, अमृता प्रीतम** (रसीदी टिकट) की दृष्टि में आत्मकथा यथार्थ से यथार्थ तक पहुँचने की प्रक्रिया है। **श्री इन्दवदन दबे** ने सत्यता को महत्त्व देते हुए आत्मकथा के द्वारा सत्य ग्रहण, निरूपण एवं संवेदन द्वारा सत्य–पथ को पाना स्वीकार किया है।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि आत्मकथा लेखन का मूल उद्देश्य आत्म–विश्लेषण, आत्मोन्नति, आत्म–परिष्कार, आत्मस्तुति, आत्माभिव्यक्ति, जन–कल्याण की भावना के साथ–साथ यश प्राप्ति, जीवन के रहस्यों का चित्रण, स्वयं के जीवन के गुण–दोषों का प्रकाशन, अतीत के प्रति मोह, इतिहास की स्मृतियों का पुनः सजीवीकरण इत्यादि बहुमुख है।

1.1.4 आत्मकथा लेखन का प्रयोजन

"काव्य यशस्ये अर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।

सद्यः परनिर्वृत्तये कान्ता–सम्मिततयोपदेशयुजे।।"[42]

भारतीय काव्यशास्त्र के इतिहास में सभी आचार्यों ने अपने–अपने काव्यप्रयोजन दिये हैं, किन्तु इन सभी आचार्यों में सर्वश्रेष्ठ एवं प्रतिष्ठित काव्य प्रयोजन **मम्मट** (काव्य प्रकाश) का माना गया है। इस परिभाषा में मम्मट ने निम्न छः काव्य प्रयोजनों का उल्लेख किया है जो निम्न है– **1. यशस्य –** यश की प्राप्ति **2. अर्थ कृते**–अर्थ की प्राप्ति। **3. व्यवहारविदे**–व्यवहार–ज्ञान (अपने निकट संबंधियों, मित्रादि की नीति, व्यवहार इत्यादि की शिक्षा देने हेतु काव्य–रचना करना)। **4. शिवेतरक्षतये**–शिव के समान, लोकहित, लोक कल्याणकारी। **5. सद्यः परनिर्वृतये–**आत्मशांति। **6. कान्तासम्म्ति उपदेश**–पत्नी के समान मधुर उपदेश देना, और गुरु की भाँति ज्ञान प्रदान करें इत्यादि रचनाएँ इस कोटि के अन्तर्गत आती है।

(i) **यश की प्राप्ति :** साहित्य सृजन के मूल में लेखक के अन्तःकरण में कहीं न कहीं यश प्राप्ति की अभिलाषा रहती है, जो लेखक को विशिष्ट प्रकार के साहित्य एवं कलात्मक सर्जन के लिए प्रेरित करती है। आत्मकथा–साहित्य में आत्मकथाकार स्वयं का जीवन चित्रण करता है। इस चित्रण में उसका पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक पक्ष भी उभर जाता है। इन सभी पक्षों का चित्रण उसे बड़ी ईमानदारी से करना चाहिए, ताकि कोई भी पक्ष अछूता न रह पाए। यदि ऐसा होता है, तो उसकी कृति आलोचना का विषय बन जाती है। आत्मकथाकार समाज में रहता है और समाज से पृथक् वह अपनी कल्पना नहीं कर सकता। समाज में विशिष्ट स्थान पाने हेतु वह विशिष्ट

साहित्य सृजन में संलग्न रहता है। इस दौरान प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से ही सही परन्तु यश की भावना उद्‌भूत होने लगती है। अतः हम कह सकते हैं कोई भी कार्य बिना स्वार्थ के नहीं किया जा सकता, उसके पीछे कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है। इसी प्रकार आत्मकथाकार का उद्देश्य विशिष्ट साहित्य सृजन कर यश प्राप्त करना है ताकि उसके न रहने पर भी मरणोपरान्त भी उसकी कृति को पढ़ा जा सके।

(ii) **अर्थ की प्राप्ति :** 'काव्य यश से अर्थकृते'। हमारे प्राचीन मनीषियों ने काव्य का प्रयोजन यश प्राप्ति के साथ–साथ अर्थ प्राप्ति भी माना है। मनुष्य विवेकशील प्राणी है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कुछ न कुछ घटित होता रहता है कुछ व्यक्ति उन घटनाओं को लिपिबद्ध कर देते हैं, तो कुछ नहीं कर पाते। अपने निजी जीवन का प्रदर्शन करना आत्मकथा लेखन कहलाता है। जब कोई आत्मकथा लोकप्रिय हो जाती है, तो उसे समाज में यश प्राप्त होता है। इस कारण व्यावसायिकरण की भावना लेखक के मन में उत्पन्न हो जाती है। अपनी लोकप्रियता एवं समाज में प्रतिष्ठित होने के कारण लाभ उठाने के उद्देश्य से साहित्य लिखकर समाज से अच्छी कीमत वसूल कर लेते हैं। आर्थिक लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से लिखी गई कुछ आत्मकथाएँ कलात्मक गुणों से उच्च कोटि की होती है, तो कुछ निरुद्देश्य। मानव जीवन निर्वाह हेतु धन आवश्यक है, किन्तु अनुचित तरीकों से धर्नोपार्जन करना मानव जाति के लिए ही नहीं अपितु साहित्यिकार के लिए भी घातक है।

(iii) **व्यवहारविदे :** जन्म और मृत्यु की परिधि में बँधे मानव जीवन का कभी अन्त नहीं होता। मनुष्य एक शरीर त्याग कर एक नवजीवन धारण करता हैं। इस जीवन से उसे कई अनुभव प्राप्त होते हैं। अनेक विद्वानों का मानना है कि मानव जीवन एक रहस्य है और इस रहस्यमय जीवन के अनुभव भी विशिष्ट होते हैं इसलिए एक लेखक को अपने अनुभवों को अपने तक सीमित नहीं रखना चाहिए। उन्हें अपनी लेखनी द्वारा लिपिबद्ध कर देना चाहिए ताकि लेखक के ये अनुभव जनोपयोगी हो सकें क्योंकि साहित्य का मूल उद्देश्य ही जनकल्याण है। लेखक के अनुभव समाज के लिए, उसके संगे संबंधियों के लिए, मित्रों के लिए एक प्रेरक दस्तावेज बन सकें। 'तैमूर की आत्मकथा' इस प्रयोजन से लिखी गयी एक विशिष्ट आत्मकथा है।

(iv) **लोकमंगल की कामना :** साहित्य की कोई भी विधा निरुद्देश्य नहीं होती है। साहित्य की प्रत्येक विधा का कोई न कोई निश्चित उद्देश्य होता है। लेखक का अपना कोई जाति, धर्म नहीं होता सभी धर्म, सभी जाति, भेदभाव से ऊपर उठकर साहित्य सृजन का कार्य करता है। आत्मकथा–साहित्य में कथाकार अपने जीवन का सजीव चित्रण वास्तविक पटल पर

उकेरता है। इस चित्रण में आत्मकथाकार निःसंकोच भाव से अपनी अच्छाइयों एवं बुराईयों का सम्यक् उद्घाटन करता है। आत्मकथा लेखन के लिए कथाकार का विशेष होना आवश्यक है क्योंकि साधारण व्यक्ति द्वारा लिखी गई आत्मकथा पाठक को प्रायः आकर्षित नहीं कर पाती। व्यक्ति विशेष की आत्मकथा लेखन का उद्देश्य बड़ा होता है। उसके प्रत्येक कार्य स्वार्थ की भूमिका से परे वास्तविक धरातल पर होते हैं। मानव जीवन के निकट होते हैं, जिनमें लोक–मंगल, जन–कल्याण, समाज–सेवा का भाव दिखाई देता है। अतः आत्मकथा–साहित्य के उद्भव के समय आत्मकथाकार के मन में लोक–कल्याण का भाव विशिष्ट रहा होगा। इसलिए आत्मकथाकार ने निष्पक्ष भाव से अपने जीवन का चित्रण आत्मकथा के द्वारा जनता के समक्ष प्रस्तुत किया होगा।

(v) **सद्यः परनिर्वृतये (आत्मशांति) :** आत्मकथा लेखन का एक महत्त्वपूर्ण प्रयोजन आत्मशांति है। लेखक समाज का एक अभिन्न व्यक्ति होता है। समाज में उसकी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। उस भूमिका का निर्वाहन करते–करते कभी–कभी उससे अनुचित कार्य भी हो जाते हैं, जो उसे आजीवन अन्दर ही अन्दर पीड़ा देते हैं। ग्लानी का ये भाव लेकर वह आजीवन दुःख झेलता रहता है। वह समाज के सामने पश्चाताप नहीं कर सकता। प्रायः आत्मशांति या पश्चाताप करने के लिए वह आत्मकथा लेखन के लिए प्रेरित होता है। अपनी आत्मकथा लेखन द्वारा जहाँ मानसिक सुख प्राप्त होता है, वहीं दूसरी ओर उसे आत्मशांति भी प्राप्त होती है क्योंकि आत्मीय बोझ लेकर जीवन जीना संभव नहीं। बहुधा देखा गया है कि कुछ लोगों के इस संसार से चले जाने के बाद उनकी आत्मकथा एक पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त हुई हैं उदाहरणार्थ गुजराती भाषा के लेखक मणिलाल नबुभाई द्विवेदी की आत्मकथा 'मरणोतर' प्रकाशित आत्मकथाओं में से एक है।

(vi) **कान्तासम्मित :** आत्मकथा गुरु की भाँति हमारे अवगुणों को दूर कर सही मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करती है।

आत्मकथा के प्रयोजन

विभिन्न कोशों के अनुसार

हिंदी साहित्यकोश के अनुसार– 'हिंदी साहित्य कोश' में आत्मकथा लिखने के सात उद्देश्य बतलाये गये हैं परन्तु यहाँ "दो भिन्न दृष्टिकोणों पर विचार किया गया है। एक प्रकार के आत्मकथात्मक साहित्य का उद्देश्य होता है।

1. आत्म निर्माण, आत्म परीक्षण या आत्म समर्थन।
2. अतीत की स्मृतियों को पुनर्जीवित करने का मोह।
3. जटिल विश्व के उलझावों में अपने आपको अन्वेषित करने का सात्विक प्रयास।

इस प्रकार के आत्मकथात्मक साहित्य के पाठकों में सर्वप्रथम स्वयं लेखक होता है, जो आत्मांकन द्वारा आत्म परिष्कार एवं आत्मोन्नति चाहता है।

आत्मसंबंधी साहित्य लिखने का एक अन्य प्रयोजन यह भी है कि–

1. लेखक के अनुभवों का लाभ अन्य लोग उठा सके। महान ऐतिहासिक आन्दोलनों और घटनाओं के सम्पर्क में रहने से डायरी, संस्मरण या आत्मकथा लेखक को यह आशा होना स्वाभाविक है।
2. कि आगामी युगों में उसकी रचना उसके युग तथा समय के प्रमाण रूप में पढ़ी जायेगी।

   यदि धर्म, राजनीति अथवा साहित्य के इतिहास निर्माण में किसी व्यक्ति का महत्त्वपूर्ण हाथ रहा हो तो अवश्य ही पाठक उस व्यक्ति के बारे में स्वयं उसकी लिखी बातों को पढ़ना पसन्द करेंगे। इन दोनों स्वतः सिद्ध उपयोगों के अतिरिक्त आत्मकथा लेखन के मूल में :

3. कलात्मक अभिव्यक्ति की प्रेरणा भी हो सकती है।
4. अपनी पद मर्यादा अथवा ख्याति से लाभ उठाने की शुद्ध व्यावसायिक इच्छा भी।"[43]

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के अनुसार – साहित्य के समस्त प्रकारों में आत्मकथा ही एक ऐसा प्रकार है, जो निरुद्देश्य या निष्प्रयोजन नहीं लिखा जा सकता। 'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' के लेखक ने आत्मकथा लेखन के निम्नलिखित प्रयोजन बतलाये हैं :

1. आत्मोन्नति के लिए आत्म परीक्षण[44]
2. अतीत की स्मृतियों से चिपकने का मोह[45]
3. स्वानुभूतियों को प्रेषित करने का मोह[46]
4. अस्मिता की स्थापना[47]
5. कलात्मक अभिव्यक्ति की इच्छा[48]
6. उच्च पद अथवा ख्याति से लाभ उठाने की शुद्ध व्यावसायिक इच्छा।[49]

विभिन्न कोशों के अनुसार आत्मकथा के प्रयोजन का अध्ययन करने के उपरान्त मेरी दृष्टि में कहा जा सकता है कि आत्मकथा आत्मकथाकार के स्वयं के जीवन मंथन से उपजे अनुभव हैं। ये अनुभव बहुत अमूल्य हैं। आत्मकथा लेखन का मुख्य प्रयोजन पाठकों को लाभान्वित करना है।

आत्मकथा के पाठकनिष्ठ प्रयोजन

1. औत्सुक्य भाव : जो किसी पाठक को किसी दूसरे के जीवन के रहस्यों की ओर आकर्षित करें।
2. पाठक आत्मकथा के माध्यम से साहित्य अध्ययन को सहज सुलभ करना चाहते हैं।
3. पाठक प्रौढ़ावस्था में चरित्र साहित्य पढ़ना अधिक पसंद करते हैं।
4. व्यापक ज्ञान की प्राप्ति हेतु भिन्न क्षेत्र के कलाकारों की आत्मकथाएँ पाठक पढ़ना चाहता है।
5. आधुनिक पाठक की दृष्टि का परिवर्तन महापुरुष से जनसाधारण की ओर होता जा रहा है।
6. लेखक के जीवन के उत्थान–पतन के प्रति सहज जिज्ञासा।

आत्मकथा के लेखकनिष्ठ प्रयोजन

1. मानसिक तनाव से मुक्ति के हेतु अच्छे–बुरे अनुभवों को औरों के समक्ष प्रस्तुत करना।
2. अपने अनुभवों से दूसरों को सीख देना।
3. अपनी कठिनाइयाँ दूसरों पर अभिव्यक्त करने के लिए।
4. 'स्व' का महत्त्व प्रतिपादित करने के लिए।
5. आत्मसमर्थन और आत्मप्रदर्शन के लिए।
6. गलतफहमियों के निराकरण हेतु।
7. अतीत की स्मृतियों को पुनः जीने का लालच।
8. विगत कहकर आत्मपश्चाताप आत्मसंतोष के लिए।
9. आत्मविश्लेषण, आत्मपरीक्षण या आत्मप्रदर्शन के लिए।[50]

पाठक की दृष्टि से आत्मकथा के प्रयोजन

1. जीवन के यथार्थ एवं गूढ़ रहस्यों को जानने के लिए।
2. अपने जीवन को समुन्नत बनाने के लिए।
3. दूसरों के जीवन में झांकने की नैसर्गिक वृत्ति के संतोष के लिए तथा
4. आत्मचरित लेखक के समसामयिक परिवेश, इतिहास तथा समाज को जानने की उत्सुकता, शांति के लिए।

लेखक की दृष्टि से आत्मकथा के प्रयोजन

1. आत्मप्रशंसा (आत्मप्रचार)।
2. आत्मस्वीकृति (कन्फैशन) अथवा पश्चाताप, आत्मज्ञान, आत्म–परीक्षण।
3. मृत्यु भीति और अमरता की आकांक्षा।
4. अपने अनुभवों और प्रयोगों से अपने अनुगामियों को लाभान्वित करने की इच्छा।
5. सहानुभूति प्राप्त करने के हेतु।
6. अपने अहं की तुष्टि के लिए।
7. अपनी प्रतिष्ठा एवं लोकप्रियता से आर्थिक लाभ उठाने की इच्छा।
8. प्रतिशोध की भावना।
9. सामाजिक प्रतिष्ठा की अभिलाषा।
10. मानसिक तनाव से मुक्ति (अभिव्यक्ति) तथा
11. अतीत का मोह।[51]

आत्मकथा के विभिन्न प्रयोजनों का अध्ययन करने के पश्चात् कहा जा सकता है कि आत्मकथा निरुद्देश्य नहीं होती। किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही आत्मकथा लिखी जाती है। आत्मकथा में आत्मकथाकार अपने विस्तृत जीवन में घटित तमाम घटनाओं, क्रिया–कलापों, अनुभवों, विचारों को निष्पक्ष एवं स्पष्ट रूप से उद्धृत करता है।

1.1.5 आत्मकथा की विशेषताएँ

1. आत्मकथा आत्मकथाकार द्वारा स्वयं के जीवन का आत्म विश्लेषण है।
2. आत्मकथा आत्मकथाकार के भोगे हुए जीवन, उस जीवन से प्राप्त कटु–मधु अनुभव, अतीत में भोगे हुए दुःख–सुःख का पुनः परीक्षण क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित रूप से पूर्णतया सत्य, ईमानदारी, निष्पक्षता, रोचकता के साथ प्रस्तुतीकरण करना आत्मकथा की प्रमुख विशेषता है।
3. आत्मकथा–साहित्य में कथाकार एक पथ–प्रदर्शक, पथ–निर्देशक के रूप में समाज एवं राष्ट्र के लिए एक आदर्श प्रतिमान प्रस्तुत करता है। यह आत्मकथा–साहित्य की प्रमुख विशेषता है।
4. आत्मकथा में आत्मकथाकार को सत्य का उद्घाटन स्व एवं अहं के भाव से परे होकर करना चाहिए।
5. आत्मकथा में लेखक का सम्पूर्ण जीवन ही प्रदर्शित नहीं होता अपितु उसका सम्पूर्ण परिवेश (रहन–सहन, खान–पान, रीति–रिवाज, परम्पराएँ इत्यादि)। भी मुखरित होता है।

6. आत्मकथा का केन्द्र स्वयं आत्मकथाकार ही है। अन्य पात्रों की भूमिका न्यूनाधिक रहती है। आत्मकथा–साहित्य में शैली ही व्यक्ति है।
7. साहित्य की अन्य विधाओं से पृथक् होना आत्मकथा–साहित्य की एक प्रमुख विशेषता है।
8. आत्मकथा–साहित्य में विषयानुकूलता, संक्षिप्तता, रोचकता, स्पष्टवादिता, प्रभावोत्पादक, क्रमबद्धता का होनी भी एक विशेषता है।
9. यथातथ्यता एवं तटस्थता आत्मकथा–साहित्य की आत्मा है।
10. आत्मकथा–साहित्य की उपादेयता, प्रासंगिकता अनन्तकाल तक जीवन्त बनी रहती है। इसलिए इस विधा का शाश्वत् होना ही अपने आप में एक सबसे बड़ी विशेषता है।
11. आत्मकथा एक दर्पण की भाँति है और आत्मकथाकार उस दर्पण का प्रतिबिम्ब है।

1.2 स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य का इतिहास

हिंदी साहित्य की पहली आत्मकथा **'अर्द्धकथानक'** नाम से प्रकाशित है। इसके लेखक श्री बनारसीदास जैन है। यह आत्मकथा सन् 1641 ई. में लिखी गई थी। यह एक पद्यात्मक आत्मकथा है, जिसमें कुल 675 पद संकलित हैं। इस आत्मकथा का सर्वप्रथम संपादन श्री नाथूराम प्रेमी ने किया तथा प्रकाशन पहली बार जुलाई 1943 ई. में 'हिंदी–ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बंबई' से हुआ। हिंदी की पहली गद्य आत्मकथा भारतेन्दु बाबू हरिशचन्द द्वारा **'कुछ आप बीती कुछ जग बीती'** शीर्षक से 1876 ई. में लिखी गई। इस आत्मकथा का प्रथम बार प्रकाशन **'कवि वचन सुधा'** नामक मासिक पत्रिका में भाग–8 सन् 22 वैशाख कृष्ण 4,1932 संवत् में हुआ। यह मात्र दो पृष्ठों में लिखी गई एक अपूर्ण आत्मकथा है।

आधुनिक हिंदी गद्य का सर्वप्रथम उदय भारतेन्दु हरिशचंद से हुआ है। खड़ी बोली हिंदी–गद्य के उत्थान करने से लेकर गद्य के स्वरूप निर्धारण करने, हिंदी–गद्य को नवीन मार्ग पर ले जाने तक का महत्त्वपूर्ण कार्य भारतेन्दु हरिशचन्द एवं भारतेन्दुयुगीन रचनाकारों ने किया है। भारतेन्दु मण्डल के कवियों में बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमधन', प्रताप नारायण मिश्र, ठाकुर जगमोहन सिंह, अम्बिकादत्त व्यास, राधाकृष्णदास, नवनीत चतुर्वेदी, गोविन्द गिल्लाभाई, राधाचरण गोस्वामी, दुर्गादत्त व्यास इत्यादि का नाम उल्लेखनीय है। भारतेन्दु युग की सबसे बड़ी उपलब्धि खड़ी बोली हिंदी–गद्य रही है, इसलिए इस युग को गद्यकाल के नाम से भी जाना गया। भारतेन्दु हरिशचन्द ने न केवल खड़ी बोली हिंदी–गद्य को विकसित किया अपितु गद्य–साहित्य के क्षेत्र में नयी–नयी रचनाएँ जैसे रिपोर्ताज, संस्मरण, रेखाचित्र, आत्मकथा पर लेखन कार्य के साथ–साथ नाटक, उपन्यास, कविता, निबन्ध इत्यादि भी लगातार लिखते रहे हैं। उनके लेखन में राष्ट्रप्रेम, देशभक्ति, मातृभूमि से प्रेम, जन–कल्याण, समाज सुधार, पुनर्जागरण का स्वर उच्चस्वर में मुखरित

हुआ है। भारतेन्दु ने 'हिंदी समारोह' के मंच से हिंदी भाषा पर भाषण देते हुए कहा था– **'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति के मूल'**। उक्त पंक्ति से ही उनका भाषा प्रेम स्पष्ट झलकता हुआ दिखाई देता है। हिंदी–गद्य के विकास में कविवचन सुधा, हरिशचंद्र मैगजीन, बाला–बोधिनी, हरिशचंद्र चंद्रिका इत्यादि पत्रिकाओं के प्रकाशन ने हिंदी गद्य को एक सशक्त एवं समृद्ध दिशा प्रदान की है। खड़ी बोली हिंदी–गद्य के अभ्युदय में भारतेन्दु जी का योगदान अतुलनीय एवं अविस्मरणीय रहेगा।

हिंदी साहित्य में आत्मकथा लेखन की परम्परा का सूत्रपात इस काल की ही देन है। हिंदी आत्मकथा–साहित्य का उदय भी इस काल से मानना समीचीन है। भारतेन्दु युग तक हिंदी गद्य का स्वरूप निर्धारित हो गया था, किन्तु अभी भी गद्य–साहित्य में सुधार की आवश्यकता थी। भारतेन्दु जी के हिंदी गद्य के परिमार्जन का कार्य आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने किया। सन् 1903 से 1920 तक वह जानी–मानी 'सरस्वती पत्रिका' से जुड़े रहे। द्विवेदी जी ने ही गद्य–पद्य दोनों भाषाओं की शैलियाँ एवं वर्तनी को आधुनिक बनाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। द्विवेदी युग के पश्चात् छायावाद युग का आरम्भ हुआ। छायावादोत्तर यह काल भारतवर्ष की संघर्षरत जनचेतना का अभिव्यक्त काल रहा है। इस काल ने भारतीय जन मानस को ही पलटकर रख दिया। जनसंघर्ष से राष्ट्रीय प्रेम की भावना विकसित होने लगी। सामाजिक कार्यों में लोगों की भागीदारी दिनोंदिन बढ़ने लगी। इस युग में अनेक साहित्यकारों, स्वतंत्रता सेनानियों ने अपनी आत्मकथाएँ लिखी। इसी शृंखला में यदि उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद की चर्चा न की जाए, तो बात अधूरी ही रहेगी। प्रेमचंद ने सितम्बर सन् 1931 में 'हंस' का एक विशेषांक 'आत्मकथांक' शीर्षक से प्रकाशित किया। इस विशेषांक में कुल 32 रचनाएँ छपी थीं। प्रेमचंद ने उन्हें 'आत्मकथा' संज्ञा से अभिहित किया, जो आत्मकथा–साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

राजेन्द्र यादव जब हंस के सम्पादक बने तो, उन्होंने इसका पुनः प्रकाशन 'हंस आत्मकथांक विशेषांक' से वर्ष 2008 ई. में दिल्ली से करवाया। इस विशेषांक में कुल 52 आत्मकथाएँ संकलित है। इस विशेषांक की सबसे बड़ी उपलब्धि है कि 20 आत्मकथाएँ लेखिकाओं द्वारा संकलित है। राजेन्द्र यादव द्वारा रचित आत्मकथा 'देहरि भई विदेस' (2005 ई.) समूचे हिंदी आत्मकथा–साहित्य की एक अमूल्य निधि है।

अम्बिकादत्त व्यास (निजवृतान्त, 1901 ई.), **स्वामी भदानंद** (कल्याण मार्ग का पथिक, 1924 ई.), **महावीर प्रसाद द्विवेदी** (मेरी जीवन रेखा, 1933 ई.), **भवानीदयाल संन्यासी** (प्रवासी की कहानी, 1939 ई.), **डॉ. श्यामसुंदर दास** (मेरी आत्म कहानी, 1941 ई.), **राहुल सांकृत्यायन** (मेरी जीवन यात्रा, 1946 ई.), **बाबू गुलाबराय** (मेरी असफलताएँ, 1946 ई.), **डॉ. राजेन्द्र प्रसाद** (आत्मकथा,

1947 ई.), **सत्यदेवपरिव्राजक** (स्वतंत्रता की खोज में, 1951 ई.), **देवेन्द्र सत्यार्थी** (चाँद सूरज के बीरन, 1952 ई.), **डॉ. हरिवंशराय बच्चन** की आत्मकथा चार (4) खण्डों में प्रकाशित एक स्मृति–यात्रा–यज्ञ है। बच्चन की क्या भूलू क्या याद करूँ, 1969 ई., नीड़ का निर्माण फिर, 1970 ई., बसेरे से दूर, 1977 ई., दस द्वार से सोपान तक, 1985 ई., इत्यादि सर्वश्रेष्ठ पुरुष आत्मकथाएँ हैं।

"महिला आत्मकथा–साहित्य का सर्वप्रथम सूत्रपात भी बांग्ला भाषा में 'आमान जीबोन' नामक आत्मकथा से सन् 1876 ई. में हुआ। इसकी लेखिका रससुंदरी देवी है। इस लिखित आत्मकथा में उन्होंने स्त्री जीवन की अत्यन्त निजत्त्व और गोपनीय जिन्दगी की दास्तां को न केवल सार्वजनिक किया अपितु अपनी प्रतिरोधी चेतना द्वारा समय–समय पर ज़ाहिर भी करती रही हैं। यह आत्मकथा स्त्री असमानता और अन्याय का कच्चा चिट्ठा खोलती है। यही साहस बांग्ला, मराठी इत्यादि अनेक भाषाओं के साथ–साथ हिंदी भाषा की अनेकों आत्मकथाओं में भी प्रतिबिम्बित हो रहा है। महिला आत्मकथाओं की दृष्टि से बांग्ला में रससुंदरी देवी की आत्मकथा के पश्चात् **बिनोदिनी दासी** (आमार कोथा, 1912 ई.), **देवी शरद सुंदरी** (आत्मकोथा, 1913 ई.), **निस्तारिणी देवी** (सेकाले कोथा, 1913 ई.), **प्रसन्नमयी देवी** (पूर्वकोथा, 1917 ई.), **अमिय बाला** (अमियबाला की डायरी, 1929 ई.), **सुदक्षिणा** सेन (जीवन स्मृति–, 1932 ई.) इत्यादि उल्लेखनीय है। आत्मकथाओं का लेखन प्रमाणित करता है स्त्री पुंसवादी समाज को चुनौती देते हुए पुरुष के सार्वजनिक और व्यक्तिगत जीवन के अन्तर्विरोध को उजागर कर रही थी।

बांग्ला भाषा के बाद मराठी भाषा में भी महिलाओं द्वारा अनेक आत्मकथाएँ लिखी गई जिनमें **रमाबाई रानके** (आमच्या आयुष्यांतीत कांही आठवणी–1910 ई.), **अन्नपूर्णा बाई रानके** (स्मृति तरंग–1931 ई.), **लक्ष्मीबाई तिलक** (स्मृति चित्रे–1934 ई.), **मीनाक्षी साने** (जीवन नृत्य–1934 ई.), **पार्वतीबाई आठवले** (माझी कहानी–1936 ई.) इत्यादि प्रमुख है। इन सभी आत्मकथाओं में पुरुष प्रधान समाज से मुक्ति की छटपटाहट एवं असमानता की वेदना के स्वर उच्च स्वर में मुखरित हुए हैं।"[52]

हिंदी भाषा में प्रथम लिखित ज्ञात महिला आत्मकथा **'दुःखिनीबाला'** द्वारा रचित **'सरलाः एक विधवा की आत्मजीवनी'** है। यह आत्मकथा एक विधवा महिला की आत्मबयानी, पीड़ा, अन्याय को भोगते हुए अपराजेय की दर्दभरी दास्ता भी है, जिसमें पुरुष प्रधान समाज के प्रति विद्रोह भाव के साथ–साथ प्रतिरोध का तीखा स्वर भी शामिल है। 'स्त्री–दर्पण' पत्रिका में जुलाई सन् 1915 से मार्च, 1916 तक के अंकों में 'आत्मजीवनी का धारावाहिक रूप' से प्रकाशन भी हुआ था।[53]

इस आत्मकथा के बाद हिन्दी भाषा में स्त्री आत्मकथा–साहित्य पर लेखन कार्य लगभग न के बराबर हुआ। "1932 में 'हंस' का एक विशेषांक 'आत्मकथांक' शीर्षक से प्रकाशित हुआ, जिसमें श्रीमती यशोदा देवी और शिवरानी देवी द्वारा लिखी गई आत्मकथाएँ प्रकाशित हुई थी।"[54] "स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य में लगभग चार दशक बाद **जानकी देवी बजाज** की आत्मकथा (मेरी जीवन यात्रा–1956 ई.) श्री रिषभ देव रांका (लिपिक) द्वारा बोलकर लिखाई गई थी।"[55] बीसवीं सदी के अन्तिम दशक तक आते–आते स्त्री हिन्दी आत्मकथा लेखन की रफ्तार तेज हुई है और एक के बाद एक स्त्री आत्मकथाएँ प्रकाशन में आ रही है। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक में स्त्री आत्मकथाओं के साथ ही साथ दलित आत्मकथाएँ विशेष रूप से प्रकाशन में आई है।

प्रतिभा अग्रवाल (दस्तक जिन्दगी की–1990 ई., मोड़ जिन्दगी का–1996 ई.), **कुसुम अंसल** (जो कहा नहीं गया–1996 ई.), **कृष्णा अग्निहोत्री** (लगता नहीं है दिल मेरा–1997 ई.), **कौसल्या बैसंत्री** (दोहरा अभिशाप–1999 ई.), **पद्मा सचदेव** (बूँद बावड़ी–1999 ई.), **शीला झुनझुनवाला** (कुछ कही कुछ अनकही–2000 ई.) इत्यादि महत्त्वपूर्ण स्त्री आत्मकथाएँ हैं।

हिन्दी आत्मकथा–साहित्य विकास के विभिन्न चरण

1.2.1 प्रारम्भिक युगः (सन् 1876 से 1927 ई.)

श्री बनारसीदास जैन (अर्द्धकथानक, 1641 ई.),

1. भारतेन्दु जी (कुछ आप बीती कुछ जग बीती, 1876 ई.),
2. ठाकुर जगमोहन सिंह (आत्माभिव्यक्ति, 1893 ई.),
3. पं. प्रताप नारायण मिश्र (कुछ आप बीती कुछ जग बीती),
4. पं. बालकृष्ण भट्ट (निः सहाय हिंदू, 1909 ई. में हिंदी प्रदीप में प्रकाशित),
5. श्री अम्बिकादत्त व्यास (निजवृतान्त, 1901 ई., 'स्वर्ग' विलास प्रेस, बांकीपुर से प्रकाशित),
6. श्री सत्यानन्द अग्निहोत्री (मुझमें देव जीवन का विकास, 1910 ई.),
7. पंडित तोताराम सनाड्य (फिजी में मेरे इक्कीस वर्ष 1914 ई.),
8. श्री संतूराम बी.ए. (मेरे जीवन के अनुभव, 1914–15 ई.),
9. लाला 'लाजपतराय' (आत्मकथा, 1915 ई.),
10. प्रो. अमरनाथ झा (मनमौजी मजमून, 1919 ई. में सरस्वती में प्रकाशित),
11. भाई परमानन्द (आपबीती)–काले पानी की कारावास कहानी 1921 ई., 'लाहौर' आर्य पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित,
12. पंडित लक्ष्मी नारायण गर्दे (जेल में चार साल, 1922 ई.),
13. स्वामी सहजानन्द श्रद्धानन्द (कल्याण मार्ग का पथिक, 1924 ई.),

14. श्री राम प्रसाद बिस्मिल (आत्मकथा, 1958 में आत्माराम एंड संस दिल्ली से प्रकाशित)
15. श्रीधर पाठक (स्वजीवनी, 1927 ई. में माधुरी में प्रकाशित)

1.2.2 विकास युग : (सन् 1928 ई. से 1946 ई.)

1. श्री निवास शास्त्री (मेरी जीवन स्मृतियाँ, 1930 ई. विशाल भारत में),
2. युवराज रघुवीर सिंह (जीवन के द्वार पर, 1930 ई. सुधा में),
3. मुंशी प्रेमचन्द (मेरा जीवन, 1932 ई.),
4. लज्जाराम मेहता (आप बीती, 1933 ई.),
5. महावीर प्रसाद द्विवेदी (मेरी जीवन रेखा, 1933 ई.),
6. श्री मैथिलीशरण गुप्त (अपने विषय में, 1936 ई.),
7. सियारामशरण गुप्त (बाल्यकाल प्रकाशन 'झूठ–मूठ' में),
8. पं. नारायण प्रसाद 'बेताब' (बेताब चरित, 1936 ई.),
9. मन्मथनाथ गुप्त (क्रांति युग के संस्मरण, 1936 ई.),
10. प्रो. अक्षयवर मिश्र (आत्मचरित चम्पू, 1939 ई.),
11. पंडित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' (निराला की आत्मकथा, कुल्लीभट्ट),
12. अंबिका प्रसाद बाजपेयी (आत्मकथा, 1939 ई.),
13. श्री भवानी दयाल संन्यासी (प्रवासी की आत्मकथा, 1939 ई.),
14. श्री कृष्णदत्त पालीवाल (मेरी आत्मकहानी, 1939 ई.),
15. श्री गोपालराम 'गहमरी' (मेरे संस्मरण, 1939 ई.),
16. महात्मा सत्यभक्त (आत्मकथा, 1940 ई.),
17. बाबू श्यामसुन्दर दास (मेरी आत्म–कहानी, 1941 ई.),
18. श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' (मेरी अपनी बात),
19. श्री बालभद्र दीक्षित 'पढ़ीस' (आत्मकथा, 1943 ई. में माधुरी में),
20. महात्मा नारायण स्वामी (आत्मकथा, 1943 ई. में आर्य साहित्य–सदन, दिल्ली शाहदरा से प्रकाशित),
21. श्री मूलचन्द अग्रवाल (पत्रकार की आत्मकथा, 1944 ई.),
22. श्री हरिभाऊ उपाध्याय (साधना के पथ पर, 1946 ई.),
23. पं. राहुल सांकृत्यायन (मेरी जीवन यात्रा, भाग 1,2,3 1946 ई.),
24. बाबू गुलाबराय जी (मेरी असफलतायें, 1946 ई. में साहित्यरत्न भण्डार, आगरा से प्रकाशित),
25. लाला लाजपतराय (आत्मकथा, 1946 ई.)।

हंस में प्रकाशित आत्मकथाएँ

1. श्री जयशंकर प्रसाद (आत्म–कथा (मधुप गुनगुन कह जाता गीत के माध्यम से आत्म–परिचय) संकलन 'लहरें' के अन्तर्गत),
2. श्री युतराय साहब लाला सीताराम (अपनी कहानी),
3. पं. रामचन्द्र शुक्ल (प्रेमधन की छाया–स्मृति),
4. पं. रामनारायण मिश्र (आदमी की पहचान),
5. पं. विनोद शंकर (मैं),
6. शिवपूजन सहाय ('मतवाला' कैसे निकला),
7. रामकृष्णदास (प्रसाधिका की प्राप्ति),
8. भाई परमानन्द (एक जेल से दूसरे जेल में),
9. डॉ. धनीराम (मेरा साहित्यिक जीवन),
10. ले. ठाकुर श्रीनाथ सिंह (मैं मौत के मुंह से जाकर लौट आया),
11. लेखक–संतराम जी (विधि या विधान),
12. लेखक–गंगाप्रसाद उपाध्याय (ईश्वर का अदृश्य हाथ),
13. प्रो. सद्गुणशरण अवस्थी (दरिद्र–दर्पण),
14. ले. जैनेन्द्र कुमार (कश्मीर प्रवास के दो अनुभव),
15. पं. विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' (मेरा वह बाल्यकाल),
16. पं. लक्ष्मीधर बाजपेई (मेरी सहयोगिनी),
17. श्री जगन्नाथ खन्ना (मेरी विचित्र कहानी),
18. ले. अन्नपूर्णानन्द जी (कल की बात),
19. पं. ठाकुरदास शर्मा (आत्मकथा),
20. लेखक–पं. गयाप्रसाद शास्त्री (मेरी आत्मकथा),
21. श्रीयुत रामकृष्णदास (अतीत साधना),

इन उपर्युक्त आत्मकथाओं के अतिरिक्त श्री शंभुदयाल सक्सेना ने (मेरे साहित्यिक जीवन का प्रभात), मुंशी दयानारायण निगम ने (मेरे जीवन का एक अनुभव), महावीर प्रसाद जी 'गहमरी' (देखी सुनी और भोगी हुई) पं. ज्वालादत्त शर्मा (घटनामयी), गोपालराम 'गहमरी' (सत्य संस्मरण), पं. बदरीनाथ (भण्डाफोड़) इत्यादि आत्मकथाएँ हंस में 'आत्मकथात्मक विशेषांक' शीर्षक से प्रकाशित है।

1.2.3 उत्कर्ष युग : (सन् 1947 से 2000 तक)

1. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद–(आत्मकथा, 1947 ई.),
2. श्री भवानीदयाल संन्यासी–(प्रवासी की आत्मकथा, 1947 ई., राजहंस प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित),
3. भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र–(जीवन के 4 अध्याय, 1947 ई.),
4. स्वामी सहजानन्द–(किसान सभा के संस्मरण, 1947 ई.),
5. गणेश प्रसाद जी वर्णी–(मेरी जीवन गाथा, 1948 ई., बनारस ग्रंथमाला से प्रकाशित),
6. हरि प्रसाद द्विवेदी–(श्री वियोगी हरि)–(मेरा जीवन प्रवाह–1948 ई. नई दिल्ली से प्रकाशित),
7. श्रीमती तारारानी श्रीवास्तव (उनकी याद, नई दिल्ली से प्रकाशित),
8. चतुरसेन शास्त्री–(चारों की परछाईयाँ, 1950), (मेरी आत्म कहानी–1963 ई.),
9. यशपाल–(सिंहावलोकन, 1951–55 कई खंडों में),
10. महादेवी वर्मा–(अपने संबंध में),
11. जैनेन्द्र कुमार–(अपनी कैफियत),
12. उदयशंकर भट्ट (मेरी रचना के स्रोत),
13. हरिकृष्ण प्रेमी–(कविता का पागलपन),
14. स्वामी सत्यदेव परिव्राजक (स्वतंत्रता की खोज, 1951 ई.),
15. शान्तिप्रिय द्विवेदी (परिव्राजक की प्रजा, 1952 ई. इण्डियन प्रेस लि. इलाहाबाद से प्रकाशित),
16. डॉ. रामकुमार वर्मा (मेरे जीवन के कुछ चित्र),
17. देवेन्द्र सत्यार्थी (चाँद सूरज के बीरन 1952 ई.), (नीलयक्षिणी, 1985 ई.),
18. डॉ. धर्मवीर भारती–(अपनी मौत पर, 1952 ई.), (ढेले पर हिमालय, पृ.282),
19. इंद्र विद्यावाचस्पति–(पत्रकारिता के अनुभव, 1952 ई.),
20. श्री अजित प्रसाद जैन–(अज्ञात जीवन, 1952 ई.),
21. कालिदास कपूर (मुदर्रिश की राम कहानी, 1953 ई.),
22. भगवानदास केला (मेरा साहित्यिक जीवन, 1953 ई.),
23. गंगा प्रसाद उपाध्याय (जीवन चक्र, 1954 ई.),
24. किशोरी लाल वाजपेयी (साहित्यिक जीवन के अनुभव एवं संस्मरण, 1955 ई.),
25. कैलाशनाथ काटजू (मैं भूल नहीं सकता, 1955 ई.),

26. प्रकाश चन्द्रगुप्त (पुरानी स्मृतियाँ और नये स्केच, 1955 ई.),
27. सुश्री जानकीदेवी बजाज (मेरी जीवन यात्रा, 1956 ई.),
28. श्री लक्ष्मण प्रसाद, श्री एल.पी. नागर (समय का फेर, 1956 ई.),
29. डॉ. देवराज उपाध्याय (बचपन के 2 दिन, 1956 ई.),
30. श्रीमती रमादेवी मुरारका (मेरी जीवन कहानी, 1956 ई.),
31. रामवृक्ष बेनीपुरी (जंजीरें और दीवारें, 1957 ई. राजपाल एण्ड संस दिल्ली से प्रकाशित),
32. श्री राधेश्याम कथावाचक (मेरा नाटक काल, 1957 ई.),
33. सेठ गोविन्ददास (आत्म–निरीक्षण भाग 1,2,3, 1957–58, भारतीय साहित्य मंदिर–दिल्ली से प्रकाशित),
34. पदुमलाल पन्नालाल बख्शी (मेरी अपनी कथा, 1958 ई.),
35. बनारसीदास चतुर्वेदी (पिछले छियालिस वर्ष, 1958 ई.), अक्टूबर में सरस्वती में प्रकाशित
36. श्री रामप्रसाद बिस्मिल (आत्मकथा, 1958 ई.),
37. देवराज उपाध्याय (बचपन के 2 दिन, 1958–59), (यौवन के पार द्वार, 1970 ई.),
38. मदन मोहन मालवीय (मालवीयजी आत्मकथा का एक पृष्ठ, 1962 ई.),
39. पं. रामनरेश त्रिपाठी (त्रिपाठी जी की आत्मकथा, 1962 ई.),
40. श्री गिरजा शुक्ल 'गिरीश' (व्यक्तित्व अगस्त 1960 ई. में कल्पना में प्रकाशित),
41. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' (अपनी खबरे, 1960 ई. राजकमल प्रकाशन, दिल्ली से),
42. आचार्य शिवपूजन सहाय (मेरा जीवन, 1962 ई.),
43. अमृताप्रीतम (अतीत की परछाइयाँ, 1962 ई.), (रसीदी टिकट, 1977 ई.),
44. श्री देवव्रत शर्मा (स्मृती के हस्ताक्षर, 1962–63 ई.),
45. सं. बनारसीदास चतुर्वेदी (रामप्रसाद बिस्मिल की आत्मकथा, 1962 ई.),
46. घनश्यामदास बिड़ला (कुछ देखा कुछ सुना, 1963 ई.),
47. श्री संतराम (मेरे जीवन के अनुभव, 1963 ई.),
48. आचार्य चतुरसेन (मेरी आत्मकहानी, 1963 ई.),
49. श्री उपेन्द्रनाथ अश्क (परतों के आर–पार, 1965 ई. में 'नीलाभ प्रकाशन' इलाहाबाद से प्रकाशित),
50. श्री पृथ्वी सिंह आजाद (क्रान्ति पथ का पथिक, 1966 ई.),
51. भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र माधव (जीवन के चार अध्याय, 1966 ई.),
52. श्री राहुल सांकृत्यायन (मेरी जीवन यात्रा भाग, 3,4,5, 1967 ई.),
53. श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी (आत्मकथा और संस्मरण, 1967 ई.),

54. वृंदावनलाल वर्मा (अपनी कहानी, 1970 ई.),

55. श्री चतुर्भुज शर्मा (विद्रोही की आत्मकथा, 1970 ई.),

56. श्री हीरालाल शास्त्री (प्रत्यक्षी जीवन शास्त्र, 1970 ई.),

57. हरिवंशराय बच्चन (क्या भूलूँ क्या याद करूँ, 1969 ई., नीड़ का निर्माण फीर, 1970 ई.),

58. प्रस्तोता सूर्य प्रकाश दीक्षित (निराला की आत्मकथा, 1970 ई. में गंगा पुस्तक माला लखनऊ से प्रकाशित),

59. डॉ. देवराज उपाध्याय (यौवन के द्वार पर, 1970 ई.),

60. श्री वृंदावनलाल वर्मा (अपनी कहानी, 1970–1972 ई.),

61. श्री ब्यौहार राजेन्द्रसिंह (सेवा, सृजन और संघर्ष–1972 ई.),

62. श्री राधाकृष्ण बिरला (भूली बातें याद करूं, 1973 ई.),

63. श्री प्रणवकुमार बंद्योपाध्याय (विदा बंधु विदा, 1973 ई.),

64. बलराज साहनी (मेरी फिल्मी आत्मकथा, 1974 ई.),

65. श्री पोद्दार रामावतार 'अरुण' (एक आत्मकथा– 'अरुणायन', 1974 ई.),

66. सरनाम सिंह अरुण (अब मौत मेरे पास आई, 1976 ई.),

67. श्री रामेश्वर टोंटिया (राह चलते–चलते, 1976 ई.),

68. डॉ. हरिवंशराय बच्चन (बसेरे से दूर, 1977 ई., दश द्वार से सोपान तक, 1985 ई.),

69. श्रीराम शर्मा (मेरी अपनी कहानी, 1977 ई.),

70. कृश्नचंदर (आधे सफर की पूरी कहानी, 1979 ई.),

71. रामेश्वर टांटिया (क्या खोया क्या पाया, 1981 ई.),

72. बलराज साहनी (यादों के झरोखे से, 1983 ई.),

73. पी.डी. टंडन (पत्रकार), (राख से लपटें, 1984 ई.),

74. यादवेन्द्र शर्मा चंद्र (अपना अतीत, 1984 ई.),

75. देवकीनंदन प्रसाद (सत्यमेव जयते, 1984 ई.),

76. रामदरश मिश्र (जहाँ मैं खुश हूँ, 1984 ई.), (सहचर है समय, 1992 ई.),

77. हंसराज रहबर (मेरे सात जन्म, 1986 ई.),

78. बलराज मधोक (जिंदगी का सफर, 1986 ई.),

79. कमलेश्वर (जो मैंने जिया, 1992 ई.), (यादों का चिराग, 1997 ई.), (जलती हुई नदी, 1999 ई.),

80. गोपाल प्रसाद व्यास (कहो व्यास कैसे कटी, 1994 ई.),

81. डॉ. रामविलास शर्मा (अपनी धरती अपने लोग (भाग–3), 1996 ई.),

82. रवीन्द्र कालिया (गालिब छुट्टी शराब, 2000 ई.),

83. भगवतीचरण वर्मा (कहि न जाय का कहिए, 2001 ई.),
84. राजेन्द्र यादव (मुड़—मुड़कर देखता हूँ, 2001 ई.),
85. अखिलेश (और वह जो यथार्थ था, 2001 ई.),
86. भीष्मसाहनी (आज के अतीत, 2003 ई.),
87. अशोक वाजपेयी (पावभर जीरे में ब्रह्मभोज, 2003 ई.),
88. स्वदेश दीपक (मैंने मांडु नहीं देखा, 2003 ई.),
89. रवीन्द्र त्यागी (बसंत से पतझर तक, 2005, ई.),
90. संपादक राजेन्द्र यादव (देहरि भई विदेश, 2005 ई.),
91. विष्णु प्रभाकर (एक अंतहीन तलाश 2007 ई.),
92. कन्हैयालाल नंदन (गुजरा कहाँ—कहाँ से, 2007 ई.),
93. डॉ. देवेश ठाकुर (यों ही जिया, 2007 ई.),
94. सं ओम थानवी (पानी बीच मीन प्यासी, 2010 ई.), (कहाँ तक कहें युगों की बात, 2011 ई,—मिथिलेश्वर, अपने—अपने अज्ञेय (2 खण्ड), 2012 ई.),
95. मणिशंकर मुखर्जी (विवेकानंद की आत्मकथा, 2012 ई.),
96. आशा आपराद (दर्द जो मैंने सहा, 2013 ई.),
97. अब्दुल गफ्फार खाँ (मेरा जीवन संघर्ष, 2013 ई.),
98. नरेन्द्र कोहली (आत्म स्वीकृति 2014 ई.),
99. के. नटवर सिंह (एक जिंदगी काफी नहीं, 2014 ई.),
100. मिथिलेश्वर (जागचेत कुछ करौ उपाई, 2015 ई.),
101. जनरल बी.के. सिंह (साहस की संकल्प एक आत्मकथा, 2015)।

स्त्री हिन्दी आत्मकथा—साहित्य (बीसवीं सदी के अन्तिम दशक एवं 21वीं सदी के प्रथम दशक तक)

1. प्रतिभा अग्रवाल, (दस्तक जिंदगी की, 1990 ई.), (मोड़ जिंदगी का, 1996 ई.),
2. कुसुम अंसल (जो कहा कहीं गया, 1996 ई.),
3. कृष्णा अग्निहोत्री (लगता नहीं है दिल मेरा, 1997 ई.), (और....और.....औरत),
4. पदमा सचदेव, (बूँद बावड़ी, 1999 ई.),
5. शीला झुनझुनवाला (कुछ कहीं कुछ अनकही, 2000 ई.),
6. मैत्रेयी पुष्पा (कस्तूरी कुंडल बसै, 2002 ई.), (गुड़िया भीतर गुड़िया, 2008 ई.),
7. रमणिका गुप्ता (हादसे, 2005 ई.), आपहुदरी एक जिद्दी लड़की की आत्मकथा, 2014—15 ई.,

8. मन्नू भंडारी (एक कहानी यह भी, 2007 ई.),
9. चन्द्रकिरण सौनरेक्सा (पिंजरे की मैना, 2008 ई.),
10. सुषम बेदी (आरोह–अवरोह, 2014–15 ई.),

दलित आत्मकथा–साहित्य

1. भगवानदास (प्रथमदलित आत्मकथा)–मैं भंगी हूँ
2. मोहनदास नैमिशराय, (अपने–अपने पिंजरे, 1995 ई.), (अपने–अपने पिंजरे भाग–2, 2000 ई.),
3. ओमप्रकाश वाल्मीकि, (जूठन 1997 ई.),
4. श्योराज सिंह बेचैन (चमारका, 1998 ई.), (दिसंबर अंक से युद्धरत आम आदमी में प्रकाशन),
5. कौशल्या बैसंत्री (दोहरा अभिशाप, 1999 ई.),
6. डी.आर. जाटव (मेरा सफर मेरी मंजिल, 2000 ई.),
7. कैलाशनाथ (जाति आरक्षण, 2000 ई.),
8. माता प्रसाद (झोंपडी से राजभवन, 2002 ई.),
9. सूरजपाल चौहान (घूँट अपमान के), (तिरस्कृत, 2002 ई.), (संतप्त, 2006 ई.),
10. सीताराम सहयोगी (मेरा गाँव और जीवन यात्रा, 2006 ई.),
11. श्यामलाल जेदिया (एक भंगी कुलपति की अनकही, 2008 ई.),
12. डॉ. श्योराज सिंह बेचैन (बचपन मेरे कंधों पर, 2009 ई.),
13. रूपनारायण सोनकर (नागफनी, 2009 ई.),
14. तुलसीराम (मुर्दहिया, 2010 ई.),
15. धर्मवीर (मोरी पत्नी और भेड़िया, 2011 ई.),
16. सुशीला टाकभौंरे (शिंकजे का दर्द, 2011 ई.),
17. तुलसीराम (मणिकर्णिका), (मुर्दहिया का दूसरा भाग, 1914 ई.),

1.3 स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य : परिचय (इक्कीसवीं सदी के विशेष सन्दर्भ में)

1.3.1 मैत्रेयी पुष्पा (कस्तूरी कुण्डल बसै, 2002 ई.)

क्रान्तिकारी लेखिका मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा भाग–प्रथम 'कस्तूरी कुण्डल बसै', (2002 ई.) स्त्री आत्मकथा–साहित्य की एक बेमिसाल रचना है। अपनी इस आत्मकथा में लेखिका ने अपनी और माँ कस्तूरी की निजी जिंदगी का वास्तविक खाका प्रस्तुत किया है। अपनी माँ से

आपसी प्रेम, करुणा, घृणा, लगाव और दुराव की अनुभूतियों को लेखिका ने इस आत्मकथा के माध्यम से बयां किया है तथा लेखिका के बाल्यकाल में कई घटनाएँ घटित हुई। कुछ घटनाएँ विशेष होने के कारण स्मरण रही, तो कुछ विस्मृत हो गई। इसी संदर्भ में मैत्रेयी पुष्पा लिखती हैं कि "यही है हमारी कहानी। मेरी और मेरी माँ की कहानी। आपसी प्रेम, घृणा, लगाव और दुराव की अनुभूतियों से रची कथा में बहुत सी बातें ऐसी हैं, जो मेरे जन्म के पहले ही घटित हो चुकी थीं, मगर उन बातों को टुकड़ों–टुकड़ों में माताजी ने जब–तब बता डाला, जब–जब उन्हें अपनी बेटी को स्त्री–जीवन के बारे में नए सिरे से समझाना पड़ा।"[56]

'कस्तूरी कुण्डल बसै' आत्मकथा में लेखिका ने अपनी माँ कस्तूरी के जीवन में घटित तमाम घटनाओं को उद्घाटित किया है कि किस प्रकार एक लड़की–लड़कों पर न्यौछावर कर दी जाती है। एक लड़की जो सबको सुख देती है, खुश रखती है, घर का चूल्हा जलता रहे के लालच में मात्र आठ सौ चाँदी के सिक्कों के लिए बेच दी जाती है और बेचने वाला कोई पराया नहीं सब उसके अपने है माँ, भाई जिनसे एक लड़की का न केवल इंसानियत का नाता हैं अपितु खून का रिश्ता भी हैं। आज यह रिश्ता किस कदर खोखला होता जा रहा है कि अपने ही अपनों का सौदा करने से नहीं हिचकिचाते। अपने प्रति अपनों का यह स्वार्थपूर्ण व्यवहार देखकर कस्तूरी को अपने ही जीवन से घृणा होने लगती है। कस्तूरी के शब्दों में– "माँ कहती है, साग–पात से पेट भरकर भी इस बात को वह भूल तो नहीं सकती, पर रात के अँधियारे–सी घिरती आती इस लड़की की जवानी, बेटों की राह में अँधेरा करने वाली है, भूख–प्यास भुला डालती है। रीता कलेजा चटकने लगता है। भगवान/क्यों जन्म देता है लड़कियों को? लोग कहते हैं, लड़कियाँ पापों के फल होती है, वे फल विषफल भी हों तो आदमी क्या करे? बेटी रूपी दुश्मन को कोसते रहो, धिक्कारते रहो, छुटकारा नहीं मिलने वाला। माँ सिसक–सिसक कर रोई थी।"[57]

वह अपने स्वतंत्र अस्तित्व की तलाश में कंटकों से भरे रास्तों से गुजरती चली जाती है। समाज की यातनाएँ झेलती है, वह अपने पैर इस धरती पर जमाने के लिए संघर्ष करती है लेकिन यह पुरुष प्रधान समाज उसे सदा अपने पैरों तले कुचलने के लिए आमदा रहता है। समाज में लड़की के विवाह की अनिवार्यता की परम्परा के विरुद्ध एक लड़की साहस से विरोध करती है, किन्तु उसका यह साहस इस समाज के लिए दुस्साहस है। एक लड़की का विवाह न करने से साफ–साफ मना कर देना उसके परिवार की शान को कलंक लगा देता है। कस्तूरी के मुख से 'मैं ब्याह नहीं करुँगी' वाक्य सुनते ही माँ ने ही भयभीत होकर देखा और नजरों से कहा– 'कस्तूरी, लड़कियों से ऐसे दुस्साहस की उम्मीद कौन कर सकता है? वे तो माँ–बाप के सामने

सिर उठाकर बात तक नहीं कर सकती, मरने का शाप हँस–हँसकर झेलती हैं और गालियाँ चुपचाप सहन करती हुई अपनी शील का परिचय देती हैं, तू मर्यादा तोड़ने पर अमादा क्यों हुई?[58]

इस आत्मकथा में कस्तूरी गृहस्थी एवं विवाह के नाम पर किसी खूँटे से बँध जाना एक प्रकार का बंधन मानती है। यह एक ऐसा बंधन है अगर कोई स्त्री इस बंधन में फँस गई, तो ताउम्र वह इस बंधन से अपने आपको मुक्त नहीं कर पाती। कस्तूरी की माँ के शब्दों में – "बेटी धान का पौधा होता है, समय से दूसरी जगह रोप देना ही अच्छा होता है............'धान का पौधा'! कस्तूरी को विस्मय हुआ। 'मैं धान का पौधा हूँ' सोचकर वह हँस पड़ी। अनपढ़ अज्ञान भाभी खुद धान का पौधा बन गई है। यहाँ रुपने की शर्त में चाँदी–सोना माँगती है। यही है औरत की जिन्दगी का सार!"[59]

सोलह वर्ष की उम्र में कस्तूरी के न चाहते हुए भी उसकी अपनी माँ ने बेटों को सुख देने के लालच में आठ सौ चाँदी के सिक्कों के लिए बेच दिया। कस्तूरी नाम की लड़की सबके भाग्य को सँवारने वाली आज अपने ही भाग्य से धोखा खा बैठी। कस्तूरी की माता जी (चाची) को कस्तूरी के धनाढ्‌य ससुराल का बड़ा गर्व होता है कि उन्होंने अपनी बेटी की शादी एक धनवान परिवार में की है, किन्तु जब बेटी कस्तूरी ससुराल पहुँचती है, तो देखती है कि ससुराल उसकी माँ की आशा के विरुद्ध है कस्तूरी के पीहर में चूल्हा जलने लगा और कस्तूरी के ससुराल में चूल्हे की आग को कर्ज़ की आग निगल गई। साहसी कस्तूरी कहती हैं कि "मैं दोनों जगहों की पन निभाऊँगी, यही मेरा पराक्रम होगा। वैसे चाची से कौन कहे कि यहाँ भी गुड़ की भेली खरीदने की कूवत नहीं बची। तेरा दामाद जमींदार और साहूकार के डर से दिल्ली भाग गया था, क्योंकि आठ सौ चाँदी के कलदारों का कर्ज गर्दन तोड़े दे रहा था। जिस रकम ने मुझे सुहागिन बनाया, वही अब भूखों मार डालने पर आमादा है। चूल्हा जले, बस चूल्हा इसलिए ही जला देती हूँ। भूखे रहना ही नहीं, भूखे दिखना भी तो आदमी की तौहीन है। सो, बस कभी शर्म आती है, कभी दुःख होता है और कभी गुस्सा बेजार कर डालता है।"[60]

धनाढ्‌य पति कर्ज़ और लगान के भय से घर छोड़ भाग निकला। कस्तूरी के कंधों पर बूढ़े ससुर व गिरवी रखे खेतों की जिम्मेदारी उसके जीवन में अशान्ति फैलाने लगे। कस्तूरी माँ बनती है, पहली संतान पुत्र रत्न पैदा होता है। नानी, मामा को (छोछक) नेग देने में कोई कष्ट न हो, वह मर जाता है। धीरे–धीरे समय बीतता है कस्तूरी दिन–रात पुरुषों की भाँति खेतों में काम करती, स्वयं भूखी रहकर ससुर का पेट भरती। स्त्री के चरित्र को लेकर पुरुष सदा ही आशंकित रहता है। कस्तूरी की गृहस्थी की हालत धीरे–धीरे सुधर ही रही थी। पति हीरालाल कस्तूरी के

चरित्र पर शक करता है, किन्तु कस्तूरी कोई साधारण नारी नहीं, वह एक संघर्षशील कर्मठ नारी है। उसने कोई अग्नि परीक्षा नहीं दी।

हीरालाल कहता है– "चल मैं गंगा का कोण बनाता हूँ, तू उसमें खड़ी होकर, सौगन्ध खा कि इस बनिया के बेटे से तेरा कोई संबंध नहीं?

कस्तूरी कहती है–

> हे संबंध, 'वह धीमे से बोली'।
>
> 'रखैल का' बोल रखैल का।
>
> बोल दे हाँ, कहते हुए उनकी लंबी काया थरथराने लगी और होंठ ऐंठने लगे। हाँ रियाया का।"[61]

बेटे की मृत्यु के डेढ़ वर्ष बाद मैत्रेयी का जन्म होता है। जन्मोत्सव धूम–धाम से मनाया गया। पैंतीस वर्ष की उम्र में पीलिया रोग से पति का देहान्त हो गया। कस्तूरी विधवा हो गई। अपनी इस वेतना को व्यक्त करती हुई कस्तूरी कहती हैं कि "मैंने ब्याह नहीं करना चाहा था, किसी ने सुनी मेरी बात? मैं भाई के ब्याह के लिए बदले में किसी बूढ़े के साथ नहीं जाना चाहती थी, बस चुपके से बेच दिया मुझे। आज विधवा हो गई, मेरे साथ कौन है? चिन्ता है किसी को?"[62]

'कस्तूरी कुण्डल बसै' आत्मकथा एक स्त्री द्वारा दूसरी स्त्री के नजरिए से लिखी गई आत्मकथा है। गुलाम भारत में जहाँ अंग्रेजों के अत्याचार ने भारतीय जनता की कमर तोड़ रखी थी। वहीं, दूसरी ओर जमींदार, साहूकारों द्वारा लगान वसूली के तौर–तरीकों से ग्रामीण जनता परेशान थी। सोने की चिड़िया कहलाने वाले भारत देश में आज मानवीयता, अत्याचारों की सभी सीमाएँ लांघकर चर्मोत्कर्ष तक पहुँच चुकी थी। कर्ज़ चुकाने, 'सुरसा मुख लगान' से अपने को बचाने की एवज में घर की बेटियों, बहनों तक को बेचा जा रहा था। क्या (?) स्त्री की इज़्जत इतनी सस्ती है कि कोई भी उसकी कीमत चुका सके। नहीं बिल्कुल नहीं, किन्तु इस आत्मकथा में ऐसे कई उदाहरण है, जो स्त्री देह व्यापार की कटु सच्चाईयों से अवगत करवाती हैं। उन्हीं ब़दकिस्मत लड़कियों में शामिल थी, कस्तूरी उसे भी इस व्यापार मण्डी में विवाह के नाम पर बेच दिया जाता है। जिस समाज में 'खेती दगा दे जाए, तो बेटी ही काम आती है' कि मानसिकता काम कर रही थी। आत्मकथा में लिखा भी गया है कि "गाय मरे अभागे की, बेटी मरे सुभागे की।"[63]

धीरे–धीरे समय गुजरता गया। देश की आजादी के लिए युद्ध हुआ और भारत स्वतंत्र हो गया, लेकिन अब भी नए भारत में स्त्रियों को वह सम्मान नहीं मिल पाया। अपनी जमीनों की

मौसीदारी के लिए नए जमाने की नई साहूकारी नीति लागू की गई।। दस गुना लगान भरो और अपनी जमीनों के मालिक बनो, स्वार्थ की पराकाष्ठा परवान चढ़ती जा रही थी। प्रेमसिंह जाट सबसे पहले लगान चुकाने के लिए अपनी ही बहन को ऊँचे दामें में रोहतक बेच आता है। शर्म आती है हमें आज ऐसे पुरुष प्रधान समाज पर, जो स्त्रियों को बेचकर धनाढ्य बनते हैं। "नम्बरदार कहा करते थे, देश आजाद हो जाएगा, तो रामराज आ जाएगा।........पर सिवा मौरूसीदार के पट्टे के कुछ न बदला। बेचने वाला वहीं रहा, खरीदने वाला वहीं रहा। बिकने वाली चीजों में गाय, बैल–भैंस, जेवर, अनाज और लड़कियाँ रहीं।"[64] स्वतंत्रता की लहर ने स्त्री–शिक्षा के नये द्वार खोले। कस्तूरी गृहस्थी को सँवारने के लिए मीलों दूर का सफर तय कर अध्ययन करने लगी। बूढ़े ससुर बेटी व घर संभालने लगे। मैत्रेयी धीरे–धीरे बड़ी हो ही रही थी कि फिर काल का कहर कस्तूरी के परिवार पर बरसा और ससुर का देहान्त हो गया। कस्तूरी ने संघर्षों से गुजरते हुए बेटी को पढ़ाया–लिखाया, ताकि बेटी बड़ी होकर स्वावलम्बी, आत्मनिर्भर बने लेकिन मैत्रेयी अध्ययन के लिए जहाँ भी जाती, वहाँ पर उसका देह शोषण होने लगता है। लड़की होने की सजा वह जगह–जगह पाती है। इन दुर्गम राहों से गुजरते हुए मैत्रेयी एम.ए. पास कर लेती है, किन्तु माँ की इच्छा के विरुद्ध जाकर माँ से अपनी सुरक्षा के उपाय के तौर पर अपने विवाह की बात कहती है। शिक्षित बेटी के मुख से विवाह की बात सुनकर कस्तूरी हैरान हो जाती है। बेटी को समझाते हुए कहती हैं कि "तू मुझे गलत समझ रही है, मेरा मतलब यह नहीं कि विवाह बुरी चीज़ है। यह औरत के लिए ऐसे बंधन पैदा करता है, जो जीवन–भर कसे रहते है। पति के रहने पर भी और न रहने पर भी। पति की पसन्द–नापसन्द दोनों औरत पर ही भारी पड़ती है। तूने किसी विधुर को विधवा की तरह रहते देखा है? किसी छोड़ी हुई औरत की तरह उसके पुरुष का अपमान होता है? और ये बातें अशिक्षित लोगों में तो अत्याचार की हद तक जा पहुँचती है।"[65]

इस आत्मकथा में परतंत्र भारत में स्त्री की सामाजिक स्थिति, गोरों के अत्याचार, जमींदारों के शोषण, शहरी एवं ग्रामीण परिवेश, मूल्यों का दोहन पग–पग पर परिलक्षित होता है। अनमेल विवाह के साये से स्वयं को बचाने के लिए कस्तूरी विद्रोहात्मक स्वर से कहती है– "मैं ब्याह नहीं करुंगी।"[66]

पुरातन मूल्यों, जर्जर रूढ़ियों, सामाजिक विधानों को तोड़ती कस्तूरी पढ़ना चाहती है। कलम–खड़िया जैसे साधन जुटा पाना उस जैसी लड़की के भाग्य में नहीं है। अँगुलियों को कलम, धरती को कागज़ बनाकर कस्तूरी मात्रा लगाकर शब्द बनाना सीख गई। साक्षर होती कस्तूरी अपनी माँ की चिन्ता का कारण बनती जा रही थी। माँ ने कहा था– "कभी पीहर चिट्ठी

मत डालना। उसने वचन निभाया। अगर ऐसी ही फालतू कसम कोई दे दे, तो पढ़ाई–लिखाई का मतलब क्या होगा? वह दुविधा में फँसने लगी। जाल में बिंधे पंछी की तरह फड़फड़ाती हुई।"[67] विवाह न करने की बात कस्तूरी के मुख से सुनकर माँ उसे मारती पीटती है, गालियाँ देती है, कहती हैं कि "मेरी सौत, तू खानदान की जड़ में दीपक, हम सबका सफाया कर देगी। हरजाई, कौन–सा यार तुझे ब्याह होकर विदा होने से रोक रहा है?"[68] कस्तूरी अपने मन की बात माँ से कहती है, वह समझती है कि भाभी तो पराई है, किन्तु माँ तो उसकी अपनी है। उसकी वेदना को समझेगी, वह माँ से कहती हैं– "मैं ब्याह करने से नहीं डरती, सती होने से डरती हूँ, जलकर मर जाने का कैसा व्रत? भस्म हो जाना भी कोई धर्म है? मरने के बाद लोग पूजें, इसलिए जिन्दगी खत्म कर दो?"[69]

कस्तूरी स्त्री की निरक्षरता को ही उसका दुर्भाग्य मानती है। विधवा जीवन के पश्चात् शिक्षा के उजाले में आने के लिए खेत–खलिहान, अपाहिज ससुर, नन्हीं बच्ची, लोक–लाज को छोड़कर लोगों की व्यंग्यवाणी सुनते हुए झोला लटकाए इगलास की ओर चलती जा रही है। कस्तूरी की मनोस्थिति का चित्रण इस संदर्भ द्वारा स्पष्ट समझा जा सकता है– "स्कूल जाने वाली झोला लटकाए औरत को भौंचक होकर सबने देखा। वह इस कदर परेशान हुई कि किसी की तो क्या, रास्ते के कंकड़–पत्थर और चढ़ाव–उतार तक न देख पाती। ठोंकर लगी, मुँह के बल गिरी। झेंपती हुई स्त्री चोट और दर्द भूलकर चुपके से उठती, धूल झाड़कर धीमे से खड़ी होती। आसपास तमाशगीर होते। हँसते–मुस्कारते बूढ़े, जवान और बच्चे। औरतें घूँघट में कैसा चेहरा लिये रहतीं, पता न चलता। बस इतना पता चल गया कि उसे लोगों ने पागल मान लिया है।"[70]

पढ़–लिखकर जहाँ कस्तूरी आत्मनिर्भर एवं ज्ञान की देवी का खिताब पाती है, वहीं दूसरी तरफ बेटी मैत्रेयी के प्रति 'मातृत्व–स्नेह' देने में असफल रह जाती है। शायद इसीलिए मैत्रेयी के लिए कस्तूरी (माँ)–'समाज कल्याणी माँ', 'महिला–मंगली माँ', खादी वर्दी पहनने वाली माँ, समाज सेविका माँ ही बनी रहती है।

कस्तूरी एक ऐसी विद्रोहिणी नारी है जिसने कष्ट सहे, लेकिन हार नहीं मानी। वह स्वयं तो अपने 'अनमेल–विवाह' को होने से नहीं रोक पाई, किन्तु अपनी ही ननद विद्या बीबी द्वारा मात्र 14 वर्ष की बेटी का ब्याह 44 वर्ष के अधेड़ पुरुष से किए जाने पर भात माँगने घर आई ननद को गुस्से से भरकर खूब खरी–खोटी सुनाते हुए कहती हैं कि "चौदह वर्ष की लड़की के लिए चवालीस का आदमी ढूँढ लिया, बड़ा मोर मार लिया! भात माँगने आई हो, शर्म नहीं आती?

ननद कहती हैं–अरी भाभी, तेरी जैसी अकल हममे कहाँ से आई, बस अपना गुजारा कर रहे हैं। लड़की कुँआरी बिठाए रहें तो हाल मुश्किल जानती है तू? उमर का बड़ा है तो

खेती–पाती में भी बड़ा है। साढ़े–तीन सौ बीघा का मौरूसीदार है। कोई गोद का लल्लू ढूंढ लेती, तो लड़की को क्या मिल जाता? रागरंग और दिलजोइयों से जिन्दगी नहीं चलती।"[71]

कस्तूरी अनमेल–विवाह के बंधन में जाने वाली लड़कियों की पीढ़ियों को सुरक्षित रखना चाहती है। उनके जन्मदाताओं (माता–पिता) से अनुरोध करती है। कहती हैं कि "आज के पढ़े–लिखे लड़के, पढ़ी–लिखी पत्नी की माँग मुँह खोलकर करने लगे हैं। तालीमयाफ्ता के साथ अनपढ़ बाँध देना ऐसे ही है जैसे गाड़ी में एक ओर घोड़ा जुता हो, दूसरी ओर गधा। गधे के संग घोड़ा कब तक अपनी चाल भूला रहे? इस हालत को देखकर गाँव के लोग अपनी लड़की को पढ़ाने तो लगेंगे।"[72]

इस आत्मकथा में गाँवों का विघटन भी एक समस्या के रूप में उभरा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत देश ने आर्थिक, वैज्ञानिक, भौगोलिक तरक्की की है। नए–नए कल–कारखानें, उद्योग–धंधे, धुंआ उगलती फैक्ट्रियाँ स्थापित हुई है। रोजगार के अवसर खुले हैं लेकिन इसमें भी संदेह नहीं है कि ग्रामीण युवा रोजगार की तलाश में अपने गाँवों, हरे–भरे खेतों एवं परिजनों को छोड़कर शहरों की ओर पलायन कर गए। देश की उन्नति से विकास की राह आसान हुई है लेकिन आज लोगों के हृदय में आपसी प्रेमभाव, भाईचारे की भावना कमजोर भी हुई है। आज हम धन से तो अमीर हो गए, किन्तु मानवता एवं रिश्तों से कंगाल भी हुए हैं। वर्तमान मूल्यों में स्वार्थ एवं स्वहित की भावना प्रबल हुई हैं।

कस्तूरी के भाई हेतराम द्वारा अपनी ही विधवा बहन के घर में चोरी करने के लिए घुसने पर पूरा गाँव कस्तूरी की सहायता में आ खड़ा होता है, किन्तु आज तो परिस्थितियाँ ही बदल गई, आज के इस दौर में इस तरह का स्नेहभाव देखने को ही नहीं मिलता।

मैत्रेयी उच्च शिक्षा प्राप्त कर लेती है। युवा होती मैत्रेयी के मन में विवाह की इच्छा तीव्र होते देख पूरा गाँव कस्तूरी को बेटी के विवाह के लिए घेर लेता है और कस्तूरी के आँगन में पूरा गाँव जमा होकर कस्तूरी को सुनाने लगता है– "धन्न–धन्न है कस्तूरी। छोरी के ब्याह का नाम नहीं लेती, यहाँ गाँव पंचायत कर रहा है। रंडी, रांड हो गई, तो क्या यह भी भूल गई कि उमर पाए बछिया भी रम्भाने लगती है। गरीब–से–गरीब आदमी बेटी की भाँवर डाल देता है, इस अधरमिन को तो बहुत दिया है भगवान ने।"[73]

कस्तूरी बेटी के विवाह के लिए योग्य वर की तलाश करती है, जहाँ पर भी विवाह का प्रस्ताव लेकर जाती है, वहीं पर उनका तिरस्कार वर पक्ष द्वारा कर दिया जाता है। विवाह के नाम पर लड़के वालों द्वारा दान–दहेज की माँग कस्तूरी को उसके विवाह की स्मृति दिला देते। विवाह के नाम पर होने वाले व्यापार से कस्तूरी को विवाह जैसे सामाजिक विधान से चिढ़ होने लगी।

बेटी ने माँ को एक ऐसी जगह लाकर खड़ा कर दिया, जहाँ कस्तूरी के सिद्धान्त टूटकर बिखरने लगे। दान–दहेज न होने के कारण पढ़ी–लिखी बेटी का महत्त्व कम हो रहा था। माँ बेटी से कहती है– "तू बैठी रह, यहीं जैसे ढोर–मंडी में गाय–भैंसें बैठी रहती है, तब तक, जब तक उनका खरीददार न आ जाए....लानत है, ऐसी पढ़ाई पर जिसका मकसद शादी–ब्याह ही हो।"[74]

अपाहिज ससुर, शिशु बेटी और खूँटे पर बँधे गाय–बैलों की जिम्मेदारी से जिसके कन्धे कभी झुके तो, मगर टूटे नहीं। बेटी के विवाह की बात कस्तूरी को उसके असहाय होने का अहसास करा देती है। कस्तूरी इन सबसे बचने का उपाय वैराग्य को खोज लेती है और बेटी मैत्रेयी से भी भगवा वस्त्र धारण कर वैराग्य धारण कर लेने को कहती है। मैत्रेयी अपनी माँ की यह विचित्र दशा देखकर अपना इरादा बदल लेती है। अपने इस आचरण के प्रति खेद व्यक्त करती है। बेटी की यह मनोदशा देखकर कस्तूरी कहती हैं कि "मुझे मुझ तक छोड़ लाली, विधवा जीवन में जीवन जैसा कुछ नहीं होता। उजड़े ठूँठ पेड़ों के झुंड को कोई बाग मानेगा? जिन्दगी–भर जिस कुदरती चक्र को त्यागने योग्य मानती रही, मुझे क्या पता था कि वही सब तेरे रूप में मुझसे लिपटकर पिछला हिसाब माँगेगा?"[75]

कस्तूरी की वर की तलाश अलीगढ़ जाकर पूरी होती है लड़का पेशे से डॉक्टर, नाम डॉ. रमेश चन्द। लड़का शिक्षित होने के साथ–साथ संस्कारी, दान–दहेज का कोई झमेला नहीं। कस्तूरी बेटी के ब्याह एवं दहेज के लिए वर के माता–पिता से बात न करके सीधे वर से ही बात करती है। कहती हैं– "शादी का उम्मीदवार लड़का ही बात करे, लड़की से मिले। माँ–बाप का हस्तक्षेप न हो।"[76]

जद्दोजहद के बाद वह दिन भी आता है, जब मैत्रेयी के लिए योग्य वर चुन लिया जाता है। अब शुरु होती है मैत्रेयी के विवाह की तैयारियाँ। विवाह की तैयारियों में जुटा पूरा सिकुर्रा गाँव। अपने–अपने खेत–खलिहान, गाय, बैलों की चिन्ता छोड़कर मानो सबका एक ही काम रह गया हो मैत्रेयी के विवाह में पुण्य बटोरना क्योंकि बिना बाप की बेटी थी। विवाह की चहल–पहल से केवल कस्तूरी का घर ही नहीं अपितु पूरे गाँव में रौनक फैली हुई थी। धूमधाम, हंसी–ठिठोलियाँ, गालियाँ गाती ग्रामीण महिलाएँ, भाँति–भाँति की रस्में, नाऊ का नेगाचार, अग्नि के साथ फेरे, रस लेते युवा, हवन कुण्ड से उठते धुएँ की गंध अब आ गई वह अश्रु भरी विदाई की बेला। डॉ. शर्मा के मित्र सिकुर्रा गाँव की औरतों को कहते हैं– "बन्दनवार तब बँधेंगे, जब गाँव की औरतें गालियाँ गाएगी। हमें तो लग रहा है, गूँगी औरतों के गाँव में आ गए।....खाती–पीती हैं, रम्भाती नहीं। इनसे तो गाएँ अच्छी।"[77]

मैत्रेयी ब्याह करके अपने ससुराल जाती है। बहू की भूमिका निभाती है, किन्तु विवाह के कुछ वर्ष बाद ही उसे यह विवाह बंधन लगने लगता है। डॉ. शर्मा अपनी पत्नी मिसेज शर्मा (मैत्रेयी) का ख्याल ही नहीं रखते अपितु परवाह भी करते है, किन्तु हैं, तो आखिर पुरुष ही। मैत्रेयी पढ़ी–लिखी है बातों के अर्थ समझती है। पति से तर्क–वितर्क, बहसें करती है।

वह इस विवाह बंधन से मुक्त होना भी चाहती है, किन्तु माँ (कस्तूरी) के विधवा जीवन की ओर देखती हैं, तो उसे आज माँ के नीरस जीवन की कटु सच्चाई समझ में आती है। आज तक अपनी माँ के प्रति जो कड़वाहट थी बेटी के मन में, वह मीठास में बदल जाती है। पिता, दादा के जाने के बाद जिस घर में रिश्तेदारों के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष की छाया भी नहीं पड़ी थी, उसी घर में डॉ. दामाद के आने से कस्तूरी इठलाने लगती है माँ के दामाद के प्रति स्नेह भाव को देखकर मैत्रेयी को ईर्ष्या होने लगती है। मैत्रेयी सोचती हैं कि "माँ! या मेरी दुश्मन? पीछा नहीं छोड़ेगी तब तक, जब तक की तबाह न कर दें। तुम्हें हमारी चूहा–बिल्ली दौड़ देखकर आनन्द आ रहा है; पर मुझे सच में आश्चर्य हो रहा है कि बेटी के ब्याह के बाद माताजी में से यह कौन–सी दूसरी औरत निकल आई है?"[78]

ये क्या मैत्रेयी के वैवाहिक जीवन में एक ओर नया मोड़ मैत्रेयी को समझ नहीं आ रहा कि खुशियाँ मनाए या दुःख क्योंकि कस्तूरी को बेटी के गर्भवती होने का पता लगेगा, तो वह अन्य माँओ की तरह खुशियाँ नहीं मनाएगी बल्कि बेटी को ही खरी खोटी सुनाएगी। माँ की इस सोच का कारण मैत्रेयी माँ की महिला–मंगली सोच एवं परिवार नियोजन की सोच को ही मानती है।

इस आत्मकथा में भारतीय समाज की दहेज परम्परा को भी चित्रित किया गया है। प्रत्येक माता–पिता स्नेह स्वरूप अपनी बेटी के विवाह पर सोना–चाँदी, रुपए–पैसे, फर्नीचर, बर्तन–भाड़े इत्यादि देते हैं। कभी अपनी सामर्थ्यानुसार तो, कभी वर पक्ष की माँग के अनुसार। इस आत्मकथा में कई ऐसे प्रसंग हैं, जो दान–दहेज की कुप्रथा की पोल खोलते है। कस्तूरी मैत्रेयी के विवाह के लिए योग्य लड़के की खोज में निकलती है, तो उसे समाज की दहेज रूपी कोढ़ से दो–चार होना पड़ता है। कहते हैं कि एक लड़की के लिए सौ वर देखे जाते है। कस्तूरी भी बेटी की विवाह रूपी इच्छा को पूरा करने का संकल्प लेती है। कड़ी दौड़–धूप के बाद डॉ. शर्मा को वर रूप में चुनकर कस्तूरी की बेटी के विवाह के लिए वर की तलाश समाप्त होती है। कस्तूरी भी अपनी सामर्थ्यानुसार बेटी को जेवर देती है जिन्हें हम स्त्री–धन कहते हैं। ससुराल पहुँचते ही यह धन उस घर में मुखिया (लड़के के माता–पिता) के हवाले हो जाते हैं। बहू द्वारा अपने गहने–जेवर माँगने पर उसे गँवार, संस्कार विहीन खाते में डाल दिया जाता है। मैत्रेयी के साथ भी ससुराल में कुछ ऐसा ही घटता है। अक्खड़ मैत्रेयी इस स्त्री–धन को देने से साफ मना कर देती है कहती हैं

कि "हम पताका–फताका कुछ नहीं जानते, बस अपना हक माँगते हैं। माँ–दादियों ने बताया है कि मर्द जो भी कील–काँटा ब्याह के समय दे, अपने कब्ज़े में रखो, क्योंकि वह सारी उम्र फोकट में काम कराता है कुछ देना नहीं चाहता, मुफ्त में मज़ा मारता है।"[79]

मैत्रेयी अठमासी बच्ची को जन्म देती है, बेटी को जन्म देकर मैत्रेयी जहाँ माँ बनकर खुश होती है, वहीं दूसरी ओर समाज की निगाहें उसे चुभने लगती है कि बेटी को जन्म देकर मानो उसने कोई अपराध किया हो। मैत्रेयी अपनी बेटी को लेकर यहाँ से उड़ जाना चाहती है। मैत्रेयी अपनी मनोदशा व्यक्त करती हुई कहती हैं कि "औरतों को चिड़ियों की तरह किसी भी डाल पर, किसी पेड़ पर, किसी बाग में मनमानी जगह नहीं मिला करती। उनका जीवन चिड़ियों जैसा सरल नहीं होता। मनुष्य के रूप में अगर सबसे कठिन, चुनौती की जिन्दगी को पाया है तो स्त्री ने या कुदरत को ही उससे बैर था? या कि सृष्टि के कर्ता–धर्ता की ही कोई साजिश.......मादा बनाने के बाद, मादा होने की सजा का नाम औरत धर दिया।"[80]

कस्तूरी के जीवन में संघर्षों का दौर काल के पहिये की तरह घूमता रहा। समय के साथ–साथ समाज में परिवर्तन होने लगा। समाज में राजनीतिक वर्चस्व बढ़ने लगा। नई सरकारें बनी पुरानी सारी योजनाएँ नई सरकार ने रद्द कर दी। 'महिला मंगल' विभाग को खत्म करने के फ़रमान जारी हुए। राजनीतिक और प्रशासनिक कार्यालयों से ग्राम सेविका और सहायक विकास अधिकारी (महिला) जैसे पद खारिज कर दिए गए। कस्तूरी एवं अन्य ग्राम सेविकाओं ने 'महिला मंगल' को बचाने के लिए कस्तूरी के नेतृत्व में आन्दोलन किए। सरकार के कड़े तेवर ने महिला मंगल को खण्ड–खण्ड कर डाला। कस्तूरी जेल गई। कई शारीरिक एवं मानसिक यातनाएँ झेली, किन्तु हार नहीं मानी। हुक्मनामे के बाद सान्तवना और शान्ति के लिए 'महिला मंगल' की महिला कर्मचारियों को स्वास्थ्य विभाग में नियुक्त कर भेज दिया गया। ट्रेनिंग दी गयी। प्रशिक्षण पाकर कस्तूरी को पी.एच.सी. केन्द्र पर भेज दिया गया, किन्तु कस्तूरी की ईमानदारी उसे कहीं भी एक जगह टिकने नहीं देती। जहाँ भी जाती वहाँ के डॉक्टरों एवं कम्पाउण्डरों के लिए आँखों का काँटा बनी रही। 'कस्तूरी कण्डल बसै' आत्मकथा स्त्री विमर्श की बेमिसाल रचना है। यह आत्मकथा स्त्री–चेतना, स्त्री–अस्मिता, स्त्री–स्वतंत्रता, स्त्री–संघर्षशीलता एवं स्त्री के सशक्तिकरण की दास्तां है। अपनी ईमानदारी, समाज के प्रति एक नागरिक होने के कर्त्तव्यों को निभाने वाली संघर्षशील नारी की यह गाथा है, जिसने अपने जीवन में संघर्षों, कठिनाईयों से कमी हार नहीं मानी। यह आत्मकथा स्त्री सशक्तिकरण की एक ऐसी इबारत प्रस्तुत करती है, जो समाज के लिए प्रेरणास्पद है।

1.3.2 रमणिका गुप्ता (हादसे, 2005 ई.)

आदिवासी लेखन की महान लेखिका रमणिका गुप्ता की आत्मकथा भाग–1 'हादसे' 2005 ई. में हजारीबाग के संघर्षों के बाद हुए संघर्षों की अपराजेय की गाथा है, जिसमें बिहार (झारखण्ड) के कोयला खदानों के संघर्ष, सामन्तवाद और लोकतंत्र के खूनी द्वन्द्व, राजनीतिक चालबाजियाँ, आदिवासी महिलाओं का शोषण, उत्पीड़न, महिला यौन–शोषण, भू–माफियाओं, मिल मालिकों, राजनेताओं की मिली भगत, कालाबाजारियों की पोल खोलती है। वह लिखती हैं कि "जिस जद्दोजहद से हम गुजरे उसे आज भी याद कर मैं सिहर उठती हूँ लेकिन इस विश्वास से रोमांचित हो उठती हूँ कि मजदूरों की संगठन शक्ति कामयाब हुई। बस इच्छा शक्ति का होना जरुरी होता है ऐसे समय में।"[81] आन्दोलन करती है, जेल जाती है, किन्तु सरकार के सामने झुकती नहीं है। कोयला खदानों का राष्ट्रीयकरण करवाने, मजदूरों, कामगारों, बेरोजगारों को रोजगार दिलवाने में अन्ततः सफल हो जाती है।

पटियाला के क्षत्रिय (राजपूत) बड़े मिलिट्री अफसर की बेटी बचपन से ही अपने मन की करने वाली हठीली, जिद्दी लड़की जो सामन्ती युग की कसौटियों को चुनौती देती है। परिवार के विरुद्ध जाकर बनिया (राकेश गुप्ता) से प्रेम–विवाह करती है। पति के साथ बिहार (झारखण्ड) चली जाती है। किसी एक चौखट से बंधकर रहना स्वीकार नहीं करती। अपने स्वतंत्र अस्तित्व की तलाश करते हुए पति से विद्रोह करके मजदूरों, कामगारों, आदिवासियों के मध्य उनकी आवाज़ बनती है। उनको हक दिलवाने के लिए अपना सम्पूर्ण वैवाहिक एवं पारिवारिक सुखी जीवन छोड़कर उन्हीं के बीच रहकर मालिकों, शोषकों के विरोध में जन–जन एवं पीड़ितों की आवाज बनकर उनकी मुक्ति के लिए अभियान चलाती है। यह आत्मकथा रमणिका गुप्ता के बोल्ड–लेखन की झाँकी भी है। मजदूरों के हित के लिए संघर्ष करती रमणिका गुप्ता लिखती हैं– "मैं अपना दुःख–सुख मजदूरों के दुःख–सुख में महसूस करती थी इसलिए उनकी तकलीफ को देखकर मेरा गुस्सा बढ़ता था। मैं गुस्से में रोने लगती हूँ और फिर संघर्ष शुरु कर देती हूँ और कड़े–से–कड़े मुकाबले के लिए पूरी तरह तैयार हो जाती हूँ। मुकाबले होते भी थे बहुत तगड़े।"[82]

'हादसे' आत्मकथा एक स्त्री की नहीं अपितु राजनैतिक कार्यकर्त्ता के रूप में उभरती महिला की कहानी है। भारतीय राजनीति में राजनीति का गढ़ रहे बिहार की राजनीति व्यवस्था को जड़ से हिला देने वाली साहसिक क्रान्तिकारी महिला की प्रेरणास्पद गाथा भी। इसी संदर्भ में वह लिखती हैं कि "कांग्रेस के बहुत से नेता मुझसे चिढ़ते थे क्योंकि मैंने उनकी कभी परवाह नहीं

की थी। वहाँ लोग स्त्री कार्यकर्त्ताओं को अपना कलेवा मानते थे जिसे भूख लगने पर खाने का एक स्वर्जित जन्मसिद्ध अधिकार उन्होंने प्राप्त कर रखा था। उनकी नजर में बिना किसी पुरुष नेता–वृक्ष का सहारा लिए महिला नेता–लता पनप और बढ़ नहीं सकती थी और मैं लता बनने को तैयार नहीं थी।"[83]

सन् 1947 भारत को स्वराज प्राप्त हो जाने के पश्चात् पाकिस्तान का गठन हुआ साथ ही शुरु हुई लोगों की अदला बदली मुस्लिम पाकिस्तान भेजे जाने लगे और पाकिस्तान में बसे हिन्दू परिवारों को भारत लाने का कार्य राजनीतिक तौर पर हो रहा था। मुस्लिम महिलाओं के हक के लिए लड़ाई करती है। खुलेआम निडर होकर मंच से सरकारी अफसरों पर आरोप लगाती है। कहती हैं– "ये जो यहाँ भाषण दे रहे है और लड़कियों को खोजने का आश्वासन दे रहे हैं सबके सब झूठ बोलते है। इनके घरों में ही तो लड़कियाँ हैं। इन्हीं लोगों के घरों में जाइए, एक–एक के यहाँ पाँच–पाँच, दस–दस लड़कियाँ मिल जाएँगी।"[84] आजादी के लिए संघर्ष करने वाले गांधी जी से प्रभावित होती है। युवा हो रही लेखिका के भीतर स्वतंत्र जीने की चाह तेज होती जाती है। गांधी जी के प्रभाव से प्रभावित होकर खादी वस्त्र पहनना शुरु करती है। खादी का भी अपना रुतबा है, जिसे केवल वही धारण कर सकता है, जो जन कल्याण के मार्ग पर चलने का प्रण लेता है। बकौल रमणिका गुप्ता– "राष्ट्र की आजादी की लड़ाई और गांधीजी के प्रभाव में मैंने 15–16 वर्ष की उम्र में ही खादी पहनना शुरु कर दी थी। बचपन से ही मैं खुदसर थी, पंजाबी भाषा में कहूँ तो 'आपहुदरी' थी। इसका मुझे कभी कोई मलाल नहीं रहा। यह प्रवृत्ति, यह ज़िद अगर मुझमें न होती तो संभवतः मैं कहीं गृहिणी बनी रोटियाँ पका–पकाकर, आठ–दस बच्चों को खिलाने में ही सन्तुष्ट रही होती। यदि राजनीति में आई भी होती तो या तो कहीं लता बन सहारे खोजती हुई भटक गई होती या फिर मेरे इर्द–गिर्द का पुरुष समाज मुझे लील गया होता। जिस मुकाम पर मैं आज हूँ, वहाँ नहीं होती।"[85]

सन् 1960 में रमणिका गुप्ता पति प्रकाश के साथ धनबाद आती है। समाज सेवा करते हुए सक्रिय राजनीति में प्रवेश करती है। भारत समाज कल्याण, भारत सेवक समाज के तहत कई संस्थाओं का संचालन करते हुए महिला सिलाई प्रशिक्षण, बालवाड़ी जैसे कई कार्यों को करती है। महिलाओं को आत्म–निर्भर बनाने, स्वावलम्बी बनाने के लिए पति एवं बच्चों के साथ कानपुर (पति वेदप्रकाश का तबादला शहर) जाना तक अस्वीकार करती है। कांग्रेस से जुड़कर समाज सेवा के कार्य करती है। उसी समय सन् 1967 में बिहार में संविद की सरकार बनती है और जल्दी टूट भी जाती है। कांग्रेस छोड़कर संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी में शामिल हो जाती है, किन्तु राजनीति के क्षेत्र में महिला कार्यकर्ता के रूप में उनका शोषण होता है और वे कांग्रेस से त्याग पत्र दे देती है,

किन्तु अपने संकल्प, कर्त्तव्य से नहीं वह लिखती हैं कि "कांग्रेस पार्टी में केवल लताएँ ही फुनगी तक पहुँच सकती हैं। जो महिला स्वयं पेड़ बनने की क्षमता रखती हो उसे काट दिए जाने की मुहिम चलाई जाती है और मैं लता बनने को तैयार नहीं, चूँकि मैं खुद निर्णय लेने में सक्षम हूँ। पति, पिता, भाई, बेटा या प्रेमी का सहारा लेकर बढ़ना मेरी आदत नहीं, इसलिए कांग्रेस की प्राथमिक सदस्यता से मेरा इस्तीफा स्वीकार करें। मैं अपना रास्ता खुद खोज लूँगी या रास्ता ही मुझे खोज लेगा।"[86]

लेखिका के राजनीतिक जीवन को नया मोड़ देने में कच्छ यात्रा का विशेष योगदान रहा है। यह यात्रा उनके जीवन में राजनीति के नए रास्ते खोलती है, वहीं दूसरी ओर प्रेम में घनिष्टता, गम्भीरता, अति संवेदनशील प्रसंग को भी जोड़ती हैं।

भारत सरकार के 'कंजरकोट' और 'छाड़वेट' इलाके पाकिस्तान को देने के विरोध में लेखिका राष्ट्रीय पैमाने पर सत्याग्रह करती है। भारत सरकार के विरोध में नारे लगाती "कंजरकोट हमारा है– छाड़वेट हमारा है भारत सरकार" निकम्मी है– कितनी लम्बी जेल तुम्हारी देख लिया है–देखेंगे।"[87] उनके इस फैसलें से लोकप्रियता (Publicaty) की चाह रखने वाले राजनेता, विधायकगण राजनैतिक हथकंडे अपनाते हुए सत्याग्रहियों का मनोबल तोड़ने लगे। मात्र ग्यारह सत्याग्रहियों के साथ लेखिका पद यात्रा, नारे लगाते, नुक्कड़ सभाएँ करते, चंदा माँगकर भोजन व्यवस्था करते, तो कभी भूखे रहकर कष्ट झेलते हुए कच्छ की दलदली ज़मीन पर पहले पग रखने की शर्त जीत लेती है। वह लिखती हैं कि "मैं महिला के नाते नहीं, एक कार्यकर्ता के रूप में जा रही हूँ–आप मुझे महिला के दायरे में शामिल कर महिलाओं को कमजोर साबित करने की कोशिश मत कीजिए। रास्ते में जो कुछ भी घटेगा वह हम सबके साथ घटेगा। एक बात और मैं आपके साथ जाऊँ तो आपकी परिभाषा के अनुसार तब भी मैं 'महिला' ही रहूँगी न। आश्चर्य है आप भी स्त्री–पुरुष के दायरे में सोचते हैं, जहाँ तक शर्त की बात है, तो रही शर्त। सच मानिए ठाकुरजी मैं अपने जत्थे के साथ आपका स्वागत करने के लिए आप से पहले वहाँ हाजिर रहूँगी।"[88] कच्छ भूमि पर आन्दोलनकारियों को वहाँ की सरकार के तीखे रुख से गुजरना पड़ा, जेल गये, गिरफ्तारियाँ दी और फिर एक बड़ी घटना संसद में जूता फेंकना घटित हुई, वहीं पर लेखिका को वहाँ के सत्याग्रही रहे लाड़ली मोहन से प्रेम हो जाता है। राजनीति में उनके पुरुष मित्रों से मेलजोल, नजदीकियों पर आरोप लगाए जाते हैं। पति के साथ संबंध टूटने की कगार तक पहुँच जाते है, किन्तु अपने अस्तित्व की स्वयं रक्षा करते हुए स्त्री आत्म–सम्मान को सुरक्षित बनाए रखती है, वह लिखती हैं कि "मैं जो हूँ, खुली किताब के रूप में सामने हूँ। मानो–न–मानो

पर मेरा अस्तित्व है और रहेगा। इस विश्वास को लेकर चलती रही हूँ, तभी तो सब ओर से हमले भी मैं झेल पाई।"[89]

राजनीति में महिलाओं का शोषण होता है। उनके आत्म–सम्मान को तोड़ने की कोशिश राजनीतिक पार्टियों में आम बात है, स्त्री को हिम्मत रखनी होगी अपनी ताकत स्वयं बनना होगा, नहीं तो ये राजनीति के ठेकेदार उन्हें पनपने नहीं देगें। इसी संदर्भ में रमणिका गुप्ता लिखती हैं कि "राजनीति और समाज–सेवा में आत्मविश्वास, हौंसला, निडरता और हठ जरुरी चीजें हैं। एक औरत को आगे बढ़ने के लिए 'थेथर' होना भी जरुरी है। 'थेथर' का मतलब संवेदनारहित नहीं, बल्कि पूर्णतया संवेदनशील होते हुए विपरीत स्थितियों में डटे रहना है।"[90]

सन् 1968 में संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी की तरफ से कांग्रेस के विरोद्ध मांडू से चुनाव लड़ती है, वहाँ पर 700 वोटों से हार जाती है, किन्तु आदिवासियों के बीच एक नई पहचान 'रानी माँ', 'गुप्ता रानी' के नाम से पहचानी जाती है।

रमणिका गुप्ता की आत्मकथा 'हादसे' पूंजीपति व सर्वहारा के नित नए संघर्षों की कहानी है। सामन्ती कुरीतियों को उजागर करती उनसे दुमुँह होती खुली मीटिंगे करती है। अपनी बुलन्द निर्भीक आवाज़ से विरोध प्रकट करते हुए बिहार में सामन्ती व्यवस्था, संघर्षों को साहस से मात देती है। सरकारी अफसर की यह बेटी (रमणिका गुप्ता) एवं बिहार केन्द्रीय उपमुख्य क्षमायुक्त की यह पत्नी बिहार के अशिक्षित, पिछड़े, बेरोजगारी को झेलते हुए, भुखमरी का शिकार होते असहाय मजदूरों को उनके हक दिलाने के लिए शासन–प्रशासन, कानून से डटकर मुकाबला करती है।

भारत आज़ाद तो हो गया, किन्तु अभी भी बिहार में आज़ादी के बाद भी अराजकता फैली हुई थी। कोयले की नगरी धनवाद आज भी मुक्त नहीं हुआ था, किन्तु राजाओं, जमींदारों, भू–माफिया आज भी वहाँ की जनता पर राज कर रहे थे। आदिवासियों से जंगल और जंगल से हरियाली छिनती जा रही थी। जातिवाद, वर्चस्व की होड़ आज भी बिहार के कई इलाकों में ठेकेदार, लठेतों के रूप में फैली हुई थी। शोषकों के हाथों से मजदूरों को मुक्त करने को ही लेखिका स्वयं सिद्ध होने का संकल्प के रूप में देखती है। लेखिका लिखती हैं कि "अपने परिवार के लिए तो सभी लोग सब कुछ करते हैं–जो दूसरों के लिए कुछ करे वही इंसान है।"[91]

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सभी रियासतों का एकीकरण किया गया। कोयले की खदानों से लेकर जंगल, जमीन पर सरकार का अधिकरण कार्य होने लगा। 1952 में केदला–झारखण्ड की खदाने शुरु हुई और 1957–58 में कोलरियों की बहाली के लिए संघर्ष शुरु हो गया। 1968 में रमणिका विधान सभा चुनाव लड़ती है। टाटा कम्पनी से विद्रोह करके स्कूल की स्थापना, पानी

की समस्या को दूर करने के लिए पाईप लाइन बनवाती है। घर–घर में नल लगवाकर प्राकृतिक संसाधन उपलब्ध कराती है, तो 'पानी की रानी' नाम से प्रसिद्धि पाती हैं।

रमणिका के साहसिक कारनामों की खबरें अखबारों के मुख्य पृष्ठ पर जगह बनाने लगी, राजनीति के क्षेत्र में उनका रंग–रुदबा दिनोंदिन बढ़ता जा रहा था। अन्य जिलों के मजदूर उनके पास यूनियन बनाने का प्रस्ताव लेकर आने लगे। यहीं से शुरुआत होती है उनकी जिन्दगी में बदलाव और अनिश्चितकालीन संघर्ष की। वह लिखती हैं कि "यहाँ से जीवन की उस लम्बी लड़ाई की शुरुआत हुई जो व्यक्ति की नहीं, निजत्व की नहीं बल्कि समूह, समष्टि और व्यवस्था के परिवर्तन से जुड़ी थी। उसमें अकेली 'मैं' नहीं थी बल्कि समष्टि थी–समष्टि की प्रतीक 'मैं'–एक व्यापक दृष्टि का रूप में।"[92]

सन् 1969 में यूनियन के गठन के साथ ही केदला में ऑफिस की स्थापना उनके जीवन की उपलब्धियों में से एक है। बिहार, केदला, कुजू, रैलीगढ़ा की कोलियरों में मजदूरों की बहाली, उन्हें नियमित करने के लिए संघर्ष करती है हमले में घायल होती है और कोलियरों के संघर्ष के पश्चात् 'कोयले की रानी' नाम से पुकारी जाती है। सभी विरोधों को झेलते हुए दुश्मनों को ललकारते हुए कहती हैं कि "लो हिम्मत है तो मारो, माँ का दूध पिया है तो चलाओ फरसा। सामने खड़ी हूँ और देखती हूँ किसमें हिम्मत है जो मुझे रोके।"[93]

इस आत्मकथा की नारी अबला नहीं, जो अपनी रक्षा के लिए किसी पुरुष पर आश्रित रहे। रमणिका के रूप में एक ऐसी साहसिक सबला नारी का चित्रण भी होता है, जो शिशु को छाती से चिपका कर दूध पिलाती है, तो असीमित करुणा एवं ममता से भर जाती है और जब कोई उसके आत्म–सम्मान को ठेस पहुँचाता है, तो वह रणभूमि में माँ दुर्गा, काली बनकर नरसंहार भी करती है। सृष्टि के सृजन एवं विघटन में स्त्री का ही विशेष योगदान रहा है। नारी की चुप्पी को पुरुष उसकी कमजोरी समझ लेता है, किन्तु ऐसा नहीं है सहने की अपार क्षमता के गुणों से परिपूर्ण, स्त्री सम्पन्नता से दम्भी पुरुष भयभीत हो जाता है। पुरुष का स्त्री पर अत्याचार उसकी अपनी हीनभावना, कमजोर मनोबल, ईर्ष्या का कारण है। पुरुष के स्त्री के प्रति रवैये का खुलासा करते हुए रमणिका गुप्ता लिखती हैं कि "मैं लम्पट की लम्पटता खत्म करने पर तुल जाती रही हूँ चाहे जिस हद तक जाना पड़े क्योंकि चुप्पी को स्वीकृतियाँ भय मानकर वह दूसरों के साथ फिर वैसी ही हरकत कर सकता है। मेरे साथ भी बचपन में ऐसा ही होता रहा, इसलिए 'मैं औरत हूँ डर जाऊँगी' जैसा निष्कर्ष निकालने का मौका राजनीति में आने के बाद प्रायः मैंने पुरुषों को दिया ही नहीं। हो सकता है इसके पीछे मेरी खुद की असुरक्षा की भावना हो। स्त्री–सुलभ लज्जा भी एक तथ्य है जो पलायन की मानसिकता को प्रोत्साहित करता है। मेरा मानना है कि लम्पटों, धूर्तों से पाला पड़े तो लज्जा त्यागकर डटना चाहिए अन्यथा वह शठता का आतंक कायम कर लेता है।"[94]

लेखिका के जीवन में संघर्षों का दौर खत्म ही नहीं हो पा रहा था कि 1970 में कुजू की घटना घटित होती है। जान लेवा हमलों से उनकी कालरबोन (कलाई की हड्डी) टूट जाती है। घायलावस्था में भी नारे लगाकर मजदूरों का मनोबल बढ़ाती रहती है। वह लिखती हैं कि "मुझे तो एक बड़ी लड़ाई लड़ने के लिए मजदूरों को तैयार करना अभी बाकी था। मुक्ति की जंग अभी अधूरी थी। अदम्य विश्वास या मुझमें और थी असीम जिजीविषा। भला अधूरा आन्दोलन छोड़कर में कैसे मरती? इसलिए अपने विरोधियों के सब अनुमानों, अन्दाजों को झुठलाती हुई मैं जिन्दा रही।"[95]

राजनीति में रमणिका गुप्ता के अनुभव एक कार्यकर्ता के रूप में चुनौतियाँ, टकराहट पैदा करते रहे। उन पर हत्या की साजिश, झूठे मर्डर केस, अदालत की अवमानना के आरोप लगे, किन्तु पूर्ण आत्मविश्वास के साथ अन्ततः विजय श्री प्राप्त कर लेती हैं। यह जीत उनके राजनीति क्षेत्र की भी बड़ी जीत होती है। महिला मजदूरों को एकत्र करके आन्दोलन चलाती है और 'मैया' के नाम से पहचानी जाती है। वह लिखती हैं कि "स्त्रियों को चुटकी में कुचल देने का दम्भ पुरुष पालता है, लेकिन स्त्री अगर अड़ जाए, तो पुरुष की हार सुनिश्चित है। फिर मेरी यह लड़ाई अपनी जमींदारी या वर्चस्व बढ़ाने की नहीं थी, सिद्धान्त की थी।"[96]

मजदूरों का लेखिका के प्रति स्नेह उनके इस कथन से स्पष्ट समझा जा सकता है– "ये जिन्दा रहेंगी, तो हमारा आन्दोलन जिन्दा रहेगा नहीं, तो हम अनाथ हो जाएँगे।"[97]

राजनीति में लेखिका के कार्यों से प्रभावित होकर स्वयं इन्द्रा गाँधी उन्हें कांग्रेस के बीस सूत्रीय कार्यक्रम की सदस्य बना देती है। ऑल इण्डिया कांग्रेस कमेटी की सदस्य बनती है। सन् 1974–75 में इंटक में कांग्रेस पार्टी की हजारी बाग जिला की अध्यक्ष बन जाती है।

राजनीति का क्षेत्र हो या समाज सेवा उनके द्वारा किये गये कार्यों की एक लम्बी फ़ेहरिस्त है, जो किसी परिचय की मोहताज नहीं। उनका स्वाभिमान, ईमानदारी, सेवा भाव ही है, जिसके बल पर वह राजनीति क्षेत्र में इतना लम्बा समय गुजार पाई और आज भी उम्र के इस पड़ाव पर वह लगातार समाज सेवा कर रही है। उनके ईमानदार व्यक्तित्व की झलक उनके इस वक्तव्य से समझी जा सकती है– "गाड़ी न मिलना ही मेरी पूँजी है। इसी में मेरी इज़्ज़त है। मालिकों से गाड़ियाँ तो मुझे रोज मिल सकती है पर मेरी वह इज़्ज़त नहीं रहेगी जो आज है।"[98]

लेखिका के जीवन में कई ऐसे मोड़ भी आए हैं, जब उन्हें राजनीति में पार्टी प्रतिबद्धता और मानवीयता के बीच में चुनाव करना पड़ा। इस चुनाव में वह मानवीयता को चुनती है। आदिवासियों की जमीनों की वापसी के लिए दिल्ली की यात्राएँ करती है, कानून का दरवाज़ा

खटखटाती है। सदन में बेंच पर खड़ी होकर बोलती है। रमणिका गुप्ता की यह आत्मकथा उनके राजनीतिक जीवन में तूफानी झंझावातों से गुजरने की अविस्मरणीय रचना भी है।

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में स्त्रीवादी लेखिकाओं में रमणिका गुप्ता जाना माना नाम है, जो किसी परिचय का मोहताज़ नहीं है। साहित्य क्षेत्र में उनके द्वारा लिखी गई रचनाओं में विशेषतः आदिवासी विमर्श पर लेखन कार्यों की एक लम्बी फ़ेहरिस्त है। हादसे (2005 ई.) एवं आपहुदरी (2014–15 ई.) अब तक उनकी दो आत्मकथाएँ प्रकाशित हो चुकी है। दोनों आत्मकथाओं को पढ़ने के पश्चात् पाठकों के मन में एक प्रश्न सदैव उठता रहा है कि रमणिका गुप्ता का कौन–सा रूप ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। लेखिका का या राजनीतिक महिला का। राजनीति के जरिए साहित्य में प्रवेश का क्या कारण था?। दोनों आत्मकथाओं को पढ़ने के उपरान्त, जो निष्कर्ष निकलता है। वह है कि लेखिका के जीवन में जो कुछ भी घटा, उससे पाठक सीख लें। शायद यही कारण रहा होगा कि रमणिका ने 'हादसे' और 'अपाहुदरी' आत्मकथाएँ लिखी। दुबारा दिल का दौरा पड़ने पर रमणिका गुप्ता को जीवन की क्षणभंगुरता का एहसास हुआ और वह अपने अनुभवों की विरासत को पाठकों तक पहुँचाने के लिए साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश करती हैं। इस घटना से पूर्व छिटपुट–रूप में वह लिखती रही हैं, किन्तु इस घटना के बाद उनकी कलम ने रफ़्तार पकड़ी। रमणिका गुप्ता के साहित्यिक क्षेत्र को दिशा देने में डॉ. रामविलास शर्मा का योगदान रहा है। बकौल रमणिका गुप्ता– "दूसरी बार दिल का दौरा पड़ने पर मुझे भय हो गया था कि शायद मैं बचूगीं नहीं। अपनी रचनाओं को, गीतों को बिना सुनाए, बिना गाए ही मैं चल दूंगी। इसका मुझे बड़ा मलाल हो रहा था। मैं दिल का ऑपरेशन करवाने दिल्ली आ गई। मेरा दिल के ऑपरेशन के बाद गोल ब्लेडर का ऑपरेशन होना था। उसी दौरान मैंने डॉ. रामविलास शर्मा जी से मिलने की ठानी, ताकि अपना रचना संसार उन्हें दिखाकर उनसे दिशा ले सकूं।[99]

'हादसे' आत्मकथा लेखन के क्षेत्र में उनकी पहली रचना है, जिसमें राजनैतिक जीवन का चित्रण किया गया है। इस आत्मकथा पर 'हरिवंश' जी द्वारा 'अग्निदीक्षा' नाम से 'प्रभात खबर' पटना से संक्षिप्त रूप से धारावाहिक भी प्रसारित किया गया है। 'हादसे' आत्मकथा राजनीतिक संघर्षों की गाथा होने के साथ–साथ उनके दृढ़ संकल्पों की गाथा भी है। उनके राजनीतिक जीवन के संघर्षों को पढ़ने के पश्चात् यह पंक्ति कही जा सकती है – "रुकूँगी नहीं, झुकूँगी नहीं, माना रास्ते में मुश्किलें हजार हैं। एक प्रण किया है खुद से, पूरा किए बिना मरुँगी नहीं।"

इस आत्मकथा को पढ़ने के उपरान्त मेरी दृष्टि से कहा जा सकता है कि लेखिका पुरुषप्रधान समाज द्वारा स्त्री के लिए खींची गई सभी लक्ष्मण रेखाएँ उलांघ जाती है। समाज के दबेकुचले वर्ग के हितार्थ के लिए अपना सुखी वैवाहिक जीवन दाँव पर लगाकर राजनीति के क्षेत्र

में सक्रिय रहते हुए संसद तक पहुँच जाती है। एक सफल राजनीतिक, कटिबद्ध महिला कार्यकर्ता के रूप में अपनी स्वच्छंद पहचान बनाती है। अन्तरिक्ष यात्रा हो या हिमालय पर्वत की ऊँची चढ़ाई, वैज्ञानिक क्षेत्र हो या शिक्षा का क्षेत्र महिलाओं की उपस्थित बरकरार है।

1.3.3 मन्नू भण्डारी (एक कहानी यह भी, 2007 ई.)

'एक कहानी यह भी' (2007 ई.) हिंदी साहित्य की एक ऐसी स्त्री आत्मकथात्मक कृति है, जिसमें स्त्री जीवन की घुटन, पीड़ा, अन्याय, पति की संकुचित मानसिकता, वैवाहिक जीवन के दर्द को बयां किया गया है। यह एक दर्दनाक कहानी है, जिसमें लेखिका के भोगे हुए जीवन का सच यथार्थ के धरातल पर प्रकट हुआ है।

'एक कहानी यह भी' आत्मकथा में मन्नू भण्डारी ने अपने बाल्यकाल से लेकर लेखिका बनने के मार्ग में आने वाली घटनाओं का उल्लेख किया है। इस आत्मकथा में लेखिका ने अपने कमजोर आत्मविश्वास को हीनता–ग्रन्थि के संदर्भ में रखा है। मन्नू भण्डारी ने अपने जीवन काल में कई कहानियाँ, उपन्यास, नाटक इत्यादि लिखें। राजनीतिक चेतना से सम्पन्न 'महाभोज' आौर 'आपका बंटी' उनके द्वारा लिखे गए सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में से एक है। एक सफल लेखिका के तौर पर हिंदी साहित्य जगत में उनकी अपनी स्वच्छन्द पहचान है। वह किसी कुंठित लेखनी का करिश्मा नहीं। 'एक कहानी यह भी' में मन्नू भण्डारी एक स्त्री के संघर्ष, पीड़ा एवं स्त्री–अस्मिता, स्त्री–स्वतंत्रता, स्त्री–स्वावलम्बन को पिरोए स्त्री–विमर्श के अनेक आयामों को प्रस्तुत करती है।

मध्यप्रदेश के भानपुरा में जन्मी मन्नू भण्डारी का जन्म एक शिक्षित एवं मध्यवर्गीय परिवार में हुआ। पाँच भाई–बहनों के इस परिवार में मन्नू भण्डारी सबसे छोटी थी। इन्दौर शहर में रहते हुए पिता को एक बहुत बड़े आर्थिक संकट से गुजरना पड़ा और पूरा परिवार अजमेर शहर में आ बसता है। आर्थिक संकट से गुजरने के कारण विशिष्टता की चाह रखने वाले पिता के मन में कुंठाओं के भाव भर गए थे। पिता के भय से कांपता पूरा परिवार, पिता के क्रोध का सामना करती मन्नू की माँ, जो धरती के समान गम्भीर एवं धैर्यवान थी। पिता के स्वभाव से परिचित बिना कुछ कहे सब कुछ सहती रहती थीं। महत्त्वाकांक्षी पिता की नसीहतें एवं उपेक्षाएँ मन्नू भण्डारी के अन्तः स्थल तक गहरी उतर गई। वह अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने के लिए, अपने अस्तित्व की खोज करने लगती है और इस खोज को लेखिका बनकर प्राप्त करती है। वह लिखती हैं– "बचपन और किशोरावस्था के मेरे सम्पर्क–सम्बंध (जिसमें माँ–पिता, भाई–बहिन, मित्र–अध्यापक आदि हैं) और वह परिवेश तो है ही, जिसमें मेरे लेखकीय व्यक्तित्व की नींव पड़ी थी। होश संभालने के बाद

जिन पिता से मेरी कभी नहीं बनी....उम्र के इस बौनेपन को पीछे मुड़कर देखती हूँ तो आश्चर्य होता है, बल्कि कहूँ कि अविश्वसनीय लगता है कि आज अपनी अच्छाइयों और बुराईयों के साथ जो भी हूँ जैसी भी हूँ, उसका बहुत–सा अंश विरासत के रूप में शायद मुझे पिता से ही मिला है।"[100]

हमारे समाज में गौरे रंग को आरम्भ से ही सौन्दर्य का प्रतीक माना गया है मुख्यतयाः स्त्री के सन्दर्भ में। रंग के आधार पर व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्धारण करना समाज की मूल प्रवृति रहा है, किन्तु यही गौरा रंग मन्नू भण्डारी के पिता की कमजोरी था। मन्नू बचपन से ही काली एवं सूक्ष्मकाय वाली लड़की थी। इसलिए वह पिता की पसन्द नहीं थी। अपने से बड़ी बहन से तुलना करना, पिता द्वारा उसे अधिक प्रोत्साहन देना इत्यादि कारणों ने मन्नू के बाल हृदय में हीनता के भाव भर दिए थे। तुलना का यह रूप व क्षेत्र समय के साथ–साथ विस्तृत होते चले गए। शायद यही कारण रहा है कि आज तक मन्नू भण्डारी अपनी उपलब्धियों को भाग्य और ईश्वरीय चमत्कार से जोड़कर देखती हैं। वह लिखती हैं कि "आज भी परिचय करवाते समय जब कोई तरह–तरह के विश्लेषण लगाकर मेरी लेखकीय उपलब्धियों का जिक्र करने लगता है, तो मैं संकोच से सिमट ही नहीं जाती, बल्कि गड़ने–गड़ने को हो जाती हूँ। शायद अचेतन की किसी पर्त के नीचे दबी इसी हीनभावना के चलते ही मैं अपनी किसी भी उपलब्धि पर भरोसा नहीं कर पाती....सब कुछ मुझे तुक्का ही लगता है।[101]

'एक कहानी यह भी' आत्मकथा में मन्नू भण्डारी ने 1946–47 की क्रान्तिकारी घटनाओं का उल्लेख किया है, आजादी का स्वर पूरे भारत में गूंज रहा था। क्रान्ति की यह गूंज मन्नू भण्डारी के हृदय तक पहुँचती है। वह भी इस लड़ाई में कूद जाती हैं, हड़ताले, जूलुस, भाषण, प्रभात फेरियाँ आजादी को चाहने वाले युवा वर्ग की पहचान थी। मन्नू भी धीरे–धीरे युवा हो रही थी। देश की आजादी की लड़ाई को मन्नू भण्डारी ने स्वयं की भी आजादी समझा और कूद पड़ी इस लड़ाई में। पुंसवादी समाज की सोच और मानसिकता पर प्रश्नचिन्ह उठाते हुए वह स्त्री–विमर्श के एक ज्वलंत पक्ष को भी व्यक्त करती है। वह लिखती हैं कि "हाथ उठा–उठाकर नारे लगाती, हड़ताले करवाती, लड़कों के साथ शहर की सड़कें नापती लड़की को अपनी सारी आधुनिकता के बावजूद बर्दाश्त करना उनके लिए मुश्किल हो रहा था, तो किसी की दी हुई आजादी के दायरे में चलना मेरे लिए। जब रगों में लहू की जगह लावा बहता हो, तो सारे निषेध, सारी वर्जनाएँ और सारा भय कैसे ध्वस्त हो जाता है, यह तभी जाना और अपने क्रोध से सबको थरथरा देने वाले पिताजी से टक्कर लेने का जो सिलसिला तब शुरु हुआ था, राजेन्द्र से शादी की, तब तक वह चलता ही रहा।"[102]

'एक कहानी यह भी' में मन्नू भण्डारी स्त्री के जन्म से लेकर मृत्यु तक अनेक वर्जनाओं, बँधनों, समाज एवं पितृसत्तात्मक समाज की ओर से लगी अनेक पाबंदियों को उजागर कर स्त्री–शोषण, स्त्री–अन्याय के विरुद्ध प्रतिरोध का कच्चा चिट्ठा प्रस्तुत करती है। एक लड़की का इस तरह रात–रात भर घर से गायब रहना, राजनीति मीटिंगों में शामिल होना समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता था। आए दिन शिकायतों का ढेर, पिता का क्रोध, मन्नू पर जब तब बरस जाता। समाज में यश, मान, प्रतिष्ठा बनाए रखना ही उनके पिता की सबसे बड़ी कमजोरी था। शायद इसी कमजोरी के चलते उन्होंने अपने बच्चों से कुछ ज्यादा ही आशाएँ बाँध रखी थी। इसी संदर्भ में लेखिका लिखती हैं कि "यश–कामना, बल्कि कहूँ कि यश–लिप्सा, पिताजी की सबसे बड़ी दुर्बलता थी और उनके जीवन की धुरी था वह सिद्धान्त कि व्यक्ति को कुछ विशिष्ट बनकर जीना चाहिए....कुछ ऐसे काम करने चाहिए कि समाज में उसका नाम हो, सम्मान हो, प्रतिष्ठा हो, वर्चस्व हो।"[103]

माध्यमिका की शिक्षा पूर्ण कर, जब मन्नू उच्च माध्यमिक (फर्स्ट इयर) में आई, तो समझ का दायरा, मस्तिष्क में विचारों का तूफान उठने लगा। साहित्य के प्रति रूचि जाग्रत होने लगी। मन्नू का साहित्य में प्रथम परिचय हिन्दी की प्राध्यापिका शीला अग्रवाल ने करवाया। यहीं से मन्नू के भीतर क्रान्तिकारी विचारों का प्रस्फुटन होता है। आजादी की माँग पूरे भारत में जोरों–शोरों से उठ रही थी। कॉलेज, स्कूल के युवा भी इस आन्दोलन से जुड़कर भ्रष्टाचार और गुलामी के विरुद्ध आवाज उठा रहे थे। युवा वर्ग का एक बहुत बड़ा समुदाय मन्नू के नेतृत्व में दिशा–निर्देश प्राप्त कर रहा था। मन्नू का राजनैतिक वर्चस्व देखकर पूरा कॉलेज प्रशासन सकते में था। आज तक जिन पिता से मन्नू के वैचारिक मतभेद रहे, वहीं पिता मन्नू के क्रान्तिकारे कारनामें सुनकर गौरान्वित होते हैं। आज पहली बार पिता को अपनी बेटी पर गर्व होता है। इसी संदर्भ में वे मन्नू से कहते हैं– "सारे कॉलेज की लड़कियों पर इतना रौब है तेरा....सारा कॉलेज तुम तीन लड़कियों इशारे पर चल रहा है? प्रिंसिपल बहुत परेशान थी और बार–बार आग्रह कर रही थी कि मैं तुझे घर बिठा लूँ, क्योंकि वे लोग किसी तरह डरा–धमकाकर, डाँट–डपटकर लड़कियों को क्लासों में भेजते हैं और तुम लोग एक इशारा कर दो कि क्लास छोड़कर बाहर आ जाओ तो सारी लड़कियाँ निकलकर मैदान में जमा होकर नारे लगाने लगती हैं। तुम लोगों के मारे कॉलेज चलाना मुश्किल हो गया है, उन लोगों के लिए। कहाँ तो जाते समय पिताजी मुँह दिखाने से घबरा रहे थे और कहाँ बड़े गर्व से कहकर आए कि यह तो आज पूरे देश की पुकार है...इस पर कोई कैसे रोक लगा सकता है भला? बेहद गद्‌गद स्वर में पिताजी यह सब सुनाते रहे और मैं अवाक्। मुझे न अपनी आँखों पर विश्वास हो रहा था, न अपने कानों पर। पर यह हक़ीकत थी।"[104]

भारत आजाद हो गया, देश का विभाजन एवं उस विभाजन से लोगों का भी विभाजन करके उन्हें दूसरे देश पाकिस्तान भेजा जाने लगा। अपने देश की मिट्टी और भाषा से व्यक्ति कभी दूर होकर जीवित नहीं रह सकता। यह गहरी बात जो उस समय मन्नू को समझ में आती है। वह लिखती हैं कि– "यह मात्र भाषा–प्रेम नहीं है, यह तो उस जगह का उस मिट्टी का प्रेम है, भाषा जिसका अविच्छिन्न हिस्सा है।"[105]

'एक कहानी यह भी' मन्नू भण्डारी के रूप में एक ऐसी स्त्री की संघर्ष गाथा है, जो अपने अस्तित्व, अपनी–अस्मिता की तलाश में अपना भाग्य खुद लिखने के लिए कटिबद्ध है। बालीगंज शिक्षा सदन कलकत्ता में नौ वर्ष अध्यापन कार्य करते हुए इसी विद्यालय के पुस्तकालय की व्यवस्था करने एवं पुस्तकों की सूची तैयार करने के दौरान मन्नू भण्डारी की पहचान राजेन्द्र यादव से होती है और दोनों पंचायती विवाह कर लेते हैं। एक कर्मठ एवं निष्ठावान लेखक की पत्नी होने का अहसास और एक बेहद कुण्ठित, जिद्दी पति की संगिनी होने का अवसाद, पारिवारिक उत्तरदायित्वों को पूरा करते–करते उन्हें स्वयं ही इस विवाह से घुटन होने लगती है। अपनी चाह और कुछ विशिष्ट बनने की ललक, महत्त्वाकांक्षाओं ने उन्हें जीवन के एक ऐसे अवसाद के मोड़ पर ला खड़ा किया, जहाँ पर किसी का भी मानसिक संतुलन गड़बड़ाने लगता, किन्तु यह एक साहसिक और सहनशील स्त्री का दृढ़ संकल्प ही है, जिसने उन्हें टूट कर बिखरने नहीं दिया। मन्नू भण्डारी ने अपने जीवनकाल में उतनी मात्रा में नहीं लिखा, किन्तु वे जितना भी लिख पाई वह उनके जीवन की महानतम उपलब्धियाँ है, जो बेहद निजी है उनकी सम्पत्ति है। इसी संदर्भ में लेखिका लिखती हैं– "लेखन के कारण ही हमने विवाह किया था...हम पति–पत्नी बने थे। उस समय मुझे लगता था कि राजेन्द्र से विवाह करते ही लेखन के लिए तो जैसे राजमार्ग खुल जाएगा और उस समय यही मेरा एकमात्र काम्य था। उस समय कैसे मैं यह भूल गई कि शादी करते ही मेरे व्यक्तित्व के दो हिस्से हो जाऐंगे....लेखक और पत्नी। इसमें कोई संदेह नहीं कि मेरे लेखकीय व्यक्तित्व को राजेन्द्र ने ज़रुर प्रेरित और प्रोत्साहित किया...इनके साथ मिलनेवाला साहित्यिक वातावरण, होने वाली गप्प–गोष्ठियाँ मेरे बहुत बड़े प्रेरणा–स्त्रोत भी रहे, लेकिन मेरे व्यक्तित्व का पत्नी–रूप? इस पर राजेन्द्र निरन्तर जो और जैसे प्रहार करते रहे उसका परिणाम तो मेरे लेखक ने ही भोगा। निरन्तर खण्डित होते आत्म–विश्वास से लेखन में आए गतिरोध का जो सिलसिला शुरु हुआ अन्ततः वह उसके पूर्ण विराम पर ही समाप्त हुआ।"[106]

'एक कहानी यह भी' में मन्नू भण्डारी अपनी आत्मनिर्भरता, स्वावलम्बन, सफलता और सफल लेखिका बनने की दास्तां को बयां करती हुई राजेन्द्र यादव द्वारा ईर्ष्याग्रस्त, कुंठित एवं असहज होने की घटना के माध्यम से पुरुष प्रधान सामन्ती विचारधारा और मानसिकता पर प्रश्न

उठाते हुए स्त्री–अस्मिता के एक ज्वलंत पक्ष को इस प्रकार व्यक्त करती हैं। वह लिखती हैं कि "मुझे इनके नौकरी न करने से न कोई शिकायत थी....न तकलीफ़। तकलीफ़ थी तो केवल इस बात कि जब आप नौकरी कर ही नहीं सकते, करना ही नहीं चाहते, तो कम–से–कम फिर मेरे नौकरी करने और घर चलाने पर इतनी–इतनी कुठाएँ पालकर मेरा और अपना जीवन तो इतना असहज और तकलीफ़देह मत बनाए। पर अपने अहं और सामन्ती संस्कारों से लाचार राजेन्द्र करें भी तो क्या करें? बस, मैं ही अपनी दुखती रगों और खाली कोनों को अपने लेखन से पूरा करने की कोशिश करती रहती थी।"[107]

इस आत्मकथा में मन्नू भण्डारी स्त्री की सहते रहने की नियति को गृहस्थी की शान्ति का प्रतीक मानती हैं, किन्तु मन्नू भण्डारी शिक्षित, आत्मनिर्भर एवं स्वावलम्बी महिला हैं। हृदय की कोमलता एवं सहन करने की अपार क्षमता केवल स्त्री में ही होती है। पुरुष अपने स्वयं के अहम में इतना डूबा रहता है कि दूसरे के दर्द वेदनाएँ तक उसके हृदय तक नहीं पहुँच पाते। पुरुष के हृदय की कठोरता को व्यक्त करती हुई लेखिका लिखती हैं कि "मैं तो भोगने के लिए अभिशप्त थी ही और अपनी इसी तरह के कुकर्मों को राजेन्द्र विशिष्ट जीवन पद्धति की आड़ में.... रचनात्मकता की आड़ में तर्कसंगत ही नहीं, जायज़ भी ठहराते थे।"[108]

अपने लेखन के आरम्भ से ही मन्नू भण्डारी गंभीर रही है। उनकी कलम से व्यक्त उनके अनुभव, भाव, विचार, उनके न होकर पाठक को स्वयं के लगने लगते हैं। यही है मन्नू भण्डारी की कलम का चमत्कार एवं सफलता की कहानी। उनके लेखन के प्रति सजगता को उनके इस वक्तव्य से समझा जा सकता है। मन्नू भण्डारी ने इस आत्मकथा में लिखा भी है कि "गनीमत यही है, बल्कि कहूँ कि संतोष की बात है कि मैं अपनी सीमा के प्रति हमेशा सचेत रही हूँ....कुछ ज्यादा ही सचेत, सो अपनी सीमा और सामर्थ्य के बाहर जाकर कभी भी कुछ अनर्गल रचने की हिमाकत नहीं की मैंने।"[109]

बहुचर्चित कहानियों एवं उपन्यासों की लेखिका मन्नू भण्डारी ने अपने जीवन काल में लगभग पचास कहानियाँ लिखी है। 'यही सच है कहानी पर **'रजनीगन्धा'** नाम से 'एखाने आकाश नॉय' कहानी पर **'जीना यहाँ'** नाम से फीचर फिल्म बनी तो चार कहानियों– **'अकेली'**, **'त्रिशंकु'**, **'नशा'** और **'रानी माँ का चबूतरा'** पर टेलीफिल्म बनी हैं।

अपने लेखन काल के दौरान मन्नू भण्डारी कोलोन (जर्मनी) के साउथ–ईस्ट एशिया की लेखिकाओं के सम्मेलन में भाग लेने जाती है। वहाँ उन्हें कई समस्याओं से जूझना पड़ता है, भाषा की समस्या, अपरिचित लोगों से सम्पर्क साधना, खाने–पीने की समस्या एक स्त्री के लिए लेखन की चुनौती भरी दुनिया से टकराना इत्यादि कोई आसान कार्य नहीं था, किन्तु मन्नू भण्डारी अपनी

लगन, मेहनत, दूरदर्शिता से इन सभी समस्याओं का सामना कर विजयश्री प्राप्त करती है। एक सफल भारतीय लेखिका के तौर पर पाश्चात्य देशों के मध्य भारत का प्रतिनिधित्व कर भारतीय साहित्य की विशालता एवं सौन्दर्य का परचम लहराती है। मन्नू भण्डारी ने इस आत्मकथा में जीवन के एक खण्ड विशेष को कहानी रूप में रचा है यह आत्मकथा मन्नू भण्डारी की लेखन–यात्रा एवं लेखन में आए अवरोधों को भी व्यक्त करती है। वह लिखती हैं– "यहाँ मुझे केवल उन्हीं स्थितियों का ब्यौरा प्रस्तुत करना था, वो भी जस का तस, जिनसे मैं गुजरी–दूसरे शब्दों में कहूँ तो जो कुछ मैंने देखा, जाना, अनुभव किया, शब्दशः उसी का लेखा–जोखा है। यह कहानी जहाँ मेरे लेखन के क्रमिक विकास, उससे जुड़ी घटनाओं–मुझे सहेजते–सँवारते, जोड़ते–तोड़ते सम्पर्कों–संबंधों पर ही केन्द्रित रहना इसकी सीमा है, वही इसकी अनिवार्यता भी।"[110]

मन्नू भण्डारी स्वेच्छा से राजेन्द्र यादव से विजातीय विवाह करके आकाश को छूने का स्वप्न देखती है। राजेन्द्र यादव की शारीरिक कमी (अपंगता) को भी नज़रअंदाज कर देती है। पहले से ही लेखन के क्षेत्र में समृद्ध, सफल रहे लेखक की पत्नी होने के सुख से गौरवान्वित होती है, किन्तु विवाह के पश्चात् राजेन्द्र यादव का उनके प्रति कठोर, निर्मम और अमानवीय व्यवहार सभी सीमाओं को पार कर क्रूरता की हद तक पहुँच जाता है। गर्भवती पत्नी को पीड़ा में छोड़कर, उनका साहित्य संगोष्ठियों में शामिल होना, छोटी–सी बेटी को मीज़ल्स (खसरा) होने पर उसे पत्नी व अन्य लोगों की जिम्मेदारी पर छोड़कर अपनी लेखकीय मित्र (उषा प्रियवंदा) से भेंट करना उनके बेहद स्वार्थी, संवेदनशून्य व्यक्तित्व को उजागर करता है।

अन्तरजातीय विवाह, राजेन्द्र यादव के विवाहेत्तर संबंध, परिवार के प्रति उनकी बेरूखी, गृहस्थी बसाने के नाम पर समानान्तर जिन्दगी जीने की बात मन्नू भण्डारी को स्वतंत्रता देने के पक्ष में रखकर स्वयं के लिए स्वतंत्रता की बात बड़ी चतुराई से रखते हैं। इसी संदर्भ में लेखिका लिखती हैं कि "जिंदगी शुरु करने के साथ ही लेखकीय अनिवार्यता के नाम पर राजेन्द्र ने 'समानान्तर जिंदगी' का आधुनिकतम पैटर्न थमाते हुए जब कहा कि 'देखो, छत ज़रुर हमारी एक होगी, लेकिन जिन्दगियाँ अपनी–अपनी होंगी–बिना एक–दूसरे की जिन्दगी में हस्तक्षेप किए बिल्कुल स्वतंत्र, मुक्त और अलग' तो मैं तो बिल्कुल अवाक्। आधुनिकतम जीवन के इस पैटर्न से मेरा कोई परिचय नहीं था, परिचय तो क्या दूर–दूर तक इसकी कोई कल्पना तक मेरे मन में नहीं थी। राजेन्द्र ने भी मित्रता के दौरान तो ऐसी किसी बात का कभी कोई संकेत तक नहीं किया था। मैं तो साथ आई थी, सब तरह से अलगाव को दूर करके एक हो जाने के लिए, पूरी तरह घुल–मिल जाने के लिए। यह सब सुनकर तो मुझे लगा कि सिर पर छत का आश्वासन देकर

जैसे पैर के नीचे की जमीन ही खींच ली हो। एक ही प्रश्न मेरे मन पर हथौड़े की तरह चोट करता रहा कि फिर इस छत की भी क्या जरुरत थी? क्या प्रयोजन था? छत तो राजेन्द्र के सिर पर भी थी और मेरे सिर पर भी सो इतना तो समझ में आ गया कि राजेन्द्र के दिमाग में एकाएक समानान्तर जिन्दगी की जो यह अवधारणा पैदा हुई है। निश्चित ही उसके सूत्र कहीं और ही है।"[111]

भारतीय संस्कृति में पुरुष सामाजिक एवं पारिवारिक दवाबों के चलते विवाह तो कर लेते हैं, लेकिन घर से बाहर विवाहेत्तर सम्बन्ध स्थापित कर पुरुष वर्चस्व का झण्डा फहराते हैं। जीवन संध्याकाल में अचानक यही घर उन्हें दुनिया का सबसे श्रेष्ठ एवं सुरक्षित ठिकाना लगने लगता है क्योंकि पुरुष यह बात अच्छे से जानता है कि प्रेमिका से अधिक अर्द्धांगिनी ही बेहतर देखभाल दे सकती है। पुरुष हो या स्त्री घर की चाहत और पारिवारिक जिम्मेदारी से मुक्ति दोनों एक साथ सम्भव नहीं। मन्नू भण्डारी भी विवाह नामक संस्था को सर्वोपरि मानती है। राजेन्द्र यादव की कठोरता, निष्परायणता, कर्त्तव्यविमुक्ता के बावजूद भी 35 वर्षों तक इस विवाह बंधन के बोझ को झेलती रही, क्योंकि वे अपनी बेटी टिंकू को पिता के स्नेह से वंचित नहीं रखना चाहती थीं। राजेन्द्र यादव जो अपनी बेटी से स्नेह का बाहरी दिखावा तो करते रहते हैं, परन्तु जब बेटी की जिम्मेदारी उठाने की बात आती हैं, तो उन्हें आयागिरी लगता है।

मन्नू भण्डारी **'मैं हार गई'** से लेखन की शुरुआत करती है। **'आपका बंटी', 'महाभोज'** जैसे उपन्यास लिखकर पाठकों को आनन्दित करती रहती हैं। आज तक मन्नू भण्डारी ने अपनी कलम से जो भी कुछ लिखा था या लिख पाई वह सिर्फ़ और सिर्फ़ उनकी बौद्धिकता है। वह लिखती हैं कि "यह मैं अच्छी तरह जानती और मानती हूँ कि आज इस क्षेत्र में प्रवेश करने वाले रचनाकार अधिक सचेत और समर्थ होते हैं, फिर भी कभी–कभी मात्र दो–तीन कहानियाँ लिखने के बाद ही कुछ कहानीकारों के बौद्धिकता में पगे और गहरे दायित्वबोध के बोझ से बोझिल वक्तव्यों को पढ़ती हूँ तो हैरत होती है। नकल की बिना पर टिकी बौद्धिकता के बोझ को झेलने में असमर्थ उनकी रचनाओं को देखकर तो और भी तरस आता है।"[112]

मन्नू भण्डारी इस आत्मकथा में एक स्थान पर भैरव प्रसाद (कहानी पत्रिका के सम्पादक) गुप्त के प्रति कृतज्ञता और आभार व्यक्त करती है। लेखन के प्रति सचेत करने, सुझाव देने, मार्गदर्शक बनकर राह दिखाने में उनके योगदान की सराहना करती है। पिता की भाँति, भैरव प्रसाद गुप्त भी उनकी लेखन–यात्रा के पद–प्रदर्शक बने रहे। मन्नू को अपनी खोज रूप में पाकर वे हर्षित होते है। कहते हैं कि "मन्नू भण्डारी मेरी खोज है और राजेन्द्र यादव की प्राप्ति।"[113]

'एक कहानी यह भी' मन्नू भण्डारी के जीवन के संघर्षों को बयां करती है। एक महिला के लिए स्वेच्छा से विवाह करना, विवाह बंधन टूट जाने पर सारी जिम्मेदारी उसकी स्वयं की होती है। इसके लिए वह किसी ओर पर दोषारोपण भी नहीं कर सकती है। मन्नू भण्डारी भी अकेले ही गृहस्थी की सारी जिम्मेदारी उठाती रही हैं। बेटी की शिक्षा हो या विवाह, सगे–संबंधियों के चाहे या अनचाहे खर्चे, कलकत्ता शहर में फ्लैट खरीदना हो या नौकरी करना इत्यादि बड़े ही जटिल कार्य हैं, जो मन्नू भण्डारी जैसी साहसिक महिला को चुनौती देते हैं। मन्नू भण्डारी साहस, धैर्य, लगन, ईमानदारी से जीवन की हर चुनौतियों को मात देते हुए जीवन जीने की नई दास्तां लिखती हैं।

इस आत्मकथा में मन्नू भण्डारी अपने दामाद (दिनेश खन्ना, नामी फोटोग्राफ्ज़) के सहज एवं मानवीय पूर्ण व्यवहार से बहुत प्रभावित एवं हर्षित होती हैं। उनकी बेटी टिंकू कत्थक सीखने अहमदाबाद चली गई थी। टिंकू की दोनों बच्चियों की देखभाल दामाद बड़े ही स्नेह से करते हैं। जब मन्नू जी को यह सब पता चलता है, तो वे अपनी बेटी से नाराज़ होते हुए दामाद से टिंकू को भेज देने पर भी गुस्सा करती हैं। दिनेश अपनी सासु माँ से कहते हैं– "क्यों, टिंकू बच्चियों को पाल सकती है तो क्या मैं नहीं पाल सकता? और मुझे कहा सो कहा पर फोन करके टिंकू को कुछ मत कह दीजिए वरना वह परेशान हो जाएगी। वह गई है, तो उसे मन लगाकर सीखने दीजिए।"[114]

दिनेश खन्ना के रूप में आधुनिक युवा की बदलती सोच संकेत दे रही है कि समाज बदलने की शुरुआत हो चुकी है। राजेन्द्र यादव द्वारा अपने अपराध की स्वीकारोक्ति स्वरूप लिखा गया आत्मकथ्य 'मुड़–मुड़ के देखता हूँ' में एक अहंकारी पुरुष, सामन्ती सोच, समानान्तर जीवन की चाह रखने वाले पुरुष का हृदय परिवर्तन उम्र के इस पड़ाव पर होना कहीं न कहीं स्पष्ट कर देता है कि राजेन्द्र यादव मन्नू भण्डारी के साथ किए गए अपने कृत्यों से शर्मिंदा हैं। राजेन्द्र यादव अपने आत्मकथ्य मुड़–मुड़ के देखता हूँ, में लिखते हैं कि "आज स्वीकार करता हूँ कि मन्नू के प्रति यह सचमुच मेरा अन्याय भी था और अपराध भी।"[115]

मन्नू भण्डारी की यह आत्मकथा उनके जीवन की करुणा एवं त्रासदी की कहानी भी है। बेहद संवेदनशील भावों को वह कलम कागज़ों द्वारा बयां करती हैं। अपने जीवन की कसावटों को पाठकों के सम्मुख खोलकर रखती हैं। राजेन्द्र यादव द्वारा दिए गए सभी कष्ट, अपमान झेलती हैं। शायद इसी का परिणाम है, राजेन्द्र यादव का आत्मकथ्य 'मुड़–मुड़ के देखता हूँ'। किसी के पूरे जीवन को कष्टमय बनाकर अन्त में अपने किए पर पछतावा करना कष्टप्रद व्यक्ति के साथ न्याय करना नहीं होता अपितु स्वयं अपराधी अपनी आत्मशान्ति, स्वहित के वशीभूत होकर यह कार्य

करता है। यहाँ भी वह स्वयं को महान बनाने की कला का प्रदर्शन बड़ी ही होशियारी एवं चालाकी से करता है, ताकि अपराधप्रद व्यक्ति अपराधी के ऐहसान तले दबा रहे। इसी संदर्भ में लेखिका लिखती हैं कि "आत्मकथ्य की इसी किस्त में राजेन्द्र ने मुझमें भी न जाने कितनी विशेषताएँ गिना दीं जैसे सहज, सरल, विश्वासी, उदार, मानवीय और फिर वही अपराधबोध से त्रस्त होने की बात। यानी कि मेरे प्रति भी थोड़ा–सा ऋण शोध (मेरा ऋण भी तो बहुत थोड़ा–सा ही था)। यह क्या हो गया है राजेन्द्र को? उम्र के तक़ाजे ने क्या सबके क़र्जे उतारकर ऋण–मुक्त होने की ओर धकेल दिया है? क्या राजेन्द्र सचमुच यह समझते हैं कि आठ–दस पन्नों में लिखी अपराध–बोध की यह आत्म–स्वीकृति (चाहे कितनी ही ईमानदार क्यों न हो) किसी की पूरी जिन्दगी की कीमत चुका सकती है? खैर, यहाँ तो मैं यह स्पष्ट कर देना चाहती हूँ कि राजेन्द्र के ऊपर कम से कम मेरा कोई ऋण नहीं है।"[116]

जिंदगी से जद्दोजहद करती आर्थिक संकटों को झेलती लेखिका उम्र के इस पड़ाव पर रोगों और विश्वासघातों से गुज़र चुकी हैं। उनकी कलम की रफ्तार धीमी हुई, किन्तु पूर्णरूप से रुकी नहीं। स्वयं लेखिका ने अपनी आत्मकथा 'एक कहानी यह भी' में स्पष्ट लिखा हैं कि उन्होंने अपने जीवनकाल में बहुत कम लिखा, किन्तु जो भी लिखा उससे वह पूर्ण रूप से सन्तुष्ट है। उन्होंने 'आपका बंटी' और 'महाभोज' जैसे हिंदी को दो सशक्त उपन्यास दिए हैं। मन्नू भण्डारी के लेखन में आए अवरोध से पाठक भी चिन्तित हैं। इसी संदर्भ में महाश्वेता देवी लिखती हैं कि "ऐसे दो सशक्त उपन्यास देने के बाद मन्नू इस तरह खामोश क्यों हो गई? वह अपनी प्रतिभा के साथ न्याय नहीं कर रही।"[117] निःसंदेह मन्नू भण्डारी अपनी कलम से जो भी लिख पाई वह पाठकों के लिए ही नहीं अपितु हिंदी साहित्य के लिए भी अमूल्य धरोहर है।

इस आत्मकथा के अध्ययन के उपरान्त मेरी दृष्टि से कहा जा सकता है कि मन्नू भण्डारी अपने लेखन की कुशलता एवं मूल्यों की परायणता के कारण ही रचनात्मकता के क्षेत्र में लगातार सफल हुई है, उनकी रचनाओं में सरलता, सहजता का भाव होने के साथ ही साथ सामाजिक जीवन की वास्तविक घटनाओं का चित्रण बड़ी ही ईमानदारी से उभर कर आता है। उनकी कृतियाँ पाठकों में एक कौतूहल, आश्चर्य पैदा करती रहती है। आगे की घटनाओं को जानने के लिए पाठकों की बैचेनी बढ़ना ही सिद्ध करता है कि वे एक बेहद सफल लेखिका ही नहीं अपितु एक अच्छी इंसान भी है। कई बार उनकी रचनाएँ साहित्यकार पति राजेन्द्र यादव को भी मात दे देती हैं।

इक्कीसवीं सदी में स्त्री–स्वावलम्बन, स्त्री–आत्मसम्मान, स्त्री–सशक्तिकरण से सरोकार करवाती कई आत्मकथाएँ लिखी जा रही है। मन्नू भण्डारी की यह आत्मकथा एक स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व की खोज के साथ–साथ पुरुष के साथ बराबरी करती साहसिक, संघर्षरत एवं सफल रचनाकार के रूप में लिखी स्त्री जीवन की कहानी है।

1.3.4 प्रभा खेतान (अन्या से अनन्या, 2007 ई.)

प्रभा खेतान की माइलस्टोन रचना 'अन्या से अनन्या' (2007 ई.) सम्पूर्ण स्त्री आत्मकथा–साहित्य की एक बेमिसाल रचना है। प्रभा खेतान ने 'अन्या से अनन्या' आत्मकथा में अपने निजी जीवन का वास्तविक चित्रण नग्नयथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत किया है। एक साहसिक गाथा के रूप में जहाँ इस आत्मकथा को अकुंठ प्रशंसाएँ मिली, वहीं बेशर्म और निर्लज्ज स्त्री द्वारा अपने आपको चौराहे पर नंगा करने की कुत्सित बेशर्मी का नाम भी इसे दिया गया है। एक स्त्री द्वारा अपने प्यार, एबॉशर्न, लिव इन रिलेशनशिप, प्रेम से इतर अन्य पुरुष से सम्बन्ध, पीरियड, मेनोपॉस (रजोनिवृत्ति) इत्यादि स्त्री की जैविक क्रियाओं को इस तरह सरेआम उजागर करना किसी भी स्त्री के लिए कोई आम बात नहीं है। यह एक साहसिक कदम है। इस तरह अपने जीवन का परत–दर–परत चित्रण प्रभा खेतान सरीखी साहसिक और निर्भीक महिला लेखिका की पहचान है।

'अन्या से अनन्या' आत्मकथा में प्रभा खेतान ने अपनी अस्मिता की रक्षा और स्व की पहचान के लिए जहाँ बिगुल बजाया है, वहीं पितृसत्तात्मक समाज से मुक्ति पाने के लिए पारिवारिक साँचे की जड़ों को झिझोंड़ने का भी श्री गणेश किया है। अपनी इस वेदना को व्यक्त करती हुई लेखिका लिखती हैं कि "यह समाज तो कई–कई मुकामों पर औरत को उसकी पंगुता महसूस करवाता है। औरत के लिए केवल प्यार ही काफी नहीं। व्यक्ति बनने के लिए उसे और भी बहुत कुछ चाहिए। धन–मान, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता सभी कुछ। जीवन शुरु करने के लिए उसे पुरुष के बराबर की जमीन चाहिए और इस जमीन को समाज से छीनकर लेना पड़ता है महज अनुनय–विनय से काम नहीं चलता।"[118]

प्रभा खेतान ने 'अन्या से अनन्या' आत्मकथा में पुंसवादी सामाजिक व्यवस्था की घुटन से मुक्त होने के लिए जहाँ बिगुल बजाया, वहीं स्त्री–अस्मिता, स्त्री–संघर्ष, स्त्री–अधिकार के लिए शोषण, अन्याय, उत्पीड़न की शिकार स्त्रियों को पितृसत्तात्मक समाज के विरुद्ध अपने अस्तित्व, अस्मिता, अधिकारों को पाने हेतु लड़ाईयाँ लड़ी हैं। अपने अस्तित्व की खोज करती एक स्त्री के निरन्तर संघर्ष करने, आत्मनिर्भर बनने, स्वावलम्बी बनने से लेकर व्यापार की दुनिया में अपनी स्वतंत्र पहचान होने के साथ–साथ समाज के समक्ष एक मिसाल कायम की है। देश–विदेश भ्रमण

कर चुकी प्रभा खेतान सोचती है कि स्त्री चाहे वह भारतीय नारी हो या पाश्चात्य वेशभूषा धारण करने वाली, पेन्ट–शर्ट पहनने वाली, स्त्री कहीं भी सुरक्षित नहीं है। इस संदर्भ में प्रभा खेतान लिखती हैं कि "मैंने समझा औरतें वह चाहे बाल कटी हों या गाँव–देहात से आई हों, कहीं भी सुरक्षित नहीं। उनके साथ कुछ भी घट सकता है। सुरक्षा का आश्वासन पितृसत्तात्मक मिथक है। स्त्री कभी सुरक्षित थी ही नहीं। पुरुष भी इस बात को जानता है। इसलिए सतीत्व का मिथक संवर्धित करता रहता है। सती–सावित्री रहने का निर्देशन स्त्री को दिया जाता है पर कोई स्त्री सती रह नहीं पाती। हाँ, सतीत्व का आवरण जरुर ओढ़ लेती है या फिर आत्मरक्षा के नाम पर जौहर की ज्वाला में छलांग लगा लेती है।"[119]

प्रभा खेतान 'अन्या से अनन्या' में एक विवाहित डॉक्टर के धुआँधार प्रेम में पागल है। डॉ. सर्राफ बीमार हैं, उन्हें दिल का दौरा पड़ा है इसलिए इलाज के लिए अमेरिका लेकर जाती हैं। प्रभा खेतान डॉ. सर्राफ के सुख–दुःख में शामिल है। उनके परिवार का भरण–पोषण करती हैं, किन्तु उनके परिवार में प्रभा खेतान की भूमिका नगण्य है। अपने अधिकार एवं अस्तित्व की तलाश करती हुई वह लिखती हैं कि "मैं उनके साथ थी मगर किस रूप में....? इस रिश्ते को....नाम नहीं दे पाऊँगी। भला प्रेमिका की भूमिका भी कोई भूमिका हुई? प्रेम तो सभी करते हैं। प्रेम करने वाली स्त्री, माँ, बहन, पत्नी वह कुछ भी हो सकती है या फिर सीधे–सीधे उसे रखैल कहो ना। रखैल का अर्थ हुआ? वही जिसे रखा जाता है, जिसका भरण–पोषण पुरुष करता हो, लेकिन डॉ. साहब तो मेरा भरण–पोषण नहीं करते, उनसे मैंने कभी कोई आर्थिक सहायता नहीं ली। मैं तो खुद कमाती थी, स्वावलम्बी थी एक आत्मनिर्भर संघर्षशील महिला थी।"[120]

'अन्या से अनन्या' में प्रभा खेतान ने अपने बाल्यकाल से लेकर व्यापार जगत में अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने के मार्ग में आने वाली बाधाओं का उल्लेख किया है। लेखिका का अनाथ बचपन एवं महत्त्वाकांक्षी माँ की उपेक्षिताओं को झेलते–झेलते अन्दर ही अन्दर टूटती जा रही थीं। बचपन में उन्हें कभी माँ से वह प्यार, स्नेह नहीं मिला, जो उस घर की अन्य संतानों को प्राप्त होता है। अपनी माँ की अपेक्षा दाई माँ के अधिक निकट रहीं। दाई माँ ही मानो प्रभा खेतान की दुनिया थी। इसी संदर्भ में लेखिका लिखती हैं कि "मेरे साथ मेरा अकेलापन हमेशा रहा है, पर यह अकेलापन मुझे जीवन का अर्थ ही समझाता रहा है। मैंने अपने–आपको बचाया है, अपने मूल्यों को जीवन में संजोया। हाँ, टूटी हूँ, बार–बार टूटी हूँ......पर कहीं तो चोट के निशान नहीं..... दुनिया के पैरों तले रौंदी गई, पर मैं मिट्टी के लोंदे में परिवर्तित नहीं हो पाई।"[121]

'अन्या से अनन्या' में प्रभा खेतान समाज की रूढ़ि और बीमार मानसिकता पर सवाल खड़ा करती हैं कि क्या स्त्री का जीवन बच्चे पैदा कर पति की वंशवेल को आगे बढ़ाना है? क्या

इससे इतर उसकी अपनी कोई पहचान नहीं। बच्चे पैदा करते–करते लेखिका की माँ का शरीर जर्जर एवं बीमारियों का घर बन गया। शारीरिक रूप से असमर्थ माँ के स्वभाव में विद्रोह फूटने लगा। माँ द्वारा लेखिका को कभी यह प्रेरणा मिली कि– "औरत को आत्मनिर्भर होना चाहिए। जिन्दगी में जोखिम उठाना सीखना चाहिए। अम्मा के पोर–पोर से फूटती निराशा चीख–चीखकर कहना चाहती–क्या मिला मुझे? माना कि पति देवता थे पर उन्हें देवत्व के पद पर मैंने ही आसीन किया, लेकिन मैं तो देवी नहीं बन गई, क्या मेरी कोई मानवीय आकांक्षा नहीं? भूल जाऊँ अपने–आपको? बस दिन–रात तुम बच्चों की चिन्ता करूँ, तुम्हारे लिए जीऊँ, तुम्हें दे दूँ सब कुछ? मैं कुछ भी न रहूँ?"[122]

पुंसवादी सामाजिक व्यवस्था में परिवार का आर्थिक स्तम्भ पुरुष होता है, जिसकी छत्रछाया में परिवार सुरक्षित रहता है। यदि उसकी मृत्यु हो जाती है, तो पूरा परिवार असहाय एवं कमजोर हो जाता है। उनके पिता के देहान्त के बाद दोनों बेटियों की जिम्मेदारी बीमार माँ के कमजोर कंधों पर आ गई थी। इसी संदर्भ में वह लिखती हैं कि "अम्मा की आखिरी जिम्मेदारी गीता और मैं, दो लड़कियाँ थी, जिनके ब्याह की चिन्ता उन्हें दिन–रात खाए जा रही थी। कैसे होगा, इन छोरियों का ब्याह, कहाँ से लाऊँगी इनका दायजा?"[123]

अपनी स्कूली शिक्षापूर्ण कर प्रभा खेतान उच्च अध्ययन के लिए कॉलेज जाती है, वहाँ पहुँचकर देश एवं वैश्विक स्तर की राजनीति को समझती हैं। घर से बाहर की शिक्षित स्त्रियों की दशा देखकर स्त्रियों की आँसू भरी नियति को देखकर सिहर उठती हैं। प्रभा खेतान लिखती हैं कि "एक बड़ी गहरी बात मन के भीतर बैठी हुई थी। मुझे अम्मा की तरह नहीं होना, कभी नहीं। भाभी की घुटन भरी जिन्दगी की नियति मैं कदापि स्वीकार नहीं कर सकती। मैं अपने जीवन को आँसुओं में नहीं बहा सकती। क्या एक बूँद आँसू में स्त्री का सारा ब्रह्माण्ड समा जाए? क्यों? किसलिए? रोना और केवल रोना, आँसुओं का समन्दर, आँसुओं का दरिया और तैरते रहो तुम। अम्मा, जीजी, भाभीजी, ताई, चाचियाँ क्या सभी रोने के लिए पैदा हुई। यहाँ तक कि स्कूल की मेरी शिक्षिकाएँ जिनकी और कभी मैंने बड़ी ललक से देखा था, जो मेरे जीवन में प्रेरणा स्रोत रही थी, वे भी तो आँसुओं से इसी समन्दर को भरे चले जा रही थी। स्कूल की हेड मिस्ट्रेस पुष्पमयी बसु को मैंने प्रायः उदास और दुःखी पाया। वे अकेली थीं, लेकिन मन्नू भण्डारी, जिन्होंने मुझे चौथी से ग्यारहवीं तक पढ़ाया, साहित्य की दुनिया में जिनके कदमों की छाप पर मैंने चलना चाहा वे भी कहाँ इन आँसुओं की नियति से मुक्त हो पा रही थीं? राजेन्द्र यादव को उन्होंने जीवन साथी के रूप में स्वीकारा था, लेकिन शादी के बाद एक दिन मन्नू जी ने रोते–रोते अपने पति–परमेश्वर के कारनामे सुनाए। ऐसे दगाबाज आदमी पर मुझे बेहद गुस्सा आया था। अपनी

इस माँ जैसी शिक्षिका को मैंने पहली बार रोते हुए देखा था। गलत पुरुष के हाथ में पड़कर औरत कितनी असहाय हो जाती है, यह भी उसी दिन समझा था।"[124]

'अन्या से अनन्या' प्रभा खेतान की भोगी हुई जिन्दगी एवं स्त्री जीवन के संघर्षों का महाख्यान है। अपनी इस आत्मकथात्मक कृति में लेखिका को बचपन में महत्त्वकांक्षी माँ से कभी प्रेरणा मिली थी– "चाँद को छूने की कल्पना करो तो खजूर के पेड़ तक तो पहुँचोंगे। अरे तुम्हारी चाहना ही सीमित रहेगी तो आगे कैसे बढ़ोगे? जो मिले उसी में सन्तोष खोज लेना भला यह भी कोई बात हुई?"[125]

अपने अध्ययन काल के दौरान प्रभा खेतान द्वारा अपने गुरु डॉ. चैटर्जी को दी गई गुरुदक्षिणा का स्मरण हो आता है। गुरु ने गुरु दक्षिणा माँगी– "स्त्री होना कोई अपराध नहीं है पर नारीत्व की आँसूं भरी नियति स्वीकारना बहुत बड़ा अपराध है। अपनी नियति को बदल सको तो वह एकलव्य की गुरुदक्षिणा होगी।"[126]

'अन्या से अनन्या' में प्रभा खेतान सरेआम अपनी अत्यन्त निजता भरी जिन्दगी का खुलासा करती हैं। पहले से ही विवाहित एवं पाँच बच्चों के पिता डॉ. सर्राफ से प्रेम कर बैठती है। समाज की परवाह किए बिना अपना सब कुछ दाव पर लगा देती है। वह लिखती हैं कि "डॉक्टर साहब मेरे लिए बरगद की छाँव थे। मेरी जिन्दगी का पड़ाव, मेरा सब कुछ, रुपए–पैसे की मुझे कोई चिन्ता नहीं, मैं आत्मनिर्भर थी। मुझे रूपया कमाना आता है, बेईमानी से नहीं............बल्कि ईमानदारी से।"[127]

'अन्या से अनन्या' आत्मकथा में प्रभा खेतान एक विवाहित पुरुष से प्रेम करके आनन्दित होती है। जीवन की सारी खुशियाँ उनसे प्रेम करके पा लेना चाहती हैं। प्रेम में पल्लवित होती, किन्तु डॉ. सर्राफ द्वारा प्रेम को अस्वीकृत कर दिए जाने पर सिहर उठती है। वह आगे लिखती हैं कि "डॉ. साहब, आप मुझे इस तरह खारिज नहीं कर सकते समझे! मैं उन औरतों में नहीं जो अब तक आपके पास आती–जाती रहीं......मैं शरीर को भी उतना ही पवित्र मानती हूँ, जितना मन को, मैंने आपको दोनों दिए हैं। उलझन आपके दिमाग में है, आप कभी मुझे स्वीकारते हैं, तो कभी छोड़ते हैं।"[128]

स्त्री के सीमित दायरों को देखकर प्रभा खेतान पुरुष प्रधान समाज के समक्ष प्रश्न उठाती हैं। क्या देने का भाव ही स्त्री है? पुरुष क्यों देना नहीं चाहता? प्रेम में सर्वाधिक निवेश स्त्री ही करती है पुरुष क्यों नहीं? प्रभा खेतान डॉ. साहब के परिवार का लालन–पालन करती है, किन्तु फिर भी उनके परिवार में वह केवल एक बाहरी व्यक्ति है। लेखिका लिखती हैं कि "मैं वह अन्य थी जिसे निरन्तर निर्मित किया जा रहा था, क्योंकि महज मेरा होना पत्नीत्व नामक संस्था को

चुनौती दे रहा था। सहमति की खोज में मैं बुरी तरह थकने लगी थी। मैं बस पति–पत्नी के बीच 'एक वह' थी। एक बाहरी तत्त्व, अनचाही स्वीकृति।"[129]

प्रभा खेतान 'अन्या से अनन्या' में विवाह और गृहस्थी के नाम पर किसी बँधन में बँधने से अधिक प्रेम को महत्त्व देती हैं। समाज में विवाह की अनिवार्यता को लेकर प्रभा खेतान कहती हैं कि "शान्ता! मेरी राय में विवाह एक ओवररेटेड संस्था है। मैं इस संस्था को ज्यादा तरजीह देने से इनकार करती हूँ, फिर जो कुछ भी है वह मेरे और डॉ. साहब के बीच है, बिल्कुल हमारा निजी कोना।"[130]

'अन्या से अनन्या' में प्रभा खेतान स्त्री–अस्तित्व, स्त्री–संघर्ष, स्त्री–स्वाभिमान को वाणी देती है। विवाह करना, पति की सेवा करना, बच्चें पैदा कर पति की वंशबेल को आगे बढ़ाना में ही स्त्री का अस्तित्व हैं। स्त्री अपने दम पर कितनी भी ख्याति हासिल कर ले, किन्तु बिना विवाह के उसकी सारी उपलब्धियाँ समाज में शून्य है। वह कहती हैं कि "क्या घर, पति और एक बच्चे के बिना मैं अधूरी हूँ? या फिर मेरे दामन का दाग दूसरों की नजर में मेरी प्रत्येक उपलब्धि को तुच्छ ठहराएगा। सम्पर्क में आने वाले लोग भी चाहे–अनचाहे मेरी इसी कमी की ओर इशारा करते। मेरी गृहस्थी नहीं थी पर किसी और की गृहस्थी को, उसके सारे बोझ और कर्मकाण्डों को मैं कितनी वफादारी से ढो रही थी, चाहकर भी जिससे मैं निकल नहीं पा रही थी या फिर भ्रम पाल रही थी कि यह गृहस्थी मेरी भी है।"[131]

दाई माँ द्वारा प्रभा के विवाह की चर्चा किए जाने पर प्रभा खेतान कहती हैं कि "दाई माँ मैं अब कभी विधिवत विवाह नहीं करुँगी, मैं बिना विवाह के आजीवन किसी विवाहित पुरुष से बँध चुकी हूँ। दाई माँ अब तुम्हारे दरवाजे कोई बारात लेकर नहीं आएगा। वह सपना खतम हो चुका है हमेशा–हमेशा के लिए।"[132] महत्त्वाकांक्षी माँ, गुरु चैटर्जी की नसीहतें प्रभा खेतान के अन्तःस्थल तक उतर जाती हैं। समाज में अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने के लिए प्रभा खेतान एक स्वप्न देखती कि वह सबल और सशक्त महिला बने। समाज में एक ऊँची हैसियत हो, जो स्थानीय न होकर वैश्विक हो। वह दुनिया को दिखा देना चाहती हैं कि पुरुष ही सक्षम नहीं होता अपितु स्त्री भी सक्षम होती है। प्रभा खेतान मौनरूप से ही सही डॉ. साहब को संदेश देना चाहती हैं कि डॉ. साहब आप से हटकर भी मेरा अपना वजूद है। अपनी स्वच्छन्द पहचान है, अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। इस संसार को बदलने, सृष्टि का सृजन करने एवं विघटन करने में स्त्री भी सक्षम हैं। स्त्री अबला नहीं, वह भी कुछ हैं बहुत कुछ। प्रभा खेतान अपने अस्तित्व की खोज चमड़ा व्यवसाय के रूप में खोज लेती हैं। दिन–रात कठिन परिश्रम करती हैं। एक–एक डॉलर बचाने के लिए भूखी रहती है। पद यात्रा करती हैं। जिन्दगी से ही नहीं अपितु समाज से भी जद्दोजहत करती हैं।

समर्पण भाव रखते हुए महिला सशक्तिकरण की नयी इबारत रचती हैं। अमेरिका, न्यूयार्क जैसे देशों में भ्रमण करती हैं प्रशिक्षण प्राप्त करती हैं। भाषा की समस्या, रहने की समस्या वेशभूषा की समस्या इत्यादि व्यापारिक चुनौतियों का सामना अकेले ही करती हैं। प्रभा खेतान अपनी जिन्दगी की चुनौतियों से डटकर मुकाबला करती हैं, अपनी दृढ़ इच्छा शक्ति से वह समाज के सम्मुख स्त्री अस्मिता की नयी इबारत पेश करती है। वह दुनिया को दिखा देना चाहती हैं कि स्त्री चाहे, तो पूरी कायनात को बदल सकती है। भारत लौटकर वह 'फिगरेट' नामक हेल्थ क्लब खोलती है। प्रभा खेतान लिखती हैं कि "व्यापार भी एक साधना है, जैसे और तरह की साधना या साहित्य साधना है। माना कि दोनों बिल्कुल अलग–अलग है मगर बिना साधना के कुछ नहीं हासिल होने वाला। साधक होने की क्षमता उसी व्यक्ति में रहती है, जो अनुशासन में बंधे, श्रम करे, एकोन्मुखी अग्नि की तरह जले, जलता रहे।"[133]

प्रभा खेतान दिनोंदिन सफलता की सीढ़ी चढ़ती जा रही थीं। महिला उद्योगपति के रूप में प्रभा खेतान की ख्याति चारों ओर फैलने लगी। प्रभा खेतान का यह दुस्साहस क्या कम रहा कि वह मारवाड़ी पुरुषों की दुनिया में घुसपैठ करती है 'कलकत्ता चैम्बर ऑफ कॉमर्स' की वह अध्यक्ष बनती हैं। एक के बाद एक उपन्यास और वैचारिक पुस्तकें लिखती हैं और वही प्रभा खेतान 'अन्या से अनन्या' में एक विवाहित डॉक्टर के धुआँधार प्रेम में पागल है। दीवानगी की इस हद को पाठक क्या कहेंगें कि प्रभा डॉक्टर सर्राफ की इच्छानुसार गर्भपात कराती हैं और खुलकर अपने आपको डॉ. सर्राफ की प्रेमिका घोषित करती हैं। स्वयं एक अत्यन्त सफल सम्पन्न और दृढ़ संकल्पी महिला परम्परागत 'रखैल' का साँचा तोड़ती हैं क्योंकि वह डॉ. सर्राफ पर आश्रित नहीं हैं। प्रभा खेतान 'अन्या से अनन्या' में लिखती हैं कि "मैं सधवा नहीं, क्योंकि मेरी शादी नहीं हुई मैं विधवा नहीं.........क्योंकि कोई दिवंगत पति नहीं, मैं कोठे पर बैठी हुई रंडी भी नहीं..........क्योंकि मैं अपनी देह का व्यापार नहीं करती हूँ। स्वावलम्बी हूँ, अपना भरण–पोषण खुद करती हूँ। मगर......... ..अविवाहित रहकर एक विवाहित पुरुष, पाँच बच्चों के पिता के साथ टँगे रहना, भला यह भी कोई बात हुई?"[134]

स्त्री के स्वतंत्र वर्चस्व से पुरुष सदैव ही आशंकित रहता हैं। प्रभा खेतान की बढ़ोतरी देख डॉ. सर्राफ को उनसे ईर्ष्या होने लगती हैं। डॉ. साहब का बात–बात पर चिड़ जाना, झगड़ा करना इस बात को स्पष्ट करता हैं कि पुरुष स्त्री को शीर्ष पर देखकर असुरक्षा महसूस करता है। डॉ. सर्राफ का यह रवैया देखकर लेखिका लिखती हैं कि "कुछ था डॉक्टर साहब के मन में जो इतने वर्षों से बूँद–बूँद कर इकट्ठा हो रहा था और जो इन दिनों बात बेबात मुझ पर गरज–बरसकर ही शान्त होता। मुझे कभी अपनी बेबसी और लाचारी पर गुस्सा आता तो कभी मैं भी पलटकर

वार किए बिना नहीं मानती। मुझे अपने स्त्रीपन से चिढ़ हो रही थी, आखिर हम स्त्रियाँ अपने प्रिय पुरुष की अहं सन्तुष्टि के लिए खुद का अवमूल्यन क्यों करती है, किसलिए गुलाम की तरह उस पुरुष की हर मूर्खता एवं कुंठा को झेलती रहती है।"[135] डॉ. सर्राफ अपनी कमजोरी को देखकर एक स्थान पर कहते "मुझे अपनी कमजोरी पर गुस्सा आता है। तुम आगे बढ़ रही हो और मैं पिछड़ रहा हूँ।"[136]

'अन्या से अनन्या' में स्त्री के त्याग, प्रेम, बलिदान को पुंसवादी समाज में उसकी कमजोरी, दुर्बलता के संदर्भ में देखा गया हैं। इसी संदर्भ में प्रभा खेतान लिखती हैं। कि "मैं अकेली थी, इतनी अकेली कि मैं किसी का रोल मॉडेल नहीं बन सकी। कोई लड़की मेरे जैसी नहीं होना चाहती थी..........मेरी तमाम सफलताएँ सामाजिक कसौटी पर पछाड़ खाने लगती। सारी उपलब्धियाँ अपनी चमक खो देती। अतः मेरी स्वतंत्रता एक जहरीली स्वतंत्रता थी। जहाँ तनाव अधिक था, कभी न खुलने वाली गाँठे थीं।"[137]

'अन्या से अनन्या' में लेखिका अपना धन स्वयं कमाती हैं। अपनी पहचान बनाती हैं। डॉ. साहब के जीवन में अपना एक स्थान चाहती हैं। वह लिखती हैं कि "डॉक्टर साहब मेरे प्रेमी नहीं रह गए थे, पर मेरे अभिभावक जरुर हो गए थे। मैं जो कमाती उनके हाथ में रख देती।"[138] स्त्री को अपने सीमित दायरों से बाहर आना होगा। स्त्री को अपनी स्वतंत्रता के मायने खुद तय करने होंगे। प्रभा खेतान लिखती हैं कि "मुझमें साहस का अभाव था, एक भयभीत बच्चे की तरह डैने फैलाकर मैं उचक–उचककर दीवारों के पार देखती, तो कभी वापस अपने घोंसले में सिमट जाती है। हाँ....यह सब मुझे परेशान करने के लिए और समूचे आत्मविश्वास को हिला देने के लिए काफी था। यानी मुझे इन सारी उलझनों से मुक्ति चाहिए थी, किन्तु यह बाहरी और भीतरी जटिलताओं से भरा एक कठिन काम था।"[139]

'अन्या से अनन्या' में प्रभा खेतान स्वतंत्र, निर्भीक, आत्मनिर्भर, व्यापारी महिला के रूप में जहाँ ख्याति हासिल करती हैं, वहीं कलकत्ता चैम्बर ऑफ कॉमर्स की प्रथम महिला अध्यक्ष बनकर सम्पूर्ण महिलाओं का हौंसला बुलन्द करती है। चमड़े का निर्यात करती हैं। देश–विदेश अकेले घूमती हैं। इंडिया टूडे में उनकी फोटो निकली है एक डॉयनामिक महिला बन जाती है। डॉ. सर्राफ के प्रतिपूर्ण समर्पित रहती है, लेकिन फिर भी डॉ. साहब उनसे ईर्ष्या करते हैं बात–बात पर झगड़ उठते है आक्रामक होते हैं। स्त्री के आत्मनिर्भर होने पर भी पुंसवादी समाज उससे अकुंठित ही बना रहता हैं। इस वेदना को व्यक्त करती हुई लेखिका लिखती हैं कि "मैं एक औरत थी.....औरत के आर्थिक अवदान को नकारने की परम्परा रही है। पहले गृहस्थी में उसके श्रम को नकारा जाता है, फिर मुख्यधारा में यदि उसे स्थान दिया जाता है, तब उस स्त्री को या

तो अपवाद मानकर पुरुष वर्ग अपने कर्त्तव्य की इति भी समझ लेता है, या फिर उसे परे ढकेल दिया जाता है। पर आने वाले वक्त में औरत की सबसे बड़ी लड़ाई इस मुख्यधारा में बने रहने की होगी।"[140]

स्त्री के रवैये पर समाज की आलोचनात्मक नज़रें सदैव टिकी रहती हैं। समाज के सारे बंधन स्त्री के लिए हैं, पुरुष सब प्रकार के बँधनों से मुक्त है। पुरुष चाहे जो करे, वह स्वतंत्र है क्योंकि वह पुरुष हैं, उसकी अपनी सत्ता है, वह किसी दूसरे की स्वतंत्रता को छीन सकता है अगर किसी को बदलना है, तो स्त्री ही बदले। पुरुष क्यों नहीं? इस आत्मकथा का मूल प्रश्न है, जो स्त्री जाति को उसके अस्तित्व खोजने हेतु प्रेरित करता है। प्रभा खेतान डॉ. सर्राफ के धुआँधार प्रेम में पागल हैं। अपना सारा धन, जीवन दाव पर लगा देती हैं, फिर भी डॉ. साहब उनके चरित्र को लेकर आशंकित रहते है। लेखिका लिखती हैं कि "ओफ्फ.....डॉ. साहब मैं थक गई हूँ, अपने चरित्र की कैफियत देते–देते....आपके प्रति अपनी उत्सर्गता, वफादारी प्रमाणित करते–करते। औरत की वही परम्परा अच्छी थी जब वह घर में घूँघट निकाले बैठी रहती थी, कहीं कोई झंझट नहीं था।"[141]

प्रभा खेतान डॉ. सर्राफ को अपने चरित्र की सफाई देती देती थक चुकी हैं और वह अपना अधिकार माँगती है। वह कहती हैं कि "आपको मुझसे शादी करनी होगी अन्यथा मुझे छोड़ दीजिए, मैं अपनी जिंदगी जीना चाहती हूँ। अपनी जिंदगी तो अपने ढंग से तुम जी रही हो, कौन इसमें डिस्टर्ब करता है? तुमसे कोई कुछ कहने जाता है? 'नहीं......मुझे यह बंदीघर अच्छा नहीं लगता आप हर बात की खोज–खबर रखते है, कौन आया, कौन गया।' मैं भी चीख रही थी..... "स्वतंत्र स्त्री का क्या यही....अर्थ हुआ कि उसे वेश्या का दर्जा दे दिया जाए? मुझे आपसे और आपकी गार्जियन से मुक्ति चाहिए।"[142]

प्रभा खेतान 'अन्या से अनन्या' में अपने भोगे हुए जीवन का आत्मचिंतन करती है। वह लिखती हैं कि "बचपन की ओर मुडती हूँ और कभी–कभी सोचती हूँ कि आखिर कैसे मैंने यह त्रासदी झेली। आखिर मैं जिन्दा कैसे रह गई, एक बड़ी वाहियात–सी जिंदगी जो थी।"[143]

एक सुखी जीवन की चाहना हर स्त्री के भीतर होती है ओर होनी भी चाहिए। यह एक स्त्री का अधिकार है। प्रभा खेतान एक स्थान पर लिखती हैं कि "सुखी विवाहित जीवन, एक भरा–पूरा परिवार सभी तो एक–दूसरे से जुड़ी हुई कड़ियाँ है। एक के बाद दूसरी कड़ी की कामना हर स्त्री की है।"[144]

प्रभा खेतान की आत्मकथात्मक कृति 'अन्या से अनन्या' विवाह नामक संस्था को चुनौती देती है और प्रेम को ही मान्य घोषित करती है। वह लिखती हैं कि "जो घट गया, जिससे प्रेम हो

गया मैं उसे ही विवाह मानती हूँ और समाज? मुझे समाज की परवाह नहीं। वह अन्यत्र लिखती हैं कि "जिन्दगी फिसलती रही थी और मैं इस फिसलती हुई जिंदगी के पीछे दौड़ रही थी। दौड़ते रहना ही मानो मेरी नियति थी क्योंकि मैं समझ रही थी कि इसी दौड़–भाग में एक दिन में अपनी मुक्ति का रास्ता खोज निकालूँगी।"[145]

प्रभा खेतान 'अन्या से अनन्या' में डॉ. सर्राफ को खो देने के भय से भयभीत हैं। वह अपनी इस समस्या के समाधान के लिए ज्योतिषी, साधु–महात्मा, काउंसलर, इत्यादि के चक्कर में पड़ जाती है और अपनी कमजोरी के संदर्भ में लिखती हैं कि "किसी ने मुझसे यह नहीं पूछा कि मैं क्या चाहती हूँ? मुझसे केवल चाहा गया.....दूसरों की आशा प्रत्याशा का दबाव मुझे तोड़े डाल रहा था। समझ रही थी कि आसपास के व्यक्तियों, सामाजिक और नैतिक दबावों तथा जन्मगत संस्कारों से इतनी जल्दी मुक्त होना सम्भव नहीं।"[146]

प्रभा खेतान डॉ. सर्राफ की ताकत थी। वह स्वयं कई बार टूटी पर डॉ. सर्राफ को उन्होंने कभी टूटने नहीं दिया। डॉ. साहब जब कैंसर रोग से पीड़ित थे। उन दिनों प्रभा खेतान ने उनका साथ नहीं छोड़ा। आजीवन वह उनके साथ उनकी छाया बनकर रही। डॉ. सर्राफ के पीछे दौड़ते–दौड़ते भी प्रभा खेतान उन्हें खो देती है डॉ. सर्राफ का देहान्त हो जाता है। प्रभा खेतान डॉ. सर्राफ से किए गए वादे को पूरा करती हैं। उनके न रहने पर भी उनके परिवार की जिम्मेदारी को पूरी निष्ठा एवं ईमानदारी से निभाती हैं, ताकि डॉ. सर्राफ की आत्मा को चैन मिल सके। डॉ. सर्राफ की मृत्यु ही प्रभा का नवजीवन था।

समग्रतः यह कहा जा सकता है कि यह आत्मकथा स्त्री–शक्ति, स्त्री–अस्तित्व, स्त्री–संघर्ष का महाख्यान है। इस आत्मकथा में भारतीय नारी ही संघर्ष नहीं करती अपितु पाश्चात्य नारियाँ फिर चाहे, वह आत्मनिर्भर ही क्यों न हो वह भी पुंसवादी सामाजिक व्यवस्था से ग्रसित हैं। प्रभा खेतान की आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' स्त्री सशक्तिकरण की एक ऐसी मिसाल है, जो सभी स्त्रियों के लिए प्रेरणास्पद है। प्रभा खेतान की आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' स्त्री मुक्ति की दिशा में एक अनूठा प्रयास है।

1.3.5 मैत्रेयी पुष्पा (गुड़िया भीतर गुड़िया, 2008 ई.)

इक्कीसवीं सदी की स्त्री हिंदी आत्मकथा लेखिकाओं में मैत्रेयी पुष्पा का नाम अग्रणी है। क्रान्तिकारी लेखिका मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा 'गुड़िया भीतर गुड़िया' (2008 ई.) स्त्री आत्मकथा–साहित्य की एक अविस्मरणीय रचना है। मैत्रेयी पुष्पा की 'गुड़िया भीतर गुड़िया' आत्मकथा स्त्री जीवन के संघर्ष, पीड़ा, अन्याय, शोषण के साथ–साथ स्त्री–अस्मिता,

स्त्री–अधिकार, स्त्री–स्वतंत्रता को आत्मकथा–साहित्य के माध्यम से बयां कर एक नई जमीन तैयार करती हैं, वहीं दूसरी ओर अपनी बेबाक लेखनी द्वारा पुंसवादी सामाजिक व्यवस्था का विरोध कर स्त्री–मुक्ति के लिए एक नया द्वार खोलने का स्तुत्य प्रयास भी करती हैं।

क्रान्तिकारी लेखिका मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा भाग–द्वितीय 'गुड़िया भीतर गुड़िया' (2008 ई.) स्त्री आत्मकथा–साहित्य की एक अविस्मरणीय रचना है। अपनी इस रचना में लेखिका पुरुष प्रधान सामाजिक व्यवस्था की पोल खोलती हैं। समाज में पुरुष के बढ़ते हुए प्रभाव, स्त्री के प्रति उसके नकारात्मक दृष्टिकोण, गृहस्थी और विवाह के नाम पर दाम्पत्य जीवन में होने वाले अत्याचारों को उजागर करती हुई अपने स्तर पर अपने तरीकों से उसका कड़ा विरोध करती हैं। विवाह स्त्री के जीवन को जहाँ सम्पूर्णता प्रदान करता है, वहीं दूसरी ओर उसे सुरक्षा का अनुभव भी करवाता हैं। लेखिका भी अपनी माँ (कस्तूरी) के स्वप्नों को रौंदती हुई समाज के द्वारा बना नियमों में जकड़ जाती है और अपनी सुरक्षा के उपाय के तौर पर वैवाहिक जीवन चुनती है। विवाहित लेखिका बताती हैं कि उन्होंने विवाह इसलिए किया कि एक पुरुष साथी मिलने से उन्हें सुरक्षा का आवरण मिलेगा। लेखिका लिखती हैं कि "विवाह स्त्री की युवा उम्र को सुरक्षा देता है, ऐसा मुझे लग रहा था क्योंकि मैं खुद को देखती और सोचतीं मेरी स्थिति में कौन कितनी.....फिर बदह्वास चिड़िया–सी बाजों के झपट्टों से बचने के लिए कोई नया कोना तलाश करती।"[147] विवाह के कुछ वर्षों पश्चात् उन्हें विवाह नामक संस्था से घुटन होने लगती है। जीवन के प्रति बदलता दृष्टिकोण मैत्रेयी पुष्पा को ऐसे मार्ग की ओर ले जाता हैं, जहाँ परिणामस्वरूप मैत्रेयी पुष्पा लेखन की ओर आकर्षित होती हैं और अपनी कलम द्वारा वर्षों से चली आ रही कुरुतियों एवं रूढ़िवादी सामाजिक व्यवस्था पर लिखकर खुद को स्वतंत्र कर रही हैं।

अपनी इस आत्मकथा में लेखिका मैत्रेयी पुष्पा ने अपने बाल्यावस्था से लेकर लेखिका बनने के मार्ग में आने वाले संघर्षों का उल्लेख किया है।

इस आत्मकथा में लेखिका ने शैशवावस्था के प्रेम के अभाव का चित्रण किया है। पिता का स्वर्गवास हो जाने के कारण माँ द्वारा जिम्मेदारी निभाने से बेटी के प्रति स्नेह में कटौती करती गयी। परिणामस्वरूप मैत्रेयी शैशवावस्था के प्रेम की खोज बाल्यकाल में घर से बाहर अपनी उम्र के दुगुने पुरुष से प्रेम करके करने लगी। प्रेम में वियोग का दर्द भी सहा, जब किशोरावस्था में कदम रखा, तो अपने सहपाठी से प्रेम कर बैठी। शिक्षा के नाम पर आवारागर्दी करने वाली बेशर्म, निर्लज्ज, बेहया जैसी लड़कियों में शामिल की गई। जब पढ़ने के लिए गुरुकुल गई, तो वहाँ उन्होंने देखा कि साथ पढ़ने वाले सहपाठियों से ज्यादा भयावह शिक्षक और प्रिंसिपल थे। इन सब दुर्गम राहों से गुजरते हुए मैत्रेयी पुष्पा एम.ए. (हिंदी) बुंदेलखण्ड कॉलेज झाँसी से प्रथम श्रेणी में

उत्तीर्ण करती हैं। विद्यार्थी जीवन पूर्ण कर लेखिका वैवाहिक जीवन में पर्दापण करती है। परिवार की सेवा करते हुए पति की वंशवेल को आगे बढ़ाती हैं और तीन पुत्रियों को जन्म देती हैं नम्रता, मोहिता, सुजाता। माँ के 'विवाह विरोधी अभियान' को चुनौती देने वाली मैत्रेयी अपने घर संसार में ऐसी रम जाती है कि उनको जन्म देने वाली माँ भी आश्चर्य से घिर जाती है। कॉलेज में अध्ययन काल के दौरान दोस्तों से लड़ती–झगड़ती, हँसती–खिलखिलाती कॉलेज की राजनीति में शामिल होती, प्रिंसिपल द्वारा कॉलेज की लड़कियों के साथ किये गए दुराचार का विरोध करती हैं, वहीं मैत्रेयी पतिव्रत धर्म को पूरी शिद्दत के साथ निभाती हैं। एम.ए. की उपाधि में गोल्ड मेडल प्राप्त करती हैं। डॉ. शर्मा को पति के रूप में पाकर अपने भाग्य पर इठलाती हैं। अलीगढ़ की छोटी–छोटी, धूल–धूसर, कच्ची पगडंडियों को पीछे छोड़कर डेढ़ वर्ष की पहली बच्ची और पति के साथ देश की राजधानी, रोजगारों की नगरी, कल–कारखानों से धुआँ उगलती चिमनियाँ, ऊँची–ऊँची इमारतें, लम्बी–चौड़ी सड़कें, सकरे रह निवास दिल्ली शहर के बड़े चिकित्सा संस्थान 'एम्स' की बड़ी इमारत में प्रवेश करती हैं। यहीं से उनके जीवन में परिवर्तन का दौर शुरु होता है। दिल्ली शहर की चकाचौंध व ग्लैमर भरी दुनिया में स्वयं को गँवारुँ नहीं दिखाना चाहती, महंगी–महंगी साड़ियाँ पहनती हैं। दो चोटियों के स्थान पर जूड़ा लगाती हैं। हर प्रकार से अपने आपको दिल्ली शहर के तौर–तरीकों को अपनाते हुए ढालती हैं। घर की सजावट के लिए भी नई स्टाइल का फर्नीचर एक दिन में तीन बार कपड़े बदलना, महंगे–महंगे सौन्दर्य प्रसाधनों का इस्तेमाल, कीमती परफ्यूम, पाउडर, क्रीम ड्रेसिंग टेबल पर जगह बनाने लगते हैं। दिल्ली में प्रवेश के आरम्भिक दिनों में रहने की व्यवस्था न हो पाने के कारण एम्स में बने बॉयस हॉस्टल के एक छोटे से कमरे में रहती हैं। सीमित संसाधनों से अपनी पाक कला का प्रदर्शन करते हुए पति के दोस्त कवाँरे डॉ. देवरों की फरमाइश पर लज़ीज व्यंजन बनाती हैं। प्रेम से, तो कभी मनुहार करके खिलाती हैं। प्रशंसा रूपी प्रतिफल पाकर हर्षित होती है। कुछ माह बाद ही डॉक्टर्स फैमिली के लिए बने क्वार्टरों में बड़े ही दुःखी मन से प्रवेश करती है। पति की सेवा में स्वयं को तन मन से बिछा देती हैं ताकि पति के रुतबे में कोई कमी न रह जाए। फिर भी पति की नजरों में कस्बाई की मूर्ति ही बनी रहती है। अपने घर पर भोजन आमत्रंण पर आए UPSC चेयरमेन से भेंट करवाने में उन्हें शर्म महसूस होती है उस दिन मैत्रेयी के अस्तित्व पर गहरी चोट लगती हैं। एक पत्नी अपने पति परमेश्वर के लिए अपना सर्वस्व दाव पर लगा देती हैं। पति की सफलता, लम्बी उम्र के लिए व्रत, उपवास भूखी प्यासी रहकर करती हैं। विवाह बंधन को अपना फर्ज़ समझकर निभाती रहती है, किन्तु पति अपनी पत्नी के प्रेम को नहीं समझपाता या समझना ही नहीं चाहता, तो पत्नी को ही अपने अस्तित्व की पहचान करवानी पड़ती है और वह सामाजिक, पारिवारिक, नैतिकता के आचरणों का त्याग कर अपने 'त्रियाचरित' को ही अपनी ताकत बनाकर अनैतिक आचरण करने

लग जाती है। हमारे समाज में एक पुरुष द्वारा विवाहेत्तर संबंध उसकी मर्दानगी का प्रमाण होता है, किन्तु जब एक स्त्री भी पुरुष की तरह व्यवहार करती है, तो समाज की नजरों में वह अपराधी हो जाती है ऐसी स्त्री को समाज कुल्टा नाम देता है। एक पत्नी अपने पति एवं उसके परिवारजनों के लिए कितना कुछ करती है बदले में केवल पति से अपार प्रेम चाहती हैं। पति उसे भी देने में कंजूसी करता है, तो वह घर से बाहर प्रेम की खोज करने लगती हैं। मैत्रेयी पुष्पा भी डॉ. सिद्धार्थ की आँखों में अपने लिए प्रेम की झलक देखती हैं, तो उनके भीतर भी प्रेमभाव उमड़ने लगता है और पार्टी में डॉ. सिद्धार्थ द्वारा नाचने के लिए हाथ पकड़कर उठाए जाने पर समाज व उपस्थिति लोगों को नजरअंदाज करके नाचने लगती हैं। नाचते–नाचते उनका सिर डॉ. सिद्धार्थ के सीने से जा लगता है कुछ क्षणों के लिए वह सबकुछ भूल जाती हैं लोगों के साथ–साथ पति की भी नाराज़गी झेलती हैं। तिरस्कार झेलते–झेलते दुस्साहस कर बैठती हैं। वह लिखती हैं कि "कोई सोचे डॉ. सिद्धार्थ के साथ इसकी मित्रता कैसे हो गई? खतरों भरे चित्रों ने ही मुझे आकर्षित किया। मैं अब अपनी नजरों में गिरना नहीं चाहती। यदि कोई पति अपनी पत्नी की कोमल भावनाओं को कुचलकर खत्म करता है, तो पत्नी को पतिव्रत के नियमों का उल्लंघन हर हालत में करना होगा।"[148]

आत्मकथा में सटीक ढंग से रेखांकित किया गया है कि जिस परिवार नामक संस्था को हम महत्त्व देते है पति–पत्नी के संबंध को उच्चकोटि का मानते हैं, वह संबंध किस कदर खोखला होता जा रहा है। स्त्री से सब पाना चाहते हैं। उसे देना कोई नहीं चाहता। स्त्री के व्यवहार और जीवन के प्रति उसके रुख पर आलोचनात्मक दृष्टि सदैव उसे अपने स्त्री होने का अहसास दिलाती रहती हैं। डॉ. सिद्धार्थ से मैत्रेयी पुष्पा का इस तरह बेझिझक होकर मिलना पति को स्वीकार नहीं होता। पति द्वारा बनाई गई बेड़ियों को तोड़ने का दुस्साहस जब लेखिका करती हैं, तो पति द्वारा उन्हें निर्लज्ज होने का अहसास यह बोलकर कराया जाता है। "मेरी जान, इसी अदा पर शायद मरने लगे है लोग। वैसे तुम इतनी भोली नहीं, जितना मैं समझता था।"[149]

अपनी अस्मिता की तलाश करती मैत्रेयी पुष्पा पति की इस बेरुखी का कारण पति के मित्र के साथ नाचना मानती हैं। आधुनिकता का चौला ओढ़े पति का वह रूप आज लेखिका के समक्ष गलने लगता है और जो रूप दिखाई देता है वह अंदर से पूरी तरह सड़ा–गला, खोखली रूढ़िवादिता के दामन से कसकर जकड़ा हुआ है। अपनी अस्मिता की रक्षा करते हुए उपेक्षिता का शिकार हुई लेखिका अपनी स्थिति को स्पष्ट करते हुए लिखती हैं कि "डॉ. सिद्धार्थ मेरे पति नहीं, पति के दोस्त रहे है। मुझे हीन भावनाओं के गर्त से बाहर खींचने वाला चरित्रहीन कैसे हुआ?.....मैं

नाच के लिए नहीं उठी थी, अपने हकों के लिए खड़ी हुई थी, जिनसे मेरी जिंदगी के सम्मान का वास्ता था।"[150]

मैत्रेयी पुष्पा स्वतंत्र, बेबाक, अपनी अस्मिता के प्रति जागरुक वह क्रान्तिकारी नारी है, जो समाज की परवाह किये बिना अपने लिए विवाह का मार्ग खोजती हैं। वैवाहिक जीवन जीते हुए पारिवारिक बंधनों में बँधती है, किन्तु समय के साथ यह बंधन उन्हें कमजोर करता जाता है। इस बंधन से मुक्ति पाने के लिए वह झटपटाती हैं। अपनी इस असहजता को बयां करती हुई लिखती हैं कि "शादी के बाद मुझे मेरे हिसाब से कारावास मिला है, जिसके लौह–कपाट मैं तभी से तोड़ने में लगी हूँ और देखना चाहती हूँ कि इस दुनिया के अलावा भी कोई दुनिया है? पति के अलावा कितने लोग बाहर हैं? वैसे पति से बैर भाव नहीं पाला, मगर उनके किसी खूँटे से बंधना?...मैं भी अपने अन्दर गहरी भावनाएँ रखती हूँ, जैसे कोई गुप्त प्यार को बचा ले। नाचने की स्मृति मेरे साथ रहेगी।"[151]

उच्च शिक्षित बुद्धिजीवी वर्गों के बीच अलीगढ़ गाँव की गँवारुँ–सी दिखने वाली मैत्रेयी के लिए उस शिक्षित वर्ग के मध्य अपनी पहचान बनाने, पति के औहदे को समाज में बढ़ाने के लिए सजी–धजी गुड़िया बनकर रहना कठिन था। सजना सँवरना मैत्रेयी ने सीखा ही नहीं था। शायद यही कारण था कि मैत्रेयी का पार्टी में नाच के दौरान जूड़ा पफ निकल जाता है। पति के सम्मान में एक और चूक शहरी सभ्य लोगों के बीच मज़ाक बनकर रह जाती हैं। आत्म विश्वास की खोज में अपना ही मज़ाक बनते देख अपमान से तिलमिला उठती हैं। शहरी जीवन के रहन–सहन के साथ–साथ खाने–पीने के तरीके भी सीख रही होती हैं। सीख, छुरी–काँटे का भोजन में इस्तेमाल, ऊँची एड़ी की चप्पल पहनना, ग्लैमर के पीछे अन्धी दौड़ उन्हें ऐसी अपमान जनक स्थिति में ला खड़ा करती है, जहाँ बेशऊरी का प्रदर्शन हो जाता है। लेखिका लिखती हैं कि "इज्जत बढ़ाने की दौड़ में इज्जत उतर जाना............यहाँ मेरी जैसी कोई मुझे मिलेगी? मिलेगी, जिसे पफ की शैतानी पर अपने लिए शर्मसार होना पड़े.....यह कैसी सजा है हम ग्रामीणों के लिए? क्या हम भी शहरियों से कहते हैं कि अपनी फैशन छोड़कर हमारे चलन अपनाओ?"[152]

एक ग्रामीण लड़की के लिए शहरी तौर–तरीके सीखना उसके अनुरूप दिखने की कोशिश करना मैत्रेयी जैसी आकर्षण विहीन, खुरदरी, साधारण–सी दिखने वाली लड़की के लिए सौन्दर्य प्रसाधन से भरी दुनिया से टकराना बड़ा ही जोखिम, किन्तु साहसिक कार्य है। दिल्ली शहर में मैत्रेयी पुष्पा का शहरी नामकरण होता है 'मिसेज शर्मा' डॉ. क्वार्टर में रहते हुए मैत्रेयी पुष्पा को एक मित्र मिलती है नाम है इल्माना जाति से मुसलमान आकर्षक व्यक्तित्व दिखने में सुन्दर उच्च शिक्षित। इल्माना डॉक्टरों की दारू पार्टियों में चर्चा का विषय बनी रहती हैं। पुरुष प्रधान समाज

के क्रूर नियम मैत्रेयी, इल्माना जैसी महत्त्वाकांक्षी, साहसी, उमंगता से भरी हुई स्त्रियों को जीवनभर कसते रहते हैं। इस आत्मकथा में मैत्रेयी एवं इल्माना ही नहीं, कई ऐसी स्त्रियाँ हैं, जो पढ़–लिखकर आत्मनिर्भर बनना चाहती हैं। पुरुष के पीछे नहीं बराबर चलना चाहती हैं। डॉक्टर, वकील, इंजीनियर, प्रधानाध्यापिका बनना चाहती हैं, किन्तु लड़कियों को संस्कार स्वरूप बाल्यकाल से ही भावी जीवन के लिए तैयार करना, गृहस्थी संभालने का प्रशिक्षण रसोईघर में भोजन बनाकर योग्यता साबित करना, उनके वजूद का हिस्सा बना दिया जाता है। वे स्त्रियाँ जो साहसिक हैं वे अपने स्तर पर ही इन परम्पराओं, रूढ़ियों को तोड़ने का प्रयास करती रहती हैं। इस आत्मकथा में इल्माना योग्य, शिक्षित, सुन्दर स्त्री है, जो अपनी उम्र के दुगुने पुरुष से ब्याह दी जाती हैं। बीमार पति (डॉक्टर) को संभालती हैं। अपने हाथों से उनके सारे कार्य करती हैं। अनिच्छा से किए गए विवाह को भी माता–पिता की इज्जत की लाज बनाए रखने के लिए निभाती रहती हैं।

हमारी भारतीय संस्कृति में पत्नी को अर्द्धांगिनी अर्थात् पुरुष के शरीर का आधा हिस्सा माना गया है, किन्तु समाज में सामाजिक अवसरों पर, निमंत्रण कार्ड, राशन कार्ड पर पहला नाम पुरुष का होता है, वहाँ पत्नी का अस्तित्व ही नहीं। अपने अधिकार पाने की लड़ाई स्त्री समाज को सामाजिक तौर पर ही नहीं अपितु हर स्तर पर, हर मोंर्चों पर उच्च स्वर से लड़नी होगी। लेखिका लिखती हैं कि "मेरी जिन्दगी की लय किसी मातमी जुलूस सी........जिसमें लोग बिना दाएँ–बाएँ देखे बस सिर झुकाए चले जाते हैं या समझते कि अपने अधिकार की बात कहना मर्यादा का उल्लंघन लगता था। आदर–सम्मान, मर्यादा, कुलशीलता निभाना और शीलवती गुणवती बहू होना आसान नहीं होता। बेटा, खून के आँसू रुलाता रहा मुझे, इस परिवार में शादियाँ होती हैं, उत्सव मनाते हैं, तो कार्ड छपवाए जाते हैं। उन कार्डों पर तेरे ताऊ–चाचा, तेरे पिता का नाम लिखवाते हैं, अपने बेटों के नाम छपवाते हैं, तुम वहाँ कहीं नहीं होती..........मेरी बेटियाँ डॉक्टर बनने के बावजूद परिवार के स्तर पर खारिजनाम............जैसे हमारे घर में एक ही व्यक्ति हो, जो पुरुष है, तेरे पिता............आँसू पीते हुए यही मान लेना होता मुझे। क्या यह घाव मेरी भूल का कारण है या स्वाभाविक है यह तकलीफ? तकलीफ, जिसे मैं दिल में दबाए जी रही हूँ।"[153]

गृहस्थी का संचालन करने वाली स्त्री को 'घरेलू महिला' कहकर हर क्षेत्र से हारा हुआ माना जाता है। गृहस्थी के साथ जब यह स्त्रियाँ आगे पढ़ना चाहती हैं, तो कोई भी उन्हें सहयोग नहीं करता अपितु गृहस्थ स्त्री ही सबसे पिछड़ी मान ली जाती हैं। मैत्रेयी भी विवाह के बाद पीएच.डी. करना चाहती थी, किन्तु उनका यह स्वप्न केवल स्वप्न बनकर ही रह जाता है और वह पीएच.डी. करने से वंचित रह जाती है। अपने अधूरे स्वप्न के दर्द को बयां करते हुए इल्माना

मैत्रेयी पुष्पा से कहती हैं कि "हम पुराने पड़ गए हैं, मिसेज शर्मा। जमाना आगे निकल गया। सनदों की एवज शौहर जिन्दगी में क्या आया, जिन्दगी रेहन हो गई। ब्याज सूद में वक्त चुकता गया।"[154] लेखिका स्त्री के लिए एक ऐसे परिवार की कामना करती है, जहाँ उसे बराबरी का दर्जा मिले क्योंकि स्त्री कोई दासी या सेविका नहीं उसका भी अपना स्वतंत्र वर्चस्व है। स्त्री अन्या बनी रहे या फिर अपनी आत्म चेतना की सत्ता को स्थापित करें।

मैत्रेयी पुष्पा की सुशिक्षित बेटियाँ उन्हें लेख लिखने के लिए प्रोत्साहित करने लगती हैं, ताकि उनका खोया हुआ आत्मविश्वास पुनः लौट आए। मैत्रेयी पुष्पा अपनी बेटियों को समझाते हुए समय एवं परिस्थितियों का हवाला देते हुए कहती हैं कि "निष्क्रिय सुन्दरता। जो पंख पूँछ उपयोग में नहीं आते, खुद–ब–खुद झर जाते हैं। मैं उन पंखों को दोबारा भी लगा लूँ, मगर उड़ना भूल चुकी हूँ। उड़ान के सपने संजोने से क्या होगा?"[155]

अपनी इस आत्मकथा में लेखिका पुंसवादी समाज की सोच और मानसिकता पर सवाल खड़ा करती है वह अपने अस्तित्व एवं अधिकारों को पाने के लिए आवाज उठाती हैं। नई परम्पराओं की माँग करती हैं, स्त्री के आत्मसम्मान की रक्षा एवं पितृ सत्तात्मक समाज से मुक्ति पाने के लिए पारिवारिक साँचे की जड़ों को झिंझोड़ने का प्रयास भी करती हैं। मैत्रेयी पुष्पा लिखती हैं कि "जो लोग भाग्य को जीवन के लिए निर्णायक मान लेते हैं, उन्नति–प्रगति के रास्ते बनाए या नहीं बनाए, शान्ति की खोज कर लेते हैं। मेरे जीवन में सब कुछ उजाड़ तो नहीं हो गया। कुछ इसी तरह मैंने अपने मन पर नियंत्रण के यकीन की कमजोर होती बुनियाद को फिर से थक कर मजबूर किया।"[156]

इस आत्मकथा में लेखिका लड़की के विवाह की अनिवार्यता पर सवाल खड़ा करती हैं। स्त्री का जीवन पुरुष की खोज करना, विवाह करना अथवा पति की वंशवेल को आगे बढ़ाना नहीं होता अपितु इससे भी इतर उसकी अपनी पहचान होनी चाहिए। विवाह के पश्चात् औरतें अपने मूल वजूद को भूलकर पति के गोत्र, कुल, जाति, उपनाम से पहचानी जाती हैं। स्त्री जीवन की इस विडम्बना का चित्रण करती हुई मैत्रेयी पुष्पा अपनी उच्च शिक्षित बेटियों से कहती हैं कि "मैं मिसेज शर्मा के सिवा क्या हूँ? तेरे पिता की पत्नी.....न औरत हूँ न मनुष्य, केवल पत्नी, इसी रूप में तेरे पिता के परिवार में शामिल हूँ। शान्त–सम्मानित जीवन भी खुद को भूल जाने के कारण मिला है।"[157]

मैत्रेयी पुष्पा स्त्री जीवन की वेदना को उजागर करते हुए बताना चाहती है स्त्री का अस्तित्व पुरुष को शारीरिक सुख देना, उसकी सेवा करते हुए तरक्की की कामना करना, पुत्रवती होकर वंशवृद्धि करना है। मैत्रेयी पुष्पा स्वयं तीन बेटियों की माँ बनकर जहाँ सन्तोष अनुभव करती हैं, वहीं दूसरी ओर वंशनाशिनी जैसे आरोपों से ग्रसित होकर मानसिक सन्तापों से गुजरती हुई परम्पराओं के इन बंधनों से मुक्ति पाने के लिए स्वयं को व्रत और पूजापाठ से जोड़ने लगती हैं, धीरे–धीरे ये परम्पराएँ लेखिका को अपने बंधनों में जकड़ने लगती है, क्योंकि वंशबेल की वृद्धि, पित्रों के तपर्ण हेतु पुत्र रत्न जो चाहिए। इस आत्मकथा में लेखिका बताना चाहती हैं कि स्त्री पैदा नहीं होती अपितु बनाई जाती हैं। स्त्री को अपना एक निजी ठिकाना चाहिए, जिसे हमारा समाज–परिवार कहता हैं। इसी संदर्भ में वह लिखती हैं कि "हमारी जिंदगी की बागडोर तो उस घर की चौखट से बंधी है, जिसमें हम स्त्री की तरह पनाह पाये हुए है।"[158]

मैत्रेयी पुष्पा परिवार का विरोध नहीं करती। परिवार का समर्थन करती हैं, उनका मानना है कि जिस प्रकार पक्षी को भी समूह में रहना पसंद है, उसी प्रकार स्त्री को रहने के लिए अपना घर–परिवार चाहिए, किन्तु जिस प्रकार बंधन पक्षी को भी मंजूर नहीं होता, ठीक उसी भाँति लेखिका को भी ये बंधन स्वीकार नहीं। रूढ़िवादी परम्पराओं की कैद से मुक्त होकर उन्मुक्त आकाश की ओर पंख फैलाकर उड़ने के लिए वह झटपटाती है। वह अपनी अस्मिता, अपने विचार, अपने सिद्धान्तों की रक्षा के लिए पति से वैचारिक संघर्ष करती है और अन्ततः अपनी विद्रोहात्मक चेतना का परिचय देती हुई सदियों से चली आ रही परम्पराओं को तोड़ती है। समाज के स्त्री विरोधी रवैये पर सवाल उठाती हुई लिखती हैं कि– "महीने, साल और ऋतुएँ बदलते हैं, रिवाज नहीं बदलती।"[159]

बेटियों के बार–बार आग्रह करने पर मैत्रेयी पुष्पा लेखन की ओर अग्रसर होती है। अपनी आत्मकथा के जरिए जीवन की तमाम पीड़ाओं, अन्याय के प्रति लिखकर इनसे मुक्ति पाना चाहती हैं। 'गुड़िया भीतर गुड़िया' आत्मकथा में मैत्रेयी पुष्पा अपने जीवन की सभी घटनाओं को छुपाने के स्थान पर लिखकर उजागर करने का साहसिक कार्य करती हैं। इस आत्मकथा के प्रकाशन के बाद उन पर कई गम्भीर आरोप लगाए गए है, किन्तु वे इन आरोप को खारिज़ करते हुए लगातार लिखती रही हैं। उनके द्वारा लिखे गये उपन्यास 'इदन्नमम', 'चाक' (आल्मा कबूतरी), कहानी संग्रह 'चिन्हार', 'बेतवा बहती रही' इत्यादि प्रमुख हैं।

मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा 'गुड़िया भीतर गुड़िया' पुरुष प्रधान समाज की झूठी सत्ता, खोखली व्यवस्था का मुखौटा उजागर करती है। इस आत्मकथा में घटित हर घटना पाठकों को उनके जीवन की–सी लगती है। अपने जीवन की यथार्थ घटनाओं, कटु सत्य को इस तरह निडर

होकर बयां कर पाना साहसिक ही नहीं खतरनाक भी है। अपने अध्ययन काल के दौरान लेखन के शौक के चलते मैत्रेयी पुष्पा ने कुछ कहानियाँ लिखी थी। इस उम्मीद में कि विवाह के बाद पति छपवाने में सहयोग करेंगे, किन्तु यहाँ तो आज यह भ्रम भी टूट गया पति (डॉ. रमेश शर्मा ऊर्फ मंटू) कहते हैं– "मैं सम्पादन–प्रकाशन जैसे कामों के बारे में ज्यादा नहीं जानता, लेकिन इन चीजों पर कब्जेदार पुरुषों की मनोवृत्तियाँ समझता हूँ।"[160] जन्म से ही अपनी इच्छाओं का दमन करती आई मैत्रेयी पुष्पा अपनी पीड़ा को व्यक्त करते हुए लिखती हैं कि "मेरी कविता, मैं अन्तरिक्ष में चाहे जितनी उड़ाना भरूँ, उतरना तो पति के ही आँगन में पड़ेगा।"[161]

इस आत्मकथा में लेखिका आज से लगभग 15–20 वर्ष पूर्व घटित घटनाओं को याद करते हुए बताती है कि जब वह पहली बार अपनी रचनाओं को छपवाने के लिए पति संग 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के कार्यालय पहुँची, तो वहाँ बैठे सम्पादक महोदय डॉ. पति का परिचय पाकर उनसे अपना काम साधने लगे। किसी ने दवाईयों की लम्बी चौड़ी फ़ेहरिस्त थमा दी, तो किसी ने बिना लाइन मेडिकल चैकप की सुविधा की मांग क्योंकि 'अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान', दिल्ली 'एम्स' का फैकल्टी मेम्बर का सदस्य आज उनकी गिरफ्त में था। दिन बीतते गए मैत्रेयी पुष्पा की रचनाएँ प्रकाशन को तरसती ही रही। उस दिन मैत्रेयी को लगा कि पति सम्पादकों के विषय में सही सोचते हैं। वह लिखती हैं कि "पति कहते हैं– तुम नादान हो जानम। तुम भोली हो। तुम्हारा नाजुक तन–मन............ये कवि लेखक टाइप आदमी नम्बरी बदमाश होते हैं। उन्हें ऐसी औरत चाहिए जो सस्ती हो जाए या ऐसा आदमी चाहते हैं, जो इनके बड़े से बड़े स्वार्थ साधे।"[162]

अपनी लिखी कविताओं, रचनाओं को छपवाने के लिए मैत्रेयी पुष्पा जहाँ भी जाती है, वहाँ के सम्पादक महोदय उनसे अपना स्वार्थ सिद्ध करने में लगे रहते। कोई छपवाने के नाम पर होटल के एकान्त में रचना पर चर्चा के बहाने से बुलाता है, तो कोई आने जाने की सुविधा के लिए गाड़ी की मांग करता है। एक कथा–मासिक पत्रिका के सम्पादक महोदय ने तो दवाईयों की लिस्ट ही थमा दी थी। एक तरफ संपादको की चापलूसी और गुलामी भरी दुनिया, तो दूसरी ओर मैत्रेयी जैसी भोली–भाली लेखिका। मैत्रेयी पुष्पा सम्पादक की हीन नज़रों को भी झेलती हैं। सोचती है कि पति को बाहरी दुनिया की जानकारी ज्यादा है वे सही कहते है कि सम्पादकों की दुनिया हम जैसी स्त्रियों के लिए नहीं है। पति कहते हैं कि "क्या सोच रही हो चिन्तकों की तरह? यह सब लेखन–बेखन नहीं है। ये लोग तुम्हें कब कुछ सिखाएँगे? चापलूसी और गुलामी के तलबगीर...........कोई लुच्चा है, तो कोई ठग।"[163]

व्यक्ति की महत्त्वाकांक्षा उसे ऐसे अंध कूप में ले जाती हैं, जहाँ उसे अपनी इच्छाओं के चलते शोषण को झेलना पड़ता हैं। बदनामी की अँधेरी गलियों से गुजरना उसकी सामाजिक छवि को धूमिल करता जाता है उस दिन व्यक्ति को अपनी करनी पर पछतावा होता है मैत्रेयी भी महत्त्वाकांक्षओं के कारण ब्लैकमेल होती हैं। वह लिखती हैं कि "क्यों लिखती हूँ मैं? छपने के लिए ब्लैकमेल होती हूँ। शोषण हो रहा है मेरा। शोषण के लिए खुद को हाजिर करती हूँ किसी भी गज़ालत से निकलूँ, सिर पर लेखिका होने की सुनहरी कलगी बँधे। किसी भी दलदल में फँसूँ, शरीर को उड़ान भरने वाले पंख मिले। उफ, मेरी महत्त्वाकांक्षाएँ......मुझे कहाँ लाकर घसीट रही है।"[164]

संपादकों की दुनिया में गॉडमदर जैसी स्त्रियाँ भी है, जो मैत्रेयी को नचा रही है, संपादक कार्यालय को मंदिर, सम्पादक महोदय को उस मंदिर के भीतर विराजमान ईश्वर तुल्य समझने वाली सीधी साधारण–सी मैत्रेयी पुष्पा सम्पादन के क्षेत्र में फैले भ्रष्टाचार, राजनीतिक चालबाजियों से परिचित होती हैं। आज उन्हें सब कुछ बिल्कुंल साफ–साफ समझ में आ रहा हैं कि आजकल कोई अच्छे लेख, कविताएँ क्यों? हमारे सामने नहीं आ रहे क्योंकि लेखकों के पास संपादकों को देने लायक कुछ नहीं है। सम्पादन के क्षेत्र में बढ़ते भ्रष्टाचार के कारण ही अच्छी रचनाएँ लिफाफें में बंद पड़ी–पड़ी दम तोड़ देती हैं या दीमक लग जाती है। इस संदर्भ में लेखिका लिखती हैं कि "आज हमारे आगे नतीजा आ गया, जब कितने ही साप्ताहिक पत्र और मासिक पत्रिकाएँ परिदृश्य से गायब हो गए। उनकी हत्या उनके सम्पादकों के हाथों हुई। ऐसे सम्पादकों ने पत्र–पत्रिकाओं का ही नहीं नए प्रतिभाशाली, कल्पनाशील, मगर साधनहीन लेखकों कवियों की संभावनाओं का खात्मा किया है। रचनाएँ अकाल मौत भरी होगी। कैसा आपराधिक मामला है, जिसकी सुनवाई के लिए कहीं न्यायालय नहीं। कहते हैं कि साहित्य व्यक्ति की चेतना, सम्पन्नता, स्वतन्त्रता और जीवन की बेहतरी के लिए रचकर प्रकाशित होता है, लेकिन यहाँ तो साहित्य, साहित्य के आकाओं को दी गई संस्थाओं का गुलाम है। इससे बड़ा साहित्यिक अनाचार क्या होगा? मास्टर और सर्वेन्ट रूल के चलते दूसरा अत्याचार क्या होगा? मैंने शोषण का अद्‌भुत तमाशा साहित्य के क्षेत्र में देखा।"[165]

इस आत्मकथा में इल्माना की भूमिका मैत्रेयी पुष्पा के जीवन में अच्छे दोस्त की रही है, जिनसे मैत्रेयी अपने जीवन की सभी गोपनीय बातें बताती हैं। लेखिका की इस लेखन–यात्रा को हौंसला देने में इल्माना का भी अप्रत्यक्ष रूप से योगदान रहा है। मैत्रेयी पुष्पा के जीवन में कई प्रेमी रहे हैं 'गुड़िया भीतर गुड़िया' आत्मकथा में मैत्रेयी स्वयं अपने प्रेम प्रसंगों को स्वीकार करती है। गृहस्थी के बंधन में बंधकर ये प्रेमी जिन्दगी में बहुत पीछे छुट चुके हैं, लेकिन मैत्रेयी को जब

भी अवसर मिलता है, तो वह इनकी चर्चा अपनी रचनाओं में करना नहीं भूलती। प्रेम करना कोई पाप नहीं, जब तक भी उसमें दुराचार का भाव न हो। यह तो प्रकृति प्रदत एहसास है, जो मैत्रेयी के कोमल ह्दय को छू गए। अपने प्रेम प्रसंग की चर्चा तथा पति के दोस्त रहे डॉ. सिद्धार्थ एवं हंस के सम्पादक राजेन्द्र यादव के साथ अपने संबंधों को स्वीकार करती हैं। मैत्रेयी पुष्पा बेबाक तरह से अपनी बात लिखकर अपने पति को मानसिक कष्ट पहुँचाती है। वह पति जो अपनी पत्नी के लेखन पर गर्व तो महसूस करता है। साहित्य क्षेत्र में पत्नी के बढ़ते हुए वर्चस्व को देखकर हर्षित होता है, किन्तु पर पुरुषों के साथ उनके सम्पर्कों एवं संबंधों पर सदैव आशंकित रहता है। राजेन्द्र यादव जो 'हंस' के सम्पादक थे। आरम्भ में मैत्रेयी की रचनाओं को अस्वीकार करते रहे, किन्तु बाद में उनके द्वारा लिखे लेख लगातार छापने लगे। लेखिका का परिचय उनसे दिनोंदिनों गहरा होता गया। पत्नी की पुरुष के साथ बढ़ती हुई नजदीकियों को देखकर दोनों में मन मुटाव होने लगा, जिससे घर की शान्ति व्यवस्था भंग होने लगी। लोगों द्वारा तरह–तरह की छींटाकशी मैत्रेयी पुष्पा व उनके पति को मानसिक तनाव देती रही। लेखिका को कई बार पति के समक्ष स्वयं को निर्दोष साबित करने हेतु कठिन राहों से भी गुजरना पड़ा।

पति– 'कसम खाती हो, उनसे तुम्हारा यही रिश्ता है?'

लेखिका – गंगा जली उठाऊँ और कोई विश्वास भी करें ऐसी मुझे दरकार नहीं।[166]

राजेन्द्र यादव का जब स्त्री के साथ संबंध उजागर होता है, तो उनका अपनी पत्नी मन्नू भण्डारी से अलगाव हो जाता है। पति–पत्नी आपसी सहमती से अलग हो जाते है। राजेन्द्र यादव अपने चरित्र पर लगे कलंक को साफ करने के लिए मैत्रेयी पुष्पा से अपनी कलाई पर राखी बंधवाते है। राजेन्द्र यादव मैत्रेयी पुष्पा से अपने संबंधों का परिचय कृष्ण और द्रौपदी अर्थात् सुख, दुःख के सच्चे मित्र के रूप में बताते हैं। एक दिन अचानक राजेन्द्र यादव बीमार हो जाते हैं। मैत्रेयी पुष्पा के पति डॉ. शर्मा उन्हें एम्स (दिल्ली) में ले जाकर भर्ती करवाते हैं। ऑपरेशन की तैयारी चल रही है। राजेन्द्र यादव मैत्रेयी पुष्पा को फोन करते हैं। फोन के विषय में पति द्वारा पूछे जाने पर वह झूठ बोल देती हैं कि "राजेन्द्र यादव मुझे नहीं, तुम्हें बुला रहे हैं।"[167] अन्त में राजेन्द्र यादव स्वस्थ्य हो जाते हैं।

मैत्रेयी पुष्पा पर गॉडमदर द्वारा वरिष्ठ लेखिकाओं के हक मारने जैसे गम्भीर, किन्तु निराधार आरोप भी लगे। उन दिनों मैत्रेयी पुष्पा साहित्य के क्षेत्र में दिनोंदिनों सफलता की सीढ़ी चढ़ती जा रही थीं। मैत्रेयी पुष्पा की सारी उपलब्धियों को राजेन्द्र यादव की कृपा के खाते में डालकर, उनके लेखन के महत्त्व को कम करने का हर सम्भव प्रयास मैत्रेयी पुष्पा के लिए नित नए लेखन की चुनौतियों को जन्म दे रहे थे। वह लिखती हैं कि "इलजाम तो इलजाम है,

असलियत तो नहीं कि मैंने वरिष्ठ और विदुषी लेखिकाओं का हक मारा है, उनकी जगह हड़पकर बैठ गई हूँ और यह सब किया है मैंने राजेन्द्र यादव की कृपा से।"[168]

इस आत्मकथा में मैत्रेयी पुष्पा पाठकों को एक ऐसे सच से रूबरू करवाती हैं, जहाँ सम्पादन के क्षेत्र में फैली राजनीति का कटु सच खुलकर सामने आता है, जिससे पाठक जन अनजान है। मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा 'गुड़िया भीतर गुड़िया' पर झूठा सच, अधूरा जीवन चित्रण का आरोप भी लगाया गया है। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने जीवन का परत दर परत खुलकर चित्रण, प्रेम–प्रसंग, सम्पादकों की चालबाजियाँ, राजनीति के आकाओं का छल–कपट, बदनामी के काले धब्बे सब पर खुलकर लिखा है। यह एक स्त्री के बोल्डनेस की गाथा भी है।

मैत्रेयी पुष्पा ने इस आत्मकथा में अपनी बेबाक लेखनी के द्वारा स्त्री–मुक्ति का एक नया द्वार खोलने का स्तुत्य प्रयास किया है। इस आत्मकथा में लेखिका तथाकथित पुंसवादी समाज का विरोध ही नहीं करती, बल्कि उनके द्वारा स्त्रियों के लिए बनाए गई कैद को तोड़कर स्त्रियों की आजादी की कामना भी करती हैं। वह लिखती हैं कि "'त्रिया चरित्र' कहो तो कह सकते हो। इसे मैं सर्वाइल ऑफ फिटेस्ट मानती हूँ। जिन्दगी को बचाकर रखने का तरीका।"[169]

स्त्री–मुक्ति का प्रश्न किसी जाति, धर्म, वर्ग का न होकर सार्वकालिक, सार्वभौमिक, सार्वदेशिक हैं। यह एक स्त्री का लोकतान्त्रिक अधिकार भी है, जो उसे हर हाल में प्राप्त होना ही चाहिए। इस प्रकार 'गुड़िया भीतर गुड़िया' आत्मकथा स्त्री संघर्ष की कहानी को वास्तविकता के पटल पर उकेरते हुए स्त्री–स्वावलम्बन, स्त्री–स्वतंत्रता, स्त्री–अस्तित्व, स्त्री–अधिकार को आत्मकथा–साहित्य के माध्यम से व्यक्त करती है तथा स्त्री विमर्श और बोल्ड–लेखन का एक नया अध्याय प्रस्तुत करती है। वस्तुतः मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा 'गुड़िया भीतर गुड़िया' स्त्री–शोषण, स्त्री–अन्याय के विरुद्ध प्रतिरोध का सच्चा चिट्ठा है।

1.3.6 रमणिका गुप्ता 'आपहुदरी' (एक जिद्दी लड़की की आत्मकथा, 2014–15 ई.)

आदिवासी–विमर्श की महान् लेखिका रमणिका गुप्ता की आत्मकथा भाग–2 'आपहुदरी' (एक जिद्दी लड़की की आत्मकथा, 2014–15 ई.) स्त्री आत्मकथा–साहित्य की ही नहीं बल्कि हिंदी–साहित्य की सद्यः प्रकाशित आत्मकथा है। 'आपहुदरी' यह कथा लेखिका के जीवन में घटित तमाम घटनाओं, टकराहटों, संघर्षों और भटकावों का आकलन है। यह आत्मकथा लेखिका के जीवन के दर्द को बयां करते हुए सामन्ती समाज की पोल खोलती है।

'आपहुदरी' रमणिका गुप्ता के जीवन की वास्तविकता को परत दर परत खोलती बोल्ड एवं निर्भीक आत्मस्वीकृति की साहसिक गाथा है, जिसमें लेखिका ने बचपन से लेकर धनबाद तक की यात्रा कला, साहित्य, समाज–सेवा और राजनीति संघर्षों को चिन्हित किया है। इस आत्मकथा में रमणिका गुप्ता अपने विरुद्ध खड़ी सामाजिक रूढ़ियों, परम्पराओं और तथाकथित संस्कारों की बाढ़ से उबरने के लिए छटपटाती है। अपने पर लगे लांछनों को स्वीकार नहीं करती सत्य की विध्वंसक एवं रहस्यमयी मारक शक्तियों का प्रयोग स्वयं के बचाव के तौर पर करती हुई वापिस उसी समाज को वह सारे लांछन आरोप लौटा देती है। इस आत्मकथा का समय बहुत लम्बा है, स्पेस व भूगोल विशाल है।

पंजाब के सुनाम में जन्मी रमणिका गुप्ता के पिता पटियाला रियासत में (मिलिट्री) डॉक्टर थे। नाना दीवान दीनानाथ खोसला इसी रियासत के बड़े जमींदार थे। लेखिका का जन्म सामन्ती समाज में हुआ था। इस समाज में पुरुषों को पूर्ण स्वतंत्रता, अधिकार प्राप्त थे, वहीं महिलाओं पर अनेक पाबन्दियाँ, रोकटोक पितृसत्तात्मक समाज द्वारा लगाई गई थीं। लड़कों के जीवन के तौर–तरीके अलग थे और लड़कियों के अलग। लेखिका अपनी इच्छानुसार कार्य करने का साहस करती हैं। सबका विरोध झेलती हैं परम्पराओं को स्वयं ही तोड़ती हैं। मां द्वारा सिर ढक कर चलो की हिदायत देने पर वह तीखे तेवरों से उनका विरोध प्रकट करते हुए कहती हैं कि "नहीं ढकूंगी सिर! क्यों ढकूं? क्या लड़के सिर ढक कर चलते हैं? रवि को क्यों नहीं कहती अपना सिर ढकने को? मैं कोई उससे कम हूँ क्या? नाना जी के हवेली और क्लब में इतनी मेमें आती हैं, वे 'चुन्नी' (दुपट्टा) नहीं ओढ़ती। मैं क्यों नहीं उनकी तरह बिना 'चुन्नी' ओढ़े चल सकती?"

"यह अच्छे घर की लड़कियों का रिवाज़ नहीं है।" माँ मुझे समझाते हुए कहती।

"मुझे नहीं चाहिए अच्छे घर के रिवाज़। मैं नहीं बनूगी अच्छे घर की लड़की। यह सब पुरानी बातें है। मैं नहीं मानूंगी कोई पुरानी बात। मैं अपना ही रिवाज़ चलाऊँगी, खुद अपने आप। मैं जोर देकर कहती।"[170]

बचपन से ही परिवार में सबसे जिद्दी लड़की रही लेखिका को 'आपहुदरी' कहा जाता था। यह एक पंजाबी शब्द है, जिसका अर्थ होता है अपने मन की करने वाली अर्थात् जिद्दी लड़की। सामन्ती समाज में स्त्री को भोग्यामानकर भोगा जाता था। एक पुरुष के एक से अधिक प्रेम प्रसंग परिवार में उनकी मर्दानगी का प्रमाण होता था। पत्नियाँ, बहने, माएँ भी विरोध किए बड़ी सरलता से ऐसे अमान्य संबंधों को स्वीकार कर लेती थीं। रियासतों में ये आमतौर पर होता था। लेखिका के पिता जो कि पेशे से मिलिट्री में डॉक्टर थे। वे अपनी पत्नी से बहुत प्रेम करते, किन्तु अवसर हाथ लगने पर घर से बाहर भी पर स्त्रियों से संबंध स्थापित करते रहते थे। नाना

के रूप में रमणिका एक ऐसा जीता जागता जमींदाराना उदाहरण देखती हैं, जो घर में ही अपनी बेटी से ही संबंध स्थापित करता हैं, जो कि भारतीय संस्कृति के विरुद्ध हैं, रिश्तों का यह घिनौना रूप, बेटी की इज्जत पर अपने पौरुष का दम भरता यह सामन्ती समाज, जिसे अपने किए कुकृत्य पर जरा–भी ग्लानि नहीं होती बल्कि पीड़िता ही स्वयं को कसूरवार मानकर मानसिक संताप झेलती रहती है। अपने समाज में स्त्री की इस विवशता को प्रकट करते हुए लेखिका लिखती हैं कि "घर में औरत को आदर, प्रचुर प्रेम के चश्मे (झरने), बाहर ऐय्याशी से सराबोर सागर। औरत का दोनों रूपों में भोग। पत्नी का पावनरूप, प्रेमिका का अनुराग, वीरांगना की आसक्ति, पुरुष सभी का बिना अपराधबोध के उपभोग करता था। स्त्री अपराध–बोधों की पिटारी थी। अपनी ज़रा–सी बेवफाई उसे अपनी ही निगाहों में चोर बना देती थी और चोर बनाने वाला पुरुष बेदाग़ रहता था।"[171]

इस आत्मकथा में रमणिका गुप्ता बताती हैं कि लड़की के बड़े होने का अहसास लड़की को बाद में, सबसे पहले समाज को पता चलता हैं। समाज की नजरें उसे हर क्षण स्मृति दिलाती रहती हैं कि वे बड़ी हो रही है। उसके रूप–रंग, चाल–चलन पर समाज दृष्टिपात करता रहता है। समाज की हेय नजरें लड़कियों के आत्मविश्वास को कमजोर और खोखला करती रहती हैं, कुछ साहसिक लड़कियाँ ऐसी भी होती हैं, जो समाज की सभी हेय नजरों का सामना बड़ी हिम्मत, ताकत से ही नहीं करती अपितु अपने तरीकों से उनका जवाब देती हैं। एक लड़की के संदर्भ में उसके रूप रंग का भी विशेष महत्त्व होता है, चूंकि लेखिका दिखने में सुन्दर नहीं थी। माँ की उपेक्षित नजरें उनका पीछा करती रहती हैं मां के प्रेम के अभाव की पूर्ति दादी माँ से प्रेम पाकर पूरा करती हैं। इसी संदर्भ में लेखिका लिखती हैं कि "हेय नजरों ने हमेशा ही मुझे विचलित किया। बचपन से ही मैं आँखों की भाषा 'नज़र' के माध्यम से पढ़ने में माहिर हो गयी थी। देखते ही 'नज़र' को पहचान लेती थी। इसलिए नजरें मुझे प्रभावित करती थीं। जीवन भर आँखें मेरा पीछा करती रहीं। आँखें–नजर–दृष्टि–मैं इन्हीं से अपने लिए कुछ पाने को लालयित रही, भूखी रही। प्रेम–प्रशंसा, आदर–सम्मान। मैं दया–तरस–निरादर, तिरस्कार या उपेक्षा की नज़रों से सदैव जूझती रही। उपेक्षा की नजरें मुझे सालती थीं। प्यार, सम्मान और स्नेहभरी नजरें मुझे समर्पित हो जाने को प्रेरित करती थीं। मेरा नजरों से घृणा और प्यार का रिश्ता गहरा होता जा रहा था।"[172]

भारतीय संस्कृति में यौन संबंधों की चर्चा खुले आम करना जहाँ निषेध माना गया हैं, वहीं सामन्ती समाज में ये संबंध घर से बाहर ही नहीं अपितु घर के भीतर भी बनते थे। इनका शिकार कभी नौकरानियाँ तो कभी बहुएँ, बेटियाँ हुआ करती थीं। लेखिका अपने बाल्यकाल से ही यौन उत्पीड़न का शिकार होती रही अपने स्तर पर उसका विरोध भी प्रकट करती रही। अपने साथ

हुई इन सारी ज्यादतियों को इस तरह सरे आम बयां करना एक जोखिम भरा कदम है। यह सच एक स्त्री के नितांत निजी हैं। रमणिका गुप्ता अपने बचपन की कुछ ऐसी ही घटनाओं का उल्लेख करती है क्योंकि वह यौन संबंधों से जुड़ी हैं। सामन्ती परिवारों के धनाढ्य या पेशेवर पुरुष ही नहीं अपितु इनके यहाँ काम करने वाले नौकर पुरुष भी यौन संबंध उसी घर में काम करते हुए उसी घर की बच्चियों, बहुओं से स्थापित करते थे। पाखंड का चोला ओढ़े धर्म के ठेकेदार, जो समाज को धार्मिक शिक्षा देने का दावा करते पाखण्ड की आड़ में वे भी न जाने कितनी लड़कियों का मान भंग कर चुके होते थे। स्वयं लेखिका कई बार इसका शिकार हो चुकी थीं। पुरुष के इस रवैये ने उनके भीतर आज इतना साहस एवं आत्म विश्वास भर दिया कि वे सामाजिक स्तर पर इन सारी घटनाओं को लिखने का साहस ही नहीं कर पाई अपितु अपनी बेबाक लेखनी से विरोध भी प्रकट करती रहती हैं। इसी संदर्भ में वह लिखती हैं कि "मेरे प्रतिवाद का यही तरीका रहा है पहले झेल लेना, बाद में झुंझलाना, पछताना और आगे प्रतिरोध करना, आवृत्ति नहीं होने देना। सम्भवतः हर लड़की का यही तरीका है। यह तो सब समझ आ रहा है कि वह सब क्या था, जिसने बचपन में ही मेरे भीतर भय, असुरक्षा और भीरुता के बीज बोने की कोशिश की। ये अप्रिय संस्कार मुझे नौकरों ने, सगे संबंधियों या घर आए मेहमानों ने दिए, जिनकी स्मृति मेरे विद्रोही तेवरों से उभारने में सहायक तो जरुर हुई.......मेरे अवचेतन में बैठ गया। मेरी शुचिता बार–बार टूटी.............इस टूटन का अपराध बोध मुझे हीनता से भरता रहा। बहुत बाद में जाकर मैं इससे उबर पाई।"[173]

सामन्ती समाज में यौन संबंध, बलात्कार, स्त्री शोषण, अन्याय, अत्याचार कोई नई बात नहीं शिकार होती पीड़िता को ही चुपचाप सब कुछ सहते रहने की नसीहतें दी जाती रही हैं। स्त्री जाति के लिए यही वेदवाक्य किसी से कहियो मत की हिदायत अपराधी के तेवर बुलन्द करते रहते हैं। रमणिका गुप्ता समाज की स्त्रियों को बताना चाहती हैं कि जब तक हम स्वयं इनका विरोध नहीं करेंगे अपराधियों के हौंसले बुलन्द होते रहेंगे। सच को स्वीकारना ही सबसे बड़ा साहस है, हम जब तक सच कहने या सच का साथ देने से दूर भागेंगे मृत्यु के उतने ही निकट पहुँचेंगे और अपराधी दुनिया को हमारा सच बता देने का भय दिखाकर हमें ब्लैकमेल करता रहेगा। जरुरी है सच कहने की हिम्मत और कुव्वत रखना। सच सुनने में जितना कटु होता है उतना ही बड़ा होता है। जितना बड़ा सच होता उतनी लम्बी, प्रभावशाली उसकी गूंज होती है। सत्य की विराटता शक्ति को व्यक्त करते हुए रमणिका गुप्ता लिखती हैं कि "मैंने सत्य की इसी रहस्यमयी मारक और विध्वसंक शक्ति का प्रयोग किया अपने खिलाफ खड़ी सामाजिक परम्पराओं, रूढ़ियों और तथाकथित संस्कारों की बाढ़ से उबरने के लिए। बहुत हमले हुए, बहुत आरोप लगे,

लांछन उछाले गये। मैंने उन्हें स्वीकार नहीं किया और वापिस उसी समाज को लौटा दिया। बूमरैंक कर गये सबके सब उन्हीं पर। मैं अगली मुहिम के लिए फिर से उठ खड़ी होती रही।"[174]

भारतीय संस्कृति में स्त्री के चरित्र की पवित्रता के साथ–साथ शारीरिक पवित्रता पर भी विशेष बल दिया गया है। लड़की जैसे–जैसे बड़ी होती है उसके साथ उसका व्यक्तित्व ही नहीं अपितु उसकी पीढ़ी भी बड़ी होती है। समाज के सभी रीति–रिवाज, परम्पराएँ, संस्कार के बीज उसमें भर दिए जाते हैं। इन्हीं संस्कारों में शामिल है स्त्री के लिए शुचिता का महत्त्व। इसी संदर्भ में रमणिका गुप्ता लिखती हैं कि "शुचिता का बोध तो मेरे मन में बचपन से ही भर दिया गया था, जबकि मेरी यह शुचिता कभी सुरक्षित ही नहीं रही।"[175] स्त्री जाति के इसी दर्द को वाणी देते हुए रमणिका गुप्ता स्त्री जीवन की विडम्बना निरपराध होते हुए भी आजीवन अपराधबोध के संताप में जीती–मरती रहती है। बेवफा, विश्वासघातिनी, छिनाल जैसे अपमानित शब्दों से पहचानी व पुकारी जाती है। स्त्री स्वयं ही अपने पर लगे लांछनों को तोड़कर मुक्त हो सकती है। अंत और आरम्भ एक ही सिक्के के दो पहलू है। दोनों शब्दों के आरम्भ में 'अ' ही मूल शब्द है। पुरुष के स्त्री के प्रति अपराधों का अंत ही स्त्री समाज के उन्नयन की कहानी है। रमणिका गुप्ता लिखती हैं कि "मुझे शुचिता की व्यर्थता का भान तो बहुत पहले हो चुका था लेकिन इस ग्रन्थि से मैं बहुत बाद में उबरी। शुचिता भंग होने का दंश, अपराध बनकर जीवन भर कसकता है और इसी के कारण औरत जन्म–जन्मांतर तक अपराधिनी, बेवफा, विश्वासघातिनी और छिनाल कहलाती है। अगर औरत इसकी निरर्थकता पहले ही समझ जाए, तो शायद हीन–ग्रन्थि से ग्रसित होने से बच सकती है। शुचिता का टूटना उसे अपनी ही नज़र में गिराता है, जबकि पुरुष.....शेखी बघारता है। इसी दोहरे मापदंड को तोड़कर स्त्री मुक्त हो सकती है। शुचिता के इस पाखण्ड को तोड़ने की पहल स्वयं स्त्री को ही करनी होगी।"[176]

पटियाला से पूरा परिवार कोयटा में रहने चला जाता है। कोयटा में कड़ाके की सर्दी के बीच सिगड़ी के पास बैठकर दादी के मुख से अपने बेदी परिवार के अतीत के किस्से–कहानियाँ, खुराफातें, करतब–करिश्में बड़े चाव से सुनती है, तभी बेदी वंश की 'कुड़ीमार' गुरु परिवार कुप्रथा के बारे में पता चलता है। बेदी वंश गुरु परिवार होता है और इस वंश की बेटियाँ गुरु परिवार की बेटियाँ होती हैं इसलिए कोई भी इस वंश की बेटियों को ब्याह कर अपने घर नहीं ले जाना चाहता क्योंकि घर के काम करना, बर्तन मलना, पाँव दबाना, पैर छूना जो की आदरसूचक आचरण है ये सारे काम गुरु बेटियों को करने होते हैं। घर की बहु बनाकर करवाने से पाप लगेगा। इस वंश में पैदा हुई बेटियों के ब्याह की परेशानियों से बेटी का रिश्ता करके जिल्लत उठाने की बजाय, उन्हें मार डालना ही परिवारों के लिए सरल रास्ता था। लेखिका जब यह

सुनती है तो आत्मग्लानि से भर उठती है तभी उन्हें पता चलता है। उनकी तीनों बुआ बेदी वंश में जिन्दा बेटियों की पहली पीढ़ी थी। इस परम्परा को तोड़ने वाला उनका अपना परिवार था। इस आत्मकथा में कई ऐसे प्रसंग आए हैं, जिसमें उनका बेदी परिवार सदियों से, चली आ रही कुप्रथाओं का विरोध ही नहीं करता अपितु अपने तौर–तरीकों से अपने स्तर पर खण्डन भी करता है। 1947 भारत–पाक विभाजन के दौरान कत्ले आम होते हिन्दू, मुस्लिम महिलाओं पर अत्याचार, खून–खराबा आदि दिल दहला देने वाली घटनाएँ घटती रहीं थीं। रमणिका गुप्ता के पिता द्वारा मुसलमानों को अपने घर शरण देने, मुसलमान बहन, बेटियों, बहुओं को सुरक्षा प्रदान करने के साथ–साथ उनको हिफाजत के साथ मुसलमान शरणार्थियों के लिए खोले गए कैम्पों में पहुँचानें का कार्य किया।

इस आत्मकथा में लेखिका अपने पहले प्यार हमीद, जिसकी सांप–सी सुन्दर आँखें उन्हें मंत्र–मुग्ध कर देती थीं, को बचाने के लिए दीवानगी की सभी हदे पार कर जाती हैं। अपने प्राणों का मोह न करते हुए दंगों से बचते बचाते हमीद के मित्र को मित्रता का वास्ता दिलाकर उसकी व उसके परिवार की सलामती के लिए मना लेती हैं एवं सकुशल शरणार्थियों के कैम्प तक पहुँचा देती हैं। अपने अस्तित्व को भूलाकर कुछ ऐसा करती है, जो 'रमना' के मन की, दिमाग की आवाज़ है और यही वह घटना है, जहाँ से वह अपनी स्वच्छंद पहचान बनाने की जंग में एक योद्धा की तरह बेपरवाह होकर उतरती है, परिवार के सभी जुल्म सहती हैं। विरोध करती हैं तर्क रखती हैं। अपनी शर्तों पर जीवन जीते हुए रास्तें खोजती रहती हैं। वह लिखती हैं कि "हाँ, मैं रमना हूँ।......मुझे बदलाव प्रिय है हालांकि मैं अब भी भीतर से कहीं रमना ही हूँ। वहीं रमना–कहीं अकेली खेलती, कहीं अकेली दौड़ती, कहीं अकेले डरती, कहीं अकेले झगड़ती और बिसूरती हुई या भीड़ में जूझती हुई, बहस करती, तर्क रखती एक दुबली–पतली मरियल–सी, सीधी–सादी भोंदू–सी लड़की। इस मुकाम पर मुझे उसे 'रमना' ने ही पहुँचाया है, जो जिद्दी, बुरी या खराब अथवा बुद्धू कहलाने पर भी हँस या मुस्करा देती थी, पर अपनी बात पर अड़ी रहती थी।"[177]

बँटवारे की अंधियारी रात बीत चुकी थी। भारत में एक नया सवेरा उदय हो रहा था। आजादी के बाद अगवा की गयी लड़कियों की खोज हो रही थी। पदाधिकारियों द्वारा अगवा की गयी लड़कियों को खोजकर सौंपने की अपील की जा रही थी तभी रमणिका गुप्ता मंच पर पहुँचकर बड़ी बेवाकी से अफसरों के घर की तलाशी की बात कह देती है। पूरी रियासत के प्रबन्धन पर आरोप लगाती हैं। सच कड़वा होता है, सच बोलने की कीमत अपना घर छोड़कर अम्बाला शहर मामा के यहाँ रहकर चुकाती हैं। उसी दौरान उनकी मुलाकात वेद प्रकाश गुप्ता से होती है। वेद प्रकाश में रमणिका गुप्ता अपना जीवन साथी ढूंढती है। प्रेम करती हैं परिवार में प्रेम

प्रसंग का खुलासा होने पर माँ और मास्टर का कड़ा विरोध झेलती हैं। मास्टर योजनानुसार प्रेम संबंध को तोड़ने की कोशिश करता है। माँ के कहने पर लुधियाना के 'गवर्मेन्ट वीमेन्स कॉलेज' में भेजने का फैसला, फैसला नहीं फ़रमान सुनाया जाता हैं, वहाँ हॉस्टल में रहकर भी रमणिका गुप्ता वेद प्रकाश से पत्राचार जारी रखती हैं। कॉलेज की प्रिंसिपल द्वारा प्रेम पत्र पकड़े जाने पर बड़े साहस के साथ उनके द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देती है–

प्रिंसिपल – "प्रकाश कौन है?"

रमणिका गुप्ता – "वह मेरा फियांसी है, मैं उससे प्रेम करती हूँ, विवाह भी उसी से करुँगी।"

प्रिंसिपल – "तुम्हारे माता–पिता की रजामंदी है।"

रमणिका गुप्ता – "मेरा फैसला है। इसमें उनकी रजामंदी हो या न हो, मैं बालिग हूँ।"[178]

अन्त में बड़े भाई के सहयोग से वेद प्रकाश से अन्तरजातीय कानून विवाह करती हैं। यह विवाह जहाँ उन्हें सुरक्षा प्रदान करता है, वहीं दूसरी ओर आर्यसमाजी मास्टर एवं नौकर के शोषण से मुक्ति भी देता है।

विवाह से पूर्व रमणिका गुप्ता वेदप्रकाश के समक्ष अपना पक्ष बिल्कुल स्पष्ट रखती हैं। शादी से पहले पति से स्पष्ट शब्दों में कहती हैं कि "लेकिन मैं न तो पर्दा करुँगी, न किसी का जुल्म सहूँगी। मैं सबको आदर दूँगी, पर मेरा भी आदर हो। पर्दा और छूत–छात या घरवालों के सामने तुमसे अलग रहना, ये तो मुझसे न होगा।"[179]

वेद प्रकाश से प्रेम विवाह करके रमणिका गुप्ता प्रेम में उल्लासित होती हैं। प्रेम के रंगों में डूब जाती हैं। नृत्य, नाटक, संगीत, अभिनय द्वारा खुद को अभिव्यक्त करने की असीमित चाह घर की चाहरदीवारी से बाहर जाने के लिए प्रेरित करती है। पति द्वारा शक–शंका, रोक–टोक किये जाने पर तर्क करती है। कहती हैं कि "गुलाम या मूरख बहस नहीं करते। न मैं तुम्हारी गुलाम हूँ और न ही मैं मूरख हूँ।"[180] अपने हक के लिए झगड़ती हैं। घर की चाह ही उन्हें बंधन लगने लगती हैं बंधन तो उन्हें स्वीकार ही नहीं, सब बंधनों को तोड़कर मुक्त हो जाना चाहती हैं। अभिनय द्वारा अभिव्यक्त करके आपने आपको सब बंधनों से मुक्त कर लेती है– रमणिका गुप्ता लिखती हैं कि "नदी को न पत्थर बाँध सकते है, न बांध। नदी तब तक नहीं रुकती जब तक उसका पानी का स्रोत खत्म नहीं हो जाता और मैंने अपने भीतर की स्त्री के स्रोत को कभी खत्म नहीं होने दिया, चूंकि मैं उसे नदी मानती हूँ, जिसमें सब अपनी गंदगी धोकर चले जाते हैं, पर वह सतत स्वच्छ अबाध गति से बहती रहती है। फिर भला मेरी स्त्री कैसे उन रूढ़ियों या बंधनों से बंधकर खुद को गदला होने देती, जिन्हें मैंने हमेशा नकारा और तोड़ा।"[181]

बेटे को जन्म देकर रमणिका गुप्ता माँ बनकर जहाँ स्त्री सम्पन्नता को प्राप्त करती हैं, वहीं दूसरी ओर घर की जिम्मेदारी के बोझ तले घुटन महसूस करती हैं उन्हें लगता है कि जिन्दगी रुक–सी गयी है। पति के खूंटे से बंधकर रहना उन्हें स्वीकार्य नहीं। रमणिका गुप्ता जीविकोपार्जन हेतु रोजगार की तलाश करती हैं। स्वावलम्बी बनने की उनकी जिद्द उनके जीवन में कई भटकावों, उलझनों को जन्म देती रहती हैं आर्थिक, शारीरिक, मानसिक शोषण का शिकार होते हुए भी कभी हार स्वीकार नहीं करती हैं।

पति के साथ भारत के विभिन्न शहरों में भ्रमण करते हुए धनबाद पहुँच जाती हैं। मद्रास में रहते हुए एक पुत्री को जन्म देती हैं। बच्चा न होने का ऑपरेशन स्वेच्छा से करवाती हैं ताकि मुक्त होकर नृत्य एवं प्रेम का सुख प्राप्त कर सकें। आपहुदरी रमणिका के प्रेम प्रसंग की कहानी है। उनके राजनीतिक जीवन का चित्रण 'हादसे' आत्मकथा में विस्तार से अभिव्यक्त है। 'आपहुदरी' आत्मकथा में उनके राजनीतिक जीवन की कुछ विशेष घटनाओं को ही लिखा गया है। इनका उल्लेख इस प्रकार है– सन् 1960 में रमणिका गुप्ता स्वतंत्रता का अहसास एवं नयी उड़ान के सपने लिए कोयले की नगरी, मजदूरों और मालिकों की नगरी धनबाद पहुँचती हैं। इसी शहर में उनके जीवन में संघर्षों एवं रचनात्मकता के दौर की शुरुआत होती है। धनबाद में कांग्रेस पार्टी के कार्यकर्ता के रूप में कई सामाजिक और राजनीतिक कार्य करती है। मजदूरों के हक के लिए आन्दोलन चलाती हैं। स्वतंत्र मजदूर नेता के रूप में अपनी पहचान बनाती हुए सन् 1968 में मांडू से चुनाव लड़ती है और अपनी यूनियन बना लेती हैं सन् 1972 में कांग्रेस की तरफ से बिहार विधान परिषद् की सदस्य बना दी जाती हैं। दो गुटों में बंट चुके दलों के बीच में एक स्वतंत्र नेता के रूप में जहाँ पार्टी में पहचान बनाती हैं, वहीं दूसरी ओर 'राष्ट्रीय कोलियरी मजदूर संघ' की उपाध्यक्ष का पद भी प्राप्त कर लेती हैं।

राजनीति में सक्रिय रहते हुए कई आन्दोलन चलाती हैं। समाजसेवा की शुरुआत गैराज में महिलाओं के लिए निःशुल्क सिलाई केन्द्र खोलकर करती हैं। भारत एवं चीन युद्ध के दौरान 'सेल्फ डिफेंस' की ट्रेनिंग लेती हैं। बंदूक चलाने के साथ–साथ जीप चलाना सीखती हैं। राजनीति में प्रवेश करके लेखिका को महसूस होता है कि एक महिला के लिए राजनीति में कदम रखना कोई आसान कार्य नहीं। यहाँ पर भी रमणिका का कदम–कदम पर शोषण होता है। महिलाओं को लेकर राजनैतिक सौदेबाजी नेताओं द्वारा उन्हें तंग करना, ब्लेकमैल करना राजनेताओं के लिए आम बातें हैं, इसके विरुद्ध रमणिका गुप्ता अपनी आवाज उठाती हैं और कांग्रेस से त्यागपत्र दे देती है और संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी की सदस्य बन जाती हैं। राजनीति के दंगल में यह उनकी दूसरी पारी होती है। सन् 1967 में कच्छ यात्रा भारत सरकार के विरोध में

करती हैं। भारत सरकार ने 'कंजरकोट' और 'छाड़वेट' का इलाका पाकिस्तान को देने का निर्णय ले लिया था। पटना से कच्छ तक की यात्रा करते हुए कई बार जेल जाती है। पुलिस एवं प्रशासन की यातनाएँ झेलती रहती हैं। कच्छ जन–परिषद का गठन करती हैं एवं मुकदमा भी जीतती हैं।

इस आत्मकथा के अध्ययन के उपरान्त कहा जा सकता है कि रमणिका गुप्ता एक गृहिणी, कवयित्री, समाजसेविका के तौर पर ही नहीं अपितु महिला राजनेता के रूप में भी अपनी स्वच्छंद पहचान बनाती हैं। देश के महत्त्वपूर्ण आयोजनों में उनकी भागीदारी एवं उपस्थिति सफल राजनीतिक वर्चस्व को प्रमाणित करती हैं। सामाजिक मुद्दा हो या राजनीतिक रमणिका गुप्ता ने अपना पक्ष बिल्कुल स्पष्ट होकर रखा है।

1.3.7 सुषम बेदी (आरोह–अवरोह 2014–15 ई.)

'आरोह–अवरोह' (2014–15 ई.) हिंदी साहित्य की एक अद्वितीय स्त्री आत्मकथात्मक कृति है। वर्तमान समय की स्त्री आत्मकथात्मक लेखिकाओं में सुषम बेदी की रचना आरोह–अवरोह आत्मकथा लेखन के क्षेत्र में एक सशक्त हस्ताक्षर है। अपनी आत्मकथा आरोह–अवरोह में सुषम बेदी ने स्वयं के जीवन, उस जीवन से जुड़े लोगों, तमाम घटनाओं, अमेरिका एवं पाश्चात्य देशों के प्रवास के दौरान विभिन्न संस्कृतियों को बहुत बारिकी से जानने समझने के साथ–साथ भारतीय एवं पाश्चात्य संस्कृतियों, रीति–रिवाजों, वेश–भूषा, रहन–सहन, तीज–त्योहार, भाषागत वैविध्य इत्यादि का वर्णन किया है।

'आरोह–अवरोह' सुषम बेदी की जी हुई जिन्दगानी के दस्तावेजों को जुटाने, सँवारने वाली एक अनोखी कृति है, जिसमें नन्हें से मन में अपने घर की चाह, विभिन्न स्थानों के भ्रमण से प्राप्त हुए अनुभव, यौनावस्था की देहरी पर हुई मधुर एवं नवीन अनुभूतियाँ, परम्परा एवं परिवर्तन, वैवाहिक जीवन की मधुर स्मृतियाँ, नये देश, नयी जमीन, नये क्षितिज, नये आसमान की तलाश, अंतर्जगत की यात्राएँ, प्रकृति के आदिम रिश्तों को इंगित करती एक अनोखी आत्मकथा है।

सुषम बेदी की रचना 'आरोह–अवरोह' 1947 देश विभाजन की त्रासदी के दर्द को बयां करती है। इस बँटवारे का प्रभाव देश की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक व्यवस्था पर पड़ा। इसी घर की तलाश करते हुए लेखिका व उनका परिवार भारत के विभिन्न शहरों में रहते हुए दिल्ली शहर में आते हैं।

मनुष्य भावनात्मक एवं संवेदनशील प्राणी है। किसी भी, जगह से बहुत जल्दी प्रभावित हो जाता है, जिस शहर में रहता है, वहाँ की प्रकृति से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता है। किसी एक स्थान को छोड़कर दूसरी जगह रमने में मन को वह सन्तोष प्राप्त नहीं होता, जो उसे अपने मनोनुकूल स्थान, शहर में रहते हुए प्राप्त होता है, घर की तलाश के संबंध में अपने इसी दर्द को व्यक्त करते हुए सुषम बेदी लिखती हैं कि– "वहीं अपने जड़े खोजती हूँ यानी कि जहाँ होती हूँ, वहाँ मन का घर नहीं होता। जहाँ नहीं होती, वहीं घर होता है....दरअसल घर के सवाल से उलझते हुए मैं इस सवाल को एक सिरे से पकड़ते हुए यह कहना चाहती हूँ कि घर के बहुत से अर्थों में से मेरे लिए, जो सबसे अहम अर्थ है, घर के न होने में घर का होना या घर के होने में उसका न होना।"[182]

अपनी इस आत्मकथात्मक कृति में लेखिका ने बताना चाहा है कि एक लड़की का अपना कोई घर कभी होता ही नहीं है। पिता का घर जिस घर, में बेटी पैदा होती है। पिता के आँगन में खेल कूदकर बड़ी होती हैं। विवाह के पश्चात् उसे पिता का घर, आँगन छोड़कर पति के घर जाना पड़ता है। वह घर भी उसका अपना नहीं होता है क्योंकि स्त्री पैदा कहीं होती हैं और ताउम्र किसी दूसरे के घर में एक पत्नी, माँ, बहू की भूमिका निभाती हुई मर जाती है। ठीक उसी भाँति, जिस तरह से माली धान खेत में रोपता है जब धान अंकुरित होकर पौधा बनता है, तो उसे उस स्थान से हटाकर किसी दूसरे स्थान पर रोप दिया जाता है। यही स्थिति है एक स्त्री की। सुषम बेदी पिता के साथ दिल्ली शहर में रहती हैं। इस शहर से अभी मन भी नहीं भरता और विवाह करके पति के साथ असम, चली जाती है। दिल्ली शहर की यादें चाय बागानों में भी पीछा नहीं छोड़ती। कुछ वर्षों बाद वापस पति के साथ दिल्ली शहर में बसने चली आती है, किन्तु जब दिल्ली शहर पहुँचकर भी मन नहीं लगता, तो भारत ही छोड़ देती है और अपने घर की तलाश करते हुए पाश्चात्य देश अमेरिका के शहर न्यूयार्क में बस कर पूरा करती है। घर की तलाश के संबंध में एक स्थान पर सुषम बेदी ने क्या खूब लिखा हैं वह लिखती हैं कि "हम सिर्फ घर नहीं खोज रहे है। हम अपने जीवन की असंगति और विसंगतियों से जूझ रहे हैं और खोज रहे हैं एक समंजन। तभी हम लगातार विरोधी संस्कृतियों, जीवन शैलियों के बीच थपेड़े खाते चरित्रों के जीवन की उलझने सुलझाते रहते हैं, उन विसंगतियों के बीच संगति खोजने की कोशिश करते है।"[183]

'आरोह—अवरोह' आत्मकथा में सुषम बेदी अपने बाल्यकाल से लेकर किशोरावस्था की घटनाओं का उल्लेख करती हैं। सात भाई—बहनों के मध्यवर्गीय परिवार में सबसे छोटी एवं पिता की लाड़ली थी। आर्य समाज के संस्कारों के साथ पालन—पोषण होता है। दिल्ली विश्वविद्यालय से बी.ए., एम.ए., एम. फिल एवं पंजाब विश्वविद्यालय से पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त करती हैं। विवाह से पूर्व दिल्ली एवं पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ में अध्यापन कार्य करती हैं। विवाह पश्चात् पति के साथ असम चली जाती हैं।

इस आत्मकथा में सुषम बेदी ने एक स्थान पर अपनी कमजोर ग्रन्थी का भी जिक्र किया है। सुंदर दिखना हर लड़की की चाह होती है, गोरा रंग सभी को अपनी ओर आकर्षित करता है। लड़की के सुन्दर होने पर माता—पिता को उसके विवाह की चिन्ता से भी मुक्ति मिल जाती है। गोरा रंग हमारे समाज की सबसे बड़ी कमजोरी रहा हैं। इसी संदर्भ में सुषम बेदी लिखती हैं कि "बचपन में मुझमें यह भी एक ग्रन्थि थी कि मैं सुन्दर नहीं हूँ, मेरा रंग भी सांवला है। मेरी बहन खूब गोरी थी और सब उसे सुन्दर कहते थे पर पिताजी ने एक दिन मुझे समझाया कि मेरे नैन—नक्श बहुत अच्छे हैं, रंग भी सांवला नहीं, गेहूंआ है। सो मैं देखने में अच्छी हूँ।"[184]

अपनी आत्मकथात्मक कृति में सुषम बेदी ने बताना चाहा है कि उनके जीवन में पिता की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रही है। कॉलेज में दाखिले की अर्जी हो या रेडियों, दूरदर्शन में जाने की अनुमति पिता प्रोत्साहित करते रहते। पाँचवें, छठे दशक के संकुचित मानसिकता वाले माहौल में रेडियों जाने, सिनेमा देखने की अनुमति देना ही पिता के खुले मानसिकता का होना स्पष्ट करता है।

यह आत्मकथा अपने समय की सामाजिक विसंगतियों, कुप्रथाओं, संकुचित सोच, लिंग—भेद एवं वर्तमान समाज की कन्या भ्रूण हत्या जैसी गम्भीर समस्याओं पर तीखा आक्षेप करती है। भारतीय संस्कृति में पुत्र के जन्म को उत्सव की तरह मनाया जाता है। पुत्र को कुल का दीपक पित्रों का उद्धारक माना जाता हैं, वहीं पुत्री के पैदा होने पर उस दिन को शोक दिवस के रूप में मानकर उस पैदा हुए नवजात बालिका शिशु एवं उसको जन्म देने वाली विधाता तुल्य माँ को भी कोसा जाता है। लड़कियों के जन्म दिवस न मनाने से जुड़ी समाज की सोच को व्यक्त करते हुए वह लिखती हैं कि "तभी पता चली थी यह बात और मन में बहुत बुरा लगता था कि क्या दुनिया में आना स्वागतमय नहीं था। हमारे यहाँ लड़कों के जन्मदिन पर हवन होता, हलवा—पूरी बनते। जब मैं भी कहती कि मेरा जन्मदिन क्यों नहीं मनाया जाता, तो बहन कहती कि लड़कियों का जन्मदिन इसलिए नहीं मनाया जाता कि मनाने से लड़कियाँ ही लड़कियाँ पैदा होती है तब मुझे शायद यह लगा था कि मनाने से सारी दुनिया में लड़कियों की तादाद बढ़ जाएगी।"[185]

इस आत्मकथा में सुषम बेदी अपनी स्कूली शिक्षा से लेकर कॉलेज शिक्षा तक के अनुभव बयां करती हैं। इस अवस्था में शारीरिक, मानसिक परिवर्तन ही नहीं, अपितु भावनात्मक परिवर्तन भी तीव्र होते हैं। इस उम्र में नए जोश, उत्साह, उमंग के साथ–साथ कुछ विशिष्ट बनने की भावना, अपने सहपाठियों से आगे निकलने की एक स्वच्छन्द प्रतिस्पर्धा शिक्षा से इतर विविध विषयों, गतिविधियों में रूचि, महत्त्वाकांक्षा इस अवस्था की पहचान होती है। बहुमुखी प्रतिभा की धनी सुषम बेदी की हिंदी विषय के प्रति रूचि लखनऊ शहर से आरम्भ होती है। सुषम बेदी के जीवन को नया मोड़ देने, रेडियों एवं नाटकों के जरिए पहचान बनाने में लखनऊ शहर का विशेष योगदान रहा है।

यह यात्रा लखनऊ शहर से आरम्भ होते हुए दिल्ली दूरदर्शन, दिल्ली तक जा पहुँचती है। युवा कार्यक्रम 'कल हमारा है' का संचालन करती हैं, पुरुष समाज का स्त्री–शिक्षा विरोधी रवैया देखकर अपनी वेदना व्यक्त करते हुए लिखती हैं कि "हमारी पुरुषवादी संस्कृति में घर के बाहर निकलने वाली लड़कियों की सुरक्षा का कोई विधान नहीं था। बाहर निकलो और दरिन्दों से खुद निपटो। आज तो फिर भी औरतें अपनी सुरक्षा के अधिकार मांगने लगी हैं, मेरे जमाने में तो बाहर निकली हुई लड़की को जैसे सारा पुरुष समाज मिलकर सज़ा ही सुनाना चाहता था कि इसने हिम्मत की है निकलने की इसलिए सबक सिखाया जाए।"[186]

इस आत्मकथा में सुषम बेदी के महत्त्वाकांक्षी होने का पता चलता है। महत्त्वाकांक्षा ही व्यक्ति को जीवन में कुछ विशिष्ट बनने एवं विशिष्ट कार्य करने के लिए प्रेरित करती हैं। महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति उत्साह से भरकर हर असम्भव कार्य को सम्भव बना डालता है। लेखिका के जीवन का जब हम गहराई से अध्ययन करते हैं, तो उनके जीवन की सफलता के परिणाम उनके रचना संसार में देखने को मिलते हैं। उनका लेखन ही उनके जीवन की उपलब्धियाँ हैं।

इस आत्मकथा में सुषम बेदी पुरुष के स्त्री विरोधी रवैये एवं समाज में उसकी स्वच्छंद पहचान पर सवाल खड़ा करती हैं। प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व के दो गुण होते हैं, बाह्य व्यक्तित्व एवं आन्तरिक व्यक्तित्व, जबकि बाह्य व्यक्तित्व के अन्तर्गत शारीरिक संरचना, आकार, प्रकार, रूप–रंग को शामिल किया गया है। आन्तरिक व्यक्तित्व के अन्तर्गत चरित्र एवं कर्मों का महत्त्व होता है। व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में समाज की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है क्योंकि परिवार के बाद समाज आता है, व्यक्ति समाज में रहता है। समाज में आकर ही रिश्तों, व्यक्तियों एवं कर्मों में फर्क करना सीखता है। सीखने की प्रक्रिया में व्यक्ति ही केन्द्र में रहता है। समाज ही हमें अच्छे और बुरे में फर्क करना सिखाता है क्योंकि बाहर से सुन्दर दिखने वाली वस्तु अन्दर से उतनी सुन्दर नहीं होती। व्यक्तियों को उनकी उपलब्धियों के आधार पर रखकर तौलनें की अपेक्षा कर्मों

के आधार पर तौलना ही एक जागरुक समाज की पहचान है। इसी संदर्भ में लेखिका लिखती हैं कि "बहुत कम उम्र में ही समाज हमें व्यक्ति, उसके कर्मों के बीच में फर्क करना सिखला देता है। अगर न सिखाए और हम व्यक्ति को उसकी सफलता के तौल में ही सच्चाई पर रखे तो फिर, तो दलदल में ही ठिकाना मिलता है।"[187]

इस आत्मकथा में सुषम बेदी ने एक स्थान पर बताना चाहा है कि वह अपने लेख और अपनी सुन्दरता को लेकर संशय से घिरी है, सुन्दर लेखिका में से कौन–सी विशेषता अधिक है। सुषम बेदी जहाँ भी जाती है, वहाँ के संपादक एवं लेखक सबसे पहले उनको सौन्दर्य की कसौटी पर परखते हैं बाद में लेखिका के तौर पर। इस संदर्भ में वह लिखती हैं कि "हर संपादक या लेखक ने मेरी सूरत पर ध्यान तो दिया ही, चाहे उनकी तौर–तरीके शालीन रहे हों या चाहे मैं खुद इस बात को नजर अन्दाज करती रही हूँ। बहुतों ने अब कहा जबकि मुझे सुनना अच्छा लगने लगा है क्योंकि कहने वाले ही खत्म हो रहे है।"[188]

बहुमुखी प्रतिभा की धनी सुषम बेदी ने हिंदी गद्य की विधाएँ उपन्याय, कहानी, नाटक इत्यादि पर लेखन कार्य किया है। उनके द्वारा लिखे उपन्यास 'हवन', 'मैंने नाता तोड़ा', 'कतरा दर कतरा' में पुरुष की अत्यन्त संकुचित मानसिकता को परत दर परत उधेड़ा है। स्त्री जब पुरुष प्रधान समाज द्वारा बनाए गए सीमित दायरों, बेड़ियों के बंधनों को तोड़कर बाहर निकलती है, तो सारा पुरुष समाज उसके स्वाभिमान, निडरता, साहस को देखकर उसे सजा सुनाता है क्योंकि पुरुष स्त्री के आत्मविश्वास, स्त्री–स्वावलम्बन, स्त्री–स्वाभिमान, स्त्री–स्वतंत्रता से भयभीत हो जाता है। भारत हो या अमेरिका स्त्रियों के प्रति पुरुष का दृष्टिकोण आज भी संकुचित ही है। इसी संदर्भ में वह लिखती हैं कि "औरत हमेशा खुद को बचाए रखना चाहती है। पुरुष अपने शरीर की मांग को अनसुना किया नहीं देखना चाहता। दोनों का अहम भी आड़े आ जाता है। यहीं शुरु होता है तनाव। अमेरिका में भी तो कितना शोर बलात्कारों का होता है। यह औरत का पुरुष के रवैये के प्रति विरोध ही है न।"[189] समय परिवर्तनशील है समय के साथ ही परम्पराएँ भी बदलती रहती हैं, किन्तु स्त्री के संदर्भ में न तो परम्पराएँ बदली हैं और न ही संस्कार। परम्परा और संस्कार का बोझा हर वर्ग की, हर युग की स्त्री को ढोना पड़ा है।

आज हम स्त्री–मुक्ति, स्त्री–स्वतंत्रता, स्त्री–शिक्षा की बातें करते हैं, किन्तु उसके विवाह की बात आने पर सारे फैसलें घर के पुरुष ही लेते है। हमारी संस्कृति में लड़के ज्यादा महत्त्वपूर्ण होते हैं। इसलिए उनकी शिक्षा, उनकी जरुरतों को अधिक महत्त्व दिया जाता है। लड़कियों के संदर्भ में उन्हें पराया धन बताकर उनकी सारी इच्छाओं को दबा दिया जाता है। इसी संदर्भ में लेखिका लिखती हैं कि "बहुत सी बातें हमारे संस्कारों में शामिल थी–लड़के ज्यादा महत्त्वपूर्ण होते

हैं, लड़कियाँ बोझ है, पराया धन है जितनी जल्दी पराया धन चुका कर उऋण हो लें, उतना ही अच्छा। इसी तरह लड़कियों को पढ़ाना चाहिए, लेकिन बहुत खतरा था आर्थिक बोझ लेकर नहीं।"[190]

इस आत्मकथा में सुषम बेदी ने बताना चाहा है कि भारत अपनी सभ्यता एवं संस्कृति के लिए विश्व प्रसिद्ध रहा है। सदियों से भारतीय संस्कृति मूल्यों की पोषक रही है। वह भारतीय जो धन कमाने के लिए हिन्दुस्तान को छोड़कर पाश्चात्य देश चले गए। धन कमाने की होड़ में वह आगे निकल गए, किन्तु अपनी सन्तान हाथ से निकल जाने का भय दिन–रात उनकी परेशानी का कारण बना रहा।

भारतीय संस्कृति, परिवेश को छोड़कर पाश्चात्य संस्कृति, परिवेश में रमने में सुषम बेदी को कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ा है। पाश्चात्य देशों के रहन–सहन, जीवन शैली के तौर तरीके अलग हैं। ब्रसल्स में सुषम बेदी की सबसे बड़ी परीक्षा थी घर संभालना, बच्चों की सही देखभाल करना। भाषा–विचार अभिव्यक्ति का सबसे बड़ा माध्यम है, भाषा की समस्या पाश्चात्य देशों में पहुँचकर होना सहज है। भारतीय संस्कृति में बच्चों के लालन–पालन में परिवार की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती हैं। बच्चे बड़ों से लाड़–दुलार पाकर बड़े होते हैं। परिवार में रहते हुए अच्छे संस्कार दादा–दादी, नाना–नानी इत्यादि देते रहते हैं। माता–पिता को अपने बच्चों की देखरेख में भी सन्तोष मिलता है। पाश्चात्य संस्कृति में बच्चे जैसे–जैसे बड़े होने लगते माता–पिता से अलग रहने लगते हैं। बच्चों में शारीरिक एवं मानसिक विकास में खेलों का भी अपना ही महत्त्व है। भारत में बच्चे सभी प्रकार के खेल खेलने को स्वतंत्र है। यहाँ बच्चे खुले मैदान में अपनी उम्र के बच्चों के साथ समूह में खेलते हैं, जबकि पाश्चात्य देशों में बच्चों को इस तरह का स्वतंत्र वातावरण प्राप्त नहीं हो पाता, जिससे इन बच्चों का संवेगात्मक विकास नहीं हो पाता। पुरुष प्रधान समाज द्वारा बनाए गए नियमों, मानदण्डों एवं शर्तों पर ही एक स्त्री को जीना मरना पड़ता है। उसे कैसे रहना है, कैसे कपड़े पहनने है यह सब पुरुष समाज द्वारा ही निर्धारित किया जाता है, जो स्त्री इन शर्तों को नहीं मानती, उसे सारे पुरुष समाज का विरोध झेलना पड़ता है। सुषम बेदी भी जब भारत में रहती थी, तब उन्हें भी कई इच्छाओं का दमन करना पड़ा। आज ब्रसल्स पहुँचकर सुषम बेदी अपने वह सारे शौक, दमित इच्छाओं को पूरा करती हैं। बाल भी कटवाती हैं। स्लीवलैस वस्त्र भी पहनती हैं। स्विम सूट पहनकर समुद्र का पूरा अनुभव और सुख प्राप्त करती हैं। पाश्चात्य देशों के विभिन्न शहरों में घूमते हुए जीवन के सभी सपने पूरे करती हैं। जीवन के महत्त्व उस जीवन से जुड़ी हुए सभी महत्त्वाकांक्षाएँ पूरी कर सन्तोष एवं आनन्द प्राप्त करती हैं। वह आगे लिखती हैं कि "कि मानव सामर्थ्य और महत्त्वाकांक्षाओं की जिन ऊँचाइयों,

विभूतियों और सौन्दर्य को मैं जान पाई, उसने मेरे अन्तर्जगत को बहुत सम्पन्न, उन्नत और विशाल बनाया। उसी ने मुझे अपने अदनेपन की भी पहचान कराई।"[191]

बहुमुखी प्रतिभा की धनी सुषम बेदी ने ब्रसल्स में हिंदी को एक भाषा के रूप में पढ़ाने का कार्य किया। इसी शहर के नवभारत टाइम्स में एक संवादाता के रूप में कार्य कर अपनी पहचान बनाती है। ब्रसल्स निवास के दौरान ही उनकी पहली कहानी 'जमी बर्फ का कवच' श्री पतराय द्वारा संपादित कहानी पत्रिका में प्रकाशित होती है। यहाँ आकर सुषम बेदी के लेखन पर लगा विराम भी हट जाता है और एक बार पुनः लेखन कार्य आरम्भ होता है।

अमेरिका का प्राकृतिक सौन्दर्य भारत की तुलना में काफी सम्पन्न है। पतझड़ के रंग हो या बर्फ की चादर ओड़े पहाड़, सूरज की गरम–नरम धूप का सेक, प्रकृति अपने हर नए रूप में प्राकृतिक सौन्दर्य की आभा झलकाती रहती है।

इस आत्मकथा में लेखिका ने बताना चाहा है कि एक देश को छोड़कर किसी दूसरे देश में बसने में कई कठिनाईयाँ आती हैं क्योंकि हर देश की अपनी संस्कृति, भूगोल, रहन–सहन होता है। हर आवासी को अपनी जिन्दगी उसी देश के परिवेश के अनुकूल सीखते हुए जीना होता है। सुषम बेदी के पति, जो भारतीय चाय बागान बोर्ड में ऑफिसर थे, का तबादला भारत सरकार के नुमाइन्दे के तौर पर अमेरिका में हो गया था। आर्थिक धरातल पर उन्हें अन्य भारतीयों की अपेक्षा संघर्ष नहीं करना पड़ा। पाश्चात्य देशों में अपनी एक स्वच्छन्द पहचान बनाने के लिए सुषम बेदी प्रयास करती रही हैं। न्यूयार्क, कोलंबिया यूनिवर्सिटी में अपने लिए रोजगार ढूँढती हैं, किन्तु पढ़ाकर कमाने की सम्भावना न होने पर अखबारों में इश्तहार देखकर एक सेल्सगर्ल की नौकरी ढूँढ लेती हैं। ट्रेनिंग लेती हैं, क्योंकि जहाँ काम करती है, वो इस शहर का सबसे बड़ा, महंगा आठ मंजिला स्टोर है। इस स्टोर में अलग–अलग वस्तुओं के लिए डिपार्टमेन्ट हैं। इसी स्टोर के एक जूतों के डिपार्टमेंट में एक बूढ़ी महिला ग्राहक द्वारा जूते पहनाए जाने को कहने पर लेखिका के आत्मसम्मान को ठेस पहुँचती हैं। वह वहाँ से नौकरी छोड़ देती हैं। पाश्चात्य देशों में अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने के लिए जद्दोजहद करती हैं। न्यूयार्क प्रशासन के सैनीटेशन डिपार्टमेंट में रिसर्च एनालिस्ट की नौकरी अपने लिए ढूँढ़ ही लेती हैं। कोलंबिया यूनिवर्सिटी में होने वाले सेमीनारों में भाग लेती हैं और कुछ ही महिनों में कोलंबिया विश्वविद्यालय में हिंदी पढ़ाने का बुलावा आता हैं। कम वेतन में भी सुषम बेदी वहाँ काम करना स्वीकार कर लेती हैं बहुत मेहनत के बाद उन्हें वहाँ कुछ अपने मनोनुकूल काम मिलता है और 24 वर्षों तक कोलंबिया विश्वविद्यालय में अपनी सेवा देती हैं। हिंदी साहित्य को विषय के रूप में पढ़ाने के कार्य से अपनी पहचान बनाने में सफल हो जाती हैं।

भारत में अध्ययन एवं अध्यापन काल के दौरान कार्यों की व्यस्तता के चलते जीवन में बहुत कम लिख पाई। ब्रसल्स पहुँचकर फिर से लिखने का कार्य किया। कोलंबिया विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य के साथ–साथ साहित्य रचना में संलग्न रहते हुए कई कहानियाँ, उपन्यास कहानी–संग्रह लिखे। उनके द्वारा लिखे उपन्यास 'हवन' ने एक बार पुनः रचना संसार की ओर लौट कर लाने का सफल कार्य किया। आज 'हवन' पर कई भाषाओं में अनुवाद हो चुके हैं। उनके द्वारा स्वयं के जीवन पर लिखीं आत्मकथा 'आरोह–अवरोह' उसी चमत्कृत लेखनी का करिश्मा है। इस आत्मकथा में सुषम बेदी सौन्दर्य पर अपने विचार व्यक्त करती है।

सौन्दर्य कोई वस्तु नहीं यह एक एहसास का विषय है क्योंकि सौन्दर्य वस्तु में नहीं, देखने वाले की दृष्टि में बसता है। वह लिखती हैं कि "हाँ कला के लिए आँख चाहिए होती है, संस्कार चाहिए होता है। सबको नहीं दिखती वह। न सबके बस की बात होती है। यहाँ आकर परम्परा, ज्ञान, सुहृदयता और शिक्षा अपनी भूमिका भी अदा करते हैं, तो कला सिर्फ सहज स्फूर्त ही नहीं, प्रशिक्षण और संस्कार से भी लाभ प्राप्त करती है। कला अपना इतिहास भी तो बनाती चलती है। जैसे–जैसे उसका विकास होता है, वह समय पर अपनी छाप छोड़ती चली जाती है। कला के नये रूप भी उस पुराने पहचाने रूपों से खाद पाते हैं।"[192]

इस आत्मकथा में सुषम बेदी धर्म के नाम पर हो रही कालाबाज़ारी, गुंडागर्दी की पोल खोलती हैं, धर्म में राजनीति के बढ़ते वर्चस्व, नैतिक मूल्यों का ह्रास, अन्याय, अत्याचार को किसी भी सभ्य समाज के लिए खतरा मानती है। आज देश के प्रत्येक व्यक्तियों ने कोई–न–कोई धर्म अपनाया हुआ है। धर्म निर्माण का उद्देश्य समाज में सन्तुलन बनाए रखने के लिए था, किन्तु वर्तमान समय में धर्म को ही लोगों ने अपनी कमाई का जरिया बना लिया। धर्म के नाम पर हत्या, बलि को ही लोगों ने स्वयं की मुक्ति का मार्ग बना लिया है।

धर्म के नाम पर महिलाओं के साथ अन्याय, अत्याचार कोई नयी बात नहीं हैं। वे इससे मुक्त भी होना चाहती हैं, किन्तु परम्परा से गहरा जुड़ाव उनके पैरों का बंधन बनकर उन्हें कसे रहता है। इसी संदर्भ में लेखिका लिखती हैं कि "धर्म औरतों को इतना रौंदता आया है, तो हम औरतें उसका तिरस्कार क्यों नहीं कर देती। क्या उससे हमारी तकलीफें कम नहीं हो जाएंगी, वर्ना मार खाते रहो और पतिव्रता के धर्म का पालन करते रहो? क्या जरुरत है इसकी।"[193]

हमारे समाज में कुछ ऐसी भी साहसिक स्त्रियाँ हुई हैं, जो अपने जीवन के संघर्ष, पीड़ा, अन्याय, शोषण के साथ–साथ स्त्री–अस्तित्व, स्त्री–अधिकार, स्त्री–स्वतंत्रता को पाने के लिए पितृसत्तात्मक समाज की रुढ़िगत परम्पराओं को तोड़ने का साहसिक कार्य भी कर रही हैं ताकि आगे आने वाली पीढ़ियाँ इस दर्द से मुक्त रह सके।

'आरोह–अवरोह' में सुषम बेदी धर्म का अर्थ मानवीय गुणों जैसे दया, प्रेम, करुणा, सहृदयता को ही मानती है। लेखिका स्वयं भी किसी एक धर्म, एक दर्शन को सम्पूर्णता का परिचायक नहीं मानती क्योंकि कोई भी धर्म हिंसा का पक्षधर नहीं होता।

लेखन का कार्य एक बड़ी जिम्मेदारी है प्रत्येक लेखक अपने लेख में अपने समाज की वास्तविकता, घटित तमाम घटनाओं के साथ–साथ अपने समय को भी अपनी कलम द्वारा कागज पर उकेरता है, वस्तु एवं स्थिति को स्पष्ट व्यक्त करने के लिए कभी–कभी कल्पना का भी सहारा लेता है। डायसपोरा लेखक की यह जिम्मेदारी अन्य लेखकों से दुगुनी हो जाती है क्योंकि एक देश जहाँ वह रह रहा है ओर दूसरा देश वह जहाँ से वह आया है मूल देश के उसके संस्कार, संस्कृति उससे कभी दूर नहीं हो पाता, चाहे देश बदल जाए। वर्तमान समय में वह जिस देश की जमीन पर रह रहा है, वहाँ के संस्कार, संस्कृति भी अप्रत्यक्ष रूप से प्रवेश करते रहते है। सुषम बेदी भी भारत को छोड़कर अमेरिका में बसने चली जाती हैं। यहाँ के संस्कार स्वतः ही उनके अंदर प्रवेश कर जाते हैं। उनके भारतीयता में कितनी अमेरिकियत आ चुकी हैं। लेखन के संदर्भ में उनके नजरिये भारतीय है या उनमें भी पश्चिमी नजरिये घुल–मिल गए हैं। इन्हीं सवालों के जवाब ढूँढ़ते हुए सुषम बेदी कहना चाह रही है कि उनके अन्दर दो विपरीत संस्कृतियाँ, संस्कार कब प्रवेश कर गए उन्हें भी नहीं पता चला, जिससे आज तक वह न तो पूर्णरूप से भारतीय बनपाई हैं और न ही पश्चिमी। इसका प्रभाव उनकी वेशभूषा, रहन–सहन, लेखन, मानसिकता को देखकर लगाया जा सकता है। इसी संदर्भ में सुषम बेदी लिखती हैं कि "समय के साथ अंततः मुझे कई तरह से अपने पहनावे में सुधार करने पड़े। यूँ साड़ी अब भी पहनती हूँ, सलवार–कमीज भी लम्बी स्कर्ट एक तरह से भारतीय अमेरिकी पहनाने के बीच की चीज थी, जिसे मैं खासतौर से यूनिवर्सिटी के माहौल के बाहर इस्तेमाल करती हूँ ताकि न तो पूरी भारतीय परम्परागत महिला बनूं जो मैं नहीं हूँ, न तो पूरी अमेरिकी जो कि मैं आज तक बन ही नहीं पाई हूँ।"[194]

सुषम बेदी के लेखन और शिक्षण की भाषा आज तक अमेरिका आवास में रहते हुए भी हिंदी ही हैं। अपने विषय या भाषा से जुड़े रहना ही उनके भारतीय होने का परिचायक नहीं अपितु वे सारे संस्कार, परिवेश है, जो भारत से उन्हें मिले हैं। आजादी के बाद भारत में आधुनिकता का बोलबाला रहा। युवाओं की सोच और चाह को महत्त्व दिया गया। सुषम बेदी आज़ाद भारत में ही बड़ी हो रही थीं, किन्तु आजादी का पूरा अहसास कराने में अमेरिका एवं पाश्चात्य देशों का विशेष योगदान रहा है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण उनकी बेबाक लेखनी से जब तब झलक ही आता है। इक्कीसवीं सदी के भारतीय साहित्य में नारी को कमजोर, बंधनों से कसी हुई प्रदर्शित किया जा रहा है, वहीं सुषम बेदी की रचनाओं में नारी का स्वतंत्र, स्वच्छन्द, साहसिक रूप ही दिखाई देता

है। अमेरिका आवासन के दौरान ही सुषम बेदी ने महसूस किया है कि अधिकांश भारतीय लेखक पाश्चात्य जगत की महिलाओं को स्वार्थी, अवसरवादी समझते हैं, जो की सरासर गलत है। सुषम बेदी अमेरिकी जैसे पाश्चात्य देशों की महिलाओं के संदर्भ में अपने दृष्टिकोण को व्यक्त करते हुए तुलना करती हैं, जहाँ भारतीय महिलाएँ अत्याचार, अन्याय को सहते रहना ही अपनी नियती मानती हैं, वहीं दूसरी ओर पाश्चात्य देशों की महिलाएँ अत्याचार को सहने की अपेक्षा अत्याचारी को सजा दिलवाने में विश्वास ही नहीं रखती अपितु प्रयास भी करती हैं। सुषम बेदी का यथार्थ भारतीय लेखकों से भिन्न हैं, जो सिर्फ भारतीय परम्परा की दृष्टि में रखकर नहीं देखा जा सकता। बहुमुखी प्रतिभा की धनी सुषम बेदी के उपन्यास 'हवन' की गुड्डों के विधवा संस्कार, जिन्हें वह भारत में रहते हुए कभी नहीं छोड़ पाई। उन्हें अमेरिका आकर ही झटकने की हिम्मत कर पाती है।

इस आत्मकथा के अध्ययन के उपरान्त कहा जा सकता है कि सुषम बेदी को विपरीत संस्कृतियों को बेहद नजदीकियों से भोगने के अवसर प्राप्त हुए हैं, वहीं दूसरी ओर पाश्चात्य देशों में खुलकर जीवन–जीने की आजादी का सुख भी। कोलंबिया विश्वविद्यालय में 24 वर्षों तक हिंदी विषय पढ़ाने का अनुभव एक प्रवासी के रूप में उनकी सफलता की कहानी है।

♦♦♦♦

संदर्भ सूची

1. हिंदी साहित्य कोश भाग 01, सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ.–77
2. अभिनवकाव्यालंकार सूत्रम्, सं. डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ.–3/1/17
3. मानक हिंदी कोश, प्रथम खण्ड, सं. रामचन्द्र वर्मा, पृ.–2
4. हिंदी साहित्य कोश भाग 01, सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 98
5. आदर्श हिंदी कोश, प्रथम संस्करण, सं. रामचंद्र पाठक
6. हिंदी शब्द सागर, पांचवा संस्करण
7. हिंदी रत्न कोश, तीसरा संस्करण
8. मानक हिंदी कोश, प्रथम खण्ड, सं. श्री रामचन्द्र वर्मा, पृ.–02
9. मानविकी पारिभाषिक कोश, साहित्यिक खण्ड, सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ.–28
10. (a) The writing of one's own history

    (b) The story of one's life written by himself. The Oxford Dictionary : vol.-1, page 573
11. Autograph as the...nominclature of southey implies is the biography of a person written by himself. Its motivations are various among others self serutenity for self indication, self justification. Encyclopedia of Britaincia-vol.IInd, 50 Page 783
12. "Autobiography denotes the art and practice of writting a continuous narrative of one's own life. An autobiography may be a factual account of the author's life and career or a revelation of his personal intellectual and spiritual beliefs though the great examplars are usally subjective and objective."

    'The Modern Encyclopedia', Page 228, (1968)
13. "Autobiography is the narration of a man's life by himself. It should contain a greater guarantee of truth than any other from of biography."

    'cassel's Encyclopedia of literature': By S.H. Steinspurg, page 62
14. The life of individual narrated by himself. In its broadest meaning the term includes memories, Journals, diaries & letters.

    The Encyclopedia America- vol IInd 59 page 639.
15. "Autobiography is the art and practice of writing a narrative of one's own life"

    'Universal English Dictionary.
16. आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, उनका दिनांक 3/11/76 का लिखा पत्र
17. साहित्य का स्वरूप, डॉ. नित्यानंद तिवारी, एन.सी.इ.आर.टी, दिल्ली, पृ.–98

18. अरुणायन : एक आत्मकथा, पोद्दार रामवतार अरुण, भूमिका से उद्धृत।
19. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, डॉ. त्रिगुणायत, भाग 02, पृ. 508
20. ये और वे, श्री जैनेन्द्र, पृ.–166
21. क्या भूलू क्या याद करुं, डॉ. हरिवंशराय बच्चन, पृ.–1
22. रसीदी टिकट, अमृता प्रीतम, पृ.–149
23. मुंशीनी आत्मकथा, श्री इंद्र वदन दवे
24. आत्मकथानी शरीर घटना, आचार्य प्रेमशंकर ह. भट्ट का लेख
25. व्यक्तित्व और साहित्य, श्री विजयकुमार शुक्ल, सेठ गोविन्ददास, पृ.–255
26. जीवन स्मृति, विश्व कवि रवीन्द्र, रवीन्द्र साहित्य, (भाग 18) पृ.–03
27. मेरी कहानी, जवाहर लाल नेहरू, सं. 7, पृ.9 तथा पृ.16
28. आस्था के चरण, डॉ. नगेन्द्र
29. मेरी आत्म–कहानी, डॉ. श्यामसुन्दरदास, निवेदक
30. हिंदी साहित्य, डॉ. भोलानाथ तिवारी, सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ.–400
31. सिंहावलोकन, श्री यशपाल, भाग 01, भूमिका पृ.–06
32. शास्त्री समीक्षा के सिद्धान्त, शिप्ले, ले. गोविन्द त्रिगुणायत, भाग 02, पृ. 508
33. Goethe-Memories of a Revolutionist-Price Kropitin. introduction, page-vii
34. Autobiography is the professely truthful record of individual written by himself & composed as a single work-wayne sheemakar-English Autobiography page 106
35. आत्मनिरीक्षण, विसकाउंट, ले. गोविन्ददास, भाग–1 निवेदन, पृ.ग
36. .....A probing of memory and description of facts of life-Stephenzwing, Master Builders, Adepts in self partarature, Page-536
37. Geroge Misch-A history of Autobiography in Antiquity
38. हिंदी साहित्य कोश, भाग 01 (सं. धीरेन्द्र वर्मा), पृ. 77
39. रसीदी टिकट, अमृता प्रीतम, पृ. 53
40. शैली समीक्षा, प्रो. जयनाथ नलिन निबन्धकार, पृ. 29
41. आत्मनिरीक्षण (एक आत्मकथा) 'प्रयत्न', 'निवेदन' से उद्धृत–सेठ गोविन्ददास, पहला भाग
42. काव्य प्रकाश, मम्मट
43. हिंदी साहित्य कोश, भाग–01, पृ.–98
44. Self Security for self edification, self justification.
45. Nastalgic desire to linger over enchanting memaries.

46. One’s experience may be helful to others.
47. An earnest attempt to orient self amid a world of confusion.
48. The urge for artistic expression.
49. Commerical desire to capitalise on fame or position.
50. “Many of us read an autobiography simply as a work of art, for the author’s style and for the pleasure We obtain from all great, Literature some of us read these accounts great men have given of their lives in order that we may, so to speak, live vicariously. escape, that is, from ourselves momentarily and highten our own lives by living a number of other lives at the same time.... Biography and autobiography teach us to live better lives by helping us to estabilish contact with men and women who have faced the same perplexing problem that we must face.”- Master works of Autobiography Digest of 10 great classies Edited by Richard D. Mallery, Doubleday & co. inc garden city, N.Y. 1946
51. अपनी उपलब्धियों एवं कार्यों का प्रचार करना ही अपनी प्रेरणा का आधार माना है। आत्मकथाः श्री नरदेव शास्त्री, पृ.–08
52. सरला : एक विधवा की आत्मजीवनी, दृष्टव्य प्रज्ञा पाठक, पृ.–23–25
53. सरला : एक विधवा की आत्मजीवनी, दृष्टव्य प्रज्ञा पाठक, पृ.–5
54. हिन्दी का आत्मकथा–साहित्य, डॉ. विश्वबन्धु व्यथित, पृ.–359–360
55. हिन्दी का आत्मकथा–साहित्य, डॉ. विश्वबन्धु व्यथित, पृ.–126–353
56. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, इसे उपन्यास कहूँ या आपबीती..........?
57. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–13
58. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–9
59. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–16
60. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–21
61. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–23
62. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–31
63. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–13
64. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–113
65. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–62
66. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–9
67. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, उलट पवन कहाँ राखिए, पृ.–30

68. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.—11
69. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.—21
70. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.—32
71. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, तुम्ह पिंजरा, मैं सुअना तोरा, पृ.—139
72. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, तिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.—68
73. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.—101
74. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.—71
75. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.—118
76. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.—64
77. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, दुल्हनियाँ गाओ री मंगलचार, पृ.—241
78. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पानी में अगन जरै, पृ.—277
79. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, कैसे नीर भरे पनिहारी?, पृ.—258
80. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जो घर जारै आपनो.......,पृ.—309
81. हादसे, रमणिका गुप्ता, कोयले की बौछारों से आकाश 'करिया' हो गया, पृ.—129
82. हादसे, रमणिका गुप्ता, केदला की हड़तालों पर सौदेबाजी, पृ.—132
83. हादसे, रमणिका गुप्ता, स्वयं सिद्धा होने का संकल्प, पृ.—27
84. हादसे, रमणिका गुप्ता, विभाजन और दंगे, पृ.—21
85. हादसे, रमणिका गुप्ता, औरत अगर, खुदसर हो, पृ.—17
86. हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ—यात्रा, पृ.—30
87. हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ—यात्रा, पृ.—46
88. हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ—यात्रा, पृ.—31—32
89. हादसे, रमणिका गुप्ता, अपराध—बोध और आत्मदया की ग्रन्थियाँ, पृ.—52
90. हादसे, रमणिका गुप्ता, अपराध—बोध और आत्मदया की ग्रन्थियाँ, पृ.—54
91. हादसे, रमणिका गुप्ता, स्वयं सिद्धा होने का संकल्प, पृ.—27
92. हादसे, रमणिका गुप्ता, यूनियन का गठन, पृ.—79
93. हादसे, रमणिका गुप्ता, एक दिशा कीओर चल पड़े सैंकड़ों पाँव, पृ.—89
94. हादसे, रमणिका गुप्ता, स्त्री के प्रति पत्रकारों, पार्टियों व स्वयं स्त्रियों की मानसिकता, पृ.—263—264
95. हादसे, रमणिका गुप्ता, कुजु—कूच, पृ.—106—107
96. हादसे, रमणिका गुप्ता, केदला की हड़तालों पर सौदेबाजी, पृ.—132

97. हादसे, रमणिका गुप्ता, केदला की हाड़तालों पर सौदेबाजी, पृ.–134
98. हादसे, रमणिका गुप्ता, राष्ट्रीय कोलियरी मजदूर संघ का विवाद, पृ.–184
99. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, सच बोलना क्यों जरुरी, पृ.–22
100. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–8
101. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–18
102. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–23
103. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–23
104. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–25
105. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–27
106. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–10
107. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–67
108. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–99
109. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–130
110. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–8
111. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–57
112. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–38
113. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–38
114. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–156
115. मुड़–मुड़ के देखता हूँ.........., राजेन्द्र यादव, पृ.–128
116. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–221
117. मन्नू मेरे भीतर गर्व और दुःख जगाती है (लेख), महाश्वेता देवी, कथादेश, पूर्वोक्त, पृ.–20
118. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–258
119. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–208
120. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–9
121. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–29
122. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–91
123. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–37–38
124. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–45
125. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–169
126. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–63

127. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–14
128. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–75
129. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–175
130. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–85
131. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–261
132. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–90
133. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–202
134. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–12
135. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–213
136. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–163
137. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–174
138. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–179
139. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–215
140. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–212
141. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–212
142. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–180
143. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–15
144. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–250
145. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–256
146. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–261
147. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, धरती बरसै अम्बर भीजै, पृ.–294
148. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, काहे री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.–15
149. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, काहे री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.–11
150. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, काहे री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.–17
151. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, काहे री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.–15
152. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, जो पै पिय के मन नहिं भायी, पृ.–51–52
153. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, तृषावंत जो होयगा......, पृ.–131
154. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, एक सुहागिन जगत पियारी, पृ.–67
155. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, अखियां जान सुजान भईं, पृ.–167
156. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, काहे री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.–25

157. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, तृषावंत जो होयगा....पृ.–130

158. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पति संग जागी सुन्दरी, पृ.–247

159. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पति संग जागी सुन्दरी, पृ.–246

160. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, तृषावंत जो होयगा....पृ.–132

161. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, तृषावंत जो होयगा......पृ.–132

162. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, तृषावंत जो होयगा.....पृ.–133

163. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, कहूँ रे जो कहिबे की होय, पृ.–199

164. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, कहूँ रे जो कहिबे की होय, पृ.–200

165. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, कहूँ रे जो कहिबे की होय, पृ.–200

166. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, धरती बसै अम्बर भीजै, पृ.–302

167. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, हम न मरहिं मारहि संसारा, पृ.–350

168. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, काजल केरी कोठरी, पृ.–223

169. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, हम न मरहिं मारहि संसारा, पृ.–350

170. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, एक जिद्दी लड़की की आत्मकथा, सिर ढककर चलो, पृ.–33

171. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, दोहरे मापदंड, पृ.–70

172. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, मैं बड़ी होने लगी, पृ.–37

173. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, अतीत के सांप, पृ.–77–78

174. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, सच बोलना क्यों जरुरी.....पृ.–18

175. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, सच बोलना क्यों जरुरी.....पृ.–19

176. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, सच बोलना क्यों जरुरी.....पृ.–19–20

177. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, सच बोलना क्यों जरुरी.....पृ.–13

178. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, कोई बन्दिश न लगाई जाए, पृ.–196

179. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, शादी के बाद वफादार रहें, पृ.–210

180. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, मेरी मम्मी बहुत बहादुर है, पृ.–320

181. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, सच बोलना क्यों जरुरी.....पृ.–14

182. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, घर की खोज, पृ.–19

183. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, घर की खोज, पृ.–22–23

184. आरोह–अवरोह, सुषमवेदी, नन्हीं स्मृतियाँ, पृ.–42

185. आरोह–अवरोह, सुषमवेदी, नन्हीं स्मृतियाँ, पृ.–56

186. आरोह–अवरोह, सुषमवेदी, यौवन की देहरी पर, पृ.–77

187. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, यौवन की देहरी पर, पृ.–86

188. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, यौवन की देहरी पर, पृ.–87

189. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, यौवन की देहरी पर, पृ.–90

190. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, परम्परा और परिवर्तन, पृ.–98

191. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, नये देश, नयी जमीन, नये क्षितिज, नये आसमान, पृ.–149

192. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, प्रकृति के आदिम रिश्ते, पृ.–197

193. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, सलेटी घेरे में, पृ.–217

194. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, डायसपोरा लेखक की दोहरी मानसिकता, दोहरी भूमिका और जिम्मेदारियाँ, पृ.–227

द्वितीय अध्याय

इक्कीसवीं सदी के स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य में चेतना के विविध आयाम

द्वितीय अध्याय

इक्कीसवीं सदी के स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य में चेतना के विविध आयाम

चेतना शब्द संस्कृत एवं हिन्दी साहित्य में भारतीय दर्शन शास्त्र से लिया गया है। अनेक विद्वानों के अनुसार–"चेतना का संबंध प्राणी जगत के सर्वोच्च रूप मानव की आन्तरिक शक्ति–'चित् या चित से' है।"[1] चेतना मानव को बाह्य जगत में घटित तमाम घटनाओं के प्रति सजग करती है, मानव जाति का विकास इसी चेतना का प्रमाण है।

चेतना मानव मस्तिष्क का एक विशेष गुण है, जो वैश्विक स्तर पर हो रही सभी गतिविधियों, क्रिया–कलापों का बोध करवाती है। चेतना को स्पष्ट करते हुए अर्चना जैन लिखती हैं कि "इस गुण धर्म द्वारा हमें आसपास की घटनाओं का बोध प्राप्त होता है और हम विश्व को जान पाते हैं। अतः चेतना के लिए न केवल मस्तिष्क अपितु पदार्थ अथवा वस्तुओं का होना भी आवश्यक है, जो मस्तिष्क पर प्रभाव डालते हैं।"[2]

चेतना के अन्य अर्थों में ही बुद्धि, चैतन्य, ज्ञान, बोध, जागरुकता, स्मृति, मनोवृत्ति, सुधि इत्यादि शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है। चेतना को अंग्रेजी में 'अवेयरनेस' (Awarness) कहते हैं। **बृहत् अंग्रेजी शब्दकोश** में "अवेयरनेस शब्द का अर्थ सचेत, सतर्क, जागरुक, सावधान करने वाला, सतर्कता, चेतना इत्यादि दिया गया है।"[3]

बृहत् हिन्दी शब्दकोश में 'चेतना' का अर्थ– "होश में आना, बुद्धि विवेक से काम लेना, चैतन्य, विचारना, सावधान होना आदि दर्शाया गया है।"[4]

चेतना चैतन्य मन की गतिशील जाग्रत अवस्था भी है। चेतना, अवेयरनेस तथा कान्शसनेस इसके पर्यायवाची शब्द हैं। चेतना का स्तर बहुत गहरा है। इसे हम किसी शब्द या परिभाषा में नहीं बाँध सकते हैं। चेतना ज्ञानात्मक, भावात्मक, चेष्टात्मक, संवेगात्मक एवं मानव व्यवहार से प्रकट होने वाली प्रक्रिया है।

चेतना शब्द का गहरा संबंध 'आत्मा' का समानार्थक भी होता है। "प्राचीन दार्शनिक अधिकांशतः 'चेतना' के बजाए 'आत्मा' की संकल्पना का उपयोग करते थे। आत्मा से उनका

तात्पर्य मनुष्य की मानसिक क्षमताओं की समग्रता से यानी उसकी देखने, सुनने, सोचने, अनुभव करने आदि की क्षमताओं से होता था।"[5] चेतना बाह्य जगत की ओर अधिक सक्रिय रहती है। चेतना जाग्रत मन की जाग्रत अवस्था से होते हुए मानव मन की तीन अवस्थाओं में गतिशील रहती है। चेतन, अवचेतन तथा अचेतन। मानव चेतनशील प्राणी होने के कारण सृजन की ओर उन्मुख रहता है। चेतना मुख्यतया चार प्रकार की होती है राजनीतिक चेतना, सामाजिक चेतना, आर्थिक चेतना, सांस्कृतिक चेतना।

2.1 राजनीतिक चेतना

भारत में स्त्री–मुक्ति का सूत्रपात 19वीं शताब्दी से प्रारम्भ माना गया है। यहाँ से ही समाज सुधार आन्दोलनों की शुरुआत भी होती है। भारतीय समाज में स्त्री शिक्षा वैषम्य के कारण ही स्त्री का राजनीतिक क्षेत्र में आगमन बहुत लम्बे समय के पश्चात् हुआ है। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान समाज की आधी आबादी का प्रतिनिधित्व करने के तौर पर नारी शक्ति को इस आन्दोलन में शामिल करने के लिए समाज सुधारकों एवं महात्मा गाँधी ने पहला कदम उठाया। महिला मताधिकारों की मांग का स्वर भी इस आन्दोलन में उच्च स्वर से गूँजा। **'नीरा देसाई'** की पुस्तक **'भारतीय समाज में नारी'** के अन्तर्गत लिखा गया है– "भारत का जाग्रत वर्ग भी मानता है कि स्त्रियों को भी सम्मानजनक और जिम्मेदार नागरिक का स्थान मिलना चाहिये, अतः हम जोर देकर निवेदन करते हैं कि जब प्रतिनिधित्व संबंधी विधेयक तैयार किया जाए तब लिंग–भेद के कारण हमें मताधिकार तथा भारत की सेवा करने के अधिकार से वंचित न रखा जाए।"[6]

19वीं सदी के मध्य में स्त्री–शिक्षा पर शिक्षाविदों एवं समाज सुधारकों ने अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किए। इसी का परिणाम था प्रथम महिला कॉलेज कलकत्ता बेथुन (1849 ई.)। भारत में स्त्री–मुक्ति, स्त्री–जागरण की दिशा में पाश्चात्य महिलाओं का भी विशेष योगदान रहा है। इसी काल में सुश्री 'बलावत्स्की' द्वारा 'थियोसोफिकलसोसायटी' की स्थापना भारतीय महिलाओं को जाग्रत करने के उद्देश्य से की गई थी।

20वीं सदी तक आते–आते स्त्री जाग्रत हो चुकी थी। वह अपनी अस्मिता, आत्मसम्मान एवं अधिकारों को पाने के लिए खुलकर राष्ट्रीय आन्दोलनों में भाग लेकर समयानुसार अपनी उपस्थिति दर्ज करवाती रही हैं। 20वीं सदी का काल **'स्त्री–जागरण काल'** के नाम से पहचाना गया। स्त्री जागरण के संदर्भ में **राधा कुमार** लिखती हैं कि "20वीं सदी के पूर्वार्द्ध में स्त्री के माँ रूप का प्रतीक उभरा। 20वीं सदी की शुरुआत में मैडम कामा तथा सरोजिनी नायडू ने जहाँ मातृ–शक्ति का बयान देते हुए चेतावनी (याद रखो जो हाथ पालना झुलाते हैं वहीं दुनिया पर राज करते हैं)

दी, वही गाँधी ने मातृ–भाव के उद्धारक गुणों का उल्लेख करते हुए स्त्री को भोग की वस्तु समझने की खतरनाक प्रवृति के प्रति भी चेताया।"[7]

राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान महिलाओं ने अपनी महत्ता को समझा। स्वतंत्र भारत में महिलाओं को मताधिकार जैसे कई संवैधानिक अधिकार भी प्राप्त हुए। यहीं से राजनीति के क्षेत्र में महिलाओं के लिए प्रवेश द्वार खुले। राजनीति के क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी शनै–शनै बढ़ रही थी। ग्रामीण महिलाओं की तुलना में शहरी शिक्षित महिलाओं का रुझान इस ओर अधिक था। महिलाओं का चुनाव में भाग लेने की स्थिति का ब्यौरा व्यक्त करते हुए **श्रीमती लक्ष्मी मेनन** लिखती हैं कि "अज्ञानी स्त्रियों के लिए यह प्रसंग एक महान धार्मिक उत्सव के समान होता है कितने इलाकों में तो स्त्रियाँ चप्पलें उतार कर जैसे मन्दिर में प्रवेश कर रही हैं। इस प्रकार (मतदान केन्द्र में प्रवेश कर) आदरपूर्वक मतपत्र को मतपेटी में डालती थी।"[8]

1927 ई. में 'अखिल भारतीय महिला–सम्मेलन' का आयोजन किया गया, जिसका मुख्य ध्येय भारतीय समाज में स्त्री की पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थिति को सदृढ़ बनाना था। उनके भीतर राजनीतिक चेतना जाग्रत करना था। 20वीं सदी के अन्त तक आते–आते महिलाएँ घर की चाहरदीवारी से बाहर निकलकर सार्वजनिक मंचों पर पहुँच रही हैं। देश की सक्रिय राजनीति में अपनी क्षमताओं से सफल राजनेता के तौर पर अपनी उपस्थिति निरन्तर दर्ज करवा रही हैं। भूतकाल में कई महिलाएँ ऐसी भी हुई, जिन्होंने भारतीय राजनीति में कई नए–नए आयाम भी प्रस्तुत किए हैं, जिनमें स्वर्गीय इंदिरा गाँधी (प्रथम महिला प्रधानमंत्री), श्रीमती प्रतिभा पाटिल (प्रथम महिला राष्ट्रपति), फातिमा बी, विजय लक्ष्मी पंडित इत्यादि का योगदान सराहनीय है। इन साहसिक राजनीतिक महिलाओं ने देश की राजनीति में सक्रिय भागीदारी के रूप में ही नहीं अपितु स्वच्छ एवं स्वस्थ राजनीतिक चेतना का परचम भी लहराया है।

स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य में राजनीतिक संदर्भों में नारी की स्थिति कुछ खास नहीं रही है। वे स्त्रियाँ, जो अपने पारिवारिक जीवन की चौखट को लांघकर परम्पराओं से विद्रोह करते हुए राजनीति में प्रवेश करती हैं उन्हें न केवल अपने समाज से अपितु घर–परिवार से भी नाता तोड़ना पड़ा है। राजनीति में प्रवेश करने वाली स्त्री को समाज हेय दृष्टि से देखता आया है। जहाँ तक स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य में राजनीतिक चेतना का प्रश्न है। यहाँ यह कह देना उचित होगा कि स्त्री आत्मकथा–साहित्य में स्त्री–विमर्श की अनुगूंज ज्यादा है राजनीतिक चेतना की कम। इस दृष्टि से रमणिका गुप्ता की आत्मकथा में राजनीतिक चेतना का स्वर बुलंद है। अन्य स्त्री आत्मकथाकारों के साहित्य में राजनीतिक चेतना के स्वर नहीं के बराबर व्यक्त हुए हैं। दृष्टव्य है यहाँ रमणिका गुप्ता के साहित्य में चित्रित राजनीतिक चेतना के विविध स्वर।

रमणिका गुप्ता की आत्मकथा की पहली किस्त 'हादसे' उनके 'राजनीतिक जीवन की दास्तां है, जिसमें वे सामन्ती समाज के दुमुँहपन पर बार–बार प्रहार करती हैं। देश विभाजन की त्रासदी, राजनीति गुटबाजियों का पर्दाफाश करते हुए मानवीय हिंसा, बर्बरता को अपनी आँखों से देखती है। 14–15 वर्ष की किशोरी गाँधी जी से प्रभावित होकर सत्य बोलने का साहस करती है। आर्यसमाज, कांग्रेस, समाजवादी और कम्युनिस्ट होने की उनकी यह राजनीतिक यात्रा उनके जीवन में भी कई टकराहटें पैदा कर देती है। अन्ततः उनके जीवन में एक ऐसा मोड़ आता है, जहाँ परिवार व समाज सेवा में से किसी एक का चयन करना पड़ता है।

स्वतंत्रता संग्राम से पूर्व हमारे नेताओं में त्याग और जन–सेवाभाव की भावना प्रबल थी, किन्तु स्वाधीनता के पश्चात् भारतीय राजनीति गुंडागर्दी, भ्रष्टाचार, शोषण, अन्याय, के रूप में उभरी है। देश विभाजन से फैली साम्प्रदायिकता ने ऐसे सच से जनता को रु–ब–रु करवाया, जिसकी कल्पना भी जन साधारण ने नहीं की होगी। स्त्री का शोषण, अमानवीय कृत्यों का सिलसिला जब भी बरकरार था और आज तक राजनीति में स्वार्थ और सत्ता हथियाने की ललक राजनीतिक विसंगतियों को लगातार बढ़वा दे रही है। देश की आजादी का जो स्वप्न हमने देखा था। उसका परिणाम इतना भयावह होगा किसी ने सोचा भी न होगा। देश में मानवीय मूल्यों का विघटन, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, लूटपाट, नैतिक एवं चारित्रिक पतन इत्यादि गम्भीर समस्या जस की तस बनी रही।

रमणिका गुप्ता बिहार की राजनीति में स्त्री के रूप में उभरती एक ऐसी क्रान्तिकारी महिला है, जिन्होंने उम्र के इस पड़ाव पर भी राजनीति के क्षेत्र में अपनी पहचान बनाई हुई है। भारत–चीन युद्ध के दौरान अपने देश के सैनिकों के लिए आर्थिक सहायता करने के लिए चैरिटी शो, कविता पाठ, नृत्य जैसे कार्यक्रमों को आयोजित कर चंदा एकत्रित करती हैं। देश प्रेम की भावना से प्रेरित होकर कविता लिखती हैं। उनकी यह कविता युद्ध समाप्ति के बाद भी लोगों के मुख से दोहराई जाती हैं कविता की कुछ पंक्ति इस प्रकार है–

"रंग–बिरंगी तोड़ चूड़ियाँ
हाथों में तलवार गहूँगी
मैं भी तुम्हारे संग चलूँगी
मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी।।"[9]

समाज सेवा करते–करते राजनीति की डगर पर पहुँचती है। बिहार एवं पश्चिमी भारत में बसे नंगे–भूखों को उनका हक दिलवाने के लिए बड़ी–बड़ी राजनीतिक पार्टियों से अकेले ही मुकाबला करती हैं। पंजाब के सम्पन्न परिवार से आई सरकारी अफसर की ये पत्नी सभी

सुख–सुविधाओं को छोड़कर बिहार के विभिन्न क्षेत्र, जो प्राकृतिक सम्पदाओं से युक्त थे, किन्तु वहाँ जमींदार, लठेतों, बाहुबलियों का बोलबाला था। उसी भूमि पर बसे आमजन, जो भूख से मर रहे थे। उनको उनका हक दिलवाने के लिए शासन–प्रशासन से सीधे मुटभेड़ करती है। रमणिका गुप्ता का राजनीति में प्रवेश सन् 1960 से होता है। बचपन से ही कांग्रेस में विश्वास रहा किन्तु धनबाद पहुँचकर कांग्रेस पार्टी से मोह भंग हो जाता है। वह लिखती हैं कि "बचपन में आज़ादी की लड़ाई के दौरान कांग्रेस पार्टी की छवि मेरे मन पर इतनी काबिज थी कि मैं कांग्रेस की सदस्य न होते हुए भी अपने को कांग्रेसी मानती थी, बल्कि यूँ कहूँ कि मेरी नज़र में मुझे देशभक्त और कांग्रेसी में कोई भेद नज़र नहीं आता था। हर देशवासी को कांग्रेसी ही होना चाहिए कुछ ऐसी मान्यता सम्भवतः हावी थी। हांलाकि मेरे भाई कम्यूनिस्ट थे। यह तो बिहार में आकर पहली बार मुझे कांग्रेसी विरोध के प्रचण्ड रूप से रू–ब–रू होना पड़ा। तभी मैंने अपने गिर्द राष्ट्रीयता के पर्यायी कांग्रेसी आवरण को टूटते देखा।[10]

यूँ तो रमणिका गुप्ता कई देशों की यात्राएँ कर चुकी है, किन्तु राजनीतिक जीवन की पहली यात्रा कच्छ यात्रा रही है। वह यह यात्रा 'कंजरकोट' और 'छाड़वेट' को पाकिस्तान को देने के विरोध में करती हैं। पद यात्रा करते, चंदा माँगते हुए विभिन्न तरह के संकटों से गुजरते हुए कच्छ की दलदली ज़मीन पर पहुँचकर वहाँ की सरकार के विरोध में नारे लगाती हैं। पुलिस एवं प्रशासन भी लाठियाँ खाते हुए लहूलुहान होती है। इस दौरान उन पर कई जानलेवा हमले भी होते हैं। संगठन को तोड़ने की सरकार की मंशा विफल करते हुए, वहाँ की जेलों में बंद आन्दोलनकारियों को मुक्त कराने के लिए संसद में जूता फैंकने का साहसिक कार्य करती हैं ताकि सरकार के ध्यान को भंग किया जा सके।

सन् 1968 में रमणिका संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी की तरफ से माडुं चुनाव लड़ती हैं। 700 वोटों से हार जाती हैं। आदिवासियों के घरों में जाकर उनकी भाषा सीखती हैं। पत्तों का साग, मकई की रोटी, घट्टा (दलिया) उन्हीं लोगों के साथ बैठकर खाती हैं। वे सारे जातिगत भेदभाव मिटा देना चाहती हैं। आदिवासियों के हक के लिए लड़ती है, उनके बीच 'माँ', 'रानी माँ' या 'गुप्ता रानी' नाम से पहचानी जाती हैं।

झारखण्ड के मजदूर अब तक मालिकों, ठेकेदारों के चंगुल से स्वयं को मुक्त नहीं कर पाए थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् देश ने तरक्की की, नए–नए उद्योग–धंधे खुले। रोजगार की राह आसान हुई है, लेकिन झारखण्ड सहित पश्चिमी भारत के कुछ इलाके आज भी मजदूरों, आदिवासियों, कामगारों का हक छिन रहे हैं। बिहार एवं झारखण्ड जैसे राजनैतिक अराजकता वाले प्रदेशों में संघर्षरत रमणिका वहाँ की जनता को उनका अधिकार दिलवाने के लिए संघर्ष

करती हैं। टाटा कम्पनी से कई मुद्‌दों पर लड़ाई लड़ती हैं जैसे शिक्षा की लड़ाई, पानी की लड़ाई, जंगल जमीन को मुक्त कराने की लड़ाई इत्यादि। वह लिखती हैं कि "हमने टाटा कम्पनी के खिलाफ 'ठेकेदारी खत्म करो', 'ठेकेदारी मज़दूरों को स्थायी और नियमित करो' तथा 'स्थानीय बेरोजगारों को नौकरी दो' का आन्दोलन छेड़ा...................रोजगार के सवाल पर टाटा कम्पनी के रुख को उन्होंने एक चुनौती के रूप में लिया।"[11]

रमणिका गुप्ता को समझ में आने लगा कि यहाँ भ्रष्टाचार नीचे से ऊपर तक फैला है, जिसकी जड़े काफी गहरी हैं, उन्हें लगने लगा इस भ्रष्टाचार को खत्म करने के लिए सक्रिय राजनीति में उतरना होगा। सन् 1968 में माडुं चुनाव लड़ती हैं। वह लिखती हैं कि "यूनियन का गठन मेरे जीवन की एक अहम् घटना थी। बाद में मैंने पूरी तरह उस क्षेत्र में जड़े जमालीं और एक के बाद कई आन्दोलनों का ताँता लग गया।"[12]

'ठेकेदारी खत्म करो' के संदर्भ में सन् 1970 में कुजू की घटना घटित होती है मील–मालिकों, राजनेताओं की मिलीभगत से रमणिका गुप्ता पर जानलेवा हमला होता है। घायल रमणिका की कालरबोन (कलाई की हड्‌डी) टूट जाती है, किसी तरह अपनी जान बचाकर वहाँ से निकलती हैं। अस्पताल में भर्ती होती हैं तभी संसद का ऐतिहासिक फैसला मजदूरों के हक में होने की गूंज अस्पताल में भर्ती रमणिका गुप्ता को सुनाई देती है। इस संदर्भ में वह लिखती हैं कि "मुझे तो एक बड़ी लड़ाई लड़ने के लिए मजदूरों को तैयार करना अभी बाकी था। मुक्ति की जंग अभी अधूरी थी।"[13]

सन् 1971 में केदला झारखण्ड खदानों के राष्ट्रीयकरण के लिए हड़ताले होती हैं। रमणिका बिहार विधान परिषद् की सदस्या हैं वहाँ के मजदूरों की बहाली के लिए भी रमणिका संघर्ष करती है। वह लिखती हैं कि "मुझसे खाना मत माँगना, कफ़न का जुगाड़ मैं कर दूँगी।"[14]

रमणिका का संघर्ष जारी रहता है। राजनीति में उनकी सफलता की खबरें सुनकर इन्द्रा गाँधी उन्हें हजारी बाग जिला के बीस सूत्रीय कार्यक्रमों की सदस्या बना देती हैं। रमणिका गुप्ता की राजनीतिक महत्ता इस पंक्ति से समझी जा सकती है– "रमणिका का आप खास ख्याल रखिएगा, ये एक सच्ची और जुझारू महिला हैं और वफादार भी।"[15]

कांग्रेस से मोह भंग होने पर कम्यूनिस्ट (मार्क्सवादी) पार्टी से जुड़ती हैं जनसेवा करते हुए जीवन पथ पर आगे बढ़ती ही जाती है। राजनीति में महिलाओं का शोषण स्त्री होने के कारण ही होता है। इसी संदर्भ में रमणिका गुप्ता लिखती हैं कि "स्त्री होने के नाते मुझे दबाने या डराने की चेष्टा की गई। यह अलग बात है कि मैं न तो डरी और ना ही झुकी। मैं तो ऐसा मानती हूँ कि

स्त्री होने के कारण ही मैं माफिया का मुकाबला इतनी मुस्तैदी और सफलता से कर पाई। पुरुष होने पर इतना शायद सम्भव नहीं होता।"[16]

'हादसे' आत्मकथा में रमणिका गुप्ता जीवन के गहरे उतार–चढ़ावों से गुजरते हुए कई पुरुषों का सामना करती है, जिसमें नेता, नेता जी के दोस्त, छुटभैय्या, औहदेदार अफसर इत्यादि की लम्बी फ़ेहरिस्त है। यहाँ यह कहना अतिश्योक्ति न होगा कि रमणिका गुप्ता का राजनैतिक जीवन सम्पूर्ण भारतीय महिलाओं के लिए प्रेरणास्पद है।

जिस समाज में स्त्रियों के लिए हजारों पाबन्दियाँ लगी हो, उसी समाज में एक लड़की का देश की आजादी के संघर्षों में भाग लेना, मीटिंगें करना सड़कों पर नारे लगाना, भाषण देना, हड़तालें करना इत्यादि कोई साधारण बात नहीं है। उसी काल में जन्मी मन्नू भण्डारी एक ऐसी लड़की थीं, जिसने गुलाम भारत में जन्म तो लिया था, किन्तु युवावस्था की सीढ़ी पर कदम रखा स्वतंत्र भारत में ऊषाकाल की प्रथम किरण के साथ। बाल्यकाल से ही अपने घर में राजनीतिक चर्चाओं, बैठकों का हिस्सा बनती क्रान्तिकारियों, देशभक्तों, शहीदों की शहादतों के किस्से सुनते–सुनते ही क्रान्ति के भाव मन्नू भण्डारी के मन में घर कर जाते हैं। वह स्वतंत्रता प्राप्ति के सभी अभियानों में बढ़–चढ़कर हिस्सा लेती है। विरोध झेलती हैं– "अरे उस मन्नू की तो मत मारी गई है भंडारी जी, पर आपको क्या हुआ? ठीक है, आपने लड़कियों को आज़ादी दी, पर देखते आप, जाने कैसे–कैसे उल्टे–सीधे लड़कों के साथ हड़तालें करवाती, हुडदंग मचाती फिर रही है वह। हमारे–आपके घरों की लड़कियों को शोभा देता है यह सब? कोई मान–मर्यादा, इज़्ज़त–आबरु का ख्याल भी रह गया है आपको या नहीं?"[17]

सन् 1942 के स्वतंत्रता संग्राम से उफनता–खोलता देश, जहाँ सारी वर्जनाएँ, बंधन टूट रहे थे, वहीं भारत की भूमि पर नवजागरण की लहर तेज होती जा रही थी। घर एवं चूल्हें चौखट को लांघकर स्त्रियाँ भी देश की आज़ादी में हाथ उठाकर नारे लगा रही थीं। अपने आभूषण बेचकर स्वतंत्रता सेनानियों की मदद कर रही थीं। आजाद हिन्द फौज के मुकद्में के फैसलें के दिन मन्नू भण्डारी भी लड़कों के साथ हड़ताल करवाती अजमेर के चौपड़ (मुख्य बाजार का चौराहा) पर खड़े होकर उच्च स्वर में गूंज रही थीं। उनके भाषण को सुनकर पिता के घनिष्ठ एवं प्रतिष्ठित मित्र डॉ. अम्बा लाल जी कहते हैं– "आओ, आओ मन्नू। मैं तो चौपड़ पर तुम्हारा भाषण सुनते ही सीधा भण्डारी को बधाई देने चला आया। आय एम रिअली प्राउड ऑफ यू.....क्या तुम घर में घुसे रहते हो भंडारी जी.....घर से निकला भी करो। यू हैव मिस्ड समथिंग.....और वे धुआँधार तारीफ़ करने लगे वे बोलते जा रहे थे और पिताजी के चेहरे का संतोष धीरे–धीरे गर्व में बदलता जा रहा था।"[18]

शताब्दी की सबसे बड़ी उपलब्धि 15 अगस्त 1947 भारत आज़ाद हो गया। सन् 1962 भारत चीन युद्ध, जहाँ भारतीय जनता एक जुट होकर संघर्ष कर रही थी, वहीं राजेन्द्र यादव 'बट्रेंड रसेल' की पुस्तक से ऐसे प्रभावित होते हैं कि अपनी कलम से ही चीन युद्ध का समर्थन करने लगते हैं तभी मन्नू भण्डारी उन्हें देश, राष्ट्र एवं देशवासियों के चिन्तन की ओर मोड़ती हुए कहती हैं कि "यह सच है कि मैं किसी पंथ से न तब जुड़ी थी, न बाद में.....मेरा जुड़ाव अगर रहा है तो अपने देश से....चारों ओर फैली–बिखरी जिन्दगी से जिसे मैंने नंगी आँखों से ही देखा है, बिना किसी वाद का चश्मा लगाए और मेरी रचनाएँ इस बात का प्रमाण है।"[19]

लोकतंत्र की स्वतंत्रता का हनन प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी द्वारा आपातकाल की घोषणा किया जाना। सरकार की मनमानी लेखकों, प्रबुद्ध जीवियों को अपने समर्थन में करने के लिए पुरस्कार, फैलोशिप, सम्मान दिए जा रहे थे। मन्नू भण्डारी को भी 'पदम् श्री' सम्मान दिए जाने की सूचना मिलती है, लेकिन बिना किसी भी परिणाम की चिन्ता किए मन्नू भण्डारी उस सम्मान को लौटा देती हैं।

इन्दिरा सरकार के शासन की क्रूरता से दिनमान पत्रिका के संपादक रघुवीर सहाय, जे.पी. सिन्हा एवं धर्मवीर भारती जैसे निर्भीक लेखकों की कलम, जो अभी तब इनके विरोध में चलती थी, 'मुनादी' जैसी सरकार विरोधी रचना रचने वाले भारती की उसी कलम से आज 'सूर्य के अंश' नामक कविता इन्दिरा–संजय की प्रशंसा करते हुए लिखना ही प्रमाणित करता है कि उस समय कैसी राजनीति देश में फैली हुई थी। इसी संदर्भ में मन्नू भण्डारी लिखती हैं कि "मेरी परेशानी का कारण तो यह था कि हमारी कलम से जो भी शब्द निकलते हैं, विशेषकर सृजन के संदर्भ में, उनके पीछे हमारे विचार, हमारे विश्वास, हमारी आस्था, हमारे मूल्य.....कितना कुछ तो निहित रहता है....तब मुनादी जैसी कविता लिखने वाली क़लम एकाएक कैसे यह कविता लिख पाई?"[20] मन्नू भण्डारी अजमेर की सकरी गलियों से होते हुए कलकत्ता पहुँचती हैं। लेखन एवं अध्यापन कार्य में संलग्न रहते हुए देश की राजनीति में भी सहयोग करती रही हैं। समकालीन राजनीतिक चेतना पर लिखा गया उपन्यास 'महाभोज' इसका प्रखर उदाहरण है।

प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, मन्नू भण्डारी, रमणिका गुप्ता, सुषम बेदी इत्यादि स्त्री आत्मकथा लेखिकाएँ परतंत्र भारत में जन्मी हैं। अपने समय से लेकर अब तक की देश की राजनीति एवं राजनीति घटनाओं की साक्षी भी रही हैं। 1942 का स्वतंत्रता संग्राम हो या 1947 का आज़ाद भारत, भारत–चीन युद्ध हो या इन्दिरा गाँधी द्वारा देश में आपातकाल की घोषणा ये सभी लेखिकाएँ स्वयं भी भुक्तभोगी रही हैं। देश की सक्रिय राजनीति में इन लेखिकाओं की भागीदारी की चर्चा की जाए, तो रमणिका गुप्ता का नाम अग्रगणीय है। राजनीति के क्षेत्र में इनके द्वारा

किए गए कार्यों की एक लम्बी फ़ेहरिस्त है। मन्नू भण्डारी का भी राजनीति में हस्तक्षेप रहा है। मन्नू भण्डारी स्वयं लिखती है कि जिस आत्मकथा में उसके समय एवं समाज की सामाजिक, राजनीति, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक चेतना का चित्रण न हो तो वह रचना आत्मकथा कहलाने के योग्य नहीं है। जहाँ तक प्रभा खेतान का सवाल है, तो प्रभा खेतान एक सफल मारवाड़ी व्यावसायिक 'डॉयनामिक' महिला रही है। राजनीति के क्षेत्र में उनकी कोई रूचि नहीं रही है। स्वयं को स्वावलम्बी, आत्मनिर्भर बनाने एवं चमड़े के व्यापार में अपनी पहचान बनाने में ही लगी रही स्वयं प्रभा खेतान लिखती हैं कि "स्वाभाविक है कि आज यह आत्मकथा लिखने के पीछे कोई कारण रहा होगा। कुछ ऐसा–वैसा जरुर घटा होगा मेरे जीवन में। हाँ! मैंने लकीर से हटकर व्यवस्था के प्रति विद्रोह किया, किन्तु वह मुझ अकेले का विद्रोह था। जन–आन्दोलन में मैं कभी नहीं उतरी। कैरियरपरस्ती में लगी हुई स्त्री के किसी जुलूस में शामिल होने का सवाल ही नहीं उठता। हाँ, अपनी ओर से कम्यूनिस्ट पार्टी के समर्थन में जहाँ जितना करना सम्भव था वह मैंने किया, किन्तु मार्क्सवादी पार्टियाँ भी स्त्री से संबंधित मुद्दों को ज्यादा गम्भीरता से नहीं ले रही थी। इसका भी क्षोभ मेरे मन में था। मेरी यह आवाज़ एक भिन्न आवाज है और इस आवाज का खतरा यही था कि यह आवाज अनसुनी रह जाती क्योंकि न मैं पूरी तरह उदारवादी थी और न ही मार्क्सवादी, न परम्परा से चिपकी रही और न ही आधुनकिता को भली–भाँति ओढ़ पाई।"[21]

2.2 सामाजिक चेतना

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज एक गत्यात्मक प्रक्रिया है। समाज और चेतना एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, जो समाज की अनवरत गतिशील प्रक्रिया में प्रवृत रहते हुए बुद्धिविवेक से सम्पन्न प्राणी को पशु जगत से पृथक् करती है। समाज के संदर्भ में **'गजानन माधव, मुक्ति बोध'** लिखते हैं कि "समाज रेत का ढेर नहीं जिसमें प्रत्येक कण एक–दूसरे से घनिष्ठ संबंध रखते हुए भी एक दूसरे से वे विलग और स्वतंत्र रहते हैं। समाज एक वृक्ष की भाँति है, जिसका प्रत्येक भाग, प्रत्येक अंश, प्रत्येक कण और प्रत्येक बिंदु एक दूसरे से और अपने पूर्व अखण्ड से आवयविक संबंध रखता है।"[22]

सामाजिक चेतना, सामाजिक जागरुकता का ही पर्याय है, जिसमें मानव समाज में क्रियाशील रहते हुए अपने आस–पास घटित घटनाओं जैसे सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक इत्यादि के प्रति जाग्रत रहता है, सामाजिक चेतना कहलाती है। यह सामाजिक उपज का ही परिणाम है। नरेन्द्र कुमार सिंधी ने सामाजिक चेतना पर विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि– "समाज में अन्तः क्रिया एक स्वाभाविक घटना है। जब कभी भी दो व्यक्ति आपस में मिलते हैं, वे एक–दूसरे को अभिवादन करते हैं, तो यह अन्तः क्रिया है।"[23]

सामाजिक चेतना एक सामान्य प्रक्रिया है, जिसके लिए कुछ व्यक्तियों का होना आवश्यक है। सामाजिक चेतना के विषय में सामाजिक चिन्तक **कार्ल मार्क्स** ने लिखा है......चेतना आरम्भ से ही एक सामाजिक उपज है। यह तब तक ऐसी बनी रहती है, जब तक मानव का अस्तित्व बना रहता है। निस्संदेह चेतना प्रथमतः तात्कालिक इन्द्रिय ग्राह्य परिवेश से सरोकार रखने वाले व्यक्तियों के बर्हिगत वस्तुओं के साथ सीमित संबंध की चेतना हैं साथ ही यह प्रकृति की चेतना है, जो आरम्भ में मनुष्यों के सामने ही सर्वथा विजातीय, सर्वशक्तिशाली अविजेय शक्ति के रूप में प्रकट होती है.... ।[24]

चेतना एक अस्थाई भाव है, जिसमें समयानुसार परिवर्तन होता रहता है और सामाजिक चेतना उसी के गुणानुरूप परिवर्तित होती रहती है। अज्ञेय ने कहा है कि "नागरिक पर कुछ चीजों को बनाए रखने की भी जिम्मेदारी होती है क्योंकि व्यवस्था में एक तरह के स्वामित्व के बिना सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन भी संभव नहीं रहता, दूसरी ओर चीजों को लगातार परीक्षण और उनको बदलने के आयोजन की भी जिम्मेदारी होती है क्योंकि व्यवस्था में एक तरफ के स्थायित्व के बिना सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन भी संभव नहीं रहता, दूसरी ओर चीजों के लगातार परीक्षण और उनको बदलने के आयोजन की भी जिम्मेदारी नागरिकता का एक अंग है क्योंकि लगातार नियोजित ढंग से बदलाव लाते रहते, बिना व्यवस्था भी व्यवस्था नहीं बनी रह सकती, निरी जकड़बंदी बन जाती है, जिसे तोड़ना ही स्वस्थ जीवन का एकमात्र उपाय रह जाता है।"[25] साहित्यकार समाज का अभिन्न व्यक्ति होने के कारण उसका दायित्व बनता है कि समाज में घटित घटनाओं परिवर्तनों को यथावत् अपने साहित्य द्वारा कागज़ कलम की सहायता से सृजित करता रहे।

प्राचीनकाल से ही भारतीय संस्कृति में स्त्री को दुर्गा, काली, लक्ष्मी, शक्ति स्वरूपा मानकर पूजा गया है। 'यत्र नार्यास्तु पूज्यते रमंते तत्र देवता' जैसी पंक्ति नारी सम्मान में बोली जाती रही है। स्त्री को देवी का दर्जा देकर पुरुष उसे छलता आया है। शारीरिक शोषण से लेकर मानसिक, संवेगात्मक, भावात्मक हर स्तर पर नारी छली गई है। स्त्री मुक्ति की चाहना उसकी व्यक्तिवादी चेतना न होकर सामाजिक चेतना है क्योंकि स्त्री परिवार, समाज और संस्कृति की केन्द्रीय धुरी रही है। 19वीं सदी में समाज सुधारकों ने स्त्री–मुक्ति, स्त्री–आत्मनिर्भरता, स्त्री–शिक्षा को बल दिया।

स्वतंत्र भारत में संवैधानिक मताधिकार महिलाओं को दिया गया। लिंग–भेद, आर्थिक–मतभेद, स्त्री–शिक्षा तब भी एक जटिल समस्या बनकर खड़ी रही कारण पुरुष समाज को

संस्कार स्वरूप में स्त्रियों को पैरों की जूती बनाकर रखने की दी गई शिक्षा है। इस जड़ मानसिकता को बदलना अभी भी एक दुष्कर कार्य है।

समाज में आज भी स्त्री को दोयमदर्जे का ही प्राणी समझा जाता है। नारी की बुद्धि पर पुरुष प्रश्न चिन्ह (?) लगाता आया है। उसे बुद्धिहीन, सौन्दर्य की मूरत, वासना की कामना दृष्टि से ही देखता रहा है। वर्तमान भारत में स्त्री अपनी सामाजिक स्थिति पर चिन्तित है इसलिए शिक्षित महिलाओं ने कागज़ कलम को माध्यम बनाकर अपनी वेदना, जीवन की घुटन को बयां किया है। साहित्य एक प्रकार की साधना है और आत्मकथा—साहित्य की गद्य गौंण विधाओं में से एक है, जिसके अन्तर्गत लेखिकाएँ अपने जीवन की कटु सच्चाईयों को आत्मकथा—साहित्य के माध्यम से व्यक्त करती हैं। साहित्य के माध्यम से स्त्री की सामाजिक चेतना को जाग्रत किया जाने लगा है।

मैत्रेयी पुष्पा, रमणिका गुप्ता, मन्नू भण्डारी, प्रभा खेतान, सुषम बेदी इत्यादि लेखिकाएँ बचपन से ही माता—पिता के स्नेह के लिए तरसती रही हैं। भारतीय समाज में नारी का पालन—पोषण ही ऐसे परिवेश में किया जाता है, जहाँ लड़के—लड़की का अन्तर अबोध बचपन से ही चेतना पर हावी होने लगता है। मध्यवर्गीय समाज में स्थिति और मानसिकता बहुत ही संकीर्ण है। स्वतंत्र भारत में भी नारी को दोहरी भूमिका का अवहन करने में भी काफी लम्बा संघर्ष करना पड़ा है। लड़की के गुणों से पहले उसके रूप—रंग पर चर्चा की जाती रही हैं, वहीं लड़के के रूप—रंग, शक्ल पर कभी कोई चर्चा नहीं की जाती। रमणिका गुप्ता, मन्नू भण्डारी, प्रभा खेतान, सुषम बेदी इत्यादि लेखिकाएँ भी अपने काले रंग, दुबली—पतली, मरियल, असुंदर होने के कारण, अपने ही माता—पिता द्वारा भाई—बहनों से तुलना, ताने—उलाहने, उपेक्षा, प्रताड़ना, तिरस्कार के विष को झेलते हुए बड़ी होती हैं। असुन्दर होने के कारण माता—पिता के लाड़ प्यार को पाने के लिए तड़फड़ाती हैं। 'एक कहानी यह भी' आत्मकथा की लेखिका मन्नू भण्डारी बचपन में काली, दुबली और मरियल होने के कारण पिता के स्नेह से वंचित रहती हैं। मन्नू अपनी सारी उपलब्धियों, प्रतिभा तथा साहसी वृत्ति के बावजूद हीन—भावना से ग्रस्त हैं। मन्नू भण्डारी लिखती हैं कि "मैं काली हूँ, बचपन में दुबली और मरियल भी थी। गोरा रंग पिताजी की कमजोरी थी सो बचपन में मुझसे दो साल बड़ी, खूब गोरी, स्वस्थ और हँसमुख बहिन सुशीला से हर बात में तुलना और फिर उसकी प्रशंसा ने ही क्या मेरे भीतर ऐसे गहरे हीनभाव की ग्रन्थि पैदा नहीं कर दी कि नाम, सम्मान और प्रतिष्ठा पाने के बावजूद आज तक मैं उससे उबर नहीं पाई?"[26]

पिता श्री सुखसम्पतराय भण्डारी एक बेहद कोमल और संवेदनशील व्यक्ति, तो दूसरी ओर बेहद क्रोधी, अहंवादी, यश—प्रतिष्ठा के पिपासु थे। अपनी अधूरी महत्त्वाकांक्षाओं, शीर्ष से हाशिए

पर चले जाने की कुण्ठाओं से ग्रस्त, अपने बच्चों के लिए वात्स्लय के स्थान पर भय का कारण बने रहते हैं।

'अन्या से अनन्या' आत्मकथा एक ऐसी स्त्री की आत्मकथा है, जो आत्मनिर्भर होने के साथ–साथ सफल व्यावसायिक महिला भी हैं। सम्पन्न मारवाड़ी परिवार में पांचवी बेटी के रूप में जन्मी सबसे छोटी बेटी प्रभा अपने काले रंग के कारण माँ के प्रेम को पाने के लिए तरसती रहती है। प्रभा खेतान का अनाथ बचपन माँ के स्नेह भरे आलिंग्न पाने की इच्छा, जच्चिकियों के कारण बच्चे जन–जन कर जर्जर हो चुकी माँ का गुस्सा जब न तब प्रभा खेतान पर फूट पड़ता। माँ का क्रोध देख नन्ही–सी, मासूम–सी, प्रभा सहम जाती है। माँ के स्नेह से वंचित प्रभा दाई माँ को ही अपनी दुनिया मान लेती है परिजन ही नहीं अपितु घर के नौकर चाकर भी प्रभा के रंग पर तरह–तरह की टिप्पणियाँ करते हैं। राधा नौकरानी दाई माँ की अनुपस्थिति में प्रभा को नहलाती है। कहती है– "एक तो प्रभा बाई ऐसे ही काली है फिर यह सरसों के तेल की मालिश। कहाँ स गोरी होंगी?" रविवार के दिन बच्चों के नाखून काटे जाते, बाल धोकर नहलाया जाता प्रभा की बारी आने पर राधा आया फिर कहती हैं– "प्रभा बाई को जितना साबुन लगाओ उतना उनका काला रंग चक–चक करता है।"[27]

भरे पूरे, समृद्ध परिवार में जन्म लेने के बाद भी प्रभा खेतान अकेला महसूस करती हैं। काले रंग के कारण ताऊ–ताई, चाचा–चाची, भाई–बहनें, मित्रों तक की उपेक्षा झेलती हैं। छोटे भाई 'दन्तोरानी' कहते हैं, तो छोटी दीदी 'मिलिट्री का घोड़ा' स्कूल में विधु चिढ़ाती, "तू बिल्कुल मिसरानी लगती है।"[28] खेलने के लिए जाती है, तो कोई साथ खेलने को तैयार नहीं होता। चोट लगने पर चोट के दर्द से ज्यादा भय माँ की डाट का लगा रहता। सीधी–सादी प्रभा दूसरों की गलतियाँ पर माँ द्वारा सजा पाती। अम्मा की झिड़कियाँ सुनते–सुनते कान पक जाते "ठीक से चल क्या घोड़ी–सी फुदकती है।"[29]

कमजोर आत्मविश्वास के चलते गलतियों पर गलतियाँ करती जाती हैं। प्रभा बात–बात पर रोक–टोक, उठने–बैठने, चलने–फिरने यहाँ तक की कपड़े पहनने को तरीकों पर भी माँ द्वारा 'बेशउरी' कहकर पुकारी जाती हैं। स्कूल पढ़ने जाती मेली कुचीली ड्रेस, फटे जूते, जल्दी–जल्दी खाने के कारण स्कूल ड्रेस पर दाल–चावल गिरा लेती हैं। साफ करने के चक्कर में स्कूल बस छूट जाती है। क्रोध से तमतमाता माँ का चेहरा थरथर काँपती प्रभा आज जिन्दगी में पीछे मुड़के देखती हैं, तो माँ के प्रेम को पाने की वह छटपटाहट बैचेनी को बयां करते हुए लिखती हैं कि "मैं उपेक्षिता थी, आत्मसम्मान की कमी ने मेरा जिन्दगी भर पीछा किया। भला नीची हैसियत के लोगों की प्यार भरी तारीफों का, उनकी कमजोर राय का मेरी जिन्दगी में क्या मायने था। माँ ने प्यार

नहीं किया, यह तो समझ रही थी, क्योंकि मैं ठहरी काली। माँ की तरह गोरी नहीं। मैं बहुत शान्त, गीता की तरह स्मार्ट नहीं, मुँह पर फटाफट जवाब नहीं दे पाती, लेकिन मैं पढ़ने में तो अच्छी थी, क्या यह काफी नहीं था?"[30] अपने काले रंग के कारण प्रभा का बचपन हाशिए पर चला जाता है। शायद यही वह वजह रही होगी, जब प्रभा आँखों के चैकप के लिए डॉ. सर्राफ से मिलती हैं। अपने सांवले रंग की प्रशंसा डॉ. सर्राफ के मुख से सुनकर उनसे प्रेम कर बैठती हैं।

रमणिका गुप्ता का बचपन भी अनाथ, उदास, बेहद कुंठित था। असुंदर एवं जिद्दी होने के कारण माँ के लाड़—प्यार से वंचित 'बदशक्ल', 'बुरी लड़की' जैसे जुमले बचपन से सुनती रही हैं। अपनी ही छोटी बहन उर्मिला से माँ द्वारा तुलना किया जाना उपेक्षित एवं तिरस्कृत नजरों ने अबोध बचपन में ही रमणिका के भीतर आक्रोश के भाव पैदा कर दिए थे। सामन्ती समाज के घिनौने रूप से बचपन से ही परिचित हो गई थीं। आक्रोश एवं विद्रोह जैसे भाव जाने—अनजाने रमणिका के भीतर विकसित होते चले गए। माँ के स्नेह से वंचित रमणिका दादी माँ से प्रेम पाकर पूर्ण करती हैं। वह लिखती हैं कि "मैं सुन्दर नहीं हूँ, इसलिए मुझे अनदेखा करते हैं, मेरी पूछ नहीं है इस घर में चूँकि मैं अच्छी नहीं दिखती। न सही मैं सुन्दर! न लगूं मैं, उनको क्या? मुझे नहीं लगना है अच्छा किसी को, मुझे नहीं दिखना है सुन्दर किसी को भी। मैं जैसी हूँ, ऐसे ही मानना होगा मुझे जैसी हूँ वैसे ही! जो मुझे प्यार करेंगे, मैं उन्हीं को प्यार करुंगी।"[31]

'सुषम बेदी' बेदी परिवार में छठे नम्बर की संतान और चौथे नम्बर की बेटी थीं पिता की लाड़ली होते हुए भी स्त्री होने की परम्परागत समस्याओं से उन्हें भी गुजरना पड़ा। नारी सौन्दर्य के भारतीय पैमाने में उन्हें भी अपने साँवले रंग के कारण हीनग्रन्थि का शिकार बचपन में होना पड़ा। उनके शब्दों में— "बचपन में मुझमें यह भी एक ग्रन्थि थी कि मैं सुन्दर नहीं हूँ, मेरा रंग भी सांवला है। मेरी बहन खूब गोरी थी और सब उसे सुन्दर कहते थे पर पिताजी ने एक दिन मुझे समझाया कि मेरे नैन—नक्श बहुत अच्छे हैं, रंग भी सांवला नहीं, गेहूंआ है। सो मैं देखने में अच्छी हूँ।"[32]

परतंत्र भारत में जन्मी कस्तूरी ही नहीं न जाने कितनी लड़कियाँ 'लगान' के भय से अपने ही परिजनों द्वारा ब्याह—गौने के नाम पर बेच दी जाती हैं। इन सबसे भी कारुणिक है कस्तूरी की जीवन गाथा, जिसे 35 वर्षीय पुरुष के साथ बेच दिया। वह पति भी कर्ज़ से बचने के लिए घर छोड़ शहर भाग निकला। अपाहिज ससुर का पेट पालने, पति का कर्ज़ चुकाने के लिए यहाँ भी कस्तूरी दिन—रात परिश्रम करती है। स्वयं भूखी रहकर ससुर का पेट भरती है। जीवन की तमाम असहनीय पीड़ा झेलते हुए सामाजिक रुढ़ियों, परम्पराओं से संघर्ष करती हैं। विवाह के कुछ वर्ष बाद ही पति का देहान्त हो जाता है। कस्तूरी सती नहीं होती। 18 माह की दुधमुँही बच्ची, ससुर

की सेवा करना ही सती धर्म समझती है "हाय कठकरेज लुगाई! औरतों ने कहा और मर्दों ने च् च् च् करके आश्चर्य जताया।"[33] शिक्षित होने का दृढ़ संकल्प लेकर कस्तूरी इगलास की ओर जाने वाली कच्ची–पक्की पगडंडियों पर किताबों से भरा झोला लेकर चल देती है। आंधी, बारिश भी उसकी परीक्षा लेते हैं, किन्तु कस्तूरी जीवन की हर कठिनाईयों को मात देते हुए हौंसले भरे कदम रखते हुए आगे–आगे बढ़ती जा रही है। बीसवीं सदी के भारत में स्त्री–शिक्षा का प्रतिनिधित्व करने वाली कस्तूरी आत्मनिर्भर बनती है। ज्ञान अर्जित कर मिट्‌टी के अनुसार फसलें बोती है। खेत खलिहान सोना उगलने लगते हैं। शिक्षा के उजाले से कस्तूरी के जीवन के सभी कष्ट मिट जाते हैं। शिक्षित कस्तूरी 'महिला मंगल योजना की ग्राम सेविका' का पद भी पा लेती है। आस–पास के गाँव में ही नहीं दूर दराज के गाँवों में भी कस्तूरी की चर्चा होने लगती है। परम्परागत प्रचलित विवाह की परम्परा को तोड़कर एक नई परम्परा को प्रारम्भ करती है। ब्याह के लिए जन्म कुण्डली मिलान के स्थान पर वर पक्ष की मार्कशीट मिलान, अनमेल विवाह, बाल विवाह, सती प्रथा जैसी सामाजिक कुरीतियों, अंधविश्वासों को शिक्षा के जरिए दूर कर सामाजिक चेतना जाग्रत करती है।

'गुड़िया भीतर गुड़िया' आत्मकथा में मैत्रेयी पुष्पा भारतीय समाज की परम्परागत मान्यताओं, सामन्ती विचारधाराओं, कुण्ठाओं में पिसती, मिथ्या आदर्शों से लगातार संघर्ष करती रहती हैं। विवाहित मैत्रेयी पहली संतान के रूप में बेटी को जन्म देकर मातृत्व सुख प्राप्त करती है। माँ बनने का सुनहरा स्वप्न मैत्रेयी पुष्पा के जीवन में कौलाहल मचा देता हैं। बेटी के जन्म पर घर का सूना आँगन न ढोलक न थाल तबे की लोमहर्षक ध्वनि शोक से भी गम्भीर शान्ति मैत्रीय के जीवन की त्रासदी का सबसे मर्मांतक अनुभव कुरीतियों को तोड़ने के लिए एवं बेटियों को समाज में उनका उचित स्थान दिलाने के लिए पति डॉ. शर्मा तीन बेटियों के पिता से उनका साथ माँगते हुए कहती हैं कि "आखिर क्यों है ऐसा? कब तक रहेगा ऐसा ही? कौन तोड़ेगा पीढ़ियों के इस लेन–देन को? हम नहीं तो फिर कौन? अब नहीं तो फिर कब? बेटी हुई कैसा अच्छा मौका हाथ आया कि हम रुढ़ियों के पिंजरे से निकल भागे। लड़का पैदा होता तो अवसर ही नहीं मिलता। बच्ची के जन्म के अपमान से लोगों को जो मिलता है, हम क्यों मिलने देते हैं? स्त्री के लिए तो तमाम लांछन, तमाम सवाल पैदा कर दिए जाते हैं, मगर इस नन्ही–सी जान के लिए तो कोई तोहमत भी नहीं। सिवा इसके कि यह लड़की होकर जन्मी जो इसके हाथ में ही नहीं था। न इसकी माँ के हाथ में था। कैसा मखौल है। यह भी स्त्री होने का दोष स्त्री के सिर।"[34] यहीं से शुरु होता है मैत्रेयी पुष्पा का बेटियों के अस्तित्व की रक्षा और शिक्षित करने का संघर्ष। यह एक माँ की ही तपस्या का परिणाम है कि आज तीनों बेटियाँ पढ़–लिखकर स्वावलम्बी, आत्मनिर्भर बनकर, जहाँ डॉक्टर बनती हैं, वहीं समाज सेवा कर सामाजिक चेतना जाग्रत करती हैं।

पंजाब का बेदी वंश जो सदियों से 'कुडीमार कुप्रथा' जैसी सामाजिक कुरीतियों के लिए जाना जाता रहा है, जहाँ बेटियों की हत्या से इतिहास भरा पड़ा है उसी बेदी वंश में जन्मी रमणिका गुप्ता भाग्यशाली हैं। उनका परिवार समाज में फैली इस कुप्रथा का विरोध करता आया हैं तीनों बुआ का जीवित होना ही सामाजिक चेतना को प्रमाणित करता हैं। 'आरोह–अवरोह' आत्मकथा में सुषम बेदी बेटियों के जन्म एवं जन्मोत्सव मनाने पर समाज की सोच सामाजिक अस्वास्थ्य मानसिकता को दर्शाती हैं। हमारे समाज में बेटियों के जन्मोत्सव से सम्बन्धित अनेक भ्रान्तियाँ समाज में फैली हुई हैं। वह लिखती हैं कि "जब मैं भी कहती कि मेरा जन्मदिन क्यों नहीं मनाया जाता तो बहन कहती कि लड़कियों का जन्मदिन इसलिए नहीं मनाया जाता कि मनाने से लड़कियाँ ही लड़कियाँ पैदा होती है।"[35] प्राचीनकाल से ही हमारी भारतीय संस्कृति में पुत्र को बुढ़ापे का सहारा, कुल का दीपक, पितृों का उद्धारक, मोक्षदाता माना गया है, वहीं बेटी को समानता के अधिकार से वंचित रखा गया है। बेटा और बेटियों की परवरिश में भी काफी भिन्नताएँ दिखाई देती है, बेटियों को जन्म से ही परायाधन, दूसरों पर आश्रित होने का ज्ञान करवाया जाता है। उनकी शिक्षा–दीक्षा, पालन–पोषण बहुत ही साधारण ढंग से किया जाता है।

'गुड़िया भीतर गुड़िया' की मैत्रेयी पुष्पा, 'आपहुदरी' की रमणिका गुप्ता, 'अन्या से अनन्या' की प्रभा खेतान ये ऐसी स्त्रियाँ हैं, जो बाहरी क्षेत्र में व्यक्तित्व सम्पन्न, आत्मनिर्भर और आर्थिकदृष्टि से सक्षम, जीवन में सफल होते हुए भी बचपन से आत्मपीड़न और यौन उत्पीड़न की शिकार होती रही हैं। मैत्रेयी जब डेढ़ वर्ष की थी तभी पिता का देहान्त हो गया था। घर की जिम्मेदारी निभाती कस्तूरी (मैत्रेयी की माँ) अपनी बेटी के जीवन में शिक्षा के उजाले के मार्ग खोजने लगती है। सिकुर्रा गाँव की कच्ची पक्की पगडंड़ियों से गुजरकर अलीगढ़ शहर पहुँच जाती है। नन्हीं–सी मैत्रेयी शिक्षित होने के लिए अपने सगे सम्बन्धियों के घर छोड़ दी जाती है, जहाँ मैत्रेयी दैहिक शोषण का बार–बार शिकार होती हैं। माँ नहीं तो माँ का ब्लाउज अपने सिराहने रखकर सोती है। माँ के पास होने का अनुभव करते हुए लगातार शोषित होती रहती है। शिक्षित होने का मार्ग ही मैत्रेयी के जीवन में अनचाहे अंधकारों से भर जाता है। बच्ची मैत्रेयी माँ के स्नेहभरे आँचल की छाया पाने को तरसती ही रहती है। "वह अपनी व्यथा किसी को नहीं समझा सकती। माँ के अनुसार पढ़ाई–लिखाई में अड़चन आना ही सर्वनाश होना है। जबकि मैत्रेयी की समस्या यह है कि वह 'लड़की' है। लड़की होने की सजा वह जगह–जगह पाएगी।"[36]

रमणिका गुप्ता का बचपन तो और भी भयानक था। पटियाला रियासत के दीवान और मिलिट्री अफसर की बेटी रमणिका भी अपने अबोध बाल्यकाल से ही यौन शोषण का शिकार होती रही है। कभी घर के नौकर रामू द्वारा, तो कभी सगे सम्बन्धियों या घर आए मेहमानों द्वारा, तो

कभी अपने ही सगे ताऊ के मंझले बेटे हरबंस द्वारा, तो कभी आर्यसमाजी मास्टर पूरनचंद द्वारा। घर की यह बेटी अपनी वेदना बताने को तरसती रहती है, किन्तु माता–पिता भी उस पर विश्वास नहीं करते भीतर ही भीतर वह पीड़ा झेलती रहती है। अपने दर्द को बयां करते हुए आज वह लिखती हैं कि "अगर मैं उसके बारे में कुछ बोलती भी, तो वह झूठ माना जाता। उसके खिलाफ बोलने का मतलब था मार खाना! यह लड़की ही खराब है, पढ़ने के डर से मास्टर की शिकायत करती है। सब ऐसा ही कहते, यह विश्वास मेरे मन में बैठ गया था। अब अपराधबोध अंखुआ कर टहनियों और पत्तियों को जन्म दे रहा था।"[37]

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में विवाह का स्थान महत्त्वपूर्ण है। स्त्री एवं पुरुष जीवन की सार्थकता, सफलता का रहस्य विवाह नामक संस्था में छुपा हुआ है। विवाह किसी भी लड़की के जीवन का सबसे सुन्दर स्वप्न है, जो वह बचपन से देखती आई है। बचपन में गुड्डे गुड़ियों से खेलना, उनकी शादी करवाना प्रायः लड़कियों द्वार खेले जाने वाले खेलों में शामिल है। लड़कियाँ गुड्डे बनाती है, सजाती–सँवारती है, बचपन में बनाए गए गुड्डे में वह अपना भावी जीवन साथी देखती है जैसे–जैसे बचपन पीछे छूटता जाता है किशोरावस्था में कदम रखती है। उम्र बढ़ने के साथ–साथ एक दिन वह भी आ जाता है, जब वह सारे बंधन छोड़कर किसी दूसरे कुल में ब्याह दी जाती है। सुनहरे भविष्य का स्वप्न सजोंए जब पति घर जाती है, तो वहाँ उन्हें ही सामंजस्य करना पड़ता है। नारी की भूमिका में त्याग, सेवा, समर्पण, समझौता, पति परायणता के नियमों का पालन करते हुए, जीवन निर्वाह करती है या यूँ कहे कि बंधन भरा जीवन ही विवाह का दूसरा नाम है, जिसे हमारी आत्मकथा की नायिकाएँ अपने लिए स्वीकार करती है।

आत्मकथा की नायिकाएँ भी स्वेच्छा से अपना जीवन साथी चुनती है। उन्हें लगता है कि विवाह ही स्त्री जीवन का सुरक्षा कवच है। मैत्रेयी पुष्पा अपनी माँ के विवाह विरोधी अभियान को चुनौती देती है। माँ के सम्मुख स्वयं अपने विवाह की इच्छा रखती है कस्तूरी विवाह को स्त्री जीवन का बंधन मानती है, जिसमें स्त्री का जीवन कैद हो जाता है। वह नहीं चाहती कि उनकी शिक्षित गोल्ड मेडलिस्ट बेटी सदा के लिए विवाह बंधन में बंध जाए। वह मैत्रेयी पुष्पा को समझाती है। विवाह से बेटी का मन हटाने के लिए भगवा वस्त्र धारण करवाती है, किन्तु माँ नहीं जानती भगवा वस्त्र धारण करने से मन में वैराग्य भाव नहीं पैदा हो जाता। बचपन से ही यौन उत्पीड़न का शिकार होती मैत्रेयी अपने विवाह को ही अपने लिए सुरक्षा का ठिकाना मान लेती है। मैत्रेयी पुष्पा लिखती हैं कि "बचपन पाँच साल में खत्म हो गया था और किशोरावस्था नौ वर्ष की अवस्था में विदा ले गई। डॉक्टर तुम भी क्या समझोगे कि मैंने विवाह का फैसला किसी अल्हड़

रसवन्ती लड़की की तरह नहीं लिया था, खासी प्रौढ़ भावना से लिया निर्णय था। माताजी ने उसे पागलपन कहा, यह अलग बात है, पर मैंने इसे अपनी मुक्ति का रास्ता मान लिया है।"[38]

प्रभा खेतान भारतीय समाज में व्याप्त विवाह संबंधी रूढ़िवादी परम्पराओं के विरुद्ध आवाज उठाती है। परम्परागत विवाह संस्कार की पद्धती को तोड़ते हुए बाल–बच्चेदार अधेड़ उम्र के एक विवाहित पुरुष डॉ. सर्राफ के साथ जीवनभर के लिए अनब्याहें एवं अवमान्य बंधन में बंधकर अपना विरोध प्रकट करती है। विवाह के संबंध में प्रभा खेतान लिखती हैं कि "विवाह एक ओवररेटेड संस्था है। मैं इस संस्था को ज्यादा तरजीह देने से इनकार करती हूँ, फिर जो कुछ भी है वह मेरे और डॉक्टर साहब के बीच है, बिल्कुल हमारा निजी कोना।"[39]

मन्नू भण्डारी अपने कमजोर आत्मविश्वास के चलते पिता के जीवन में विशिष्ट बनने की संकल्पना को पूरा करने के लिए पिता के सारे विरोधों को झेलते हुए अपने लिए लेखन मार्ग की खोज करते हुए पूर्णकालिन लेखक 'राजेन्द्र यादव' (हंस के सम्पादक) से अन्तरजातीय विवाह करती है। पिता के विरुद्ध जाकर अपना जीवन साथी स्वयं चुनती है। मन्नू भण्डारी लिखती हैं कि "रोमेंटिक दुनिया में रहने वाली सोलह साल की उम्र में बहुत पीछे छोड़ चुकी हूँ। ठेठ यथार्थ की भूमि पर खड़े होकर ही मैंने यह निर्णय लिया है क्योंकि अब मुझे जिन्दगी से जो चाहिए, वह एक लेखक के साथ ही मिल सकता है।"[40]

इक्कीसवीं सदी की हिन्दी आत्मकथा लेखिकाएँ स्वेच्छा से विवाह करती है। विवाह को ही अपनी मुक्ति का मार्ग समझकर अब तक की हुई जिन्दगी उसके उत्पीड़न से मुक्त हो जाना चाहती है किन्तु विवाह का भीतरी जीवन इतना कष्टमय होगा नहीं जानती थी। मन्नू भण्डारी पिता के विरुद्ध जाकर राजेन्द्र यादव से विजातीय विवाह करती है। राजेन्द्र यादव की शारीरिक कमी को भी नज़रअंदाज कर देती है। राजेन्द्र यादव का विवाह पश्चात् मन्नू भण्डारी के साथ अमानवीय पूर्ण व्यवहार, विवाहेत्तर संबंध, समानान्तर जिन्दगी जीने का दुख झेलती है, वहीं सफल व्यावसायिक महिला के रूप में वैश्विकस्तर पर अपनी पहचान बना चुकी प्रभा खेतान एक विवाहित, बाल बच्चेदार पुरुष डॉ. सर्राफ के धुआँधार प्रेम में पागल है अपना सारा धन, जीवन दाव पर लगा देती है फिर भी डॉ. साहब उनके चरित्र को लेकर आशंकित रहते हैं। पुरुष प्रधान समाज में तीन बेटियों को जन्म देने के कारण जगह–जगह अपमानित होती मैत्रेयी पुष्पा परम्परागत स्त्री मर्यादा के नाम पर पत्नी रूप में कठोर बंधनों में जकड़ी वंशनाशिनी जैसे आरोप से घिर मानसिक संतापों को निरन्तर झेलती रहती है। रमणिका गुप्ता सामाजिक संबंधों, नियमों एवं नैतिकताओं के प्रति विद्रोह करती है, जो समाज उन्हें सुरक्षा का अनुभव नहीं करवाता, उस

समाज के द्वारा बनाए गए सभी स्त्री विषयक नियम, वर्जनाएँ तोड़ती रहती है। अपनी इच्छानुसार जीवन जीकर अपनी महत्त्वाकांक्षाओं, लालसाओं को महत्त्व देती है।

2.3 आर्थिक चेतना

भारत में नारी का मुक्ति संघर्ष कब से आरम्भ हुआ? इस विषय पर अभी तक कोई निश्चित प्रमाण प्राप्त नहीं हुए हैं। इस संदर्भ में **आशारानी व्होरा** लिखती है– "भारतीय नारी का मुक्ति–संघर्ष कहाँ से शुरु करें, इसके लिए कुछ निश्चित प्रमाण नहीं मिलते। इतना ही कहा जा सकता है कि उत्तर वैदिक काल में जैसे–जैसे बंधन क्रमशः कसते गये होंगे, उनसे मुक्ति की चाह भी वैसे–वैसे बलवती होती गई होगी पर कालांतर में जब नारी समाज–नियंता नहीं रही, तो उसने अपनी स्थिति को अपनी नियति मान उसे लगभग स्वीकार ही कर लिया था। मध्यकाल से नवजागरण काल तक का इतिहास इसका गवाह है।"[41]

19वीं सदी का प्रारम्भ ही स्त्री–मुक्ति का काल रहा है। यहाँ से ही समाज सुधार आंदोलनों का श्री गणेश हुआ है। इस दौरान कई समाज सुधारकों ने इस दिशा में कई महत्त्वपूर्ण कार्य किए। जिनमें प्रमुख है– राजा राममोहन राय द्वारा 'ब्रह्मसमाज' (1828 ई.) बंगाल में महादेव गोविंद रानाडे द्वारा 'प्रार्थना समाज' (1870 ई.) बम्बई में, स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा 'आर्य समाज' पंजाब एवं उत्तरी भारत में। इसके अतिरिक्त स्वामी विवेकानन्द, ईश्वरचंद विद्यासागर, अगारकर (महाराष्ट्र), वीरसिंह (आंध्र–प्रदेश), नटराजन लिंगम (मद्रास) इत्यादि का नाम उल्लेखनीय है।

राजा राममोहन राय ने महिलाओं को स्वावलम्बी बनाने पर अधिक बल दिया। स्त्री–शिक्षा के मार्गों की खोज की गई क्योंकि शिक्षा ही वह साधन है, जिसके द्वारा स्त्री समाज आत्मनिर्भर एवं स्वावलम्बी बन सकता है। स्त्री जब तक पराधीन है, जब तक की वह अशिक्षित है। स्त्री शिक्षा को बल देते हुए **महात्मा गाँधी** लिखते हैं– "महिला पुरुष की सहचर और सहधर्मिणी है। वह पुरुष के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने के योग्य है। गाँधी जी ने महिलाओं को समान अधिकार देने की वकालत की है।"[42]

19वीं सदी के मध्य में स्त्री–शिक्षा की दिशा में कई महत्त्वपूर्ण कार्य किए गए। महात्मा गाँधी के आह्वान पर स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेती स्त्रियों को एक ऐसे मुकाम पर लाकर खड़ा कर दिया, जहाँ स्त्री समाज घर की चौखटें लांघकर, आत्मविश्वास से भरकर स्त्री जागरण की इबारत रचते हुए सदियों से परम्परागत रूढ़िवादी जंजीरों की जकड़न से शनैः–शनैः मुक्त होने लगा। स्त्री शिक्षा को बढ़ावा मिला। **स्वामी विवेकानंद** का इस संदर्भ में कहना था कि– "महिला

को प्रत्येक काल में असहाय, निर्बल एवं पराश्रित सिद्ध करने के स्थान पर समाज का दायित्व है कि वह महिला को स्वाभाविक विकास के सभी अवसर प्रदान करें, जो नारी का अधिकार है।"[43]

भारत में भी स्त्रियाँ पढ़–लिखकर आर्थिक स्वायत्ता प्राप्त करने लगी है। पुरुष समाज ने उसके मार्ग में कई गतिरोध पैदा किए। 20वीं सदी के पाँचवे–छठे दशक में द्वितीय विश्वयुद्ध के भयानक परिणाम से सारा देश जहाँ खोल रहा था, वहीं दूसरी ओर स्त्री के लिए आर्थिक संघर्ष कम ही नहीं हो रहे थे। नयी–नयी चुनौतियों का सामना करते हुए स्त्री समाज आगे बढ़ रहा था।

आधुनिक युग में स्त्री की आर्थिक स्थिति में सुधार आया है लेकिन आज भी कई क्षेत्र ऐसे हैं, जहाँ स्त्रियों के लिए आर्थिक संघर्ष आज भी जारी हैं। इसी संदर्भ में प्रभा खेतान लिखती हैं कि "आज की स्त्री पारम्परिक नारी की भूमिका में स्वयं को पंगु नहीं बना देना चाहती है, किन्तु इससे बाहर जाते ही उसे अपने नारीत्व का उल्लंघन करना पड़ता है। व्यक्त जिन्दगी शुरु करने वाली स्त्री को पुरुष की भाँति सफलता की कोई परम्परा नहीं मिलती। समाज उसे नए अध्यवसायी पुरुषों के बराबर महत्त्व नहीं देता। उसके साथ यह दुनिया एक नये परिप्रेक्ष्य में पेश आती है। एक स्वतंत्र मानव व्यक्ति की हैसियत से स्त्री होना आज भी विलक्षण समस्याओं से भरा हुआ है।"[44]

स्त्री आत्मनिर्भरता के संबंध में **के.एम. पणिक्कर** लिखते हैं– "स्त्री शिक्षा ने विद्रोह की उस कुल्हाड़ी की धार तेज कर दी है, जिसमें हिंदू सामाजिक जीवन की जंगली झाड़ियों को साफ करना संभव हो गया है।"[45]

हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल में भारतेन्दुयुगीन कवियों में भारतेन्दु, प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट इत्यादि ने सामाजिक कुरीतियों का विरोध करते हुए स्त्री आत्म–निर्भरता, स्त्री–स्वतंत्रता स्त्री–पुरुष समान अधिकार, स्त्री–चेतना को प्रोत्साहित किया है। द्विवेदीयुगीन कवियों में महावीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', रामनरेश त्रिपाठी, श्रीधर पाठक, नाथू शंकर इत्यादि ने भी नारी मुक्ति की कामना व्यक्त की है। यथा–

"जाती हूँ जाती हूँ अब मैं और नहीं रुक सकती।
इस अन्याय समक्ष मरुं मैं कभी नहीं झुक सकती।।"[46]

छायावादी कवियों में जयशंकर प्रसाद (कामायनी), महादेवी वर्मा (श्रृंखला की कड़ियाँ, मैं नीर भरी दुःख की बदली), सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (भारत वंदना, मातृवंदना, राम की शक्ति पूजा, तुलसीदास, नाचे उस पार श्यामा), सुमित्रानन्दन पंत (प्रकृति के सुकुमार कवि) इत्यादि ने नारी मुक्ति, नारी महत्ता को बल दिया है। पंत ने नारी को प्राण, सहचरि, माँ, देवी सभी रूपों में सम्माननीय माना है। नारी दया, प्रेम, करुणा की मूरत है वे नारी के प्रति श्रद्धा प्रकट करते है।

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पग तल में।
पीयूष स्त्रोत सी बहा करो, जीवन के सुंदर समतल में।"[47]

हिन्दी साहित्य में नारी चित्रण में प्रेमचंद का योगदान अविस्मरणीय है। प्रेमचंद की कहानियों में चित्रित नारी परम्परागत बंधनों को तोड़ते हुए दिखाई देती है। घर की चौखट को लांघकर अपने स्वतंत्र अस्तित्व की खोज करती हुई नज़र आती है।

इक्कीसवीं सदी में स्त्रियाँ पढ़–लिखकर जहाँ आत्मनिर्भर, आर्थिक स्वावलम्बी बन रही है, वहीं दूसरी ओर घर परिवार की जिम्मेदारी भी बखूबी निभा रही है। शहरी पढ़ी–लिखी महिलाओं की तुलना में ग्रामीण महिलाएँ आज भी आर्थिक रूप से सक्षम नहीं है। वर्तमान भारत में विभिन्न क्षेत्रों में महिलाएँ अपनी पहचान बना चुकी है शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र शेष रहा होगा, जहाँ महिलाएँ नहीं पहुँच पाई हो। आज महिलाएँ नये–नये उद्योगों, कम्पनियों की स्थापना कर रही हैं। देश की अर्थ व्यवस्थाओं को सुधारने में भी महिलाओं का योगदान प्रशंसनीय है। लेखिका सीमोन द बाउवार का भी कहना है कि नारी का आर्थिक रूप से सक्षम होना आवश्यक है। 'अन्या से अनन्या' आत्मकथा में प्रभा खेतान लिखती हैं कि औरत की सारी स्वतंत्रता उसके पर्स में निहित है।[48]

महादेवी वर्मा लिखती हैं कि "भारतीय नारी जिस दिन अपने सम्पूर्ण प्राण देय से जाग सके उस दिन उसकी गति को रोकना किसी के लिये संभव नहीं।"[49]

प्रभा खेतान की आत्मकथात्मक कृति 'अन्या से अनन्या' एक ऐसी स्त्री की कहानी है, जो जीवन के गहरे उतार–चढ़ाव से गुजरते हुए चमड़ा व्यवसाय की दुनिया में धूम मचा देती है। उन्होंने यह व्यावसायिक बुद्धि अपने पूर्वजों से विरासत में पाई थी। यह आत्मकथा स्त्री के आर्थिक सशक्तिकरण की दास्तां भी बयां करती है। प्रभा जैसी पढ़ी–लिखी लड़की को महसूस होने लगा कि आर्थिक कमजोरी के कारण ही स्त्री कमजोर है। अपनी इसी कमजोरी को प्रभा अपनी ताकत बनाती है। वह लिखती हैं कि "और मैं? मैं उस समाज की हूँ जहाँ आदमी की एक ही विशेषता होती है कि वह लाख रूपए का आदमी है या फिर करोड़ का? प्रभा को ज्ञात है कि औरत की सारी स्वतंत्रता उसके पर्स में निहित है।"[50]

अपनी अध्यापिका द्वारा समझाए जाने पर प्रभा उनसे कहती भी हैं– "मारवाड़ी समाज में मुझे अपनी मर्जी से जीने नहीं दिया जाएगा।"[51] फिर क्या था। प्रभा खेतान माँ द्वारा चाँद छूने की कल्पना को साकार करते हुए अमेरिका पहुँच जाती है। व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त कर 'हेल्थ फिटनेश' का कोर्स करती है। प्रशिक्षण प्राप्त कर भारत पहुँचती है और 'फिगरेट' नाम से अपना हेल्थक्लब खोली लेती है। डॉ. सर्राफ के इलाज के लिए उनके साथ अमेरिका जाती है। प्रभा के

मन में चमड़े के व्यापार में कुछ नया करने की इच्छा जागती है। प्रभा वहाँ के बाजार की प्रसिद्ध दुकान 'बनाना रिपब्लिक' में टँगे फैशनेबल बैग को देखती है पूरे ढाई सौ डॉलर देकर वह यह बैग सैम्पल के तौर पर खरीद लेती है। चमड़े के दस्ताने और जूते के साथ वह अपने व्यापार में चमड़ें के बैग बनाना भी शामिल कर लेती है। डॉ. साहब को बैग दिखाती है कीमत जानकर डॉ. साहब नाराज़ हो जाते हैं। बीच सड़क पर अकेला छोड़ पर्स व पासपोर्ट अपने साथ लेकर होटल चले जाते हैं। कहते हैं– व्यापारी बुद्धि? तुम्हारे पास बुद्धिनाम की चीज भी हैं?"[52]

प्रभा कहती हैं – "डॉ. साहब मेरे पास पैसे हैं, अपनी खरच के लिए जो है, उसमें से दे दूँगी।"

डॉ. साहब – "तुम्हारा यह मालिकाना तेवर मैं सहन नहीं कर सकता।"

प्रभा – औरों के लिए भी तो इतना सामान खरीदा गया है।

"वे चीजें उनकी जरुरत है।"

"तो यह बैग मेरी जरुरत है।"[53]

पुरुष की नज़र में स्त्री सौन्दर्य की वस्तु है बुद्धि की नहीं। डॉ. साहब के इस स्त्री विषयक नज़रिए पर प्रभा हैरान है। डॉ. सर्राफ के मुख से यह व्यंग्य सुनकर प्रभा कहती हैं– "मैं एक औरत थी....औरत के आर्थिक अवदान को नकारने की परम्परा रही है। पहले गृहस्थी में उसके श्रम को नकारा जाता है, फिर मुख्यधारा में यदि उसे स्थान दिया जाता है तब उस स्त्री को या तो अपवाद मानकर पुरुष वर्ग अपने कर्त्तव्य की इति श्री समझ लेता है, या फिर उसे परे ढकेल दिया जाता है पर आने वाले वक्त में औरत की सबसे बड़ी लड़ाई इस मुख्यधारा में बने रहने की होगी।"[54]

प्रभा दिनोंदिन सफलता की सीढ़ी चढ़ती जा रही थी। नए–नए लोगों से उनके बढ़ते सम्पर्क डॉ. साहब के लिए मानसिक कष्ट पैदा कर रहे थे। असुरक्षा एवं कमजोरी की भावना उनमें हावी होती जा रही थी। डॉ. सर्राफ कहते हैं– "मुझे अपनी कमजोरी पर गुस्सा आता है। तुम आगे बढ़ रही हो और मैं पिछड़ रहा हूँ।"[55] औरत जब आर्थिक रूप से सक्षम हो जाती है, तो डॉ. सर्राफ जैसे पुरुषों का कुण्ठा से भर जाना स्वभाविक है। "डॉ. साहब को लगने गला चिड़िया हाथ से निकल जाएगी।"[56]

प्रभा खेतान स्वतंत्र होकर उड़ान भरती है और महिला उद्योगपति के रूप में भारत में ही नहीं बल्कि वैश्विक स्तर पर अपनी पहचान बनाती है। 'इंडिया टुडे' में सफल व्यावसायिक महिला के रूप में उनकी फोटो प्रकाशित होती है 'कलकत्ता चेंबर ऑफ कॉमर्स' की प्रथम महिला अध्यक्ष के रूप में चुना जाना ही उनकी सफल उद्यमी महिला की कहानी बयां करती है।

'कस्तूरी कुण्डल बसै' आत्मकथा में कस्तूरी एक ऐसी लड़की है, जिसे विवाह की मंडी में खरीदा–बेचा जाता है। बचपन में ही कर्ज़ की मार के भय से पिता घर छोड़ भाग निकले। पिता के वात्स्लय से वंचित बचपन, बीमार भाई, घर की जिम्मेदारियों ने कस्तूरी का बचपन ही छीन लिया, जिस उम्र में बच्चे शिक्षा प्राप्त करने स्कूल जाते है, वहीं यह लड़की खेतों में दिन–रात श्रम करती है। जब खेती भी साथ नहीं देती, तो विवाह मंडी में कस्तूरी गाय, भेड़ों एवं मवेशियों की तरह बेच दी जाती है। विवाह के डेढ़ वर्ष बाद ही पति की मृत्यु हो जाती है। कस्तूरी छोटी–सी उम्र में विधवा होने का संताप झेलती रहती है। शिक्षा के उजाले में आने के लिए मेहनत करती है पढ़ लिखकर आत्मनिर्भर बनती है। ग्राम सेविका का पद प्राप्त कर लेती है। अपनी बेटी मैत्रेयी को पढ़ा लिखाकर उच्च शिक्षित कर समाज में सर उठाकर चलने योग्य बनाती है। मैत्रेयी की विवाह करने की इच्छा को पूरा करते हुए डॉक्टर दामाद ढूँढ लेती है।

कस्तूरी कहती हैं कि "खाली खाने–कपड़े की खातिर औरत आदमी के पाँवों में किस कदर बिछ–बिछ जाती है। वह कहीं भी, कुछ भी करने का हक मालिक को सौंप देती है। कमाल है, देह, मन, आत्मा सब आदमी के हवाले, सब स्वामी की सुविधा पर।...औरत की बन्धुआगीरी कभी टूटने वाली नहीं।"[57] कस्तूरी के संबंध में यह पंक्ति चरितार्थ है– "चलना अभी शुरु किया है, मुकाम पाना अभी बाकी है राह में मुश्किलें अनेक हैं, पर हौंसला अभी बाकी है।"

आत्मनिर्भर बनकर कस्तूरी अपने कमाए पैसों से समाज की अन्य पीड़ित–उपेक्षित महिलाओं की ताकत बनती है। उन्हें शिक्षित कर रोजगारोन्मुखी प्रशिक्षण देकर स्वावलम्बी बनाती है। कस्तूरी एक ऐसी भारतीय नारी है जो संघर्ष करती है, किन्तु झुकती नहीं। अन्य स्त्रियों के लिए वह आर्थिक सशक्तिकरण की मिसाल कायम करती है।

साहित्य के क्षेत्र में अपने लेखन से पहचान बनाने वाली मन्नू भण्डारी एक विख्यात लेखक राजेन्द्र यादव की पत्नी है। वह अपने पिता के विरुद्ध जाकर राजेन्द्र यादव से विजातीय विवाह करती है। लेखक की पत्नी होने का संतोष ही मन्नू के वैवाहिक जीवन की त्रासदी है। राजेन्द्र यादव समानान्तर जिन्दगी का तोहफा मन्नू भण्डारी के हाथों से सौंपकर अपना पल्ला झाड़ लेते है और स्वयं स्वतंत्र जीवन जीते है। मन्नू शिक्षित है वह अपना पैसा स्वयं कमाती है कॉलेज में पढ़ाती है। लेख लिखती है। घर व बेटी की जिम्मेदारी अकेली निभाते हुए बेटी को पढ़ाती–लिखाती है शादी करती है। अपने दम पर कलकत्ता जैसे बड़े शहर में एक मकान भी खड़ा कर लेती है। मन्नू के लिए यह उनके जीवन की किसी चुनौती जैसा ही रहा है। एक स्त्री के लिए अकेले इतना कुछ कर पाना वाकई प्रशंसनीय कार्य है। कौन कहता है कि नारी धन नहीं कमा सकती। नारी अगर चाहे, तो पति की पूरी दुनिया ही बदल सकती है। मन्नू भण्डारी लिखती हैं

कि "क्यों मैं सबके सामने एक सुखी–सन्तुष्ट गृहिणी का मुखौटा ओढ़कर यह सब झेलती रही, जिसे किसी भी स्त्री के लिए झेल पाना बहुत दुष्कर है? बल्कि घर और बच्ची की सारी ज़िम्मेदारियाँ भी मैं खुद ही ढोती रही।"[58]

राजेन्द्र यादव के दो रूप मन्नू के सामने आते है। पहला रूप, जिसमें वह समाज के सामने स्त्री–स्वतंत्रता, स्त्री–आत्मनिर्भरता, स्त्री–अधिकारों की मांगों का समर्थन करते है और दूसरा रूप वह, जिसमें उनकी सोच पर सामन्ती मानसिकता हावी रहती है। राजेन्द्र यादव की इसी संकुचित मानसिकता के चलते मन्नू भण्डारी स्वयं को उनसे मुक्त कर लेती है और उन्हें अपने लिए अलग फ्लैट ढूँढ़कर शिफ्ट होने का अपना निर्णय सुना देती है। यह मन्नू भण्डारी की शालिनता ही है, जिसके कारण राजेन्द्र यादव को उनके किए पर उम्र के इस पड़ाव पर पछतावा होता है और वे माफी स्वरूप अपना आत्मकथ्य 'मुड़–मुड़कर के देखता हूँ' लिखते हैं।

राजेन्द्र यादव अपने द्वारा मन्नू भण्डारी के साथ किए गए अमानवियपूर्ण व्यवहार से ग्लानि से भर उठते है कहते हैं– "मन्नू यह मेरे जीवन का सबसे बड़ा ब्लैक स्पॉट है....तुम्हीं मुझे इससे उबार सकती हो....देखो, तुम मुझे छोड़कर मत जाना....तुम मुझे छोड़कर नहीं जाओगी।"[59]

सामन्ती परिवार में जन्मी रमणिका गुप्ता, जिसने बचपन से ही औरत को बाजार की वस्तु बनकर बिकते देखा। बड़े मिलिट्री अफसर की बेटी, पंजाब की बड़ी रियासत के दीवान की यह नातिन बचपन से ही अपने मन की करने वाली जिद्दी लड़की रही है। सुख–सुविधाओं से भरा जीवन जीने वाली रमणिका अपनी इच्छा से वेद प्रकाश गुप्ता से प्रेम विवाह करती है। वेद प्रकाश गुप्ता एक बेहद साधारण वेतन भोगी थे, वहीं रमणिका महत्त्वाकांक्षी थी। उनके जीवन–जीने के तौर–तरीके आसाधारण थे। उनकी यह इच्छाएँ पति की कमाई से पूरी नहीं हो सकती थी। विवाह के बाद रमणिका का आभावों से भरा जीवन, पैसों की किल्लत, पति द्वारा चरित्र पर शक करना आखिर कब तक झेलती। रमणिका गुप्ता प्रकाश को छोड़ देती है। अपने पाँव खड़े होने की जिद्द उन्हें दलाली, देह व्यापार की अंधेरी गुमनाम गलियों में ला खड़ा कर देती है। रमणिका लिखती हैं कि "जीना तो अकेले ही पड़ेगा अब चूँकि फैसला किया है तुमने। घर जाने का मतलब हार मानना या अपमानित होकर प्रकाश के पास लौटना होगा।"[60]

इंश्योरेंस एंजेट के रूप में कार्य करते हुए रमणिका कई पुरुषों के सम्पर्क में आती है। इंश्योरेंस करवाने से पहले पुरुष उनके शरीर की माँग करता है– "बात तो बन गई लगती है। एक दो बार अकेले में इनको भेजने पर सौदा पट जाएगा।"[61] पुरुष प्रधान समाज में एक स्त्री का धर्नोपार्जन करना कितना भयावह है। रमणिका गुप्ता की आत्मकथा इसका जीवन्त उदाहरण है।

रमणिका का शारीरिक शोषण करने वाले पुरुषों में संजय या सेठ ही नहीं अपितु आर्मी का बड़ा औहदेदार ब्रिगेडियर जनरल भी शामिल है। अपने अहं में डूबी रमणिका गुप्ता का दंभ एक बार नहीं बार–बार टूटता है और उन्हें सोचने पर मजबूर करता है कि वह ऐसा करके किसे सजा दे रही है। अपने पति को, बच्चे को या स्वयं को। वह लिखती हैं कि "तो क्या मैं उजाला हासिल कर सकती हूँ? मैं खुद से सवाल कर खुद ही उत्तर देती पहले इस अंधेरे से जो जूझो! इस व्यापार मंडली से पीछा छुड़ाओं। तुम तो खुद शतरंज का मोहरा बनती जा रही हो? तुम क्या पलटोगी बिसात? अरे नहीं। तुम तो खुद ही बिसात बन गई हो! तुम पर शर्तें बदलते हैं लोग! मोहरे चलते हैं! प्यादा, बादशाह, रानी सबके सब तुम्हारी ही देह पर दांव लगाते है! आखिर क्या हो तुम?।"[62]

बाल्यकाल से ही प्रतिभा की धनी रहीं, सुषम बेदी अध्ययन के साथ–साथ रेडियों, नाटक, दूरदर्शन में कार्य कर चुकी है। सुषम बेदी एक भारतीय महिला है। विवाह के बाद ऑफिसर पति के साथ न्यूयार्क शहर चली जाती है। पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति को जानने–समझने के साथ–साथ कई अन्य परेशानियों का सामना करती है। बेटे को फ्रेंस मीडियम में पढ़ाने के लिए स्वयं भी 'ब्लूमिंगडेल्स' में सेल्स गर्ल की नौकरी ढूँढ लेती है। सुषम बेदी की नज़र में स्त्री का आर्थिक रूप से स्वतंत्र होना ही आत्मसम्मान का बने रहना है। इस संदर्भ में वह लिखती हैं कि "मेरे लिए खुद कमाना बहुत जरुरी था क्योंकि तभी मैं महसूस कर पाती कि मैं आर्थिक रूप से स्वतंत्र हूँ। यूं मुझे कभी राहुल ने यह महसूस नहीं होने दिया कि यह उसकी कमाई का पैसा है और मेरा नहीं बल्कि इस बात को बनाए रखा कि यह उतना ही मेरा है, जितना उसका, लेकिन यह मेरे अन्दर की जरुरत थी। चूंकि भारत में मैं कमाती थी, सो यहाँ बिना कमाए रहना मेरे लिए अपना आत्मसम्मान खो देने जैसा था।"[63]

हम जानते है कि भारतीयों के लिए पाश्चात्य देशों में नौकरी ढूँढना जटिल कार्य है। न्यूयार्क शहर में सुषम बेदी फिर से साहित्यिक गतिविधियों से जुड़ती है। उनके पास वर्तमान में 24 वर्षों तक 'कोलम्बिया विश्वविद्यालय' में हिन्दी विषय पढ़ाने का अनुभव प्राप्त है।

2.4 सांस्कृतिक चेतना

मानवीय चेतना की मूल प्रवृत्ति निर्माणोन्मुखी होती है। विध्वंस अथवा नाश अपने आप में कोई लक्ष्य नहीं है। चेतना नवनिर्माण का ही प्रथम सोपान है। सांस्कृतिक चेतना के मूल में जीवन के प्रति एक विशिष्ट दृष्टिकोण रहता है। संचेतित बुद्धि से जीवन को सुन्दर और कल्याणमय बनाने के लिए मनुष्य जो प्रयत्न करता है, उसका प्रतिफल संस्कृति की उदात्तता में ही मिलता है।

सांस्कृतिक चेतना देशज उपज होकर भी देश की सीमाओं में कभी आबद्ध नहीं रहती, उसकी प्रेरणा विश्व जननी होती है दूसरे भी उस चेतना से प्रभावित हो कर्त्तव्य पथ पर अग्रसर होते हैं।[64]

पाणिनी व्याकरण के अनुसार सम् उपसर्ग के होते कृति, कारादि की अवस्था में सुट का आगम हो जाता है। इसी सूत्र के अनुसार 'सम्' उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु से 'सुट्' आगम करके क्तिन् प्रत्यय के योग से संस्कृति शब्द निष्पन्न हुआ है।[65] कुछ कोश–ग्रंथों के अनुसार संस्कृति शब्द की व्युत्पत्ति 'संस्कृ' धातु तथा 'क्तिन्' प्रत्यय से हुई है। कृति कारादि से हुई निष्पत्ति में सम+कृति अथवा सम+कार आदि विभाग संस्कृति या संस्कार आदि शब्दों में परिणत हो जाते हैं। जिसका अर्थ होता है, अलंकृत, सम्यक् कृति अथवा चेष्टा। 'संस्कृ' धातु से व्युत्पन्न संस्कृति शब्द का अर्थ होता है, सजाई या संवारी कृति।[66]

आचार–विचार, लोक–व्यवहार, जीवन–मूल्य, रहन–सहन, वेशभूषा, रीति–रिवाज, विवाह, उत्सव, पर्व, त्यौहार, आमोद–प्रमोद, क्रीड़ा, शिक्षा, नारी–शिक्षा इत्यादि बातें हमारी आधुनिक भारतीय संस्कृति की ही पहचान है।

संस्कृति शब्द अंग्रेजी के 'कलचर' (Culture) का हिन्दी रूपान्तरण है। अपने विस्तृत अर्थ में इस शब्द में साहित्य, कला, संगीत एवं अन्य बौद्धिक उपलब्धियों का समावेश होता है। अनादिकाल में इस शब्द को कृषि और पशुपालन का सूचक माना जाता था। 18वीं शताब्दी के अन्तिम दशक तक यह शब्द अर्थ विस्तार एवं संकोच के विविध स्वरूप से गुजरा। 19वीं शताब्दी के अंतिम दो या तीन दशकों में यह आधुनिक अर्थ कई संदर्भों में रूढ़िगत हुआ। प्रो. टाइलर का विवेचन इस दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ।

संस्कृति को परिभाषित करते हुए रामधारी सिंह दिनकर लिखते हैं कि "संस्कृति एक ऐसा गुण है, जो हमारे जीवन में छाया हुआ है, यह एक आत्मिक गुण है जो मनुष्य स्वभाव में उसी प्रकार व्याप्त है, जिस प्रकार फूलों में सुगन्ध और दूध में मक्खन। इसका निर्माण एक या दो दिन में नहीं, युग–युगान्तर में होता है। जिस प्रकार संस्कृतिजन्य गुणों का निर्माण कठिन है, उसी प्रकार इनका नष्ट होना भी। संस्कार हजारों साल में निर्मित होते हैं, अतएव प्रत्येक देश की संस्कृति भिन्न होती है।"[67]

डॉ. सम्पूर्णानंद के अनुसार– "संस्कृति उस दृष्टिकोण को कहते हैं, जिसमें कोई समुदाय विशेष की समस्याओं पर दृष्टि निक्षेप करता है।"[68]

पाश्चात्य विद्वान (अमेरिकी) डॉ. व्हाइट के अनुसार– "संस्कृति मानसिक प्रक्रिया है सौंदर्य और मानवीय अनुभूतियों को हृदयंगम करने की क्षमता है।"[69]

स्त्री के संबंध में धर्म एवं संस्कृति पर अपने विचार व्यक्त करते हुए प्रभा खेतान लिखती हैं कि "धर्म और संस्कृति की नज़र स्त्री के प्रति हमेशा टेढ़ी रही, राजनीति उसे हमेशा मोहरा बनाती रही और व्यक्ति पुरुष ने उसे कभी ड्राइंगरूम का सामान समझा, तो कभी बेडरूम का बिछावन, पुरुष चाहे कहीं भी हो, कोई भी हो, वह शिल्पी, साहित्यकार, व्यवसायी, मजदूर कुछ भी क्यों न हो, औरत को चबाने से बाज नहीं आता।"[70]

इक्कीसवीं सदी की हिन्दी आत्मकथा लेखिकाएँ यथा प्रभा खेतान, मन्नू भण्डारी, रमणिका गुप्ता, मैत्रेयी पुष्पा, सुषम बेदी इत्यादि समाज में व्याप्त भ्रांतियाँ, रूढ़िवादिता, परम्परावादिता पर लगातार गहरी चोट करती रही हैं। भारतीय संस्कृति में विवाह सामाजिक विधान, धार्मिक एवं पवित्र बंधन के रूप में देखा गया है। परिणय सूत्र को ही समाज मान्यता देता आया है। हिंदू विवाह संस्कार में धार्मिक कार्यों जैसे देवी–देवताओं का पूजन, होम, पाणिग्रहण, सप्तपदी, मंत्रोच्चारण, अग्निकुंड इत्यादि धार्मिक संस्कार के रूप में विशेष महत्त्व रखते हैं। जात–पात, कुल, गोत्र इत्यादि से बाहर विवाह करना ही समाज में मान्य विवाह है। हिन्दू धर्म भी इसी पराम्परागत विवाह संस्कृति में विश्वास रखता है।

'अन्या से अनन्या' में प्रभा खेतान सदियों से चली आ रही पराम्परागत विवाह पद्धति को छोड़कर पहले से विवाहित एवं पाँच बच्चों के पिता डॉ. सर्राफ से प्रेम करती है। प्रेम को प्रभा खेतान ब्याह से भी ऊँचा दर्ज़ा देती है। कहती हैं कि "जो घट गया, जिससे प्रेम हो गया मैं उसे ही विवाह मानती हूँ और समाज? मुझे समाज की परवाह नहीं।"[71]

डॉ. सर्राफ के साथ अपने संबंध को प्रभा पूरी दुनिया से छिपाकर रखना चाहती है शायद प्रभा यह नहीं जानती कि इस तरह के संबंध को समाज कभी मान्यता नहीं देगा। भारत हो या पाश्चात्य देश, आधुनिक मानसिकता रखने का दावा करने वाला समाज भी इस तरह के रिश्तों को स्वीकार नहीं करता। जब प्रभा डॉ. सर्राफ को इलाज के लिए अमेरिका ले जाती है। डॉ. साहब के अमेरिकी मित्र की पत्नी मिसेज केडिया भी प्रभा को इस संबंध को लेकर खरी–खोटी सुनाती है। आइलिन द्वारा डॉ. सर्राफ के विषय में प्रभा से पूछे जाने पर प्रभा डॉ. और अपने संबंध का पूरा सच कह देती है। प्रभा और डॉ. सर्राफ के रिश्ते की सच्चाई सुनकर आइलिन कहती हैं– "ईसाई धर्म में ऐसे नाज़ायज सम्बन्धों को यानी एडल्ट्री को पाप की संज्ञा दी गई है। प्रभा कहती है कि हमारे हिंदू धर्म में इसे पाप नहीं कहा गया। मैंने अपने हिन्दू पंडित से पूछा है। हमारे शास्त्रों में बहुविवाह का प्रचलन है। आइलिन–मगर तुमने तो इस व्यक्ति से शादी नहीं की। प्रभा खेतान–मन से वरण करने को हम गन्धर्व विवाह कहतें हैं। यह तो 1952 में हिंदू मैरिज एक्ट के

कारण एकल विवाह का प्रचलन बढ़ा। लेकिन कानून बना देने से कोई परम्परा खतम नहीं हो जाती।"[72]

भारतीय संस्कृति में तीज–त्यौहारों, उत्सवों–पर्वों का विशेष महत्त्व रहा है। इन्हीं पर्वों में शामिल है। करवा चौथ का व्रत जो सुहाग की लम्बी उम्र की कामना के लिए किया जाता है। यह पर्व कार्तिक मास में कृष्ण पक्ष की चतुर्थी तिथि को मनाया जाता है। इस दिन सभी सुहागिनें अपने पति की दीर्घ आयु के लिए निर्जल व्रत रखती है। संध्याकाल में सोलह शृंगार करके बीजा बहन की कहानी सुनती है। चंद्रमा को अर्ध्य देकर अपना व्रत पूरा करती है। मैत्रेयी पुष्पा (गुड़िया भीतर गुड़िया) एक भारतीय महिला है। विवाह से पूर्व इस पर्व पर गहरी आस्था, विश्वास करती है। सोलह श्रृंगार को ही स्त्री सौंदर्य के रूप में देखती है, किन्तु विवाह के कुछ वर्षों बाद ही उन्हें इन रीति–रिवाजों, सुहागन चिन्हों जैसे बिछिया, महावर, चूड़ी, बिन्दी इत्यादि बंधन लगने लगते हैं। इन बंधनों से स्वयं को मुक्त करने के लिए मैत्रेयी पुष्पा करवा चौथ का व्रत भंग करती है। यहाँ पर मैत्रेयी पुष्पा द्वारा व्रत न करने का अर्थ है कि स्त्री जाग्रत हो चुकी है उसने अपने विषय में सोचना शुरु कर दिया है। वह लिखती हैं कि "मैं खुद को तरह–तरह से सांत्वना देती हूँ कि मैंने स्त्री के लिए मनुष्य के स्तर पर जीने की स्थिति ही तो खोजी है, कि मैंने पुरुष के समकक्ष अपनी भावनाओं को बराबरी से रखा है, कि मैंने अपने समाज में लोकतान्त्रिक विधान की घोषणा की है, कि औरत को हर तरह से सहनागरिक का दर्जा चाहिए।"[73]

भारतीय संस्कृति में सारे नियम केवल स्त्री जाति के लिए ही बनाए गए हैं। यहाँ पर मैत्रेयी पुष्पा समाज की ओर एक प्रश्न उठाती है क्या (?) स्त्री द्वारा सुहाग चिन्हों को पहनने से, व्रत करने से पति चिरंजीवी हो सकता है अगर ऐसा होता तो संसार में कोई भी स्त्री विधवा ही नहीं होनी चाहिए थी। करवा चौथ का व्रत पत्नी अपने पति की दीर्घ आयु के लिए करती आई है। कोई पुरुष क्यों अपनी पत्नी की लम्बी उम्र के लिए करवा चौथ जैसा व्रत नहीं करता। कहते है कि पति–पत्नी रथ के दो पहिए है अगर एक पहिया भी खराब हो जाए, तो गाड़ी का संतुलन बिगड़ जाता है। गृहस्थी रूपी गाड़ी को सुचारू रूप से चलाने के लिए दोनों का ही बराबर महत्त्व होता है, तो दोनों को ही चिरंजीवी और स्वस्थ होना चाहिए। मैत्रेयी पुष्पा लिखती हैं कि मेरे पति का प्रेम.....आह! मैं गद्दार, कुटिल बेवफा....सोच रही हूँ, प्यार नहीं, प्यार के प्रलोभन (उपहार) ही डस लेते हैं हमें। वरन् भूखे रहकर ही प्रेम दिखेगा क्या? या करवाचौथ जैसे त्योहार लोकाचार.... जिनके द्वारा हमारा सतीत्व हर साल रिन्यू होना है।"[74]

भारतीय संस्कृति में सोलह संस्कारों की चर्चा की गई है। मृत्यु भी उन्हीं संस्कारों में से एक है। अंतिम संस्कार की रस्म पुरुष द्वारा (पति, पिता, बेटा, सगे–संबंधि) ही की जाती रही है,

किन्तु 'कस्तूरी कुण्डल बसै' आत्मकथा में घर में कोई पुरुष न होने के कारण 8–9 साल की बच्ची (मैत्रेयी) द्वारा अपने दादा का अन्तिम क्रियाकर्म करने के लिए श्मशान भूमि में जाना, अग्नि देना इत्यादि ऐसी घटनाएँ हैं, जो परम्परागत संस्कृति का खण्डन करती है। रुढ़िवादी परम्पराओं को तोड़ने का जो सिलसिला मैत्रेयी ने अपने अबोध बचपन में शुरु किया था। वह आज तक जारी है। मैत्रेयी पुष्पा वह सारी वर्जनाएँ तोड़ती चली जा रही है, जो सदियों से स्त्री को जकड़े हुए थी। मैत्रेयी की माँ कस्तूरी भी ऐसी ही स्त्री रही है, जिसने मात्र 16 साल की उम्र से ही रूढ़िगत परम्परा को तोड़ने का कार्य किया। ससुराल में कस्तूरी की मुँह दिखाई की रस्म में पूरे गाँव की महिलाएँ हीरालाल के घर के आँगन में बैठी नववधू की मुँह दिखलाई करती है कस्तूरी का जन्म गुलाम भारत में हुआ था, किन्तु सोच एवं मानसिकता आधुनिक थी। इस तरह की रस्म का कस्तूरी विरोध करती है और क्यों (?) न करें वह विरोध, क्यों (?) नुमाइश करें। क्या (?) वह कोई नुमाइश की वस्तु है नहीं वह भी एक स्त्री है अन्य स्त्रियों की तरह। कस्तूरी इस तरह की संस्कृतियों का विरोध करते हुए कहती हैं कि "संसार का यह अंधकार उसे ब्याह स्वरूप मिला है। हवा और धूप के लिए आत्मा भटकने लगी। कस्तूरी को बँधकर रहना है और मन छटपटाए तो उस आदमी के पाँवों में सिर टेक देना है, जो अब रोटी–कपड़ा देने वाला है।............वह जानती है या नहीं जानती? वह अकेली ही नहीं, सारी लड़कियाँ इसी तरह आती हैं। इन्हीं रस्मों से गुजरना पड़ता है– मुँह दिखाई क्यों नहीं कराना चाहती कस्तूरी नाम की बहू? क्यों नुमाइश करे अपने चेहरे की, क्या उसका चेहरा मनुष्य का चेहरा नहीं? औरतों ने घूंघट उढ़या, औरतें घूँघट खींच रही हैं, यह तमाशा नहीं तो और क्या है? यह तमाशा किसके कहने से हो रहा है? जिद की मारी दुल्हन इसी हीलोहुज्जत से गुजरती हुई मुँह दिखाई करने वाली औरतों से बाकायदा जंग करने लगी। कायदे से उसे बुत की तरह बैठा रहना चाहिए था।"[75]

समाज में अनेक धर्म है। धर्मों को मानने वाले लोग भी। सबका अपना–अपना धर्म है सभी लोग अपने धर्मानुसार क्रियाकलाप करते हैं। धर्म के प्रति समाज में जहाँ एक ओर आस्था का भाव परिलक्षित होता है, तो दूसरी तरफ अंध–विश्वास, आडम्बर, छुआछुत का भयावह रूप भी दृष्टिगोचर होता है। रमणिका गुप्ता धर्म के नाम पर स्त्रियों के साथ होने वाले अत्याचारों, यौन–उत्पीड़न, पर्दा–प्रथा, सती–प्रथा इत्यादि का कड़ा विरोध करती है। मानव कल्याण को ही वे धर्म मानती है रमणिका गुप्ता संस्कृति के नाम पर स्त्रियों के साथ होने वाले अमानवीय कृत्यों का खण्डन करती है। रमणिका गुप्ता की आत्मकथा 'आपहुदरी' में स्वयं बताती है कि 'सत्यार्थ प्रकाश' पुस्तक को पढ़ने से उनके जीवन में परिवर्तन आया है। आज रमणिका गुप्ता कर्मकांड, मूर्ति–पूजा, पूजा–पाठ, व्रत, श्राद्ध, छुआछूत, पर्दा प्रथा के विरुद्ध निर्भीक होकर आवाज उठाती है खुलेआम नारे लगाती, बहसे करती है। लड़कियों के माँस न खाने पर समाज की सोच पर सवाल उठाते

हुए वह लिखती हैं कि "मैं ठीक कहती हूँ, मैंने पढ़ा है 'सत्यार्थ प्रकाश' में भगवान मूर्ति में नहीं, सबके मन में है। सभी लोग बराबर हैं, कोई ऊँचा–नीचा नहीं। वैदिक युग में कोई औरत पर्दा नहीं करती थी, फिर हम पर्दा क्यों करें? यह मुगल काल की देन है। मैंने बड़ी अकड़ और स्वाभिमान के साथ पढ़ा–पढ़ाया उगल दिया लेकिन उस उत्तर में मेरे विश्वास, आस्था और तर्क के साथ–साथ मेरे सीमित ज्ञान का पुट भी शामिल था। बाद में मेरी समझ में आया कि मुगल काल को मोहरा बनाकर हिन्दू लोग अपने विकृत प्रयासों पर परदा डालते थे।"[76]

रमणिका गुप्ता स्त्री की वेदना, करुण पुकार पर समाज की मौनवृति पर सवाल खड़ा करते हुए दिनोंदिन ह्रास होती मानवीयता पर गहरा चिन्तन व्यक्त करती है। यह एक चिन्तन का विषय है, जिस पर हम सभी को एक बार विचार–विमर्श करने की आवश्यकता है अगर आज हमने अपने इस रवैये को नहीं बदला, तो आगे आने वाली पीढ़ियाँ भी हमारे बनाए रास्तों पर चलेंगी हम अनुमान लगा सकते हैं कि भविष्य में हमारे समाज की तस्वीर क्या होगी?

रमणिका गुप्ता, मन्नू भण्डारी, सुषम बेदी इत्यादि महिला लेखिकाएँ आर्य समाजी संस्कारों के बीच पली बड़ी हैं। इन संस्कारों के कारण ही उनमें अंध–विश्वासों, सामाजिक कुरीतियों के प्रति आक्रोश का भाव दिखाई देता है जब भी इन्हें अवसर मिलता है, तो अपनी बेबाक लेखनी द्वारा समाज को जाग्रत करती रहती है।

निष्कर्ष

अध्ययन के उपरान्त मेरी दृष्टि से कहा जा सकता है इक्कीसवीं सदी की यह सभी आत्मकथा लेखिकाएँ सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक चेतनाओं के पुनर्जागरण में कहीं पर भी पुरुषों से पीछे नहीं रही है। प्रत्येक क्षेत्र में इनका योगदान पुरुषों की तुलना में अधिक ही रहा है। मानव–मूल्यों को एक बार फिर से नए सिरे से परिभाषित करती आज की ये नारियाँ आर्थिक मोर्चों पर भी आगे रही हैं। घर की चाहरदीवारी को पार कर पुरुषों से बराबरी करते हुए आर्थिक सम्बल प्राप्त कर रही हैं। स्त्री सशक्तिकरण की दिशा में नारी नित्य नए आयामों को प्राप्त कर रही हैं।

♦♦♦♦

संदर्भ सूची

1. पुनर्नवा चेतना और शिल्प, राज नारायण, पृ.–11
2. प्रेमचन्द के निबन्ध साहित्य में सामाजिक चेतना, अर्चना जैन, पृ.–16
3. बृहत् अंग्रेजी–हिन्दी शब्दकोश, हरदेव बाहरी, भाग–1, पृ.–132
4. बृहत् हिन्दी कोश, कालिका प्रसाद, 1971, पृ.–384
5. द्वान्द्वात्मक भौतिकवाद क्या है, वसीली क्रपीविन, पृ.–121
6. भारतीय समाज में नारी, नारी देसाई, पृ.–158
7. स्त्री संघर्ष का इतिहास, राधा कुमार, पृ.–13
8. नारी अस्मिता, डॉ. सुदेश बत्रा, पृ.–20
9. हादसे, रमणिका गुप्ता, 'मेरी कच्छ यात्रा', पृ.–29
10. हादसे, रमणिका गुप्ता, 'स्वयं सिद्ध होने का संकल्प', पृ.–27
11. हादसे, रमणिका गुप्ता, 'टाटा से टक्कर', पृ.–75
12. हादसे, रमणिका गुप्ता, 'यूनियन का गठन', पृ.–79
13. हादसे, रमणिका गुप्ता, 'कुजू–कूच', पृ.–106
14. हादसे, रमणिका गुप्ता, 'मुझसे खाना मत मांगना, कफ़न का जुगाड़ मैं कर दूँगी', पृ.–138
15. हादसे, रमणिका गुप्ता, 'राष्ट्रीय कोलियरी मज़दूर संघ का विवाद', पृ.–183
16. हादसे, रमणिका गुप्ता, 'स्त्री होने के कारण ही', पृ.–245
17. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–24
18. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–25
19. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–71
20. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–139
21. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–260–261
22. कामायनी : एक पुनर्विचार, गजाननमाधव मुक्तिबोध, पृ.–8
23. समाजशास्त्र विवेचन, नरेन्द्र सिन्धी, पृ.–210
24. साहित्य तथा कला, मार्क्स एंगेल्स, पृ.–151
25. साहित्य और समाज परिवर्तन की प्रक्रिया, अज्ञेय, पृ.–90
26. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–18
27. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–22
28. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–30

29. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–18

30. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–26

31. आपहुदरी (एक जिद्दी लड़की की आत्मकथा), रमणिका गुप्ता, मैं बड़ी होने लगी, पृ.–36

32. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, नन्ही स्मृतियां, पृ.–42

33. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–26

34. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जो घर जारै आपनो......, पृ.–311

35. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, नन्ही स्मृतियां, पृ.–56

36. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, उलट पवन कहाँ राखिए....पृ.–55

37. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, गलत का अहसास,पृ.–86

38. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, हम घर साजन आए, पृ.–159–160

39. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–85

40. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–209

41. भारतीय नारी दशा–दिशा, आशारानी व्होरा, पृ.–18

42. मासिक पत्रिका समाज कल्याण, फरवरी, 1667 नानक चंद, पृ.–10

43. हिस्ट्री ऑफ द फ्रीडम मूवमेंट इन इंडिया, ताराचंद, पृ.–199

44. स्त्री उपेक्षिता, खेतान प्रभा, पृ.–319

45. प्रेमचंद समस्यामूलक उपन्यासकार, महेन्द्र भटनागर, पृ.–159

46. 'द्वापर' से, मैथिली शरण गुप्त 1936

47. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, श्रद्धा सर्ग से, 1935

48. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–131

49. श्रृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ.–11

50. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–131

51. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–131

52. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–06

53. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–07

54. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–212

55. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–163

56. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–206

57. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पानी में अगन जरै, पृ.–271

58. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–221

59. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–213

60. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, पैसों की जरुरत का अहसास, पृ.–285

61. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, पैसों की जरुरत का अहसास, पृ.–286

62. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, भटकाव का दौर, पृ.–288

63. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, अमेरिकी आवासन के कुछ खट्टे–मीठे अनुभव, पृ.–161

64. राजस्थान के हिन्दी महाकाव्यों में सांस्कृतिक चेतना, डॉ. दयाकृष्ण विजयवर्गीया 'विजय', पृ.–46

65. पाणिनी, अष्टाध्यायी, 6.1.137.38

66. भारतीय संस्कृति और सांस्कृतिक चेतना, डॉ. राम खेलावन पाण्डेय, पृ.–8

67. संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, पृ.–652

68. कल्याण पत्रिका का हिंदू संस्कृति अंक, जनवरी–1950

69. हिन्दी कहानी और स्त्री विमर्श, उषा झा

70. स्वामी नहीं, साथी की तलाश–हंस जून, 1667, प्रभा खेतान हंस/जून 1667, पृ.–33

71. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–86

72. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–141

73. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पति संग जागी सुन्दरी, पृ.–246

74. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पति संग जागी सुन्दरी, पृ.–245

75. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–17

76. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, जब आस्थाएँ टूटी, पृ.–41

तृतीय अध्याय

इक्कीसवीं सदी के स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य में बोल्ड–लेखन

तृतीय अध्याय

इक्कीसवीं सदी के स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य में बोल्ड–लेखन

बीसवीं सदी के अन्तिम दशक पर मौन तोड़ती स्त्रियाँ दुर्गमराहों से गुजरतें हुए पढ़ लिखकर साहित्यकार बनती है तो इनमें से कुछ ऐसी साहसिक स्त्रियाँ भी हुई हैं, जो अपने जीवन के संघर्ष, पीड़ा, अन्याय, शोषण के साथ–साथ स्त्री–अस्तित्व, स्त्री–अधिकार, स्त्री–स्वतंत्रता को आत्मकथा–साहित्य के माध्यम से बयां कर एक नई जमीन तैयार कर रही हैं। हिन्दी साहित्य में अनेक आत्मकथाएँ साहित्यिक पटल पर उभर रही हैं, इनमें प्रभा खेतान (अन्या से अनन्या), मैत्रेयी पुष्पा (कस्तूरी कुण्डल बसै, गुड़िया भीतर गुड़िया), मन्नू भण्डारी (एक कहानी यह भी), रमणिका गुप्ता (हादसे, आपहुदरी), सुषम बेदी (आरोह–अवरोह) इत्यादि महत्त्वपूर्ण हैं उक्त सभी आत्मकथाएँ अपने समय और समाज की सच्चाई का आईना तो दिखाती हैं साथ ही साथ स्त्री–उत्पीड़न पर आवाज भी उठाती हैं। स्त्री आत्मकथा लेखिकाओं ने नारी को उसका स्वतंत्र व्यक्तित्व दिया है–नारी मात्र एक देह कोमलांगी वस्तु नहीं, वह स्वतंत्र निर्णायक, साहसी और बुद्धि विवेक से सम्पन्न भी है परम्परागत बेड़ियों की जकड़न से अपने को मुक्त कराने में उसे बहुत समय लगा है। अपने स्वतंत्र अस्तित्व को गढ़ने, समाज में स्त्री वर्चस्व को बनाए रखने का महत्त्वपूर्ण कार्य उसने अपने हाथों में लिया है। प्रभा खेतान, मन्नू भण्डारी, मैत्रेयी पुष्पा, रमणिका गुप्ता, सुषम बेदी की आत्मकथाएँ बोल्डनेस तथा स्त्री विमर्श का एक नया अध्याय प्रस्तुत करती हैं।

आत्मनिर्भर होती स्त्री ने जब से पुंसवादी समाज द्वारा खींची गई लक्ष्मण रेखा को लांघने का साहसिक कदम उठाया सामाजिक विषमताओं पर प्रश्न पूछने की कुव्वत की है, उस दिन से स्त्री के साधारण प्रश्नों से विचलित होने वाले दम्भी पुरुष समाज का घिनौंना रूप सामने आने लगा है। वर्तमान में शोषण, बलात्कार, स्त्री–उत्पीड़न, देह व्यापार की घटनाओं में भी उत्तरोतर वृद्धि इसी का परिणाम है।

एक स्त्री को जन्म से लेकर मृत्यु तक अनेक वर्जनाओं, बँधनों में जीना–मरना होता है। उसका हंसना–रोना, खाना–पीना, सोना–उठना, बैठना–चलना–फिरना, लिखना–पढ़ना, खेलना–कूदना यहाँ तक की कैसे कपड़े पहनना है और कैसे जीना है? इन सब पर अनेक पाबंदियाँ पितृसत्तात्मक समाज की ओर से लगी होती है। ये कहें कि स्त्री का जीवन रोक–टोक, बंधन एवं सेंसरशिप का

दुःखद एवं विडम्बनात्मक फसाना है। स्त्री को कभी पति परमेश्वर की लाश पर सती होकर अपने जीवन की आहुति देनी पड़ती है, तो कभी तालिवानी नियमों के अन्तर्गत बुरके की सियाह कैद में घुटना होता है। इतना ही नहीं, बाजार की चीज़ बनकर जब माल बेचना होता है, तो उसे वस्त्रविहीन भी प्रदर्शित किया जाता रहा है।

वर्तमान में स्त्री विमर्श पर पुरुष रचनाकारों द्वारा खूब लिखा जा रहा है, किन्तु उनकी कलम से लिखी गई स्त्री विषयक रचनाएँ आज भी अर्द्धसत्य पर ही आधारित है। कारण स्पष्ट है, कि स्त्री की वेदना स्त्री जाति ही समझ सकती है। स्वयं भुक्तभोगी न होने के कारण पुरुष रचनाकारों की रचनाओं में हृदयस्पर्शी चित्रण का अभाव सदैव बना ही रहता है। इसी संदर्भ में जॉन स्टुअर्ट मिल क्या खूब लिखते हैं– "जो ज्ञान पुरुष स्त्रियों से उनके बारे में हासिल करते हैं, भले ही वह उनकी संचित संभावनाओं के बारे में न होकर, सिर्फ उनके भूत और भविष्य के बारे में क्यों न हो, तब तक अधूरा और उथला रहेगा जब तक कि स्त्रियाँ वह सब कुछ बता नहीं देती, जो उनके पास बताने के लिए हैं।"[1]

परम्परा, रिश्ते, रीति–रिवाज़, धर्म, संस्कृति इत्यादि के नाम पर बेड़ियों में बंधी स्त्री अपने अस्तित्व को मिटाकर पुरुष की छत्रछाया में जीवन बिताने के लिए अभिशप्त है। सदियों से स्त्री की शिक्षा, अधिकारों की सीमा समाज द्वारा निर्धारित की जाती रही है। नारी स्वयं भी अपने को समाज की एक इकाई के रूप में नहीं देख पाई। स्त्री के अस्तित्व पर सामाजिक सोच और भेदभाव का नतीजा ही हैं, कि आज भी हमारे समाज में बेटी के पैदा होने पर पराए धन की मानसिकता (कुछ अपवादों को छोड़कर), पारिवारिक जिम्मेदारियों को निभाते हुए वंशवेल को आगे बढ़ाने में इतनी आगे निकल गई कि अपने अस्तित्व को ही शून्य बना बैठी। अपने अस्तित्व की खोज, आजीविका एवं सुरक्षा के लिए पुरुषों (पिता, पुत्र, भाई, पति) पर आश्रित रही हैं। आज भी स्त्रियाँ याचक बनकर अपने अधिकारों को माँग रही हैं किन्तु स्त्री समाज को अब समझना होगा, कि ये अधिकार माँगने पर नहीं मिलेंगे। इन अधिकारों को पाने के लिए उसे एक लम्बी लड़ाई लड़नी होगी।

बीसवीं सदी का उत्तरार्द्ध एक ऐसा संक्रमण काल रहा है, जहाँ स्त्री आत्मकथा लेखिकाओं ने सभी वर्जनाओं को तोड़ने का श्रीगणेश किया है। आत्मकथा–साहित्य के माध्यम से स्त्री जीवन के दबे ढके अत्यन्त गोपनीय सच को वाणी देती हैं। समाज में स्त्रियों के लिए जगह–जगह पर कटघरे रखे गए हैं, किन्तु यह आत्मकथा लेखिकाएँ सभी बंधनों को तोड़ते हुए स्त्री जीवन की चुनौतियों को स्वीकार करती है। स्त्री जीवन के सभी पक्षों पर बेखौफ़ लेखन उनके साहसिक कार्यों की प्रेरणास्पद दास्ता है।

इसी संदर्भ में अपना मत प्रस्तुत करते हुए स्त्री विमर्श की महान लेखिका प्रभा खेतान लिखती हैं– "स्त्री की जिन्दगी के बारे में पुरुष–लेखन ज्यादा–से–ज्यादा अर्धसत्य का ही दावा कर सकता है। स्त्री के शोषण–उत्पीड़न पर चर्चा की गई, आँसू बहाए गए, मगर समाज की इस भेदभाव वाली संरचना के विकल्प में बिल्कुल नहीं सोचा गया। व्यवस्था से मुक्ति की चाहना को अपने लेखन में जितनी शिद्दत से वह (स्त्री) महसूस करती है या जितनी गहराई से तन्मय होकर अपने उत्पीड़न और शोषण को वह अभिव्यक्त कर पाती है उतना पुरुष लेखन द्वारा संभव नहीं। पितृसत्तात्मक दमन जितना करीब से स्त्री ने देखा और झेला है उतना अन्य किसी ने नहीं।"[2]

भारतीय समाज में नारी की स्थिति घर की चाहरदीवारी में गुथी हुई है, जहाँ वह माँ, बहन, पुत्री, पत्नी परिवार की इकाई के रूप में हैं।

पुरुष प्रधान समाज में नारी सदियों से ही शोषित उत्पीड़ित होती रही है अन्याय सहने की उसकी मनोवृत्ति ही उसकी इस स्थिति के लिए जिम्मेदार है क्योंकि अन्याय सहना भी एक अपराध हैं। जब स्त्री की सहन क्षमता खत्म होती है तभी स्त्री प्रतिरोध, स्त्री–समानता, स्त्री–स्वतंत्रता, स्त्री–आत्मसम्मान, स्त्री–अधिकार का स्वर मुखरित होता है। इक्कीसवीं सदी की स्त्री आत्मकथा लेखिकाएँ शिक्षित होने के साथ–साथ सजग एवं चेतनशील नारियाँ हैं, जिन्होंने अन्याय को सहने के स्थान पर सरेआम बेपर्दा करने का कार्य किया है। पुरुष समाज ने जो यंत्रणाएँ, अपमान, प्रतिघात स्त्री समाज को दिए हैं, हमारी यह क्रान्तिकारी लेखकाएँ उन्हीं के तरीकों से वापस लौटा रही है। पुरुष प्रधान समाज द्वारा स्त्रियों पर किए गए अत्याचार दिल दहला देने वाली यातनाओं को ये स्त्री आत्मकथा लेखिकाएँ खुलकर अपने कथा साहित्य में लिखकर बयां करती रही हैं, जिसे पढ़कर पाठक भी छटपटाने लगता है। घर गृहस्थी में श्रम करने वाले हाथ जब कलम उठाकर अपनी आपबीती लिखते हैं तो वे ऐसी भयानक सच्चाईयों से रू–ब–रू करवाती हैं, जहाँ स्त्री समाज ही नहीं अपितु मानवता भी लज्जित हो उठती हैं।

आत्मकथा लेखन का अर्थ ही है 'सत्य की कसौटी पर खरा उतरना', जीवन में घटित तमाम घटनाओं को सत्य के तराजू पर तोलते हुए वर्णित करना। इक्कीसवीं सदी की यह सभी आत्मकथा लेखिकाएँ सत्य की इसी रहस्यमयी मारक और विध्वंसक शक्ति का प्रयोग करती हैं। किसी भी स्त्री द्वारा अपने प्रेम प्रसंग, एबॉर्शन, लिव इन रिलेशनशिप, मेनोपॉस, गर्भपात, प्रेम से इतर संबंधों को इस तरह सरेआम उजागर करना कोई साधारण बात नहीं है। यह एक साहसिक कदम है, इस तरह अपने जीवन का नग्न चित्रण करना जहाँ साहसिक कदम है, वहीं यह स्त्री का दुस्साहसिक कार्य भी है। इक्कीसवीं सदी की हिन्दी आत्मकथा लेखिकाओं की आत्मकथा में बोल्ड–लेखन इस प्रकार है।

3.1 मैत्रेयी पुष्पा

'कस्तूरी कुण्डल बसै' आत्मकथा क्रान्तिकारी लेखिका मैत्रेयी पुष्पा के 'अन्तरंग प्रसंगों की अभिव्यक्ति' की स्वीकारोक्ति है। उनके बाल्यकाल से लेकर किशोरावस्था के प्रेमियों में एदल्ला, बाजबहादुर, नायब साहब, राघव, नंदकिशोर इत्यादि शामिल है। मैत्रेयी पुष्पा नंदकिशोर के साथ प्रेम के पलों को पा लेना चाहती है। प्रेमी को अपने नज़दीक पाकर उस क्षण को सदा के लिए अपना बना लेना चाहती है। प्रेम के अंतरंग क्षणों को वाणी देते हुए मैत्रेयी पुष्पा लिखती हैं कि "रात का समय और एकान्त कमरे में मैं और नंदकिशोर उसके गहरे साँवले चेहरे पर चार–छह मुंहासे मेरे बहुत नजदीक थे। उसके कोट पर काला और सलेटी महीन चारखाना मेरी नजरों से टकराता। घुँघराली जुल्फें माथे के ऊपर मुझे मोह रही थी। वह मुस्काता तो सफेद दाँतों की पाँत चमक जाती। इतने नजदीक से मैंने अब तक किसी लड़के को नहीं देखा था।"[3]

मैत्रेयी पुष्पा के जीवन में शामिल ये सभी युवा प्रेमी मात्र नहीं अपितु सुख–दुःख के साथी भी है। जब भी मैत्रेयी पुष्पा के साथ कुछ बुरा घटता, तो ये सभी युवा प्रेमी, प्रेमी न रहकर 'सुरक्षाकर्मी' बन जाते हैं। बाजबहादुर (वास्तविक नाम जानकी रमण) बस ड्राइवर की बदसलूकी से मैत्रेयी पुष्पा को बचाता हुआ अन्त में अपने प्राण गवाँ बैठता है, तो सहपाठी शिवदयाल मैत्रेयी पुष्पा के भूखे पेट की व्याकुल आतों की आवाज बिना कहे सुन लेता है, अपना भोजन मैत्रेयी को खिलाकर खुश रहता है।

'कस्तूरी कुण्डल बसै' में मैत्रेयी पुष्पा का बोल्डरूप 'साइकिल वाली घटना' को प्रस्तुत करने में ही नहीं बल्कि उस घटना से स्वयं को बचाने की कोशिश में भी नज़र आता है। मैत्रेयी पुष्पा लिखती हैं कि "वह बैठी थी। लड़का बैठा था। मैत्रेयी की आँखें एदल्ला की गैल से लगी थीं। अचानक वह चौंकी। अरे! लड़के का हाथ उसकी फ्रॉक को पार करता हुआ जाँघों तक आ गया है। वह ऐसी डरी कि उछलकर एक ओर गिरी। उसे लगा उसकी धुकधुकी बन्द हो गई और वह उठ नहीं पाएगी। मगर घबराकर खड़ी हो गई। खड़े होने से क्या होता है? लड़के ने मजबूती अख्तियार कर ली और बेरहमी बरतने लगा। वह भागती उससे पहले ही उसे पटक लिया। जद्दोजहद ऐसी हुई कि कच्छी बचाते–बचाते फ्रॉक फट गई। पहले तो लड़का पटक रहा था, फिर पीटने लगा।"[4]

मैत्रेयी पुष्पा बचपन से ही बोल्ड, निर्भीक एवं साहसी छात्रा रही हैं, अपनी अस्मिता के प्रति जागरुक रहते हुए भी स्कूल प्रिंसिपल द्वारा की गई बदतमीजी का शिकार होती हैं बाद में ये ही क्रान्तिकारी मैत्रेयी पुष्पा नामक छात्रा स्कूल प्रिंसिपल एवं ऊँचे ओहदेदार अफसरों के लिए चुनौती, एक संकट बनती है, वहीं दूसरी ओर प्रिंसिपल जैसे पुरुषों की कुटिलता, कठोरता, क्रूरता,

असामान्य व्यवहार, कुकृत्यों का पर्दाफाश करते हुए बुलन्द स्वर से विरोध प्रकट करते हुए कहती हैं कि "यह स्कूल किसी प्रिंसिपल की बपौती नहीं। मैनेजमेंट कमेटी सुप्रीम कोर्ट नहीं। अगर यह स्कूल व्यभिचारियों और अन्यायी शिक्षकों का अड्डा है तो यह मेरे योग्य स्कूल नहीं। थूं है यहाँ की शिक्षा पर।"[5]

'कस्तूरी कुण्डल बसै' आत्मकथा का एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न 'स्त्री सुरक्षा' से भी सम्बन्धित है। हमारी नारियाँ कहीं भी सुरक्षित नहीं हैं। पितृसत्तात्मक सुरक्षा के सारे आश्वासन मिथक मात्र है। स्कूल जाने का मार्ग हो या कक्षा–कक्ष, बस अड्डा, बस की यात्रा, संगे सम्बंधी, रिश्तेदार किसी ने भी नारी के कौमार्य को सुरक्षित नहीं रहने दिया। कुछ ऐसी घटना मैत्रेयी के साथ 'समाज कल्याण बोर्ड की संयोजिका' (अलीगढ़) के घर घटित होती है। उसी घर का विवाहित छोटा बेटा रात के अंधेरे में मैत्रेयी पुष्पा का दैहिक शोषण करता है। शिक्षा के उजले मार्ग की खोज ने मैत्रेयी के जीवन में अंधकार भर दिए, डरी सहमी मैत्रेयी कभी रात न होने की बाल कल्पना करती रहती है। खत द्वारा अपनी माँ कस्तूरी को इस घटना से अवगत कराते हुए लिखती हैं– "माताजी, वह मुझे रात–भर सोने नहीं देता। मैं यहाँ नहीं रहूँगी। गाँव भाग जाऊँगी। शहर के लोग कैसे हैं, रात में पेट पर हाथ धरते हैं। छातीं नोंचते–बकोटते हैं और कच्छी......... ।"[6]

मैत्रेयी पुष्पा का बोल्ड रूप माँ के सम्मुख अपने ब्याह की बात कहने में भी स्पष्ट दिखाई देता है। "माताजी मेरी शादी कर दो' बी.ए. में पढ़ती लड़की बोली।"[7] अपनी माँ के विवाह विरोधी अभियान को तोड़ने वाली मैत्रेयी अपने ब्याह की बात सुरक्षा के उपाय के तौर पर कहती है। सत्तरह साल की किशोरी को लगने लगता है कि ब्याह की वह सुरक्षित रास्ता है, जिस पर चलने से उसके दिन–रात सुरक्षित हो जाएंगे। पुरुष साथी मिलने से सुरक्षा का आवरण मिलेगा बकौल मैत्रेयी पुष्पा– "खेत मेरे बाबूजी की छाया थे और शादी मेरे बाबा का सपना। सपनों की छाया मेरे प्राणों से बँधी है कि उन दोनों के बिछोह में किसी पुरुष को खोजती फिरती हूँ? माँ तुम खफा क्यों होती हो? मेरी स्वाभाविक इच्छाओं को कठोर उपवास में मत बदलो। मैं अपनी इन्द्रियों को कसते–कसते दूसरों की हवस का शिकार हुई जाती हूँ।"[8]

इस आत्मकथा में मैत्रेयी पुष्पा पुरुष समाज से ही त्रस्त थी। पुरुष समाज से स्वयं को बचाने के लिए विवाह को 'सुरक्षा के गढ़' स्वरूप देखती हैं। अंतरंग साथी मिल जाने से दिन–रात सुरक्षित हो जाएँगे। सुरक्षा के गढ़ में घुटन ज्यादा है, परम्पराओं के गहरे बंधन हैं। दम घुट रहा है, मैत्रेयी पुष्पा का। वह इस बंधन से मुक्त हो जाना चाहती है, उनकी मुक्ति की चाहना को उनकी आत्मकथाओं में स्पष्टतया पढ़ा एवं समझा जा सकता है।

3.2 रमणिका गुप्ता

'आपहुदरी' रमणिका गुप्ता के प्रेम प्रसंग की कहानी होने के साथ–साथ बोल्ड–लेखन का अद्भुत दस्तावेज भी है। बचपन में दैहिक शोषण का शिकार होती रमणिका गुप्ता मासूमियत खो बैठती है। 11–12 वर्ष की आयु में निरन्तर दैहिक शोषण ने रमणिका गुप्ता के भीतर यौन की अतृप्त प्यास पैदा कर दी। रमणिका गुप्ता लिखती हैं कि "अपने को अतृप्त रखना, पूर्ण न होने देना, असन्तुष्ट रहना, बचपन में ही मैंने सीख लिया था और इसी अपूर्णता और अतृप्ति को मैं पूर्णता और तृप्ति के रूप में स्वीकारती थी। असन्तोष मुझे गति देता था। कुछ पाने की इच्छा मेरी इच्छा–शक्ति को ऊर्जा देती थी। तृप्ति मुझे गतिहीनता का प्रतीक लगती थी। तृप्ति मुझे मुर्दापन का अहसास कराती थी। एक ऐसा अहसास जहाँ सब खत्म हो जाता है और करने को कुछ शेष नहीं रह जाता। हासिल करना मेरा लक्ष्य जरुर था लेकिन हासिल करके सन्तुष्ट हो जाना, न मैंने जाना, न ही मैंने सीखा।"[9]

'आपहुदरी' में रमणिका गुप्ता रिश्तों में छिपे दुराचार, भाई–बहन जैसे पावन रिश्तों को भुलाने की पुंसवादी मानसिकता को स्पष्ट करती हैं। अपने चचेरे भाई द्वारा दैहिक स्तर पर बालपन में घटी उनके कुँवारेपन में योनि के क्षत–विक्षत होने की घटना को अत्यन्त बेबाक ढंग से अभिव्यक्त करते हुए लिखती हैं कि "भाई–बहन के रिश्ते का एक अलग आदर्श था मेरे मन में, जिसे तोड़ा था उसकी इस हरकत ने। यह बड़ा सवाल था जो मुझे प्रायः कचोटता रहता था, इसी कचोट ने मेरे आदर्शों के पारदर्शी पर्दों की ओट को तार–तार कर दिया था। रिश्तों के पर्दे चाक–चाक हो गये थे। यौन–वर्जनाएँ जैसे उपहास उड़ा रही थीं, वर्जना लगाने वालों या मानने वालों का या रिश्तों का। मेरे मन में बैठे रिश्तों की कसौटी में गहरी दरार पड़ गयी थी। उसी दिन शायद यौन के प्रति जिज्ञासा भी तीव्र हुई थी। वर्जनाएँ जो यौन संबंधों पर लगी थीं, ढहने लगी थीं या ढह गयी थीं। अंकुश ही मुचक गया था।"[10]

'आपहुदरी' में स्त्री बोल्ड–लेखन का फलक बहुत व्यापक है। इस आत्मकथा का एक प्रमुख आयाम 'स्त्री–मुक्ति' से भी संबंधित है। मास्टर के शोषण से मुक्त होने के लिए झटपटाती रमणिका प्रेम–यात्रा पर निकल पड़ती है, जहाँ उनकी मुलाकात वेद प्रकाश गुप्ता से होती है। समाज, जात–पात की परवाह किए बिना प्रकाश से अन्तरजातीय विवाह करती हैं। प्रकाश ही वह राजकुमार था, जो जिन्न रूपक आर्य समाजी मास्टर से रमणिका को मुक्ति दिला सकता था। रमणिका गुप्ता लिखती हैं कि "मेरे भीतर कोई शहजादा–राजकुमार या नाइट बसता था, जो मेरे भीतर बैठी एक डरी–सी लड़की को मुक्ति दिलाने के लिए सदैव तत्पर रहता था। मेरे कानों में

राजकुमार की आहट अनवरत गूंजती थी। पता नहीं क्यों एक अंतरंग साथी बनकर एक पुरुष मेरी मदद में आ जाता था, जबकि पुरुष से ही त्रस्त थी मैं।"[11]

रमणिका गुप्ता पुरुष की संस्कारबद्धता एवं संदेह करने की पुरुष प्रवृत्ति से त्रस्त आकर यौन वर्जनाओं, निषेधों के सभी प्रतिमान, नैतिकता के सभी मानदण्डों को तोड़ते हुए प्रेम की अतृप्त प्यास को, यौनाकांक्षा एवं सेक्स–भावना को अत्यन्त बेखौफ एवं बोल्डनेस के साथ प्रस्तुत करती हैं। इस संदर्भ में वह लिखती हैं कि "मैं जितना भी वफादार रहूँ, प्रकाश तो मुझ पर शक करेगा ही, फिर क्या जरुरत है। इस निष्फल, बेमतलब वफादारी की, जब वफादार होने पर भी शक की नज़रों से ही देखा जाना है। फिर शक को ही सच होने दो। क्या हर्ज है?"[12]

प्रकाश के साथ बनते–बिगड़ते रिश्तें, जीवन जीने की उन्मुक्त चाह रमणिका को संवेदना विहिन बना देती हैं और हर क्षण वह उन मौकों की खोज में रहती हैं, जिनके माध्यम से वह अपने स्वप्नों को पूरा कर सकें। अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति रमणिका को बार–बार दैहिक शोषण की गुमनाम गलियों में ला खड़ा करती है, जहाँ वे बार–बार गर्भवती होती हैं हर बार एबॉर्शन करवाती हैं। अपनी बेटी के जन्म की सच्चाई की स्वीकारोक्ति उनके बोल्ड–लेखन का ही परिणाम है। बकौल रमणिका गुप्ता – "मैं पति नाम के खूंटे से बंधी थी, पर उसे मैं एक रस्मी रिश्ता मानकर निभा रही थी। इसलिए अपने प्रेम के रिश्ते गोपनीय रखती थी, पर अगर प्रकाश को पता चल जाए तो मैं सच–सच कह भी देती थी। भक्ष्य–अभक्ष्य क्या है, यह सम्बन्धित व्यक्ति ही तय करता है। अपने यौन–सुख के किस्से सुनाकर वह मुझे उत्तेजित करता था या मैं ही उसके सेक्स–सुख का अन्दाजा लेते–लेते स्वयं ही उस सुख के लिए आतुर हो उठती थी, यह मैं नहीं कह सकती।"[13]

'आपहुदरी' रमणिका गुप्ता के भोगे हुए जीवन की खुली किताब हैं, जिसके अन्तर्गत उन्होंने अपने साथ घटित लेस्बियन संबंध को भी बोल्डरूप से प्रस्तुत किया हैं। युवा होती भाभी अपनी देह की भूख मिटाने के लिए रमणिका को कसकर अपनी बाँहों में भर लेती, लेस्बियन संबंध बनाती हैं। डरी सहमी रमणिका दादी के पास भागकर अपने को बचाने की कोशिश करती है इस घटना से रमणिका के मन में पुरुष के साथ–साथ औरत के साथ सहवास का बीज भी पड़ जाता हैं। रमणिका गुप्ता लिखती हैं कि "पुरुष तो स्त्री को प्रायः इस दृष्टि से ही देखता है भाभी से 'लेस्बियन' रिश्ते की तो शुरुआत हुई, पर उस रिश्ते के प्रति घृणा और भय की प्रेतछाया भी मेरे मन में पलने लगी।"[14]

रमणिका गुप्ता प्रतिशोधवश (पुंसवादी समाज से) अथवा बचपन से यौन उत्पीड़न की शिकार होते रहने के कारण प्रेम की तलाश करते हुए एक के बाद एक प्रेम–यात्रा पर निकल

पड़ती हैं। कई पुरुषों से 'फिजीकल रिलेशनशिप' रखने के बावजूद भी यौनाकांक्षा से पूर्ण संतुष्ट नहीं हो पाती। इस यात्रा में उनके जीवन में एक के बाद एक पुरुष आते रहते हैं। वह एक ऐसी पगडंडी बन जाती हैं, जिसका कोई अन्त नहीं होता। बकौल रमणिका गुप्ता– "वे क्षण मुझे ज्यादा अच्छे और तर्क संगत लगते थे, जिन्हें मैं मुक्त होकर जिऊं और निभाऊँ कि कहीं मैं बेवफा या विश्वासघाती न कहलाऊँ। मैं नहीं जानती, क्यों ऐसा हुआ, जब एक ही समय में मुझे एक से अधिक लोगों के साथ प्यार का अहसास होने लगा। ये मैं निश्चित तौर पर कह सकती हूँ कि जितने भी क्षण, पल, दिन या महीने मैंने जिसके साथ गुजारे, वे पूरी तरह उसी के साथ जिए और गुजारे। तब दूसरे या किसी और का ध्यान मुझे नहीं आया। जब कोई दूसरा मेरे नजदीक आता तो मेरा समय उसी के लिए हो जाता।"[15]

'आपहुदरी' में रमणिका गुप्ता का बोल्ड रूप न सिर्फ अपने प्रेम प्रसंगों और यौन संबंधों का खुलासा करने में नज़र आता हैं अपितु पीरियड रुकने पर प्रेगनेंट होने पर एबॉशर्न कराने में भी प्रकट होता हैं। बच्चा न होने का ऑपरेशन मुक्त होकर प्रेम सुख प्राप्त करने के लिए करवाती है। रमणिका गुप्ता को इस ऑपरेशन से सारे झंझटों से मुक्ति मिल जाती हैं। सामाजिक एवं पारिवारिक लोक–लाज की रक्षा भी हो जाती हैं। स्वतंत्र सोच एवं दृढ़ निश्चय की धनी रमणिका गुप्त लिखती हैं कि "माँ, जिसका बनना कब गौरव बन जाता है और कब कलंक, यह स्त्री नहीं जानती। यह समाज के हाथ में है, पुरुष के हाथ में है। चूंकि 'मां' देवी है या कुलटा, इसकी मुहर पुरुष ही लगाता है, जो बाप कहलाता है। मैं 'माँ' की सृजनशक्ति को बच्चा पैदा करने की क्षमता को गौरवमय मानती थी। किसने बीज डाला, यह मेरे लिए गौण था। मैंने खेत ही बंजर रखने का फैसला लिया, फिर कोई विवाद नहीं होगा। फसल ही नहीं उगेगी तो मिल्कियत कैसी? जमीन है? धरती है, उस पर दावे करते रहें पुरुष! उन दावों से क्या होगा। धरती तो धरती है। वह अपने अस्तित्व के कारण है किसी मालिक या पुरुष के कारण धरती, धरती नहीं बनती। औरत भी किसी पुरुष के कारण औरत नहीं होती।"[16]

'आपहुदरी' में रमणिका गुप्ता का बोल्ड रूप लज्या नामक दूसरी बेबस लड़की को मास्टर के चंगुल से मुक्त कराने में भी नज़र आता हैं। डरी सहमी वह लड़की मास्टर की उन गलत हरकतों का विरोध नहीं कर पाती। रमणिका गुप्ता को जब इस घटना का पता लगता है, तो वह मास्टर का पर्दाफाश करते हुए अपने पिताजी, बीवी जी (माँ) से कहती हैं कि "आप तो मुझ पर विश्वास नहीं करते थे, पर आपकी आँख तले यह हमारा शोषण करता रहा और अब लज्या का कर रहा है। मुझे भी ब्लैकमेल कर रहा है। अब या तो यह मास्टर घर में रहेगा या मैं रहूंगी।"[17]

'आपहुदरी' में रमणिका गुप्ता व प्रकाश की शादी में गवाह की भूमिका निभाने वाले मिलिट्री का रिटायर्ड अफसर को उसकी माँग पर यौन सुख प्रदान करने की स्वीकारोक्ति बोल्ड लेखन है। बकौल रमणिका गुप्ता "पता नहीं मुझे उस वक्त क्या हो गया था? सेक्स को पुरुष का अधिकार और पहल मानने वाली मैं, उस दिन स्वयं पुरुष बन बैठी और मैंने स्वयं प्रयास करना शुरु कर दिया।"[18]

'आपहुदरी' आत्मकथा में सेक्स का खुला एवं व्यापक चित्रण रमणिका गुप्ता के बोल्ड–लेखन का दस्तावेज है।

3.3 मन्नू भण्डारी

'एक कहानी यह भी' मन्नू भण्डारी के जीवन संघर्ष से निरन्तर जूझते रहने की कहानी है। इस आत्मकथा में उनका बोल्ड रूप पारिवारिक जिम्मेदारियों को निभाने एवं संघर्षरत जीवन चित्रण को उजागर करने में स्पष्ट दिखाई देता है। इस आत्मकथा के मूल में सीधी सरल मन्नू एवं उनके लेखक पति राजेन्द्र यादव है। मन्नू भण्डारी सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध जाकर राजेन्द्र यादव से प्रेम–विवाह करती हैं। विवाह के बाद राजेन्द्र यादव की बेरुखी एवं समानान्तर जिन्दगी का फॉर्मूला मन्नू भण्डारी के वैवाहिक जीवन के सभी रंग एवं खुशियाँ छीन लेता हैं। राजेन्द्र यादव से अपने को अलग कर लेने का मन्नू भण्डारी का फैसला उनके स्त्री–अस्तित्व मॉडेल को व्याख्यायित करता है। अपने दुःख को बयां करती हुई वह कहती हैं कि "समानान्तर जिन्दगी के नुस्ख़े ने छत तो पहले ही अलग कर दी थी, अब ज़मीन भी खींच ली। इतना बड़ा धोखा......ऐसा छल.......अब इस सम्बन्धहीन सम्बन्ध को लेकर कहाँ खड़ी रहूँगी........कैसे खड़ी रहूँगी. ....और खड़ी भी क्यों रहूँ? नहीं, जो काम राकेश जी नहीं कर पाए.......ठाकौर साहब नहीं कर पाए, उसे अब मुझे ही करना है। राजेन्द्र को अपने से मुक्त कर देना है या फिर अपने को राजेन्द्र से मुक्त कर लेना है।"[19]

मन्नू भण्डारी का बोल्ड रूप पति राजेन्द्र यादव (हंस के सम्पादक) का मीता (प्रेमिका) के साथ विवाहेत्तर सम्बन्ध का खुलासा करने में भी स्पष्ट होता हैं। समाज की विकृति, व्यक्तिगत चुनाव, निर्णय की स्वतंत्रता एवं रूढ़िगत परम्पराओं का खण्डन करने इत्यादि सभी अनछुए पहलुओं को छूने के प्रयास में उनका–बोल्ड लेखन व्यक्त होता है। वह लिखती हैं कि "शुरु से इनका प्रेम मीता से रहा तो फिर मैं बीच में कहाँ से आ गई और क्यों आ गई? और तब मुझे लगा कि अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए मुझे उन सारे प्रसंगों को उजागर करना ही चाहिए। हालांकि उन बेहद अपमानजनक स्थितियों का ब्यौरा प्रस्तुत करना, सबके बीच अपने को नंगा करके खड़ा करने जैसा ही था और कम कठिन काम भी नहीं था यह मेरे लिए, लेकिन जब

राजेन्द्र ने बिना यह सोचे कि मुझ पर क्या गुजरेगी, इसे कर ही दिया तो फिर मैं भी किस दुविधा से ग्रस्त रहती........किस संकोच में बंधी रहती? अब कम से कम ज़बरदस्ती दो के बीच में दरार डालकर इन दोनों को अलग करने के अपयश से तो अपने को बचाऊँ।"[20]

मन्नू भण्डारी का बोल्ड रूप पति राजेन्द्र यादव को अपने घर से अलग करते हुए अपने लिए अलग से फ्लैट ढूँढ़ने को कहने में नज़र आता है। मन्नू भण्डारी कहती हैं "राजेन्द्र जी आप एक महीने में अपने लिए किसी मकान की व्यवस्था कर लीजिए, क्योंकि अब मेरे लिए आपके साथ रहना सम्भव नहीं। अच्छा है, अलग रहेंगे तो आप भी ज़्यादा स्वतंत्र रहेंगे और मैं भी ज़्यादा तनाव मुक्त।"[21]

3.4 प्रभा खेतान

'अन्या से अनन्या' प्रभा खेतान के बोल्ड–लेखन का महाख्यान है। चालीस से ऊपर की उम्र के शादीशुदा एवं बाल बच्चेदार आदमी कलकत्ता शहर के नामी आई सर्जन डॉ. सर्राफ से बाईस (22) वर्ष की प्रभा अपनी आँखों का चैकअप करवाने जाती हैं। डॉ. पेंटास्कोप की सहायता से प्रभा की आँखों में झांकते हुए प्रभा की आँखों की गहराई में उतर जाते हैं। कहते हैं– "इतनी सुन्दर आँखें मैंने आज तक नहीं देखीं।"[22] डॉ. सर्राफ से अपने साँवले रंग की प्रशंसा सुनकर प्रभा खेतान के हृदय में प्रेम के भाव उमड़ने लगते हैं।

बचपन से प्यार को पाने के लिए तरसती प्रभा डॉ. सर्राफ से प्रेम पाकर लज्जा से उनके सीने से लग जाती है। कहती हैं कि "उनकी वह पहली छुअन भीतर तक सहला गई। पहली बार किसी पुरुष ने प्यार से मुझे अपनी हथेलियों में भरा और पहली बार कोई पुरुष मुझसे कह रहा था कि 'तुम कितनी आकर्षक हो......' पहली बार किसी की बाँहों में मैंने खुद को सुरक्षित महसूस किया।"[23] प्रभा अपना सब कुछ उसी समय डॉ. साहब को सौंपते हुए कहती हैं– "मैं आपसे प्यार करती हूँ डॉक्टर साहब..........। मेरा जो कुछ भी है आज से वह आपका हुआ।"[24]

एक स्त्री द्वारा अपने जीवन के कटु सत्य को इस तरह उजागर करना बोल्ड–लेखन है। एक लड़की को बचपन से ही अपने कौमार्य को बचाए रखने का ज्ञान करवाया जाता है। 'अन्या से अनन्या' में प्रभा खेतान अपने बचपन में नौ वर्ष की आयु में घटित यौन उत्पीड़न की घटना का जिक्र डॉ. साहब के सामने बड़ी ईमानदारी से करती हैं। हम अनुमान लगा सकते हैं कि उस अबोध बाल मन पर इस घटना का क्या प्रभाव पड़ा होगा। अपने जीवन के श्याम पक्ष को इस तरह बयां करना उनके बोल्डनेस का उदाहरण है– "हमारी उम्र में अठारह साल का अन्तर है, मैं एक खेला–खाया पुरुष हूँ जबकि तुम्हारा यह पहला अनुभव होगा।"

"नहीं, आप पहले पुरुष नहीं है मेरे जीवन में.........।"

"तो मुझसे पहले कौन था............?" वे तड़प उठे थे, कोमल आवाज सख्त हो उठीं।

"ऐसी ही कुछ घटा था, बस देह के स्तर पर।"

"कौन था वह? मुझसे कहो।"

कोई भी मगर वह प्रेम नहीं था।..........किसी ने जबर्दस्ती मेरा.......। ऐसा कब घटा? जब मैं नौ साल की थी। घर में ही।[25]

'अन्या से अनन्या' में प्रभा खेतान पुरुष प्रधान समाज द्वारा बनाई गई सभी स्त्री विषयक वर्जनाएँ तोड़ती जाती हैं। चयन की स्वतंत्रता, यौनकांक्षा, दैहिक–सुख, भोग की लालसा इस आत्मकथा में पग–पग पर अभिव्यक्त हुई हैं। प्रभा खेतान लिखती हैं कि "प्रेमी या फिर दोस्त, देह या आत्मा? नहीं यों हम अपने को टुकड़ों में बाँट नहीं सकते। मैं जो देना चाह रही हूँ वह पूरा–का–पूरा है, इतना प्रचुर है कि मैं चाहूँ तब भी इसे अपने में समेटकर रखना सम्भव नहीं। यह आदमी अपने खोल में सिमटा रहना चाहता है। अपनी छायाओं से युद्धरत है लेकिन मेरे लिए अपनी इस चाहत भरी दृष्टि का कितना महत्त्व है इसे यह समझना नहीं चाहता। सारी दुनिया के पुरुष एक ओर, बस एक यह पुरुष मेरा है, मेरे लिए है। दुनिया की कोई ताकत मुझे इस राह से वापस नहीं लौटा सकती।"[26]

'अन्या से अनन्या' में प्रभा खेतान विवाहित एवं बाल बच्चेदार डॉ. सर्राफ से खुलकर प्रेम करती है। विवाह बंधन में बँधे बिना ही फिजीकल रिलेशन बनाती है। प्रभा खेतान कहती हैं– "मैं आपसे प्यार करती हूँ डॉक्टर साहब। अपनी जिन्दगी से भी ज्यादा।"[27] आत्मविश्वास से भरी प्रभा डॉ. सर्राफ के बार–बार समझाने पर भी नहीं मानती। कहती हैं कि "ठीक है यह मेरा चुनाव है और मैं इसे निभाऊँगी।"[28] परम्परागत विवाह पद्धति में प्रभा खेतान विश्वास नहीं रखती, प्रेम से बनाए संबंध को महत्त्व देती हुई कहती हैं– "सात फेरों के बिना भी तुम मेरे हो।"[29]

'अन्या से अनन्या' में प्रभा खेतान पीरियड के रुकने पर माँ बनने की आशंका, समाज में इज्जत चली जाने के डर से भयभीत हो जाती हैं, डर के मारे सारा शरीर काँपने लगता हैं। पसीना–पसीना होती प्रभा भगवान से प्रार्थना करती हैं कि जो वह अनुमान लगा रही है, वह सच न हो। डरी एवं सहमी प्रभा कहती हैं– "ऐसे कैसे हो सकता है? अभी तो न जिन्दगी शुरु हुई और ना खतम हुई, फिर बीच में यह सब क्या घट गया? ऐसा लगा मानो मुझे जिन्दा रहते चिता पर लिटा दिया गया है। मेरे चारों ओर लकड़ी जलाए फेरी दी जा रही है, अब मुखाग्नि दी जाएगी...मगर ऐसे कैसे? कौन मेरी इच्छा के विरुद्ध मेरा शवदाह कर रहा हैं?"[30]

माँ बनना हर स्त्री का अधिकार भी है और ईश्वर का वरदान भी, किन्तु अविवाहित स्त्री के लिए माँ बनना अभिशाप है। प्रभा आज जिन्दगी के जिस मोड़ पर खड़ी है, वहाँ अंधकार एवं बदनामी के सिवा कुछ भी प्राप्त होने वाला नहीं। न जाने अभी प्रभा खेतान के जीवन में और क्या घटित होने वाला था। भविष्य से अनजान प्रभा लिखती हैं कि "भाग्य ने मुझे फिर पटक दिया। क्रूर नाटक का यह कौन–सा अंक लिखा जा रहा था, मैं समझ नहीं पाई। मैं सोचने लगी आखिर जिन्दगी किस क्लाइमेक्स पर पहुँचकर दम लेगी।"[31]

विषम परिस्थितियों से संघर्ष करने वाली साहसिक प्रभा खेतान माँ बनने के अहसास से परिवार एवं समाज में अपनी अस्मिता की चिन्ता में डूब जाती है। कहती हैं कि "यदि किसी को मालूम पड़ जाए तो दुनिया की नज़र में मेरी क्या इज़्जत रहेगी, खुद अपनी ही नज़र में मेरी कोई इज़्जत नहीं बची। डॉ. साहब ने तो मना ही किया था, यह मेरी करनी थी......मैंने ही पहल की थी।"[32]

अपराध बोध से ग्रसित प्रभा अपनी इस भूल के लिए कभी डॉ. साहब को जिम्मेदार ठहराती है, तो कभी स्वयं को। प्रभा खेतान लिखती हैं कि "मुझे आपका सहारा चाहिए डॉक्टर साहब, मैं अब किसके पास जाऊँ? शुचिता और शर्मासार होने के इस नाटक से मैं बेहद थक चुकी हूँ। किसी ने बचपन में मुझे खराब किया और अब आपने। काश! मेरे जीवन में यह सब नहीं घटा होता, लेकिन क्या यह मेरी गलती है, सिर्फ मेरी? और यदि नहीं तो मैं क्यों दिन–रात इस आग में झुलसती रहती हूँ? आपको शर्म क्यों नहीं आ रही?"[33]

हमारे जीवन में समाज की भूमिका कितनी महत्त्वपूर्ण है। प्रभा खेतान की आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' इसका प्रमाण है। समाज के भय से बुरी तरह भयभीत प्रभा इस अनचाहे मातृत्व सुख से किसी भी कीमत पर मुक्ति पा लेना चाहती है। एबॉर्शन कराने की बात डॉ. साहब से कहती हैं, किन्तु डॉ. साहब पहले ही प्रभा से कह चुके हैं– "मैं तुम्हें अपना नाम तो नहीं दे सकता, लेकिन यह बच्चा हमारे प्यार........।"[34]

प्रभा खेतान डॉ. साहब से कहती हैं– "प्यार–व्यार कुछ नहीं, बस देह का जबर्दस्त आकर्षण था और उसी का फल मुझे भोगना पड़ रहा है। डॉक्टर साहब मैं बेड़ियों में जकड़ गई हूँ। भीतर–बाहर की इन जंजीरों को यदि काट पाती, तो शायद कुछ हल्का लगता।"[35]

डॉ. साहब प्रभा खेतान को समझाते हुए कहते हैं– "मुझे यह अपना अंश लग रहा है और तुम उसे निकाल फैंकना चाहती हो।"[36] डॉ. साहब के मुख से इस बात को सुनकर गुस्से से भरी प्रभा खेतान कहती हैं– "तो क्या करूँ? मदर मेरी बनकर जीसस क्राइस्ट को जन्म दूँ?"[37]

अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, दर्शनशास्त्र, विश्व–बाजार एवं उद्योग जगत की गहन जानकारी रखने वाली सक्रिय स्त्रीवादी लेखिका प्रभा खेतान अविवाहित मातृत्व से मुक्ति पाने के लिए एबॉर्शन कराने में भी किसी प्रकार की आत्मग्लानि के भाव पैदा नहीं होते वह लिखती हैं– "भ्रूणहत्या एक पाप कर्म है ऐसी कोई भावना नहीं थी मेरे मन में। मैं कुछ गलत कर रही हूँ ऐसा क्षण भर को मुझे नहीं लगा।"[38]

अन्ततः डॉ. सर्राफ की व्यवस्था पर प्रभा को अनचाहे मातृत्व से मुक्ति मिल ही जाती है। भविष्य में कभी माँ न बनने का सुख, सूनी गोद, सूनी माँग, मातृत्व सुख से वंचित प्रभा खेतान स्त्री जीवन की पूर्णता से रिक्त हो चुकी हैं। भविष्य में कभी माँ न बनने की बात सुनकर प्रभा खेतान कहती हैं– "क्या अब मैं कभी माँ बन सकूँगी?"[39] प्रभा खेतान के जीवन में अभी एक घटना का घटित होना ओर शेष था। डॉ. साहब हॉर्निया के ऑपरेशन के साथ नसबंदी करवा लेते हैं। दुःख में डूबी प्रभा खेतान अपने को बेहद अकेला महसूस करती हैं डॉ. साहब से उनके जीवन में अपने लिए स्थान माँगती हैं। कहती हैं कि "लुका–छुपी का यह खेल मुझसे बर्दाश्त नहीं होता, पार्क की बेंचों पर, झाड़ियों की ओट में किया गया प्यार, प्यार नही ंहोता। दिन के उजाले में आप मुझे अपने साथ रखिए, अपने जीवन में स्थान दीजिए।"[40]

प्रभा खेतान के जीवन में घटनाएँ इतनी जल्दी–जल्दी घट जाती हैं कि प्रभा चाहकर भी उन्हें घटित होने से नहीं रोक पाती हैं। डॉ. साहब अपने घर–परिवार, अपनी जिन्दगी में व्यस्थ हो जाते हैं। प्रभा खेतान स्वयं को आत्मनिर्भर बनाने के लिए व्यापार की दुनिया से जुड़ जाती है। डॉ. साहब की उपेक्षा प्रभा खेतान के बर्दाश्त से बाहर है। प्रभा खेतान उन स्त्रियों की तरह नहीं, जो हार मानकर किसी एक कोने में बैठकर अश्रु बहाए डॉ. साहब अगर एक से अधिक अफेयर चला सकते हैं, तो प्रभा क्यों नहीं?

प्रभा खेतान भी पुरुषों की तरह व्यवहार करती हैं। प्रभा खेतान दूसरे पुरुष के सम्पर्क में आती है, किन्तु भीतर ही भीतर इस संबंध से स्वयं को अपराधी भी महसूस करती है। प्रतिशोध में भरी प्रभा खेतान डॉ. साहब से कहती हैं– "डॉक्टर साहब किसी और को खोज सकते हैं तो मैं क्यों नहीं खोज सकती? जितनी चोट मुझे लगी है उतनी चोट उन्हें भी लगनी चाहिए। मैं भली–भाँति समझ गई थी कि केवल कहने–सुनने से बात बनेगी नहीं। पुरुष जैसे औरत को काम में लेता है, औरत भी वैसे ही पुरुष का व्यवहार कर सकती है। औरत भी तो कह सकती है तू नहीं तो कोई और सही। कम–से–कम एक बार किसी अन्य पुरुष की बाँहों में अपना होना तो महसूस कर पाऊँगी।"[41]

'अन्या से अनन्या' आत्मकथा में प्रभा खेतान का बोल्ड रूप बचपन में असमय पीरियड होने की घटना का खुलासा करने में नजर आता है। डरी सहमी प्रभा माँ से कहती हैं– "अम्मा! मुझे पीरियड्स......."[42] प्रभा के मुख से यह बात सुनते ही मां का गुस्सा विस्फोटक की भाँति–प्रभा का गुस्सा विस्फोटक की भाँति प्रभा पर फूट पड़ता है माँ प्रभा को भंगन, भाटा, पत्थर, गधी, बोकी इत्यादि अपमान जनक शब्दों से पुकारते हुए कहती हैं– "मरणजोगी। आज ही तुझे यह सब होना था.....?"[43] ताई–चाची एवं परिजनों की गिद्ध दृष्टि से भयभीत माँ प्रभा से कहती है– "कल तेरे बाबूजी की बरषोदी (वार्षिकी) है। ताई–चाची सब आएँगी और ताई की गिद्ध दृष्टि से कुछ छिप नहीं सकता–भगवती, यह तो साढ़े दस की उमर में ही चौदह की लगने लगी।"[44] माँ को चिन्तित देख प्रभा माँ से कहना चाहती हैं कि "इसमें मेरा अपराध क्या है अम्मा? तुम बोलो मेरा अपराध क्या है? पर बिना अपराध के भी अपराधबोध। अपनी ही मासूमियत खोने की यह कैसी निर्मम सजा मुझे मिल रही हैं?"[45]

वेदना एवं मानसिक पीड़ा से ग्रसित प्रभा पीरियड्स होने पर जिल्लत झेलते हुए अपने दर्द को बयां करते हुए कहती हैं– "वह भादों की उमस भरी दुपहिया और चुपचाप बैठे रहना। सारा अस्तित्व हिचकोले खा रहा था। अम्मा मेरा अपराध क्या है? क्या महीने–के–महीने टाँगों के बीच रिसता हुआ खून मुझे अच्छा लगता है? और इसके कारण कैसी अजीब–सी आत्मग्लानि, अपराधबोध से मन खारा क्यों हो जाता है? गीता को तो अभी तक कुछ नहीं हुआ। फिर मुझे ही क्यों?"[46]

अपने ही घर में भाई–बहनों द्वारा "हे..........हे.............अछूत कन्या..........अछूत कन्या!"[47] कहकर चिढ़ाया जाना मासूम ह्दय की कोमलता पर प्रहार करता है। शर्म से पानी–पानी होती प्रभा स्त्री की इस जैविक क्रिया जिस पर किसी भी स्त्री का नियन्त्रण नहीं है के लिए स्वयं को ही कसूरवार मानती है। दाई माँ से अपना दर्द बयाँ करते हुए कहती हैं– "यह मेरे शरीर से हर महीने खून क्यों निकलता है?"[48] दाई माँ मासूम प्रभा को समझाते हुए कहती हैं– "तू जरा जल्दी बड़ी हो गई बिटिया!"[49] दाई माँ के इस कथन पर प्रभा पूछ बैठती हैं– "क्यों दाई माँ?"[50] प्रभा के इस प्रश्न पर निरूत्तर होते हुए दाई माँ गहरी साँस लेती है फिर कहती हैं– "अब हम का बताई?"[51] तभी बालपन में योनि के क्षत–विक्षत होने की घटना का स्मरण प्रभा हो आता है उस काली अँधियारी रात में भी कुछ ऐसा ही घटा था प्रभा के साथ। इस संदर्भ में प्रभा खेतान लिखती हैं कि "उस दिन की उस घटना से भी तो पैंटी में खून लगा था? मेरा सारा शरीर थर्रा उठा। सर के ऊपर से एक झोंक कव्वों का काँव–काँव करता हुआ निकल गया। मैं खामोश, नल

के नीचे रखे हुए खून से भरे हुए कपड़े को देख रही थी। पानी के साथ नाली की ओर बहता हुआ गाढ़ा खून और अब इस कपड़े को साबुन से धोकर सुखना होगा।"[52]

प्राचीनकाल से ही हिन्दू परम्परा में स्त्रियों को मासिक धर्म के दौरान कई नियमों का पालन करना होता था। धार्मिक रिवाजों एवं विशेष रूप से मन्दिरों में पूजा–पाठ करना, इस समय स्त्रियों के लिए वर्जित था। स्त्रियों के मासिक धर्म को लेकर कई भ्रांतियाँ एवं मत समाज में फैले हुए थे। इतिहास में यदि हम झांक के देखे, तो हम देखते है कि उस काल में स्त्रियों को आज की तुलना में बहुत ज्यादा शारीरिक श्रम करना पड़ता था। घर के कार्य करने के साथ–साथ खेतों पर भी स्त्रियाँ श्रम करती थी। स्वास्थ्य एवं आराम की दृष्टि से 3 से 5 दिन मासिक धर्म के दौरान स्त्रियों को घर के कार्यों से दूर रखा जाता था। एक अन्य मत के अनुसार मासिक धर्म दौरान स्त्री एक विशेष स्थिति में होती है, तो उनके पास नकारात्मक ऊर्जाएँ खिंची चली आने की सम्भावना अधिक रहती है। इस कारण भी स्त्रियों को मन्दिर नहीं जाने दिया जाता था, क्योंकि कुछ ऊर्जाएँ चक्र के कारण उनकी ओर आकर्षित होती हैं। दूसरा कारण जंगली जानवरों से सुरक्षा भी है, क्योंकि प्राचीनकाल में स्त्रियाँ जंगलों में लकड़ियाँ काटने जाया करती थी। जानवरों को खून की गंध जल्दी आती है। स्त्रियों की सुरक्षा की दृष्टि से यह मान्यता जुड़ी हुई थी। यह कोई धार्मिक कारण नहीं है। यह एक व्यवहारिक कारण भी है। वैदिक युग में धर्म ज्यादा प्रबल नहीं था स्वास्थ्य एवं साफ–सफाई की दृष्टि से घर, रसोई, पूजा–पाठ से स्त्रियों को मासिक धर्म के दौरान दूर रखा जाता था। पुराणों में स्त्रियों के मासिक धर्म से जुड़ी एक कहानी भी मिलती है। एक बार देव गुरु बृहस्पति देवराज इन्द्र से नाराज हो गए उसी दौरान असुरों ने देव लोक पर आक्रमण कर दिया है। देवराज इन्द्र को लोक छोड़कर जाना पड़ा। देवराज इन्द्र ब्रह्मा जी के पास मदद माँगने पहुँचे। ब्रह्मा जी ने उन्हें उपाय के तौर पर ब्रह्म ज्ञानी की सेवा करने का उपाय बताया और कहा कि वे अगर प्रसन्न हो गए, तो इन्द्र को स्वर्ग मिल जाएगा। ब्रह्मा जी की कथानुसार इन्द्र ब्रह्मज्ञानी की सेवा करने लगे, किन्तु इन्द्र को यह नहीं पता था कि उस ब्रह्मज्ञानी की माता एक असुर थी। इन्द्र द्वारा अर्पित की गई हवन सामग्री देवताओं की जगह वह असुरों को अर्पित कर रहा था। इन्द्र को पता चला तो वे क्रोधित हो गए और इन्द्र ने ब्रह्मज्ञानी की हत्या कर दी। ब्रह्मज्ञानी की हत्या का पाप इन्द्र को लगा। इन्द्र का पाप भयानक राक्षस का रूप लेकर उनका पीछा करने लगा। उस राक्षस से बचने के लिए इन्द्र ने खुद को एक फूल के भीतर छिपा लिया और उसी के भीतर छुपकर एक लाख साल तक भगवान विष्णु की तपस्या करते रहे। भगवान विष्णु इन्द्र की तपस्या से प्रसन्न हुए। इन्द्र को ब्रह्म हत्या के दोष से बचने का एक उपाय बताया। भगवान विष्णु ने इन्द्र को पेड़, जल, भूमि और स्त्री को अपने पाप का थोड़ा–थोड़ा अंश देने के लिए मनाया। इन्द्र ने अपने पाप का एक चौथाई हिस्सा पेड़ को दिया और उसके

बदले पेड़ को वरदान दिया कि वह अपने आप जीवित हो जाएगा। जल ने इन्द्र के पाप का एक चौथाई हिस्सा लिया, तो इन्द्र ने जल को वरदान दिया कि जल को अन्य वस्तुओं को पवित्र करने की शक्ति होगी। भूमि ने ब्रह्म हत्या का दोष अपने ऊपर लिया, तो इन्द्र ने भूमि को वरदान दिया कि भूमि पर आने वाली किसी भी चोट से उसके ऊपर कोई असर नहीं होगा और वह ठीक हो जाएगी और अन्त में इन्द्र का शेष बचा पाप स्त्रियों ने ले लिया, जिसके कारण स्त्रियों को हर महिने मासिक धर्म होता है, लेकिन इसके बदले इन्द्र ने स्त्रियों को वरदान दिया कि वह पुरुष की तुलना में कई गुना ज्यादा काम का आनन्द उठा पाएगी। इन्द्र के पाप को मासिक धर्म के रूप में स्त्रियाँ ढो रही है। इसी कारण मासिक धर्म के दौरान उन्हें भगवान एवं गुरु से दूर रहने को कहा जाता है। स्त्रियों में मासिक धर्म के कई वैज्ञानिक कारण भी हैं। वैज्ञानिकों का मानना है कि इस दौरान यौनि से रक्तस्त्राव होता है, जो औसतन 28 दिन के अन्तर के बाद एस्ट्रोजन–प्रोजेस्ट्रोन द्वारा तैयार किए गए गर्भाशय अस्तर से निकलता है। महावारी की समूची क्रियाविधि हार्मोन नियन्त्रण पर निर्भर करती है। यह मुख्यतः हैपोथालेमस और अग्रवर्ती सीटूएटरी (मस्तिष्क में स्थितर होती है) एवं डिम्ब ग्रन्थियों से होता है।

यहाँ पर यदि मनुस्मृति की चर्चा की जाए तो हम देखते हैं कि मनुस्मृति में नारी को देवी तुल्य माना गया है उसे पूजनीय बताया गया है, किन्तु स्त्रियों में मासिक धर्म को पाप की संज्ञा दी गई है। इन दिनों अपवित्र मानकर उसे घर एवं पूजा–पाठ से दूर रखने को कहा गया है, किन्तु यहाँ पर प्रश्न उठता है कि मन्दिरों में विराजमान 'माँ' भी तो एक स्त्री ही है क्या उन्हें मासिक धर्म नहीं होता? अगर होता हो तो क्या उन्हें भी मन्दिरों से निकाल कर बाहर कर देंगें। नहीं न, तो संसार की स्त्रियाँ भी तो उन्हीं 'माँ' का स्वरूप है, तो मासिक धर्म के दौरान उनके साथ ऐसा व्यवहार क्यों किया जाता है? लड़कियों में मासिक धर्म को लेकर आज भी समाज में कई भ्रांतियाँ है। आज भी गाँवों में स्त्रियों के मासिक धर्म के दौरान छुआछूत देखने को मिलती है। लोगों का मानना है कि यदि लड़की विवाह से पूर्व मासिक धर्म से होने लगे तो माता–पिता को बहुत बड़ा पाप लगता है। प्रभा खेतान को भी असमय पीरियड होने पर इन्हीं परम्परागत रूढ़िवादी मान्यताओं के कारण घर से अगल भादों की उमस भरी दोपहर में छत पर पूरा दिन अकेले गुजारना पड़ा।

खेतान हाऊस में पिता के बाद दाई माँ ही एक ऐसी व्यक्ति है, जिनसे प्रभा अपना सारा दुख–सुख बाँटती है। प्रभा दाई माँ से अपनी अम्मा के नाराज होने का कारण पूछती है कहती है– "दाई माँ! अम्मा मुझसे चिढ़ती क्यों है? क्या इसीलिए.......?"[53] प्रभा को परेशान एवं बैचेन देख दाई माँ प्रभा को समझाते हुए कहती हैं– "ई तो कहो कि शहर है, हमार गाँव में तो बियाह के

पहिले कवनों लड़की का ई महीना शुरु हो जाए तो माँ–बाप का सर पर पाप का बोझ बढ़त है।"[54] स्त्री की जैविक क्रियाओं (पीरियड, मेनोपॉस) को पाप के नज़रिए से देखने जाने पर समाज की संकुचित मनोवृति पर आहत होते हुए प्रभा खेतान लिखती हैं कि "पाप? क्या हर लड़की, हर महीने पाप का बोझ बढ़ाती है? उस दिन पूरी बात समझ में नहीं आई थी। बस जीवन में कहीं कुछ बहुत गलत घट गया। अपराध? पाप? नहीं तो अम्मा मुझसे इतनी नफरत नहीं करती। उन्हें मेरा कुछ भी क्यों नहीं अच्छा लगता? जरा–सी हरारत, हल्की–सी, खाँसी और उनके दिमाग से चिनगारियाँ क्यों फूटने लगती हैं। कहीं कुछ शॉर्ट सर्कित हो जाता है।"[55] प्रभा खेतान अपने प्रति अम्मा की बेरूखी के कारण खोजती है। अन्ततः वह कारण का पता भी लगा लेती हैं। पिता की असमय मृत्यु ने अम्मा के जीवन के सारे रंग, रस छीन लिए थे। परिवार की जिम्मेदारी, दो अविवाहित लड़कियों (यथा–प्रभा, गीता) की शादी इत्यादि ऐसे कई कारण थे, जिसके कारण अम्मा के स्वभाव में चिड़चिड़ापन आ गया था। इस आत्मकथा में प्रभा खेतान ने स्वयं अपनी अम्मा के स्वभाव का जिक्र करते हुए लिखा है– "वे तो खुद विद्रोही थीं, औरत होने की नियति को अस्वीकारती हुई।"[56] आगे इसी संदर्भ में प्रभा खेतान लिखती हैं कि "अम्मा ने कभी नहीं कहा मेरी तरह बनो। जन्म से वे विद्रोही थीं और विरासत में मुझे उनका विद्रोही स्वभाव मिला।"[57]

'अन्या से अनन्या' आत्मकथा में प्रभा खेतान अपने साथ घटित असफल लेस्वियन संबंध की चर्चा भी करती हैं। पाश्चात्य देशों में इस तरह के संबंध साधारण बात है। 10वाँ लगते पीरियड का होना 40वाँ लगते मेनोपॉस का बंद हो जाना इत्यादि स्त्री की जैविक क्रियाओं का जिक्र करना, जिस समाज में निषेध हो उसी समाज में प्रभा खेतान द्वारा इसे लिखकर सरेआम बेपर्दा करना असाधारण एवं बोल्ड कार्य हैं। प्रभा खेतान जैसी साहसिक महिला जिन्होंने लिखने का यह कार्य किया है। 'हंस' में धारावाहिक रूप से प्रकाशित इस आत्मकथा को जहाँ एक बोल्ड और निर्भीक आत्मस्वीकृति की साहसिक गाथा के रूप में अकुंठ प्रशंसनाएँ मिली, वहीं बेशर्म और निर्लज्ज स्त्री द्वारा अपने आपको चौराहे पर नंगा करने की कुत्सित बेशर्मी का नाम भी इसे दिया गया है।

स्वयं प्रभा खेतान 'अन्या से अनन्या' आत्मकथा में लिखती हैं कि वैसे आत्मकथा लिखना तो स्ट्रीट्स का नाच है। आप चौराहे पर एक–एक कर कपड़े उतारते जाते हैं। लिखने वाले के मन में आत्मप्रदर्शन का भाव किसी–न–किसी रूप में मौजूद रहता है, मन के किसी कोने में हल्की सी–चाहत रहती है कि लोग उसे गलत नहीं समझें कि जो कुछ भी वह लिख रहा है उसे सही परिप्रेक्ष्य में लिया जाए पर दर्शक वृन्द अपना–अपना निर्णय लेने में स्वतंत्र है। उनका मन, वे इस नाच को देखें या फिर पलटकर चले जाए।"[58]

3.5 सुषम बेदी

'आरोह–अवरोह' आत्मकथा में सुषम बेदी का बोल्ड रूप स्त्री की जैविक क्रियाओं यथा पीरियड्स के होने पर अपना औरत कहलाए जाना, बहुत देर तक बाथरूम में बन्द रहने पर बड़ी बहनों द्वारा पीरियड्स शुरु होने की बात पूछना इत्यादि घटनाओं का खुलासा करने में नज़र आता है। असमय पीरियड्स जैसी घटना का घट जाना तेरह–चौदह वर्ष की सुषम बेदी के लिए कितना कष्टकर रहा होगा। सुषम बेदी का जन्म एक ऐसे समाज में हुआ था, जहाँ पर लड़कियों को समय से पूर्व पीरियड्स के विषय में नहीं बताया जाता था। समाज में लड़कियों के पीरियड्स शुरु होने की घटना के संबंध में अनेक भ्रांतियाँ फैली हुई थी। पीरियड्स के होने पर घर के एक कोने में बैठे रहना, पूजा घर, रसोईघर में नहीं जाना, छुआछूत मनाना इत्यादि सामाजिक कुरीतियों का ही हिस्सा थी। सुषम बेदी गुसलखाने में माँ के खून से सने कपड़े उनकी बीमारियों से जोड़कर देखती थी। सुषम बेदी को जब पहली बार पीरियड्स होता है, तो वह कई तरह की आशंकाओं से भर जाती हैं। स्वयं को कोई भयंकर बीमारी होने की कल्पना से कांप उठती हैं। बड़ी बहनों के सहयोग से बहुत जल्दी ही इस डर से मुक्ति भी पा लेती है। उस दिन उन्हें स्त्रियों की जैविक क्रियाओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है। बड़ों की बातों में शामिल होने का प्रमाण–पत्र भी पा लेती है। वह लिखती हैं कि "शाम के समय में जब देर तक गुसलखाने में बंद रही थी तो बाहर बहनों की खुसपुस भी मेरे कान पड़ रही थी कि लगता है इसका शुरु हो गया है। उनका इस तरह अनुमान से ही मेरे बारे में सब जान जाना मुझे अच्छा नहीं लगा था, जैसे मुझे पूरी तरह से उधेड़कर सामने पेश कर दिया हो। उनके शब्दों में अब मैं भी एक औरत हो गयी थी। अपना औरत कहलाया जाना मुझे अच्छा नहीं लगा था।"[59]

निष्कर्ष

मेरी दृष्टि से कहा जा सकता है कि इक्कीसवीं सदी की सभी आत्मकथा लेखिकाएँ अपने खिलाफ खड़ी सामाजिक परम्पराओं, रूढ़ियों और तथाकथित संस्कारों की बाढ़ से उबरने के लिए प्रयासरत हैं। आत्मकथा लेखिकाओं पर लेखन के क्षेत्र में भी बहुत हमले हुए, बहुत आरोप लगे, लांछन उछाले गये। स्त्री समाज की मुक्ति की छटपटाहट ही उसे अपने प्रगतिगामी मार्ग बनाने के लिए प्रेरित करती रही है। आत्मकथा को पढ़ते हुए आगे की घटनाओं को जानने के लिए पाठक के भीतर बढ़ता कौतूहल ही आत्मकथा–साहित्य की प्रयोजनशीलता को प्रमाणित करता है।

♦♦♦♦

संदर्भ सूची

1. बधिया स्त्री (अनुवाद : मधु. बी. जोशी), उदधृत, जर्मेन ग्रीयर, पृ.–15
2. उपनिवेश में स्त्री : मुक्ति कामना की दस वर्ताएँ, प्रभा खेतान, पृ.–45–50
3. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, 'जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम', पृ.–129
4. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, उलट पवन कहाँ राखिए, पृ.–40–41
5. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहिं विसराम, पृ.–126
6. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, उलट पवन कहाँ राखिए, पृ.–51
7. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, उलट पवन कहाँ राखिए, पृ.–58
8. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–59
9. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, पृ.–120
10. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, अपराध बोध का बीज, पृ.–84
11. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, सच बोलना क्यों जरुरी, पृ.–16
12. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, वफादारी की कसम टूटी, पृ.–261
13. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, मद्रास, पृ.–336
14. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, देह की भूख, पृ.–125
15. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, आंखों से झलकता प्यार, पृ.–272
16. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, मद्रास, पृ.–339
17. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, जब रिश्तों की गरिमा टूटी, पृ.–300
18. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, यू आर माई लिटिल एंजेल, पृ.–220
19. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–123
20. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–206
21. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–172
22. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–66
23. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–66
24. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–69
25. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–72–73
26. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–174
27. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–79
28. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–80

29. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—80
30. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—93
31. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—94
32. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—96—97
33. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—94
34. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—95
35. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—95
36. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—95
37. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—95
38. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—96
39. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—97
40. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—98
41. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—251
42. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—39
43. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—39
44. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—39
45. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—39
46. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—40
47. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—40
48. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—40
49. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—40
50. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—40
51. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—41
52. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—40
53. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—40
54. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—40
55. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—40
56. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—41
57. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—33
58. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—255
59. आरोह—अवरोह, सुषम बेदी, यौवन की देहरी पर, पृ.—65

चतुर्थ अध्याय

इक्कीसवीं सदी के स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य में अस्मिता के प्रश्न

चतुर्थ अध्याय

इक्कीसवीं सदी के स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य में अस्मिता के प्रश्न

स्त्री का अर्थ

'स्त्री' शब्द की व्युत्पत्ति और उसके अर्थ के विषय में विभिन्न विद्वानों ने अपने–अपने मत प्रकट किये हैं। **वामन शिवराम आप्टे** के अनुसार स्त्री शब्द की उत्पत्ति इस प्रकार हुई है–स्त्यायेते शुक्रशेणितेयस्याम, स्त्यै+ड्रप्+ङीय्। उन्होंने स्त्री का अर्थ इस प्रकार बताया है– 1. नारी, औरत 2. किसी भी जानवर की मादा–गज स्त्री, हरिण स्त्री आदि, श. 5/22 3. पत्नी–स्त्रीणां भर्ती धर्म दा राश्च सुंसाम्=मा. 6/18, मेघ 28 4. स्त्रीलिंग या स्त्रीलिंग का कोई शब्द आपः स्त्री भूम्नि–अमर।[1]

'मानक हिंदी शब्दोकश' में रामचन्द्र वर्मा ने स्त्री का व्यापक अर्थ प्रस्तुत किया है– स्त्री (सं.) (भाव–स्त्रीत्व, वि. स्त्रैण) 1. मनुष्य जाति की वयस्क मादा। 'पुरुष' का विपर्याय। 2. उक्त जाति की कोई विशेष सदस्या। जैसे–पुरुष स्त्री का गुलाम बन जाता है। 3. पत्नी, जोरू 4. मादा जंतु। पुरुष या नर का विपर्याय 5. एक वर्ग वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में 2–2 गुरु वर्ण होते है। कामा 6. दीमक 7. प्रियंगुलता 8. व्याकरण में स्त्रीलिंग का संक्षिप्त रूप।[2]

विभिन्न कोशों के अनुसार स्त्री का अर्थ

1. **बृहत् हिंदी कोश** में स्त्री का अर्थ इस प्रकार बताया गया है–स्त्री. (सं.) और (शरीर, रचना, स्वभाव, इत्यादि विशेषताओं के कारण स्त्रियों के 4 भेद ये हैं– पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी, हस्तिनी), पत्नी, मादा, पशु, सफेद चींटी, दीपक, प्रियंगु, एक वृत्त।[3]

2. **राजपाल हिंदी कोश** में स्त्री का अर्थ इस प्रकार प्रस्तुत किया है– स्त्री–सं. (स्त्री.) 1. मनुष्य जाति की वयस्क मादा, औरत, नारी 2. मनुष्य जाति की विशेष सदस्या 3. पत्नी, जोरू।[4]

'यास्क' की दृष्टि में स्त्री का अर्थ 'लजालु'[5], 'पाणिनी' की दृष्टि में **'स्त्यै'** का अर्थ है– शब्द करना अथवा इकट्ठा करना (स्त्यै शब्द संघातयोः)[6] **'पतंजलि'** ने पाणिनी के अष्टाध्यायी के

'स्त्रियाम्' सूत्र के भाष्य में स्त्री के विभिन्न पक्षों पर विचार करते हुए कहा है कि लोक में कुछ शारीरिक चिन्हों (स्तन और केश भग) को स्त्री कहा जाता है। पतंजलि ने स्त्री का एक अन्य अर्थ बताते हुए कहा है कि शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध सबका समुच्चय ही स्त्री है। (शब्द स्पर्श रूप रस गंधानां गुणानां स्तयानं स्त्री)।[7] पतंजलि के मतानुसार स्त्री को स्त्री इसलिए कहा गया है, क्योंकि गर्भ की स्थिति उसके अंदर होती है। (स्त्यायति अस्यां गर्भ इति 'स्त्री')।[8]

वस्तुतः हिंदी–साहित्य और संस्कृत–साहित्य में 'महिला' के विभिन्न पर्यायवाची शब्दों में 'स्त्री' या 'नारी' शब्द ही सर्वाधिक प्रचलित है। स्त्री के अन्य पर्यायवाची में मैना, ग्ना, योषा, वामा, अबला, सुंदरी, प्रमदा, ललना, मानिनी इत्यादि मुख्य है। नर के धर्मवाली या नर से संबंध होने के कारण स्त्री का 'नारी' नामकरण हुआ है नारी को 'मैना' पुरुष द्वारा सम्मान देने के कारण कहा गया।[9] नारी से पुरुष संसर्ग करते है इसलिए यह 'ग्ना' कही जाती है।[10] स्त्री को 'योषा' भी कहा गया है, क्योंकि वह स्वयं को पुरुष के साथ जोड़ती है।[11] स्त्री को 'वामा' भी कहा गया है, क्योंकि वह सौंदर्य बिखेरती है।[12] स्त्री में शारीरिक बल की अपेक्षा मानसिक बल ज्यादा होता है इसलिए उसे 'अबला' भी कहा जाता है। जिसके सौन्दर्य से पुरुष का हृदय द्रवित हो उठे उसे 'सुन्दरी' कहा जाता है।[13] हल्के से हल्के भाव से पुरुष को उत्तेजित कर देने की विशेषता रखने वाली स्त्री 'प्रमदा' कही जाती है।[14] इसी तरह जिस स्त्री में लालसा, इच्छा अधिक हो, उसे 'ललना' कहा गया है।[15]

स्त्री का हर रूप अपने आपमें महत्त्वपूर्ण एवं पूर्णता से भरा हुआ है अपने गर्भ से एक नवजीव को उत्पन्न करती है तो 'माँ', 'जननी', किसी पुरुष से विवाह करती है तो 'पत्नी'। गृहस्थी को सुचारु रूप से चलाती है तो 'सुलक्ष्मी', 'सुगृहिणी' कही जाती है। स्त्री का रूप माँ, बेटी, पत्नी हर प्रकार से सम्मानीय, पूजनीय एवं आदरणीय है। हाड़ माँस से बनी होने के कारण चारित्रिक एवं नैतिकता के आचरण करने के कारण 'मानवी' भी कही जाती है।

अस्मिता का अर्थ

विद्वानों द्वारा 'अस्मिता' शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ इस प्रकार बताए हैं **'वामन शिवराम आप्टे'** के अनुसार अस्मिता शब्द की व्युत्पत्ति 'अस्मि्+तल+टाप्' से हुई है, जिसका अर्थ 'अहंकार' है।[16] 'अस्मि' शब्द का विस्तृत रूप 'अस्मिता'। 'अस' (होना) धातु वर्तमान काल एकवचन और उत्तम पुरुष वाचक शब्द है, जिसका अर्थ है–मैं अथवा अहम्।[17]

विभिन्न कोशों के अनुसार अस्मिता का अर्थ

'बृहत् हिंदी कोश' में 'अस्मिता' का अर्थ अहंता, अहंकार बताया गया है। साथ ही इसका एक अन्य अर्थ 'योगशास्त्रोक्त पाँच प्रकार के क्लेशों में एक किया गया है।[18]

मानक हिंदी कोश में अस्मिता शब्द की व्युत्पत्ति 'अस्मि्+तल्+टाप्' से हुई है। 'अस्मिता' का इस कोश में अर्थ इस प्रकार बताया गया है (क) मन का यह भाव या मनोवृत्ति की मेरी एक पृथक् और विशिष्ट सत्ता है, अर्थात् मैं हूँ। अहंभाव (इगोइज्म)। (ख) अभिमान। अहंकार। घमण्ड।[19]

राजपाल हिंदी शब्दकोश के अनुसार अस्मिता के दो अर्थ बताए हैं– 1. अहंभाव अर्थात् अपनी सत्ता का भाव, आपा। 2. अहंकार, अभिमान।[20]

हिंदी शब्द सागर (प्रथम भाग) में अस्मिता के दो अर्थ बताए हैं– (क) अस्मिता (संज्ञा स्त्री.)– 1. योगशास्त्र के अनुसार पाँच प्रकार के क्लेशों में एक द्रक द्रष्टा और दर्शन शक्ति को एक मानना या पुरुष (आत्मा) और बुद्धि में अभेद मानना। (ख) अहंकार। संख्या में इसको मोह और वेदांत में हृदयग्रन्थि कहते है।[21]

डॉ. सुरेन्द्रनाथ सिंह का मत है कि "अस्मिता का अर्थ है–अहंता, विद्यमानता अथवा होने का भाव अर्थात् वस्तु के स्वरूप का सम्यक् संबोध कराने वाली तत्त्वमयता उसकी अस्मिता है।"[22]

डॉ. सुरेशचंद्र गुप्ता के मतानुसार 'अस्मिता' का कोशगत अर्थ अहंकार का वाचक बताया गया है, किन्तु प्रयोग रूढ़ि से इसे 'निजत्व' का समानार्थी बना दिया है।..........अस्मिता जनित गौरव का संबंध व्यक्ति, जाति, समाज और राष्ट्र से भी हो सकता है। वस्तुतः 'अस्मिता', आस्था, और गौरव संकल्प का बोधक शब्द है।[23]

एक अन्य स्थान पर अस्मिता को परिभाषित करते हुए डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्ता लिखते हैं कि– "'अस्मिता' को परिभाषित करना कठिन है, फिर भी 'मैं हूँ' से लेकर 'मैं किसलिए हूँ' तक की अंतर्यात्रा, कई पड़ावों से लेकर अंततः 'अस्मिता' के गंतव्य पर पहुँचकर पूरी होती है।"[24]

इस प्रकार, विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाएँ, कोशगत अर्थ के अध्ययन के उपरान्त हम कह सकते हैं। कि 'अस्मिता' अस्तित्व बोध, अहंता, आत्मसत्ता विस्तृता से है। अस्मिता शब्द में मैं हूँ का भाव प्रधान है या अंग्रेजी में सेल्फ आइडैंटिटी से है। 'अस्मिता' को किसी परिभाषा तक बांधकर नहीं रख सकते हैं क्योंकि इस शब्द में ब्राह्मण्ड की विशालता निहित है।

4.1 स्त्री–अस्मिता

'कस्तूरी कुण्डल बसै' आत्मकथा में स्त्री–अस्मिता का स्वर उच्च स्वर से मुखरित हुआ है। जमींदार के अत्याचारों से डरकर हीरालाल गाँव छोड़कर भाग जाता है। कस्तूरी दिन–रात खेतों में खटती हैं और अन्त में जमींदार की पाई–पाई चुकाकर गिरवी रखे खेत–खलिहान छुड़वा लेती

है। हीरालाल की बहू कस्तूरी का हवेली में प्रवेश सती रेशम कुँवर की कथा के साथ होता है। हर तीज–त्योहारों पर कस्तूरी का वहाँ कथा वाचने के लिए आना जाना लगा रहता है। कुछ वर्षों बाद हीरालाल जब गाँव में प्रवेश करता है, गाँव वाले कस्तूरी के विरुद्ध उसके कान भर देते हैं– "गंगा पर्व है, दोनों संग–संग जाऐंगे। काग उड़ाने वाली का बन्धन भी क्या? बन्धन हवेली से मुक्ति पाने वाली पर नहीं था, लेकिन कस्तूरी पर लगाना गया। गरीब घर की गृहिणी है, तब क्या मर्यादा का उल्लंघन करेगी? जिन घरों में धन नहीं रहता, आबरु और मर्यादा उतनी ही ज्यादा पैदा करनी होती है।....हीरालाल की पत्नी उनके दुश्मन जमींदार की छत्रछाया में गंगा नहाने गई। उस जमींदार की छाया में, जिसकी दी हुई सजाओं को हीरालाल छकाते और जमींदारी के रुतबे को चिढ़ाते आए हैं। गाँव छोड़ देते हैं, आन नहीं छोड़ते। अंगरेजों के पिट्ठू को लगान तो हरगिज नहीं देते। उसी दुश्मन, गद्दार आदमी की बगल में उनकी पत्नी! यह बात किसी पति के लिए भी और मनुष्य के लिए भी भारी पड़ती है।"[25]

घायल हृदय से हीरालाल पत्नी कस्तूरी के चरित्र पर प्रश्न चिन्ह लगाते हुए उसकी अस्मिता की बखिया उधेड़ते हुए कहता हैं कि–

"रेशम कुँवर की कहानी का ढोंग! सती कथा का पाखण्ड, तुम जैसी औरत।"

"अरे! तुम तो देशभक्ति के गीत गाते हो और मुझे नहीं समझते।"

"समझते हैं। अपनी धरती को समझते हैं और गंगा को भी समझते हैं। चल, मैं गंगा का कोण बनाता हूँ, तू उसमें खड़ी होकर, सौगन्ध खा कि इस बनिया के बेटे से तेरा कोई सम्बन्ध नहीं?" कस्तूरी चुप रही।

"बस!" पति ने कडुवा मुँह बनाया कि चेहरा नीला पड़ने लगा।

"हैं सम्बन्ध" वह धीमे से बोली।

"रखैल का। बोल, रखैल का। बोल दे, हाँ," कहते हुए उनकी लम्बी काया थरथराने लगी और होंठ ऐंठने लगे।

"हाँ, रियाया का।"[26]

'एक कहानी यह भी' में मन्नू भण्डारी एक ऐसी नारी–सृष्टि है, जिनकी अपनी अस्मिता है, अपना अस्तित्व है, वह अपनी अस्मिता को सुरक्षित रखते हुए राजेन्द्र यादव के 'समानान्तर जिन्दगी के पैटर्न' पर कोई प्रतिशोध व्यक्त नहीं करती हैं। मौन रहकर सभी दर्द झेलते हुए अपनी अपार सहनशीलता, शालीनता का परिचय देती हैं। घर गृहस्थी एवं लेखन के कार्यों में संलग्न रहते हुए भी बेटी को स्वावलम्बी, आत्मनिर्भर बनाती हैं। अपने दम पर मकान बनाती हैं (बिना

राजेन्द्र यादव की मदद के)। जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति से लेकर हारी–बीमारी जैसे कठिन समय पर भी राजेन्द्र यादव के सामने झुकती नहीं है। मन्नू भण्डारी की आत्म–निर्भरता, आत्मस्वाभिमान में ही उनकी स्त्री–अस्मिता के दिग्दर्शन होते हैं। मन्नू भण्डारी लिखती हैं कि "न मैंने राजेन्द्र का दिया कभी खाया......न पहना बल्कि घर और बच्ची की सारी ज़िम्मेदारियाँ भी मैं खुद ही ढोती रही।"[27]

'अन्या से अनन्या' आत्मकथा में प्रभा खेतान स्त्री–अस्मिता के अद्‌भुत उद्धहरण समाज के सामने रखती हैं। इस आत्मकथा में स्त्री–अस्मिता के कई स्वर मुखरित हुए हैं। प्रथमतः पीरियड्स रुकने पर प्रभा खेतान डर जाती हैं। 'अविवाहित मातृत्व' दहशत मात्र से ही सारा शरीर काँप उठता है। भयंकर मानसिक पीड़ा से गुजरते हुए प्रभा खेतान सोचती है अपनी अस्मिता की रक्षा अब मैं कैसे करुँ। डॉ. साहब तो पुरुष हैं उन्हें समाज कुछ नहीं कहेगा, इस अपराध के लिए प्रभा को ही दोषी ठहराया जायेगा। प्रभा खेतान लिखती हैं कि "डॉक्टर साहब पुरुष हैं, समर्थ हैं, लोग तो उन्हीं की बातों पर भरोसा करेंगे, मुझ पर नहीं। लेकिन मैं भूल गई थी कि इस यथार्थ से बाहर भी जिन्दगी है, लोग हैं, उनके अपने नैतिक मापदण्ड हैं।"[28]

अपनी अस्मिता पर चिन्ता व्यक्त करते हुए प्रभा खेतान डॉ. साहब से कहती हैं कि "आपसे मैं कुछ माँगने तो नहीं आई, आपको मेरे लिए कुछ करने की जरुरत नहीं, मैं अपने–आप जी लूँगी। इतना सामर्थ्य है मुझमें लेकिन आप मुझे आई–गई लड़कियों की जमात में नहीं बैठा सकते, आप अपनी मर्जी से गैर जिम्मेदारी का जाला कैसे बुन सकते हैं?"[29]

'अन्या से अनन्या' आत्मकथा में स्त्री–अस्मिता का दूसरा स्वर वहाँ मुखरित होता है। जब प्रभा खेतान डॉ. साहब के साथ अमेरिका गई हुई थी। उसी दौरान उनके एक मित्र का फोन कुछ दवाईयाँ मँगवाने के लिए प्रभा खेतान के पास आता है। प्रभा खेतान अपने मित्र से फोन पर बात कर रही होती हैं। डॉ. साहब दूसरे कमरे से फोन उठाकर चोरी–चोरी बातें सुनते हैं, जबकि प्रभा खेतान शुरु से ही डॉक्टर साहब से कहती रही हैं कि "नहीं, पुरुष की अब और कोई भूमिका मेरे जीवन में नहीं बची।"[30]

फिर भी डॉ. साहब असुरक्षा की भावना से ग्रस्त रहते हैं, व्यंग्यवाण छोड़ते हुए प्रभा से कहते हैं– "..................."।

"कौन था वह आदमी।"

"ओफ्फ......डॉक्टर साहब मैं थक गई हूँ, अपने चरित्र की कैफियत देते–देते...........आपके प्रति अपनी उत्सर्गता, वफादारी प्रमाणित करते–करते। औरत की वही परम्परा अच्छी थी जब वह घर में घूँघट निकाले बैठी रहती थी, कहीं कोई झंझट नहीं था।

पर मेरी जैसी औरत के लिए बाहरी दुनिया में जाना चाहे मेरी मजबूरी कहिए या फिर चुनाव लेकिन मैं कहना चाहती थी कि स्त्री बाहरी दुनिया में मौजूद है तो क्या उसके सम्पर्क में पुरुष नहीं आएँगें? और कैसे प्रमाणित करूँ कि मेरे और उस फलाँ पुरुष के बीच ऐसी–वैसी कोई बात नहीं है, लेकिन डॉक्टर साहब थे कि शब्दों के चाकू से मुझे चीरते रहते।"[31]

डॉ. साहब अपनी हीनभावनाओं के कारण कुंठित हो जाते हैं, प्रभा खेतान के चरित्र को लेकर आशंकित रहते हैं। प्रभा भी अपने चरित्र की कैफियत देते–देते थक चुकी हैं और अब वे डॉ. साहब से स्पष्ट शब्दों में खुलकर अपनी स्वतंत्र जीने की चाह को बयां करते हुए कहती हैं कि "नहीं.......मुझे यह बन्दीघर अच्छा नहीं लगता, आप हर बात की खोज–खबर रखते हैं, कौन आया, कौन गया।"[32]

प्रभा खेतान के मुख से यह कथन सुनते ही डॉ. साहब के अहं को चोट लगती है और वे इस चोट का प्रतिशोध लेते हुए अपना अगला व्यंग्यवाण प्रभा पर छोड़ते हुए कहते हैं कि "तो तुम रंडीखाना खोल लो।"[33]

प्रभा खेतान आखिर हैं तो महिला कब तक झेलती, डॉ. साहब द्वारा छोड़े गए व्यंग्य शूल न चाहते हुए भी अन्त में उनके मुख से निकल ही जाता है। वह कहती हैं– "मैं प्रभा खेतान......... मैं कौन हूँ? क्या मेरी कोई पहचान नहीं है? मैं सधवा नहीं, क्योंकि मेरी शादी नहीं हुई, मैं विधवा नहीं क्योंकि कोई दिवंगत पति नहीं, मैं कोठे पर बैठी रंडी भी नहीं.......क्योंकि मैं अपनी देह का व्यापार नहीं करती।"[34]

'अन्या से अनन्या' आत्मकथा में स्त्री–अस्मिता का तीसरा स्वर वहाँ दिखाई देता हैं। जब स्विस व्यापारी मिस्टर सिंगर कलकत्ता शहर में चमड़े से बनी वस्तुओं को खरीदने का भारी ऑडर प्रभा को देने आते हैं। होटल के कमरे में मिलने के आदेश पर प्रभा उनसे साफ तौर पर इंकार कर देती हैं। लॉबी में बैठी प्रभा व्यापार में लाभ–हानि की परवाह किए बिना ही अपनी अस्मिता को सर्वोपरि रखती हैं। प्रभा खेतान लिखती हैं कि "सैम्पलों का बक्सा लेकर मैं ग्रांड होटल पहुँच गई, नीचे से फोन किया, "मिस्टर सिंगर मैं नीचे लॉबी में हूँ, क्या आप नीचे आएँगे?" मिस्टर सिंगर प्रभा से कहते हैं– "मैं लॉबी में बैठकर व्यापर नहीं करता।"[35]

मिस्टर सिंगर को अपनी भारतीय परम्परा से अवगत कराते हुए प्रभा हिचकिचाट भरे शब्दों में कहती हैं– "मिस्टर सिंगर, मैं अकेली हूँ और यों पहली मुलाकात में ऊपर, आपके कमरे में...?"[36] भारतीय संस्कृति से अंजान मिस्टर सिंगर प्रभा खेतान का उपहास उड़ाते हुए कहते हैं कि "आप व्यापार करने निकली हैं तो अपने आप पर अपना भरोसा करना सीखिए और आपको यदि पराए मर्द से डर लगता है तो आप चाहे पूरी सेना लेकर मुझसे मिलने आती पर आपको मेरे कमरे में आना चाहिए था। मुझे आपने लॉबी में नीचे क्यों बुलाया? मेरी इतनी बड़ी बेइज्जती।"[37]

मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथात्मक कृति 'गुड़िया भीतर गुड़िया' में स्त्री–अस्मिता के कई स्वर मुखरित हुए है। डॉ. सिद्धार्थ द्वारा नाच के लिए हाथ पकड़कर उठाए जाने पर मैत्रेयी पुष्पा उन्हें मना नहीं कर पाती, वैसे भी डॉ. सिद्धार्थ उनके लिए कोई अपरिचित पुरुष तो थे नहीं। पति के दोस्त थे। ऐसे दोस्त जो प्रतिदिन घर आते–जाते रहते थे। उनके साथ नाचने में मैत्रेयी पुष्पा ज्यादा सोचती नहीं हैं। नाचते–नाचते उनका सिर डॉ. सिद्धार्थ के सीने से जा लगता है और लोगों को मैत्रेयी पुष्पा पर अंगुली उठाने का मौका मिल जाता है। अपनी अस्मिता पर लोगों द्वारा प्रश्नचिन्ह लगाए जाने पर मैत्रेयी पुष्पा लिखती हैं कि "मैं डुगडुगी हूँ, डॉ. सिद्धार्थ नचाएँ या मेरे पति। मदारी छीना–झपटी में लगे हुए हैं। मेरी इच्छा की परवाह किसी को नहीं।"[38]

इस आत्मकथा में स्त्री–अस्मिता का दूसरा स्वर वहाँ दिखाई देता है जब इल्माना मैत्रेयी पुष्पा से कहती हैं "मिसेज शर्मा, चाय, खाना, नाश्ता, फिर खाना...........उफ! मर्दों का पेट नहीं भरता। पेट भर जाए तो जी नहीं भरता। उनकी जुबान पर चिपका जायका तुम्हारी सारी उम्र चूस जाएगा।.....तुम भी तो इस परिवार की माँ बन गई हो और भूल गईं कि अपनी बच्चियों की शिक्षक भी होना है।"[39]

बच्चियों को शिक्षित करने में मैत्रेयी पुष्पा पति से सहयोग चाहती है, पति एवं घर के लोगों की उदारता में आई कमी को पतिदेव लापरवाही का जामा पहनाते हैं। व्यंग्य करते हुए कहते हैं– "मैं जान गया कि यह लापरवाही का रोग तुम्हें कहाँ से लगा है?"[40]

पति द्वारा लगाए गए लापरवाही के आरोप को मैत्रेयी पुनः उन्हें ही वापस लौटाते हुए कहती हैं– "कुछ नहीं कर सकते, अपने दिये रोटी–कपड़ों का अहसान जता सकते हो मुझ पर।"[41] मैत्रेयी पुष्पा विवाह के बाद कहीं खो सी जाती है। उनके अस्तित्व पर मिसेज आर.सी.शर्मा का वजूद भारी पड़ने लगता है। अपनी अस्मिता की खोज में डूबी मैत्रेयी पुष्पा लिखती हैं कि "हम...मैं 'मिसेज शर्मा' के सिवा क्या हूँ, बेटा? तेरे पिता की पत्नी.........न औरत हूँ न मनुष्य, केवल पत्नी।"[42]

मैत्रेयी पुष्पा के इस कथन से उनकी वेदना का अनुमान लगाया जा सकता है कि विवाह के बाद एक स्त्री का पूरा वजूद ही नहीं बदल जाता अपितु उसके मनुष्य होने पर भी शंका होने लगती है क्योंकि मनुष्य चेतनशील प्राणी है। वेदना होने पर वह वाणी द्वारा बोलकर अपना कष्ट सामने वाले को बता सकता है। मनुष्य का विलोम तो पशु होता है, जिसके पास भाषा नहीं होती, फिर भी वह अपना कष्ट अपनी आवाज़ द्वारा रोकर ज़ाहिर कर देता है।

मैत्रेयी पुष्पा अपनी पहचान एवं अस्मिता की खोज करते हुए कागज़–कलम थाम लेती है। लेखिका बनकर एक से बढ़कर एक उपन्यास लिखती हैं। उनके उपन्यासों में चित्रित नारी पात्रों के रूप में मैत्रेयी कहीं न कहीं स्वयं को चित्रित करती रही हैं। जो बातें वे आज तक पति से खुलकर नहीं कह पाई, उन्हें अपनी कलम द्वारा लिपिबद्ध करके पति एवं पुरुष प्रधान समाज को बता देना चाहती हैं। वह लिखती हैं– "प्रियतम तुम्हारी दुनिया में सुख तो है, मगर घुटन उससे ज्यादा। सुविधा भी हैं, लेकिन सिकुड़े–संकरे दायरों के बन्धन........सच मेरे स्वभाव में परिवर्तन की बुरी लगन है, मैं तुम्हारे 'विवाह लगन' के योग्य नहीं थी और न शायद माँ बनने योग्य....अभी तो शुरुआत है, मोहिता का जीवन प्रभावित हुआ, आगे क्या होगा, जब शीलो, आभा और आल्मा आएगी? मुझसे वे छोड़ी न जाऐंगी, पात्रों से बुरी तरह जुड़ी रहती हूँ मैं"।[43]

रमणिका गुप्ता की आत्मकथा 'आपहुदरी' में स्त्री–अस्मिता के कई प्रसंग दिखाई देते हैं। इस आत्मकथा में रमणिका गुप्ता सामन्ती समाज के स्त्री विरोधी रवैये को उजागर करती हैं। इस समाज में स्त्री की कोई अस्मिता नहीं होती। पुरुष जब चाहे तब किसी भी स्त्री की आबरु से खेल सकता था। स्वयं रमणिका अपने ही घर में ऐसा जमींदाराना उदाहरण देखती हैं, जहाँ एक पिता (नाना) ही अपनी बेटी (मौसी) से संबंध बनाता है। औरत का दोनों रूपों में भोग सामान्ती समाज की ऐय्याशी को दर्शाता है। रमणिका लिखती हैं कि "औरत के साथ व्यवहार दुनिया की सभी संस्कृतियों में एक जैसा रहा है, लोग उसे सम्पत्ति मानते रहे हैं, पर स्तर का अन्तर है, व्यवहार का अन्तर है। औरतों से पेश आने के अलग–अलग स्तर पर, अलग–अलग तौर–तरीके हैं।"[44]

इस आत्मकथा में स्त्री–अस्मिता का दूसरा प्रसंग वहाँ दिखाई देता है जब प्रकाश रमणिका के अतीत को लेकर उसे कच्ची टूटी जैसे अपमानजनक शब्दों में कहता है– "क्या सोचती हो तुम? बचपन से कई पुरुषों को चख़ती रही हो, एक से तुम्हारा मन नहीं भरेगा। मैं सोचता था कि तुम सुधर जाओगी, इसलिए सब कुछ जानकर शादी की थी मैंने तुमसे।"[45] पति के इन शब्दों से आहत रमणिका अपनी अस्मिता को बचाते हुए पलटवार करते हुए पति से कहती है– "देखो प्रकाश! मुझे जबरन मत धकेलो उस रास्ते पर, जिससे तुम्हारे ही सहारे सही, मैंने निजात पाई है!

वह सहारा भी छीन लेना चाहते हो? मैं भी एडजेस्ट करुंगी, तुम भी करो। जिनके लिए मैं जिम्मेदार नहीं, उन अपराधों को तो मुझ पर मत लादो! मुझे उनसे उबरने के लिए तुम्हारा भरपूर प्यार चाहिए और विश्वास चाहिए।"[46]

रमणिका गुप्ता की आत्मकथा 'हादसे' में स्त्री–अस्मिता के कई प्रसंग दिखाई दिए हैं। देश विभाजन की त्रासद घटना के बाद लोगों की अदला–बदली शुरु होती है। रमणिका वेश्या पुत्र हामिद एवं उसके परिवार को सुरक्षित स्थान पर पहुँचाती है। यहाँ पर वह मानवता का परिचय देती है। किसी भी स्त्री के लिए वेश्या जैसे अपमानजनक शब्दों का प्रयोग किए जाने पर रमणिका पुरुष प्रधान समाज को ही दोषी ठहराती है क्योंकि कोई भी स्त्री अपनी इच्छा से वेश्या नहीं बनती है। समाज के पुरुष इसी तरह अपनी मर्दानगी साबित करते रहे हैं। सदियों से ही स्वयं को चरित्रवान साबित करने के लिए पुरुष समाज स्त्री को ही चरित्रहीन का अमलीज़ामा पहनाता आया है। पुरुष प्रधान समाज की स्त्री विषयक परिभाषा से असन्तुष्ट होते हुए रमणिका गुप्ता लिखती हैं कि "मैं औरत के संदर्भ में पतित शब्द की परिभाषा से सहमत नहीं हूँ। यह शब्द औरत के चरित्र से जोड़ा जाता रहा है और चरित्र का अर्थ केवल औरत के यौन–सम्बन्धों को लेकर ही समझा जाता है औरत के संदर्भ में चरित्र के अन्य गुण या लक्षण जैसे नैतिकता, शालीनता, ईमानदारी, परस्पर सद्भाव या संवेदनशीलता तथा बहादूरी और निडरता आदि को नज़रअन्दाज कर दिया जाता है।"[47]

सुषम बेदी के आत्मकथा साहित्य 'आरोह–अवरोह' में स्त्री–अस्मिता के कई स्वर मुखरित होते हैं। प्रथमतः सुषम बेदी पति के साथ न्यूयार्क शहर चली जाती है। बेटे को फ्रेंच मीडियम में पढ़ाने के लिए स्वयं वहाँ के प्रसिद्ध 'ब्लूमिंगडेल्स मॉल' में सेल्स गर्ल की नौकरी ढूंढ लेती है। तनखा कम होने पर भी नौकरी करती है। यहाँ नौकरी करना सुषम बेदी की मजबूरी नहीं थी, वे तो अपनी इच्छा से नौकरी करना चाहती थी। सुषमबेदी एक अफसर की पत्नी थीं, परन्तु वे इससे इतर अपनी पहचान बनाना चाहती थी। अपनी आत्मनिर्भरता को ही बेदी अपनी अस्मिता के रूप में देखती है। उस मॉल में उनकी नियुक्ति किसी एक डिपार्टमेन्ट में नहीं होती। वहाँ उन्हें 'फलायर' कहा जाता था। फलायर का अर्थ होता है प्रतिदिन अलग–अलग डिपार्टमेन्ट में काम करने वाला। एक दिन सुषम बेदी को जूतों के डिपार्टमेन्ट में भेजा जाता है वहाँ एक अधेड़ महिला ग्राहक द्वारा जूते पहनाने को कहती है। सुषम बेदी को यह कार्य अपनी अस्मिता के विरुद्ध लगता है। वह लिखती हैं कि "उसने बाहर लगे नमूनों में से मुझे एक खास जूता दिखाकर लाने को कहा जो मैंने अन्दर से लाकर उसके पास रख दिया। अब मैडम ने मुझे कहा कि मैं उसे पहनाऊँ। यह बात मेरी बर्दाश्त के बाहर थी और सब बेचने के काम तो मुझे कुछ बुरे नहीं लगे थे पर जूते

पहनाना मेरे लिए बहुत ही निम्न किस्म का घटिया काम था, जो मुझ जैसी पीएच.डी. के लिए एकदम अस्वीकार्य था। मैंने उस औरत की अवहेलना की और कुछ दूर जाकर खड़ी हो गयी जैसे कि मैंने उसकी बात सुनी नहीं।"[48]

सुषम बेदी की आत्मकथा 'आरोह–अवरोह' में स्त्री–अस्मिता का दूसरा स्वर वहाँ दिखाई देता है जब सुषम बेदी न्यूयार्क शहर के भारतीय कौंसल जनरल के कहने पर कौंसलेट में पढ़ाती है। इस कार्य के लिए उन्हें कोई वेतना तो नहीं दिया जाता, किन्तु उन्हें इस बात का सन्तोष जरुर होता है कि पाश्चात्य देशों में जहाँ तक तकनीकी शिक्षा में पारंगत ही नौकरियाँ पाते हैं, वहाँ सुषम बेदी जो हिन्दी विषय से एम.ए., पीएच.डी. किए हुए थी, को हिंदी विषय पढ़ाने का असवर प्राप्त होता है हिंदी विषय को पढ़ाना ही सुषम बेदी अपनी अस्मिता के संदर्भ में देखती है। वह लिखती हैं कि "इससे पूर्व ब्रसल्स में भी भाषा के तौर पर हिंदी पढ़ा चुकी थी। एक तरह से इस बहाने हिंदी से जुड़ा रहना मुझे अपने लिए जरुरी लगता था। शायद हिंदी मेरी अस्मिता का हिस्सा बन चुकी थी। सिवा हिंदी पढ़ाने और लिखने के और कुछ किया भी तो नहीं था।"[49]

4.2 स्त्री–अधिकार

'कस्तूरी कुण्डल बसै' आत्मकथा में कस्तूरी के पति की असमय मृत्यु के पश्चात् घर में केवल एक ही पुरुष बचे थे, वह थे कस्तूरी के बूढ़े एवं अपाहिज ससुर। कस्तूरी के कोई बेटा न होने के कारण बाप–दादा की सम्पत्ति, खेत–खलिहानों पर कानूनी हक था बेटी मैत्रेयी का, किन्तु मैत्रेयी के मामा 'हेतराम' उस पर भी अपना हक जमाना चाहता है। पुंसवादी सोच की पैरवी करने वाले कंस मामा रात के अंधियारे में बहन के घर से बैल, खेत से कटकर आई तम्बाकू चोरी कर ले जाते हैं। बाबा के शोर मचाने पर बूढ़े अपाहिज की मदद में पूरा गाँव कस्तूरी के आँगन में जमा हो जाता है। मामा को पकड़कर पूरा गाँव सजा देता है। धन–सम्पत्ति के लालच में मामा–भांजी को जान से मारने के पाप से भी नहीं घबराता। यहाँ पर भी मामा (पुरुष) द्वारा भांजी (स्त्री) के अधिकारों का हनन किया जाता है। बाबा हेतराम को लेकर चिन्तित है कस्तूरी से कहते हैं– "कस्तूरी, तुझे बुरा लगा होगा बेटी, मेरा इस तरह हक जताना अखरा होगा। पर मैं आज जब सब तरह से निहत्था हूँ, अपने पड़ौसियों से कहता हूँ–वे सबसे ज्यादा नजदीक हैं, मुझ बूढ़े की कब आँखे मुँद जाए, यह भी हो सकता है। हमारी लाली (मैत्रेयी) को बड़ा खतरा है। जल्लाद हेतराम उसका टेंटुआ दबा सकता है, नदी में बहा सकता है। मुझे डर लगता है, क्योंकि जायदाद का लोभ बड़ा बेरहम होता है।"[50]

आज तक कस्तूरी का सर कभी किसी के सामने नहीं झुका, किन्तु भाई द्वारा विधवा बहन के घर चोरी की घटना से आज कस्तूरी शर्म से पानी—पानी हो रही है। कहती हैं कि "मर्दों को अपने बारे में सोचना आता है, बाकी सम्बन्ध फीके हैं।"[51]

'एक कहानी यह भी' आत्मकथा में मन्नू भण्डारी पति राजेन्द्र यादव के सामने अपने अधिकारों को माँगने के लिए याचना नहीं करती क्योंकि वह जानती हैं कि राजेन्द्र यादव अपने अहं भाव के चलते किसी को कुछ दे ही नहीं सकते। मन्नू भण्डारी राजेन्द्र यादव से प्रेम करती हैं और वह चाहती हैं कि राजेन्द्र यादव भी प्रेम में निवेश करें। इससे ज्यादा मन्नू भण्डारी ने अपने जीवन में राजेन्द्र यादव से कभी कुछ चाहा नहीं, किन्तु राजेन्द्र तो इतने कंजूस निकले कि मन्नू भण्डारी के प्रति अपने प्रेम में कटौती करते गए। मन्नू भण्डारी के हिस्से का प्रेम भी अपनी प्रेयसी मीता को ही देते रहे। जबकि राजेन्द्र यादव के प्रेम पर मन्नू भण्डारी का अधिकार था। राजेन्द्र यादव के इस तरह के नीरस व्यवहार एवं सोच के साथ किसी भी अन्य स्त्री के लिए जीवन बिताना कठिन था। लेकिन, यह तो मन्नू भण्डारी ही है जो इतना कुछ झेलने के बाद भी उनसे स्वयं को कभी मुक्त नहीं कर पाई। इसके सूत्र भी कहीं न कहीं राजेन्द्र यादव के प्रति उनके प्रेमभाव में ही छिपे हैं। मन्नू भण्डारी लिखती हैं कि "वास्तव में राजेन्द्र के प्यार और अन्तरंगता की सीमा में कोई हो भी नहीं सकता, सिवाय खुद राजेन्द्र के, क्योंकि किसी को भी प्यार की सीमा में लेते ही अधिकार की बात आ जाती है, जो राजेन्द्र किसी को दे नहीं सकते.......समर्पण की बात आ जाती है, जो राजेन्द्र कर नहीं सकते। हक़ीक़त तो यह है कि आत्म—केन्द्रित और आत्म—तोष के खोजी राजेन्द्र ने जिन्दगी में अपने सिवाय किसी को प्यार नहीं किया, न कर सकते हैं, वरना राजेन्द्र जैसा विवेकवान और संवेदनशील (?) व्यक्ति क्या इस बात को भी नहीं जानेगा कि प्यार का विस्तार ही तो अधिकार है.....प्यार की परिपूर्णता ही तो है समर्पण। इनसे परहेज़ करके क्या प्यार किया जा सकता है।"[52]

'अन्या से अनन्या' आत्मकथा में प्रभा खेतान सात भाई—बहनों के सम्पन्न परिवार में पांचवी संतान पुत्री के रूप में जन्म लेती हैं। इस आत्मकथा में प्रभा खेतान को आजीवन अपनी माँ से एक शिकायत बनी रहती है कि माँ उन्हें प्रेम नहीं करती। शायद इसका एक कारण उनका पांचवी संतान बेटी के रूप में पैदा होना भी हो सकता है। माँ से प्रेम पाने की अपनी बारी की प्रतीक्षा करती रहती है, किन्तु जब तक प्रभा की बारी आती है मां का स्नेह पात्र रिक्त हो चुका होता है लेकिन प्रभा खेतान यह नहीं जानती कि संतान दस हो या सात बेटा हो या बेटी माता—पिता के कलेजे का टुकड़ा होती है। 'खेतान हाऊस' में पिता एवं दाई माँ ही प्रभा खेतान को प्रेम करते हैं। प्रभा खेतान पहली बार डॉ. सर्राफ से प्रेम पाती हैं तो बिना वर्तमान, भविष्य की चिन्ता किए उन्हें

अपना सब कुछ समर्पित कर देती है। वह यह भी जानती हैं कि मेडिकल लाइन में डॉ. सर्राफ चरित्रवान पुरुष नहीं। प्रभा को यह जानकारी उनकी बहन गीता से पता चलती है। जब वह डॉक्टरी कर रही थी। सब कुछ जानने के बाद भी प्रभा खेतान अपना पैर पीछे नहीं हटाती। डॉ. सर्राफ से कहती हैं– "डॉक्टर साहब! मैं हर कीमत चुकाने को तैयार हूँ। मुझे अपनी जिन्दगी में बस आपकी जरुरत है...केवल आपकी।"[53]

डॉ. सर्राफ कहते हैं– "तुम नहीं जानतीं कि तुम्हें कितनी बड़ी कीमत चुकानी होगी। हमारा यह मारवाड़ी समाज......." उन्होंने एक ठण्डी सांस ली।

प्रभा खेतान कहती हैं– "मुझे समाज की परवाह नहीं।"[54]

प्रभा खेतान डॉ. सर्राफ के साथ अपने प्रेम संबंध पर गहरी आस्था रखती थी, लेकिन दुनिया के ताने–उलहानें आखिर कब तक सुनती। दुनिया के ताने सुन–सुनकर प्रभा खेतान का मानसिक सन्तुलन गड़बड़ाने लगता है और वे इस रिश्ते से दूरी बनाने के लिए 'पांडिचेरी के अरविन्द आश्रम' चली जाती हैं किन्तु वहाँ पहुँचकर भी डॉ. सर्राफ की यादें उन्हें बैचेन किए रहती हैं। आश्रम में भी उनकी आत्मा को शान्ति नहीं मिलती और अन्ततः प्रभा खेतान श्रीमाँ के दर्शन करके एवं उनके आदेश से वापस कलकत्ता शहर लौट आती हैं। वहाँ से आकर प्रभा खेतान सीधे डॉ. सर्राफ से मिलती हैं और अपने अधिकार माँगते हुए कहती हैं कि "लुका–छुपी का यह खेल मुझसे बर्दाश्त नहीं होता, पार्क की बेंचों पर, झाड़ियों की ओट में किया गया प्यार, प्यार नहीं होता। दिन के उजाले में आप मुझे अपने साथ रखिए, अपने जीवन में स्थान दीजिए।"

"मगर कैसे? तुम जानती हो मैं शादीशुदा हूँ।"

"हाँ जानती हूँ।"

".....बच्चों की जिम्मेदारियाँ....मैं उन्हें छोड़ नहीं सकता।"

"मैं कब कहती हूँ आप अपनी पत्नी को छोड़ दीजिए, मैं क्यों चाहूँगी आप बच्चों को न संभाले?"

"फिर तुम्हें....?"

"क्या मुझे आपके परिवार में कोई कोना नहीं मिलेगा?"

"कैसी बातें करती हो!"

"हाँ, मैं तो आपसे कुछ माँग नहीं रही, मुझे कुछ नहीं चाहिए, धन–दौलत, नाम....मुझे बस आपका साथ चाहिए।"[55]

प्रभा खेतान डॉ. सर्राफ के नजदीक रहने के लिए उनके यहाँ तीन सौ रुपये मासिक वेतन पर पसर्नल सेक्रेटरी की नौकरी करती हैं। आठ–दस साड़ियाँ, एक स्वेटर, दो सलवार–कुर्ते इतनी कम जरुरतों में भी जिन्दगी जीने का दावा करती हैं। डॉ. सर्राफ से कहती हैं कि "मैं बस इतना जानती हूँ कि मुझे मेरा सफर अकेले तय करना होगा।"

"बस एक शादी तो नहीं हुई हमारी।"

"शादी नहीं होने का मुझे उतना दुख नहीं। मेरा सबसे बड़ा दुःख है कि एक विवाहित पुरुष से मेरे नाम का जुड़ा होना, लोग मुझे आपकी रखैल कहते हैं।"[56]

प्रभा खेतान के इस आग्रह पर भी डॉ. साहब प्रभा को वह अधिकार नहीं दे सकते। इसे डॉ. साहब की मजबूरी ही कह सकते हैं। डॉ. साहब के पास एक भरापूरा परिवार है, जिसमें उनके पाँच बच्चे एवं एक अशिक्षित और कमजोर पत्नी है। प्रभा खेतान उनके परिवार में एक बाहरी औरत अन्या से अनन्या हैं। डॉ. साहब प्रभा को बार–बार समझाते हैं, कहते हैं– "प्रभा! जो तुम्हारा प्राप्य है, उसे मैं दे नहीं पाऊँगा। लेकिन इतना जरुर याद रखना कि मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूँ।"[57]

मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथात्मक कृति 'गुड़िया भीतर गुड़िया' में स्त्री–अधिकार के कई प्रसंग दिखाई देते हैं। प्रथमतः जब मैत्रेयी पुष्पा नाच के लिए उठती हैं, तो वे लोगों की परवाह किए बिना ही उस क्षण को जी लेना चाहती हैं। वे लोगों को बता देना चाहती है, कि मेरे अधिकार मेरे हैं। जिन्हें मुझसे कोई नहीं छीन सकता। न तो मेरे पति और न ही यह समाज के सभ्य लोग। वह लिखती हैं कि "मैं नाच के लिए नहीं उठती थी, अपने हकों के लिए खड़ी हुई थी, जिसने मेरी जिन्दगी के सम्मान का वास्ता था। मुझे प्रेरित करने के अपराध में वह घृणा के पात्र हो, मैं कल्पना नहीं कर सकती।"[58]

इस आत्मकथा में स्त्री–अधिकार का दूसरा प्रसंग वहाँ दिखाई देता है जब मैत्रेयी पुष्पा बेटियों से पत्नी के कर्त्तव्यों पर चर्चा करते हुए बताती हैं कि पत्नी का कर्त्तव्य पति की सेवा करना, पुत्रवधु बनकर पति की वंशवेल को आगे बढ़ाना ही होता है। इससे इतर उनका कोई अधिकार नहीं है स्त्री–अधिकार के सम्बन्ध में मैत्रेयी पुष्पा लिखती हैं कि "मेरा कितना मन था, अपनी बेटी की माँ के रूप में अपने नाम की पहचान कराने का मगर यहाँ भी स्कूल रजिस्टर की तरह तेरे डैडी ही कर्ता रहे। मैं सिरे से गायब, श्रीमती आर.सी. शर्मा के रूप में.....।"[59]

विवाह 'युवा उम्र को सुरक्षा देता है' कि सोच रखने वाली मैत्रेयी पुष्पा को अब विवाह संस्था से चिढ़ होने लगती हैं। विवाह का बन्धन जिन्दगी के सारे रस रंग छीन लेता है। मैत्रेयी पुष्पा को महसूस होने लगता है कि स्त्री पराधीनता का दूसरा नाम ही ब्याह है, जिसे स्वयं मैत्रेयी

ने अपने लिए चुना है, माँ तो बार–बार मना करती रही। बेटी को आगाह भी किया कि ब्याह से बड़ा बन्धन एक स्त्री के लिए नहीं हो सकता है। बेटी को ब्याह नामक रोग से मुक्त करने के लिए माँ ने मुक्तानंद स्वामी जी के चरणों में मन लगाने के लिए भी कहा, किन्तु युवा होती बेटी के मन में तो गृहस्थी बसाने की लगन जाग चुकी थी। जिसे न तो कोई भगवान बदल सकता था और न ही कोई स्वामी या तपस्वी। मैत्रेयी ब्याह के बाद अपनी परिवर्तित जिन्दगी में ढलते–ढलते अपनी पहचान, अस्मिता, अधिकार तक भूल जाती हैं। नहीं, भूल जाना चाह रही हैं ताकि गृहस्थी की गाड़ी चलती रहे। इसके लिए उन्हें जो भी कीमत चुकानी होगी, वे मौन रहकर चुकाती रहेगी किन्तु आज युवा होती बेटियों से अपने दिल के दर्द को साँझा करते हुए अपने अधिकार पाने की लालसा को बयां करते हुए कहती हैं कि "मेरी जिन्दगी की लय किसी मातमी जुलूस सी.....जिसमें लोग बिना दाएँ–बाएँ देखे बस सिर झुकाए चले जाते हैं या समझते हैं कि अपने अधिकार की बात कहना मर्यादा का उल्लंघन लगता था। आदर–सम्मान, मर्यादा कुलशीलता निभाना और शीलवती गुणवती बहू होना आसान नहीं होता बेटा, खून के आँसू रुलाता रहा मुझे।"[60]

रमणिका गुप्ता की आत्मकथात्मक कृति 'आपहुदरी' में स्त्री–अधिकार के कई स्वर देखने को मिलते हैं। प्रथमतः अपने बड़े भाई सत्यव्रत बेदी द्वारा अपनी पत्नी को स्वतंत्रता देने पर वह इसे अपना हक समझने लगती है। अपनी स्वतंत्रता की आड़ में वह अपनी जिजीविषा को पूरा करती है। बीबी जी से कहती हैं– "आप अपने बेटे को मना लो। मैं उनके खिलाफ़ कैसे जाऊँ? मैं ये सब अपने मन से थोड़े ही करती हूँ।"[61]

इस आत्मकथा में स्त्री–अधिकार का दूसरा स्वर वहाँ दिखाई देता है, जब रमणिका स्वेच्छा से प्रकाश से विजातीय विवाह करती है, अपने अधिकारों को पाने के लिए अपनी बीवी जी (माँ) से बहस करती हैं और अन्ततः वह प्रकाश से कानूनी विवाह कर लेती हैं। विवाह के बाद भी अपने हक एवं अधिकारों को पाने के लिए संघर्ष करती हैं। नृत्य सीखने, रेडियों नाटक में अभिनय करने पर पति द्वारा रोक–टोक उन्हें अपने अधिकारों का हनन करना लगता हैं। रमणिका गुप्ता अपने अधिकारों की रक्षा करते हुए पति से कहती हैं– "नहीं प्रकाश तुम ऐसा नहीं करोगे। ऐसा करने से तुम उनकी नज़रों में गिरा दोगे। ये मेरा अपमान होगा। वे क्या सोचेंगे कि तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं है? वे मुझे हल्का समझेंगे। ऐसा मत करना।"[62]

रमणिका गुप्ता की आत्मकथा 'हादसे' में राजनीतिक जीवन का चित्रण विशेष रहा है। इतिहास साक्षी है कि राजनीति में आने वाली महिलाओं को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा है। राजनीति में शामिल महिलाओं को राजनेता एवं उनके छुटभैय्या अपने अधिकार की वस्तु के रूप उपयोग एवं उपभोग करते रहे हैं। झारखण्ड की राजनीति में लता बनकर रहना किसी भी

महिला की मजबूरी हो सकता है, किन्तु रमणिका गुप्ता तो अपने बाल्यकाल से आपहुदरी रही हैं। यहाँ भी रमणिका गुप्ता अपनी स्वतंत्रता एवं अधिकारों की डोर खुद सम्भाले हुए हैं, वह लिखती हैं कि "मेरी इच्छा के विपरीत कोई मुझ पर कैसे अधिकार जमाएगा, यही मेरी ज़िद्‌द रही। मेरी इच्छा है तो सब सम्भव है, नहीं तो कुछ नहीं। अपनी इच्छा से मैं किसी भड़भूँजे के साथ भी सो सकती हूँ—पर मेरी इच्छा नहीं तो मुख्यमंत्री भी मुझे नहीं पा सकते।"[63]

'आरोह—अवरोह' आत्मकथा में सुषम बेदी को स्त्री—अधिकारों के सम्बन्ध में दो देशों के स्त्री—अधिकारों को जानने—समझने के अनुभव हैं। भारतीय महिलाओं को अपने अधिकारों को पाने के लिए संघर्ष करना पड़ता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक भारतीय महिलाएँ अपने अधिकारों को पाने के लिए संघर्षरत रहती हैं। विवाह से पूर्व पिता व भाई, विवाह पश्चात् पति परमेश्वर से अपने अधिकार पाने की उसकी जद्दोजहद परिवार एवं समाज में गिरवी रखी अपनी जिन्दगी को मुक्त करने की उसकी चाह उसके स्त्री—जीवन की दर्द भरी दास्ता बयां करती है। वहीं, दूसरी ओर भारतीय महिलाओं के विपरीत पाश्चात्य महिलाएँ हैं, जो अपने अधिकारों की माँग खुलकर समाज एवं परिवार के सामने रखती हैं। सुषम बेदी उन महिलाओं में से हैं, जिन्हें अपने अधिकार पाने के लिए न पिता के सामने गिड़गिड़ाना पड़ा, न पति के सामने अपितु उनके पति स्वयं ही सुषम बेदी के स्त्री—अधिकारों की रक्षा करते हैं। इस संदर्भ में सुषम बेदी लिखती हैं कि "मजेदार बात थी कि मेरे ससुर भी सत्यव्रत बेदी एक पत्रकार थे और राहुल के भीतर भी एक सोया हुआ पत्रकार था और वे मुझे न केवल लगातार प्रेरित ही करते बल्कि मुझे कहीं जरुरी जाना होता तो मेरी भरसक मदद को भी तैयार रहते।"[64]

4.3 स्त्री—समानता

भारतीय संस्कृति में नारी की महिमा एवं गुणगान करते हुए उसे दैवी तुल्य माना गया है। दया, प्रेम, करुणा की मूर्ति जिसका हर रूप सम्मानीय है। मनुस्मृति में भी कहा गया है— "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता, यत्रैतास्तु न पूजयन्ते सर्वास्तत्रा फलः क्रिया" अर्थात् जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं, जहाँ नारी का अपमान होता है, वहाँ सभी शुभ फलों एवं कर्मों का विनाश हो जाता है, अनेक शुभ अवसरों एवं नवदुर्गा पूजन इत्यादि पर्वों पर कन्यापूजन किया जाता है। यह हमारी भारतीय संस्कृति का प्रतीक है किन्तु उसी भारतीय समाज में 'कन्याभ्रूण हत्या' जैसी घटनाओं का घटित होना हमारी संस्कृति को शर्मसार कर रहा है। 'कस्तूरी कुण्डल बसै' आत्मकथा में जब कस्तूरी जैसी कर्मठ बेटी पैदा होती है तो उसे पापों का फल मानकर कोसा जाता है— "अरे....गाय मरे अभागे की, बेटी मरे सुभागे की।"[65]

घर–परिवार के लोग बेटी के मरने की कामना करते है कस्तूरी बताती है कि जब वह अपनी माँ की कोख में थी, तो माँ ने उसे कोख में मारने के सारे जतन किए फिर भी नहीं मरी तो माँ ने स्वयं को ही कष्ट पहुँचाया कस्तूरी की माँ के शब्दों में– "यह सतमासी तब जनमी थी, जब बड़ा बेटा मरा था। सत्यानाशिनी का जन्म ही जंजाल की तरह आया। पेट में माँ ने पसेरी मार ली थी, वह फिर भी नहीं मरी। पैदा होते ही भंगिन से फिंकवाई जा रही थी कि अभागी रो पड़ी। माँ का मानना है कि संसार में औरत के मुकाबले कोई सख्त जान नहीं। बेटों को रोग–धोग व्यापे, इसे कभी छींक तक न आई।"[66]

'कस्तूरी कुण्डल बसै' आत्मकथा में स्पष्ट ही दिखाई देता है कि परतंत्र भारत हो या स्वतंत्र भारत स्त्री की स्थिति, जस की तस ही रहने वाली है। समाज में पुरुषों का वर्चस्व ही रहेगा। पुंसवादी समाज में बेटे बोए जाते हैं, परन्तु दुर्भाग्यवश ही बेटियाँ उग जाती हैं। खेती जब साथ न दे तो काम आती हैं कस्तूरी जैसी बेटियाँ फिर भी बेटियों का स्थान समाज में बेटों के बाद ही आता है।

स्त्री–असमानता के ज्वलन्त पक्ष को मैत्रेयी पुष्पा द्वारा लिखी गई यह आत्मकथा वाणी देती हैं। मैत्रेयी पुष्पा अपनी माँ के जीवन पर लिखी आत्मकथा 'कस्तूरी कुण्डल बसै' में माँ के शब्दों को बयां करते हुए अपनी नानी की सोच पर प्रश्न उठाती है। कस्तूरी के पैदा होने पर कस्तूरी की माँ कहती हैं– "साग–पात से पेट भरकर भी इस बात को वह भूल तो नहीं सकती, पर रात के अँधियारे–सी घिरती आती इस लड़की की जवानी, बेटों की राह में अँधेरा करने वाली है, भूख–प्यास भुला डालती हैं रीता का कलेजा चटकने लगता है। भगवान क्यों जन्म देता है लड़कियों को? लोग कहते हैं, लड़कियाँ पापों के फल होती हैं, वे फल विषफल भी हो तो आदमी क्या करे? बेटी रूपी दुश्मन को कौसते रहो, धिक्कारते रहो, छुटकारा नहीं मिलने वाला।"[67]

'एक कहानी यह भी' में स्त्री–समानता का दृश्य वहाँ दिखाई देता है, जब टिंकू अपनी दोनों बेटियों को पति दिनेश की जिम्मेदारी पर छोड़कर कत्थक नृत्य सीखने कलकत्ता शहर चली जाती है। दिनेश उस समय बेटियों को माँ के हिस्से का दुलार भी देते है माँ की तरह उन नन्हीं बच्चियों की देखरेख भी करते है। दिनेश आधुनिक समय का वह नवयुवक है, जो सदियों से चली आ रही स्त्री–पुरुष असमानता को तोड़ता है। दिनेश (मन्नू भण्डारी के दामाद) कहते हैं– "क्यों टिंकू बच्चियों को पाल सकती है, तो क्या मैं नहीं पाल सकता?"[68]

मन्नू भण्डारी दामाद के मुख से यह कथन सुनकर सन्तुष्ट होती है कि आने वाले समय में समाज में परिवर्तन होगा। स्त्री–पुरुष असमानता के भेद को दिनेश जैसे नवयुवा ही मिटा सकते है। राजेन्द्र यादव जैसे अहंकारी पुरुष जिन्हें पत्नी द्वारा घर की जिम्मेदारी उठाने, नौकरी

करने से परेशानी नहीं थी, लेकिन बेटी टिंकू को पालने, देखरेख करने में उनके पुरुष वर्चस्व में गिरावट महसूस करते हैं। बच्चे के पालन–पोषण की जिम्मेदारी माता–पिता दोनों की बराबर होती है। दोनों मिलकर ही घर–गृहस्थी की गाड़ी को आगे खींच सकते है, अगर कोई पुरुष घर के कार्यों को करने में पत्नी का सहयोग करता है, तो उससे उसका महत्त्व, प्रतिष्ठा समाज में गिरती नहीं हैं अपितु ऐसा व्यक्ति तो समाज में सम्मान पाने योग्य हो जाता है। पत्नी या स्त्री को अपने बराबर दर्जा देने या सम्मान देने से स्त्री–समानता की दृष्टि विकसित होती है।

प्रभा खेतान की आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' में स्त्री–समानता के कई प्रसंग देखने को मिलते हैं। प्रथमतः साहित्य, कला, संस्कृति, व्यापार के गढ़ रहे कलकत्ता शहर में मारवाड़ी पुरुषों की दुनिया में घुसपैठ करती है। चमड़ा व्यवसाय के क्षेत्र में क्रान्ति ला देती हैं। 'कलकत्ता चैम्बर ऑफ कॉमर्स' की अध्यक्ष बनती हैं। पुरुषों से बराबरी करते हुए स्त्री–समानता की मिसाल कायम करती हैं। पराई भूमि पर, पराए लोगों के बीच अपने अस्तित्व को खोजते हुए प्रभा खेतान चमड़ा व्यवसाय को अपनी पहचान बनाती हैं। सार्त्र को पढ़ती हैं, समाज में स्त्रियों के लिए लगाई गई सभी वर्जनाएँ तोड़ती हैं। पुरुषों से बराबरी करती हैं। पाश्चात्य लेखिका सिमोन द बाउवार का सैकण्ड सेक्स पढ़ती हैं, वहीं से ही प्रभा खेतान के भीतर कुछ विशिष्ट बनने की चाह पैदा होती है। उन्होंने अपने अध्ययन काल में पढ़ा है कि कोई स्त्री जन्म से स्त्री नहीं होती, अपितु समाज ही उसे स्त्री बनाता है। प्रभा खेतान ने अपने गुरू डॉ. चैटर्जी को कभी यह गुरुदक्षिणा भी दी थी कि वे भविष्य में कभी नारी की आँसू भरी नियति को नहीं स्वीकारेगी। वे अपनी नियति को बदलने का हक अपने जीवन में किसी को नहीं देगी, किन्तु इस आत्मकथा में प्रभा खेतान तो अपनी ज़िन्दगी की बागडोर डॉ. साहब को थमा चुकी है। प्रभा खेतान लिखती हैं कि "मैं एक सपना देख रही थी। उस सपने में मैं एक सबल और सशक्त महिला थी। इस समाज में मेरी भी एक ऊँची हैसियत थी, लेकिन यह सपना सच कैसे हो? मेरी जिन्दगी तो मानो कहीं गिरवी है। जिन्दगी पर मेरा अपना नियन्त्रण ही नहीं।"[69]

अपने जीवन की उलझनों को सुलझाते हुए प्रभा खेतान हार नहीं मानती। अमेरिका से ब्यूटी थैरापी का कोर्स करके आती है। वे भारत आकर स्वयं का 'फिगरेट' नाम से पार्लर खोल लेती है। वह लिखती हैं कि "हाँ उन तमाम उलझनों के बीच में मैंने एक बेहतर भविष्य का सपना देखना नहीं छोड़ा। मैं हमेशा मानती हूँ कि व्यक्ति अपने सपनों के सहारे काफी कुछ पा सकता है।"[70]

प्रभा खेतान की आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' में स्त्री–समानता का दूसरा प्रसंग वहाँ दिखाई देता है, जब प्रभा खेतान व्यापार के क्षेत्र में अपना कैरियर बनाने के स्वप्न को पूरा करने

के लिए उतरती है। वह असामन्जस्य की स्थिति में फँसी हुई है कि वह क्या बनाए?, कैसे बनाए?, किस वस्तु का व्यापार करें? किन्तु प्रभा खेतान बहुत जल्दी अपना चुनाव कर लेती है और 'चमड़ा व्यवसाय' को चुनती है। छोटे भाई से परामर्श लेती हैं क्योंकि वे पश्चिमी बाजार में व्यापार के अच्छे अनुभव रखते थे। डॉ. साहब अपने व्यावसायिक मित्रों से प्रभा को सुझाव लेने को कहते हैं प्रभा खेतान अपनी बहन गीता के व्यापारी पति को अपने द्वारा बना गए चमड़े के बैग और वॉलेट के कुछ नमूने दिखाती है। जीजा जी प्रभा खेतान द्वारा बनाई गई सभी वस्तुओं को खारिज करते हुए कहते हैं कि "प्रभा, तुम्हारे पास तो व्यापारी बुद्धि नहीं। व्यापार की दुनिया में तुम कभी कुछ कर नहीं पाओगी......।"[71]

हमारे समाज में सदियों से ही एक परम्परा चली आ रही है कि स्त्रियों को सदैव पुरुषों से कमतर ही आका जाता रहा है। पुरुष प्रधान समाज में अपने वजूद को कायम करने में प्रभा खेतान दिन–रात एक कर देती हैं। कलकत्ता की मैली–कुचैली गलियों से गुजरते हुए चमड़ा कारखाने में पहुँच जाती हैं। कारीगरों के मध्य रहकर चमड़ा से वस्तुओं को बनाने का काम सीखती हैं। यहाँ पर भी डॉ. साहब प्रभा को खरी–खोटी सुनाने से बाज नहीं आते वे कहते हैं कि "प्रभा! तुम्हारा कोई जवाब नहीं, तुम इडियट ऑफ द फर्स्ट वाटर हो। तुम व्यापार कैसे करती हो मुझे यही आश्चर्य होता है।"[72]

डॉ. साहब प्रभा को कितना भी खरी–खोटी सुनाते हो, किन्तु आज जब वे अमेरिकी मित्र डॉक्टर केडिया से प्रभा का परिचय करवाते हुए बड़े ही गर्व से कहते हैं– "इंडिया टूडे में इनकी फोटो निकली है, ये बहुत डॉयनामिक महिला है।"[73] डॉ. साहब की इस गर्वोक्ति से स्पष्ट हो जाती है कि प्रभा खेतान पुरुषों की दुनिया में स्त्री–समानता का परचम लहरा चुकी है।

मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा 'गुड़िया भीतर गुड़िया' में स्त्री–समानता के कई उदाहरण प्रस्तुत हुए हैं मैत्रेयी, इल्माना, कस्तूरी इत्यादि ऐसी स्त्रियाँ हैं, जो पुरुष प्रधान समाज में अपने को बराबरी में रखती है। पुरुष समाज द्वारा उन्हें डराया, धमकाया भी जाता है। कभी पिता की इज्ज़त का वास्ता दिया जाता है, तो कभी पति की इज्जत का। इज्जत की बेड़ियों से कस दी जाती है स्त्री की तमाम समानताएँ। मैत्रेयी पुष्पा की इस आत्मकथा में इल्माना भी अपने भाई जावेद की तरह पढ़–लिखकर डॉक्टर बनना चाहती थी, किन्तु अब्बा का डर इतना ज्यादा था कि कह नहीं पाती बड़ी उम्मीद से अम्मा का दुपट्टा पकड़ते हुए कहती हैं– "अम्मा मैं डॉक्टर बनना चाहती थी। अम्मा ने जवाब दिया–ऐ हे, तुम जावेद की बराबरी करोगी?"[74]

इस आत्मकथा में स्त्री–समानता का दूसरा उदाहरण वहाँ दिखाई देता है जब मैत्रेयी पुष्पा बेटियों की परवरिश, खिलाई–पिलाई घर के पुरुषों की तरह नहीं किए जाने पर पति से झगड़ती

है कहती हैं– "हर माँ–बाप चाहता है, बच्चियाँ पढ़े, पर इसके लिए कोशिश कितने करते हैं? अपना समय और शक्ति कितने लगाते हैं? संकल्प कौन लेता है? तुम्हारे पिताजी तो चाहते हैं कि तुम्हारे भाई महेश को दूध पीने का हक है, घी खाने से उसका दिमाग बढ़ेगा, पर बबली और बूटू (नम्रता और मोहिता) को दूध देना बेकार है। लड़कियाँ दूध पीकर कहाँ जाएगी?। यह सब सुनकर भी मैं उनके लिए स्वादिष्ट खाना बनाती हूँ। उनकी फरमाइशों पर गौर करती हूँ और तुम ज्यादा से ज्यादा खुश रहते हो।"[75]

इस आत्मकथा में स्त्री–समानता का तीसरा उद्धहरण वहाँ दिखाई देता है, जब बेटी सुजाता अनायास ही मैत्रेयी से पूछ बैठती हैं– "मैं लड़के की उम्मीद में लड़की पैदा हुई थी न? सुजाता सबसे छोटी एवं तीसरे नम्बर की लड़की थी। मैत्रेयी पुष्पा कहती हैं हाँ बेटा, ऐसा ही था, तू बेटे की आशा में बेटी!"[76] बेटी के जन्म को हमारे समाज में अभिशाप के रूप में समझा जाता रहा है। उसकी परवरिश बचपन से ही रसोईघर के साँचे में डालकर की जाती रही है। पराए धन की संकल्पना अबोध बाल मन पर बाल्यकाल से ही रौंप दी जाती हैं। मैत्रेयी पुष्पा भी तीसरी बेटी सुजाता के जन्म के अपमान से जुड़ी बातें बताते हुए लिखती हैं कि "क्या करती मैं, अगर अपनी बेटी के पक्ष में न खड़ी होती? हंगामा फिर बरपा। दूसरे की अमानत, पराए घर का दरिद्र, एक और डिक्रीं, मालगाड़ी, पंक्चर साइकिल जैसे शब्द मेरी बेटियों को सम्बोधन में दिए गए और सारा माहौल ताली पीटकर हँसा। उसी रवैए ने आहिस्ता–आहिस्ता बेटी–बेटे का समानता बोध बारी बनकर चीरा है। भोले वात्सल्य को फिकरों के बसूलों ने छील डाला। दिल तड़प उठा और आँखें भी भर आई। मेरी यह रचना इतनी दुर्भाग्यपूर्ण.....या यह मेरी ही नियति कि मेरा स्त्रीत्व लड़की की माँ होने के कारण अस्वीकृत किया जाए। अब मेरे जीवन का उद्देश्य क्या होगा? कोई मुझे माँ की गरिमा नहीं दे रहा।.....तू किस दुनिया में आ गई है? तुझे पैदा करने पर जो आतंक उभर रहा है, मैं उससे छिपी–छिपी फिरूंगी।"[77]

मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा 'गुड़िया भीतर गुड़िया' में स्त्री–समानता का चौथा उद्धहरण वहाँ दिखाई देता है, जब मैत्रेयी पुष्पा सभी सुहान चिन्हों (महावर, बिंदिया, चूड़ियाँ) का त्याग करती है। करवाचौथ का व्रत खण्डित करते हुए सजी–धजी गुड़िया की छवि से स्वयं को मुक्त करते हुए कहती हैं– "मैं खुद को तरह–तरह से सांत्वना देती हूँ कि मैंने स्त्री के लिए मनुष्य के स्तर पर जीने की स्थिति ही तो खोजी है, कि मैंने पुरुष के समकक्ष अपनी भावनाओं को बराबरी से रखा है, कि मैंने अपने समाज में लोकतान्त्रिक विधान की घोषणा की है, कि औरत को हर तरह से सहनागरिक का दर्जा चाहिए।"[78]

रमणिका गुप्ता की आत्मकथात्मक कृति 'आपहुदरी' में स्त्री–समानता के कई प्रसंग देखने को मिलते हैं, प्रथमतः रमणिका बाल्यकाल में छोटे भाई को घोड़े पर चढ़ते देख हाथ–पैर पटक–पटक कर जिद्द करते हुए कहती हैं– "मैं घोड़े पर चढ़े–चढ़े ही पहाड़ चढ़ूँगी।"[79] इसे उनके पहाड़ चढ़ने की जिद कहे या बाल हठ छोटे भाई रवि ने घोड़ा ले लिया और रमणिका को खच्चर पकड़ा दिया। घोड़े को सरपट भागता देख खच्चर ने भी रफ्तार पकड़ी। कुछ समय बाद चारों तरफ शोरगुल मचा "डॉक्टर साहब की बेटी को खच्चर लेकर भाग गयी।"[80] बेटी की जान को खतरा के भय से वहाँ उपस्थित दादी, माँ, पिता सभी घबराने लगे माँ इस घटना के लिए पिताजी को कोसते हुए मानो कहना चाह रही हो यह एक लड़की है और इसे लड़की की तरह ही रहना चाहिए बात–बात में लड़कों से बराबरी करती हैं। वे रोते–रोते छाती पीट–पीट कर पास खड़े पापा जी को उलाहना देकर कोस रही थी कहती हैं– "होर (और) सिखाओं कुड़ी (बेटी) नू घोड़े चढ़ना। मुंडया बरगे कम्म (लड़कों जैसे काम) करना। लओ (लो) मर चल्ली ए हुन (अब) तुआड़ी (आपकी) बेटी रमना। प्यो–घी (पिता–पुत्री) दोनों दे दोनों जिद्दी। मेरी किसी ने ना मन्नी–हाय वे रब्बा मैं की करां? (मेरी बात किसी ने नहीं मानी, हे! ईश्वर मैं क्या करुं?)।"[81]

माँ कितनी भी गलियाँ अपनी बेटी को दे। उनकी उन्हीं गलियों में तो ममता बरसा करती है। बेटी को सुरक्षित देख माँ कहती हैं– "चंद्रिए (बदकिस्मत, पंजाबी में प्यार भरी गाली), अज्ज मर जादी तां की हुंदा? टंग टुट्ट जांदी, तां कौन ब्यांदा तैनू? बड़ी आई है मुंडाया बरगे कम्म करन वाली। (आज मर जाती तो क्या होता? टांग टूट जाती तो कौन ब्याहता तुझे? बड़ी आई है लड़कों जैसा काम करने वाली)!"[82]

इस आत्मकथा में स्त्री–समानता का दूसरा प्रसंग वहाँ दिखाई देता है, जब माँ द्वारा रमना को सिर ढककर चलने का आदेश मिलता है तो रमना अपनी समानता का हनन माँ द्वारा होते देख तुरन्त ऊँचे स्वर में कहती हैं– "नहीं ढकूंगी सिर! क्यों ढकूं? क्या लड़के सिर ढक कर चलते हैं? रवि को क्यों नहीं कहती सिर ढकने को? मैं कोई उससे कम हूँ क्या? नाना जी की हवेली और क्लब में इतनी में आती है, वे 'चुन्नी' (दुपट्टा) नहीं ओढ़ती। मैं क्यों नहीं उनकी तरह बिना 'चुन्नी' ओढ़े चल सकती ?"[83]

रमणिका गुप्ता की आत्मकथात्मक कृति 'हादसे' में स्त्री–समानता के कई स्वर मुखरित हुए हैं। जब रमणिका ठाकुरजी के स्त्री–पुरुष नज़रिए को ग़लत साबित करते हुए कहती हैं कि "और हाँ ठाकुरजी! देखिए में महिला के नाते नहीं, एक कार्यकर्ता के रूप में जा रही हूँ–आप मुझे महिला के दायरें में शामिल कर महिलाओं को कमजोर साबित करने की कोशिश मत कीजिए।

रास्ते में जो कुछ भी घटेगा वह हम सबके साथ घटेगा। एक बात और मैं आपके साथ जाऊँ तो आपकी परिभाषा के अनुसार तब भी मैं 'महिला' ही रहूँगी न।"[84]

'हादसे' आत्मकथा में स्त्री–समानता का दूसरा स्वर वहाँ दिखाई देता है, जब रमणिका राजनीति में पुरुषों के साथ बराबरी करती हैं, चुनाव लड़ती हैं, झारखण्ड की राजनीति से सीधे दिल्ली की राजनीति में प्रवेश करती हैं। राजनीति की डगर पर चलते हुए उनका सामना कई ऐसे पुरुषों से होता है जो औरत को औरत होने के नाते यह कहकर जलील किया करते था। "मेरे तो पीछे पड़ी थी, बड़ी मुश्किल से मैंने दूसरे को सौंपकर उससे पीछा छुड़ाया है।"[85]

स्त्री–समानता को स्पष्ट करते हुए रमणिका गुप्ता लिखती हैं कि "मैं तो ऐसा मानती हूँ कि स्त्री होने के कारण ही मैं माफिया का मुकाबला इतनी मुस्तैदी और सफलता से कर पाई। पुरुष होने पर इतना शायद सम्भव नहीं होता।"[86]

सुषम बेदी की आत्मकथात्मक कृति 'आरोह–अवरोह' में स्त्री–समानता के कई स्वर मुखरित हुए हैं। सुषम बेदी यूं भी भाग्यशाली हैं। जैसा कि उन्होंने अपनी आत्मकथा में बताया है– बेदी परिवार में सबसे छोटी बेटी होने के साथ–साथ सबकी लाड़ली भी थीं। माँ की अपेक्षा पिता के अधिक नजदीक थीं। माँ के बार–बार विरोध करने पर भी पिता सुषम की परवरिश एवं शिक्षा लड़कों के समान ही करवाने पर जोर देते थे। सुषम बेदी लिखती हैं कि "मेरे बी.ए. खत्म होने के बाद माँ ने एक बार मुँह से बस निकाला ही कि अब और पढ़कर क्या करना है पर पहले तो मैं ही तड़पकर बोली–क्यों नहीं? मैं तो एम.ए. करुँगी और जब पिताजी तक बात पहुँची तो वे पूरी दृढ़ता से बोले की डाली (यह मेरा घर का नाम था) ज़रुर पढ़ेगी।"[87]

सुषम बेदी की आत्मकथा 'आरोह–अवरोह' में स्त्री–समानता का दूसरा स्वर वहाँ दिखाई देता है, जब उनके पिता कहते हैं– "लड़कियों को पढ़ाना–लिखाना है तो माँ कहती कि पढ़ा–लिखाकर क्या होगा, शादी ही तो करनी है। कौनसा नौकरियाँ करवानी हैं इनसे। पिता कहते आजकल अच्छे लड़के भी पढ़ी लिखी सन्तान मांगते हैं।......पिता का कहना कि हमारी असली वैदिक परम्परा में तो लड़कियों को पढ़ाया जाता था। अपाला और लोपामुद्रा जैसी ऋषि महिलाएँ जहाँ हुई, वहाँ लड़कियों की पढ़ाई का प्रचलन न होना सम्भव नहीं।"[88]

4.4 स्त्री–स्वतन्त्रता

मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा 'कस्तूरी कुण्डल बसै' में स्त्री–स्वतन्त्रता के कई स्वर देखने को मिलते हैं। प्रथमतः कस्तूरी की माँ कस्तूरी से उपाध्याय कुल में पैदा होने की कीमत एक अधेड़ एवं बीमार पुरुष से विवाह करवाकर वसूलती है तथा बड़े बेटे पीलिया के मरीज और छोटे

बेटे की दो साल से रुठी हुई बहू जो हाथों में चाँदी के कड़े और पाँवों में झाँझन पहनकर ससुराल आने की जिद्द को पूरा करने के लिए कस्तूरी का ब्याह अधेड़ हीरालाल से करवाना चाहती हैं ताकि माँ के लालों को सुख प्राप्त हो सके और बेटी कस्तूरी उसका क्या है वह तो बेटी है कहीं भी उखाड़कर फैंक दो, लेकिन कस्तूरी अपनी स्वतंत्रता का हनन होते देखकर ब्याह की बात से विदक जाती है। चीखती–चिल्लाती है, किन्तु कस्तूरी की माँ भी कोई साधारण स्त्री नहीं जो बेटी की चीख–पुकार से डर जाए कस्तूरी को खरी–खोटी सुनाती रही फिर भी कस्तूरी नहीं मानी तो स्नेह का जाल बिछाया, माँ की आँखों से अश्रु बहते देखकर कस्तूरी बेहाल हो उठती है, अन्ततः माँ के कहने पर वह इस अनमेल विवाह में बँध जाती है। वह खुद से पूछती है– "ब्याह क्यों होता है? उत्तर एक नहीं, कई आतें, जिनसे वह इतना घबरा जाती कि दोबारा ब्याह के बारे में सोचना नहीं चाहती थी। अतः बकोशिश ब्याह के लिए सहमति–असहमति भुलाकर वह दिन–भर बरहे में (खेतों पर) बछड़े–बछियों और उन चिड़िया–तोतों के साथ रहती थीं, जिनके लिए ब्याह के झमेले न थे। मगर ऐसे कितने दिन तक?।"[89]

घर के हर कोने से शोरगुल जाल की शक्ल में उठा। उसे बाँधने लगा। माँ सामने खड़ी हो गई, अग्निबाण हाथ में नहीं था, माँ की जीभ पर था, छोड़ दिया– "तू अपने भाइयों को खेत की मूली समझ रही है? सिर काटकर धर देंगे और मैं तुझे बचा नहीं पाऊँगी, नादान! बाप नहीं हैं तो क्या तू आजाद हो गई?"[90]

इस आत्मकथा में स्त्री–स्वतंत्रता का दूसरा स्वर वहाँ दिखाई देता है, जब कस्तूरी अपने ससुर को अपनी बेटी मैत्रेयी को आत्मनिर्भर बनाने का वचन देती है, उसी दिन से कस्तूरी सभी परम्परागत विसंगतियों एवं पर्दा प्रथा से स्वयं को स्वतंत्र करते हुए आँखों की हया को महत्त्व देती है फिर क्या था धीरे–धीरे कस्तूरी के जीवन ने करवट ली बन्धक जिन्दगी सभी झमेलों से मुक्त हो गयी। कस्तूरी बूढ़े एवं अपाहिज ससुर को वचन देते हुए कहती हैं कि "मेरा भरोसा करो दादाजी। मैं अपनी बेटी को पढ़ा–लिखाकर बड़ा करुँगी कि मेरे तुम्हारे बाद वह अपने दुश्मनों का मुकाबला करें।"[91]

मन्नू भण्डारी की आत्मकथा 'एक कहानी यह भी' में मन्नू भण्डारी अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध जाकर राजेन्द्र यादव से प्रेम विवाह करना ही अपनी स्वतंत्रता के पक्ष में रखती है। दो–चार मुलाकात के बाद राजेन्द्र यादव विवाह का प्रस्ताव रखते हैं। मन्नू भण्डारी इस प्रस्ताव को नहीं ठुकरा पाती। अपने से बड़ी बहन सुशीला दीदी से राजेन्द्र यादव से विवाह करने की अपनी इच्छा को ज़ाहिर करती है। दीदी राजेन्द्र यादव से मिलती है। राजेन्द्र अपनी लेखकीय भाषा का प्रयोग करके दीदी का मनमोह लेते हैं। दीदी भी राजेन्द्र यादव से ही मन्नू का विवाह

करवाने का वचन देती है और विवाह की तैयारियों में जुट जाती है मन्नू भण्डारी दुल्हन रूप में स्वयं की कल्पना करती है माँग में सिन्दूर, माथे पर बिंदिया, गले में मंगलसूत्र, हाथों में लाल–हरी चूड़ियाँ, लाल रंग की साड़ी पहने हुए हैं। सौभाग्य से वह दिन भी आ गया, जब मन्नू की कल्पना साकार हो गई, अब मन्नू भण्डारी 'सुश्री मन्नू' भण्डारी से 'श्रीमती मन्नू राजेन्द्र यादव' हो जाती है, किन्तु राजेन्द्र यादव सामन्ती सोच के वशीभूत होकर विवाह के दूसरे दिन ही समानान्तर जिन्दगी का आधुनिक फार्मूला उपहार के तौर पर मन्नू भण्डारी को थमा देते हैं, बेबस मन्नू के लिए 'चयन की स्वतंत्रता' ही 'चयन का जोखिम' बन जाती है। वह लिखती हैं कि "राजेन्द्र ने 'समानान्तर जिन्दगी' का आधुनिकतम पैटर्न थमाते हुए जब कहा कि– देखो, छत ज़रुर हमारी एक होगी लेकिन जिन्दगियाँ अपनी–अपनी होंगी। बिना एक–दूसरे की जिन्दगी में हस्तक्षेप किए बिल्कुल स्वतन्त्र 'मुक्त और अलग', तो मैं तो बिल्कुल अवाक्। आधुनिक जीवन के इस पैटर्न से मेरा परिचय नहीं था, परिचय तो क्या, दूर–दूर तक इसकी कोई कल्पना तक मेरे मन में नहीं थी।"[92] आधुनिकता की आड़ में राजेन्द्र यादव गृहस्थी का बोझा मन्नू भण्डारी के कोमल कंधों पर डालकर उनकी स्त्री–स्वतंत्रता का हनन करते हैं।

'अन्या से अनन्या' आत्मकथा में प्रभा खेतान परम्परागत लीक से हटकर अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को स्थापित करती हैं। परिवार एवं समाज के सामने स्त्री–स्वतंत्रता का नया आयाम प्रस्तुत करती हुई प्रभा खेतान अपनी मेहनत, लगन, दृढ़ इच्छा शक्ति से पश्चिम के बाजार में चमड़ा उत्पादनों से निर्मित वस्तुएँ बेचकर चमड़ा व्यवसाय में धूम मचा देती है। अपनी इच्छा से शादीशुदा एवं बाल–बच्चेदार पुरुष कलकत्ता के प्रसिद्ध आई सर्जन डॉ. सर्राफ से विवाह बंधन में बंधे बिना ही प्रेम करती है। चयन की स्वतंत्रता को ही प्रभा खेतान स्त्री–स्वतन्त्रता के खाते में रखती हैं, डॉ. साहब से कहती हैं "क्या यही है पढ़ने–लिखने का लाभ, कि घरवाले चाहे जिस खूँटे से मुझे बाँध आए? चुनाव, निर्णय की स्वतंत्रता, प्रतिबद्धता जैसे शब्दों को मैं आज तक सुनती आई हूँ, आज मैं खुद से पूछना चाहती हूँ–बस क्या यही है स्त्री की नियति? उसका जीवन? अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी.......।"[93]

प्रभा खेतान अपनी जान से ज्यादा डॉ. साहब को चाहती हैं, अपने प्रेम का खुलासा अपनी बहन गीता से करती है। गीता इस संबंध पर अपने होंठों को थोड़ा टेढ़ा कर लेती है। उस दिन से प्रभा खेतान बहन गीता के प्रति अपने दिमाग के दरवाजे हमेशा के लिए बंद कर लेती है। प्रभा खेतान डॉ. साहब के साथ अपने प्रेम प्रसंग को लेकर बेहद उत्साहित है। वह अपनी खुशी अपनी सहेलियों शुभा, नीना, शर्वरी और शानता से ज़ाहिर करती हैं प्रभा की बात सुनकर सहेलियाँ कहती हैं–

"मूर्ख हो! ऐसे कोई अपने को आग में झोंकता है?"

"पागल हुई है, तेरे भाई लोग सुनेंगे तो मार दी जाएगी।"

"मगर क्यों? मैंने क्या अपराध किया है?"

"विवाहेत्तर सम्बन्ध को पाप कहा जाता है और तू अपना अपराध पूछती है।"[94]

'अन्या से अनन्या' आत्मकथा में प्रभा खेतान चयन की स्वतंत्रता का जोखिम भी उठाती है। अपमानित भी होती है, इतनी उपलब्धियों को पाने के बाद भी वह किसी भी लड़की के लिए उनके जीवन की प्रेरणा नहीं बन पाती। उनकी यह स्वतंत्रता आज उन्हें बदनामी के चौराहे पर ला पटकती है। यह स्वतंत्रता आज उन्हें विष के समान पीड़ा दे रही है। प्रभा खेतान लिखती हैं कि "कोई लड़की मेरे जैसी नहीं होना चाहती थी.......मेरी तमाम सफलताएँ सामाजिक कसौटी पर पछाड़ खाने लगती। सारी उपलब्धियाँ अपनी चमक खो देतीं। अतः मेरी स्वतंत्रता एक जहरीली स्वतंत्रता थी।"[95]

इतनी जिल्लत भोगने के बाद भी प्रभा खेतान के आत्मविश्वास में कमी नहीं आई। जीवन के प्रति उनकी सकारात्मक सोच ही उन्हें यह सब अपमान झेलने की ताकत देती रही है। वे लिखती हैं कि "इन तमाम दबावों के बीच मुझे बहुधा लगता कि मैं बिल्कुल स्वतंत्र हूँ क्योंकि मैं अकेली हूँ। जीने के लिए आखिर क्या चाहिए और कितना? जितना चाहिए उतना मेरे पास है। मैं अकेले जीकर दिखा दूँगी।"[96]

प्रभा खेतान समाज की अन्य महिलाओं से अपनी तुलना करती है, तो सोचती है कि इन महिलाओं की पहचान कितनी सीमित है। इनकी पहचान इनके पति एवं बच्चों तक ही है, इन महिलाओं के लिए इनका परिवार ही सबकुछ है। दो वक्त की रोटी की खातिर ये घरेलू महिलाएँ पति एवं बच्चों की सेवा में अपना सारा जीवन नष्ट कर देती हैं। न स्वतंत्र होकर जी पाती है, न जिन्दगी के सुख खुलकर भोग पाती हैं। इन महिलाओं से मैं बिल्कुल अलग हूँ, अपना पैसा खुद कमाती हूँ, किन्तु फिर भी एक अभाव–सा, खालीपन जीवन में बना ही रहता है। इतना रुपया–पैसा होने पर भी मन को वह सकुन नहीं जो इन घरेलू महिलाओं को होता है कि इन्हीं घरेलू कामकाजी महिलाओं में से एक महिला प्रभा खेतान से पूछती हैं– "तुम विवाह क्यों नहीं कर लेतीं? सुखी रहोगी।"[97] दूसरी उत्तर देते हुए कहती है– "तुम तो विवाहित हो लेकिन क्या तुम सुखी हो? तुम्हारे पास तो ऐसा कोई छोटा–सा कोना नहीं जहाँ बैठकर तुम अपने लिए कुछ सोच सको।"[98]

महिला उत्तर देते हुए कहती हैं कि "हमारे साथ समाज है, सुरक्षा है।"[99] प्रभा खेतान कहती हैं कि "लेकिन तुम अपने बारे में निर्णय लेने में स्वतंत्र कहाँ? और क्या तुम भी मेरी जैसी जिन्दगी चाहोगी? क्या मैं तुम्हारी आँखों का सपना बन सकूँगी?"[100]

महिला कहती हैं कि "हमें नहीं मालूम, तुम्हारी इस नई जिन्दगी के बारे में हमें कुछ नहीं मालूम और इस समाज से लड़ना उतना आसान नहीं जितना कि तुम समझ रही हो।"[101]

प्रभा खेतान कहती हैं कि "मैं समझ रही थी कि मेरी इस बेतुकी दुनिया को शायद ही कोई औरत अपनाना चाहे।"[102]

मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा 'गुड़िया भीतर गुड़िया' में स्त्री–स्वतंत्रता के कई प्रसंग देखने को मिलते हैं। प्रथमतः मैत्रेयी पुष्पा पति के दोस्त डॉ. सिद्धार्थ के साथ नाचती है, तो वहाँ उपस्थित सभी लोगों में खुसर–पुसर शुरु हो जाती है। उड़ते–उड़ते खबर पति के कानों तक पहुँचती है। शंका का बीज डॉ. शर्मा के मन में बैठ जाता है, शंका के बीज को बौने में आखिर वक्त ही कितना लगता है गृहस्थी की शान्ति को शंका की आग निगल जाती है। इसका साक्षात् प्रमाण इतिहास में देखा जा सकता है। रामचरित्रमानस में श्रीराम एक मूर्ख धोबी के कहने पर पत्नी सीता का त्याग कर देते हैं, तो डॉ. शर्मा तो एक साधारण पुरुष ठहरे। मैत्रेयी की गृहस्थी को शंका की आग घेर लेती है। इंसान नहीं ये तो अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (एम्स, दिल्ली) दिल्ली शहर के ऊँचे औहदेदार डॉक्टर्स स्त्री–पुरुष हैं जो कपड़े तो आधुनिक पहनते हैं, किन्तु सोच से आज भी परम्परा से चिपके हुए हैं। पति के इस व्यवहार से खिन्न होकर मैत्रेयी पुष्पा लिखती हैं कि "यदि कोई पति अपनी पत्नी की कोमल भावनाओं को कुचलकर खत्म करता है, तो पत्नी को पतिव्रत के नियमों का उल्लंघन हर हालत में करना होगा।"[103]

स्त्री–स्वतंत्रता के सम्बन्ध में मैत्रेयी पुष्पा लिखती हैं कि "जो लोग इलजाम लगा रहे हैं, उन्हें जाकर बता दो कि शादी के बाद मुझे मेरे हिसाब से कारावास मिला है, जिसके लौह–कपाट मैं तभी से तोड़ने में लगी हूँ और देखना चाहती हूँ कि इस दुनिया के अलावा भी कोई दुनिया है? पति के अलावा कितने लोग हैं बाहर? वैसे पति से बैर भाव नहीं पाला, मगर उनके किसी खूँटे से बंधना?.....मैं भी अपने अन्दर गहरी भावनाएँ रखती हूँ, जैसे कोई गुप्त प्यार को बचा ले। नाचने की स्मृति मेरे साथ रहेगी।"[104]

इस आत्मकथा में मैत्रेयी पुष्पा पति के प्रति वफादारी को ही स्त्री की कमजोरी मानती है। वह लिखती हैं कि "सतीत्व के दम पर मुझे स्वर्ग मिल जाए (अगर मिलता हो तो) वह स्वतंत्रता नहीं मिलेगी, जिससे मैं भविष्य की दिशाएँ और रास्ते जय कर सकूँ।"[105]

मैत्रेयी पुष्पा इस आत्मकथा के जरिए स्त्री–स्वतंत्रता के संबंध में पुरुष प्रधान समाज की सोच पर सवाल उठाती हैं। पुरुष चाहे वह वकील, इंजीनियर या डॉक्टर हो या खुली मानसिकता का दावा करने वाला, स्त्री–स्वतंत्रता की जब बात आती है, तो वह बड़ी ही चतुराई से बच निकलता है। भले स्त्री आत्मनिर्भर ही क्यों न हो गुलामगीरी करने के लिए वह अभिशप्त है। वह लिखती है कि "हमारी जिन्दगी की बागडोर तो उस घर की चौखट से बंधी है, जिसमें हम स्त्री की तरह पनाह पाए हुए हैं। मैं आर्थिक रूप से स्वतंत्र नहीं, गुलामगीरी के लिए अभिशप्त हूँ। लेकिन मेरी बेटी? पेशे से डॉक्टर, सरकारी पद से विभूषित, आर्थिक आत्मनिर्भरता की दावेदार 'करवाचौथ' जैसे पतिव्रत के त्यौहार की मुजरिम हुई और उम्र कैद मिली।"[106]

विवाह के बाद अपनी स्वतंत्रता को पाने की कोशिश में लगी मैत्रेयी पुष्पा लिखती हैं कि "मिला फिर सुरक्षा का गढ़, संरक्षण का किला, पवित्रता का मन्दिर। शान्ति के नाम पर निश्चिन्तता की सन्नाटें से भरी गुफा। कैसा है गुलामी का आनन्द, जिसमें पति और पति की आज्ञा की इन्तजारी। मैं पिया की प्यारी, अतिप्यारी। लेकिन आज आनन्द सहा नहीं जाता। कभी आजादी के खतरे डराया करते थे, पराधीनता की बेफिक्री में घुटने लगी।........? मैं ही थी कि अपने बन्धनों को डर और आंतक के कारण काटना नहीं चाहती थी। मानलिया था विवाहिताओं की यही नियति है आज अपने ब्याह के पुराने फैसले पर दुखी हूँ या ब्याह की वर्जनाओं को तोड़ने के नए संकल्प पर पछता रही हूँ पत्नी की भूमिका अपनी कसावट में यन्त्रणा दे रही हैं।"[107]

रमणिका गुप्ता की आत्मकथा 'आपहुदरी' में स्त्री–स्वतंत्रता के कई प्रसंग दिखाई देते हैं। प्रथमतः अपने बड़े भाई सत्यव्रत बेदी द्वारा अपनी पत्नी की नृत्य सीखने की इच्छा को पूरा करने के लिए स्वयं नृत्य अध्यापक से बात करते हैं। उन्होंने अपनी पत्नी को वह सभी स्वतंत्रताएँ दे रखी थी, जो एक मनुष्य को मनुष्य होने के नाते प्राप्त होनी चाहिए। भाभी नृत्य सीखकर अपनी स्वच्छंद पहचान बनाती है नृत्य के जरिए ही अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व लेकर खड़ी होती है। बाद में जोहरा सहगल के नृत्य–ग्रुप में शामिल होकर जगह–जगह नृत्य कार्यक्रमों में भाग लेने जाती हैं। बहूँ को इस तरह मंच पर सबके सामने नृत्य करते देख सास (रमणिका की माँ) पूरे घर में कोहराम मचाते हुए कहती हैं– "'डॉक्टर साहब की बहूँ' चर्चा का विषय बन गयी।"[108]

महारानी पटियाला महेन्द्र कौर द्वारा जब सास से बहू के अगले शो पटियाले में कब होगा। पूछे जाने पर सास आग–बबूला हो उठती है। घर आकर बहू को खरी–खोटी सुनाती है। रमणिका बीच में आकर बोल उठती है– "क्यों कोसती हैं आप भाभी को? जो कहना है, भैया से कहिए। भाभी तो वही करती हैं, जो भैया कहते हैं।.....अपने बेटे से कहिए न, जो कहना है।"[109] बेटी को भाभी के पक्ष में बोलते देख माँ स्त्री स्वभाववश कलह मचाते हुए कहती हैं– "बहू तो हाथ

से बाहर हो ही गई थी, अब, बेटी भी हाथ से निकल रही है। वह भी दिन भर नाचती रहती है।"[110] बेटी को व्यंग्य करते हुए बीवी जी कहती हैं– "जा तू भी कंजरी बन जा। कोठे पर पर नाच। बड़े ने तो नाक कटा ही दी है, अब तू भी कटा दे।"[111] पिता माँ को समझाते हुए कहते हैं– "जमाना बदल रहा है। बेटे के खिलाफ बहू कैसे जाएगी?"[112] माँ ने तुरन्त मरने का अपना अल्टीमेटम पिता को देते हुए कहा– "अगर पटियाला में उसका शो हुआ तो मैं ज़हर खाकर मर जाऊंगी।"[113]

इस आत्मकथा में रमणिका गुप्ता अपने बड़े भाई सत्यव्रत बेदी के रूप में ऐसी युवा पीढ़ी को देख रही हैं, जो स्त्री–स्वतंत्रता के पक्षधर ही नहीं है बल्कि स्वयं अपनी पत्नी की स्वतंत्रता की रक्षा करते हैं। भाई जैसे पति की कल्पना करते हुए रमणिका गुप्ता लिखती हैं– "काश मुझे भी भैया जैसा पति मिले, जो मुझे मुक्त हवा में उड़ने दे, तो मैं भी अपने सिर से कहीं ऊँची उड़ान भर लूंगी।"[114]

सुषम बेदी की आत्मकथा 'आरोह–अवरोह' में स्त्री–स्वतंत्रता के कई उदाहरण देखने को मिलते हैं। हांलाकि सुषम बेदी का जन्म परतंत्र भारत में ही हुआ था। उस समय लड़कियों को लेकर समाज की सोच कुछ ज्यादा ही संकुचित थी, किन्तु इस मामले में सुषम बेदी से भाग्यशाली शायद ही कोई लड़की उनके परिवार में होगी जिसे सुषम की तरह स्वतंत्रता प्राप्त हो। उनके परिवार की लड़कियों में केवल सुषम ही थी, जो पहली बार कॉलेज पढ़ने गई थी। इतना ही नहीं जिस भारतीय समाज में लड़कियों के सिनेमा देखने जाने पर पाबन्दियाँ लगी हों, उसी समाज में पैदा हुई सुषम बेदी रेडियो, नाटक, टेलीविजन में काम करती है। सुषम बेदी लिखती हैं कि "दूरदर्शन में मुझे कई कलाकारों के साथ काम करने का मौका मिला। बाद में ये सब ज्यादातर फिल्मों में चले गये। खास तौर से जब समानान्तर सिनेमा का दौर आया तो। कुलभूषण खरबंदा, ओम और सुधा शिवपुरी, सुधा चोपड़ा, दिनेश ठाकुर इत्यादि। ये सब अब फिल्मी दुनिया के जाने–माने नाम हैं। भगवती चरण वर्मा के भूले बिसरे चित्र में मेरी भूमिका जमुना की थी और कुलभूषण खरबंदा की ज्वाला प्रसाद की। सोलह साल की उम्र से लेकर अस्सी साल की बुढ़िया तक की भूमिका को जिया, उस नाटक की 17 किश्तों में।"[115]

सुषम बेदी की आत्मकथा 'आरोह–अवरोह' में स्त्री स्वतंत्रता का दूसरा उदाहरण वहाँ मिलता है, जब सुषम अपने अफसर पति के साथ पाश्चात्य देश पहुँचती हैं। वहाँ जाकर सुषम बेदी वे सभी कार्य करती हैं, जिन्हें भारत में रहते हुए नहीं कर पाई थीं। स्वतंत्र होकर जीवन जीती है। अपनी इच्छा से स्लीवलेस कपड़े पहनती है। बाल कटवाती है, स्वीमिंग सूट पहनकर समुद्र की गहराईयों को नापने की अपनी इच्छा को पूरा करती हैं। उस समय भारत में स्त्रियों के

लिए अपनी इच्छा से स्वतंत्र जिन्दगी जीना एक कल्पना ही थी, किन्तु आज तो भारत में स्त्रियाँ स्वतंत्र होकर अपना जीवन जी ही नहीं रही अपितु वे पुरुषों से बराबरी करती भी नज़र आ रही हैं। भारत में स्त्रियों की बदलती स्थिति को देखकर सुषम बेदी को प्रसन्नता होती है कि भविष्य में उत्पन्न स्त्रियाँ अपनी स्वतंत्रता का किसी को हनन नहीं करने देगी। वे अपने सारे निर्णय स्वतंत्र होकर लेगी।

4.5 स्त्री–आत्मसम्मान

मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा 'कस्तूरी कुण्डल बसै' में कस्तूरी एक ऐसी स्त्री है, जिसका आत्मसम्मान जागृत है। वह अपने सिद्धान्तों की रक्षार्थ वरों के पिताओं से विद्रोह करते हुए कहती है कि "मैं मर भी जाऊँ तो मेरा स्वभाव बदलने वाला नहीं। मैं पाठक जैसे लोगों के घटिया चलन और दादागिरी से दहल जाऊँगी क्या? उसे पता नहीं, बीते जीवन में मैं किन हदों से गुजरकर आई हूँ?"[116]

कस्तूरी विवाह को समाज की कुरीतियों का ही एक हिस्सा समझती है, जिसमें दहेज का खूँखार चलन उसकी शिक्षित बेटी को अपमानित कर रहा है। कस्तूरी बेटी मैत्रेयी के विवाह का प्रस्ताव वरों के पिताओं द्वारा ठुकराए जाने पर उतनी आहत नहीं होती जितनी कि वर के पिता द्वारा कस्तूरी का तिरस्कार किए जाने से होती है– "रोज–रोज आ जाती है। तूने यह घर खाला का घर समझ लिया है? झोला उठाया और चल दी। हमारी कोई इज्जत नहीं है क्या, कि शादी–ब्याह जैसा मामला लुगाई तै करे। जा यहाँ से, कोई मर्द–मानस हो तो भेजना। बिरादरी के लोग मखौल उड़ाते हैं।"[117]

हमारी भारतीय संस्कृति में सदियों से ही एक परम्परा चली आ रही है। शादी–ब्याह जैसे सामाजिक कार्य घर के मर्दों द्वारा ही तय किए जाते हैं, लेकिन इसे कस्तूरी का दुर्भाग्य ही कहेंगे कि उसके घर में कोई पुरुष ही नहीं है। ऐसी स्थिति में कस्तूरी को ही पुरुष की भूमिका का वहन करना पड़ता है। बेटी के ब्याह के लिए वर ढूँढने में कस्तूरी का आत्मसम्मान छलनी–छलनी होता है। माँ के अपमान की स्थिति को प्रकट करते हुए मैत्रेयी पुष्पा लिखती हैं कि "माताजी मूढ़े पर बैठी पानी–पानी हो गई। किधर बहें, कहाँ निकले? अपमान के मारे आँखे भर आई। औरत की तरह रोना भी मुहाल लगा। औरत होना ही तो भर्त्सना पा रहा है। वे मर्द की तरह होंठ कसे और नथुने फुलाती हुई बैठी रहीं। मगर कितनी देर............ढेर हो गई थी घर आकर। झोला (बेग) न जाने कहाँ गिरा आई। साथिन गौरा उनका चेहरा देखकर डर गई क्योंकि उस चेहरे पर बेइज्जत होने का भाव इस कदर तारी था कि वह चेहरा नहीं स्याह तवा–सा लग रहा था, आँख, नाक

विहीन, सपाट। मानो उनके सामने एक काला पर्दा टँग गया हो। उस पर्दे पर काले बाल साँप के से फन लटक रहे थे।"[118]

आज से पूर्व मैत्रेयी ने भी माँ कस्तूरी को इतना दुःखी नहीं देखा था। पति की मृत्यु पर भी जिस औरत के आँसू नहीं निकले थे। मृत्यु के समय भी रोने की रस्म कस्तूरी के कथनानुसार उसकी माँ (मैत्रेयी की नानी) ने ही पूरी की थी क्योंकि पति के मरने के बाद काल के समान मुँह फैलाए जिम्मेदारियाँ खड़ी थी, जिसके कारण कस्तूरी को पति के देहान्त पर ठीक से शोक मनाने का भी समय ही नहीं मिला। आज मैत्रेयी के ब्याह के लिए जगह–जगह अपमानित होती है, रो–रोकर बुरा हाल है, माँ को इस हाल में देखकर मैत्रेयी गौरा से अपनी वेदना व्यक्त करते हुए कहती हैं– "गौरा, अब क्या होगा?" विष–भरा–सा वाक्य।

गौरा चुप। सदमे में उसकी जुबान कील दी।

"आसपास डुगडुगी बजेगी?"

मैत्रेयी की छाती में एक आर्त डुगडुग होने लगी।

"अच्छा होता मैं इस लड़की के लिए रिश्ता खोजने की बात न सोचती, पर..........जाको प्रभु दारुण दुख देंही, ताकि मति पहले हर लेंही........कहने के बाद वे फफक फफककर रो पड़ीं।"[119]

मन्नू भण्डारी की आत्मकथा 'एक कहानी यह भी' में स्त्री–आत्मसम्मान के कई स्वर देखने को मिलते हैं। प्रथमतः मन्नू भण्डारी के जीवन में कई उतार–चढ़ाव आए, लेकिन उन्होंने धैर्य का दामन कभी नहीं छोड़ा। एक–एक पैसे को बचाने के लिए जद्दोजहद करते हुए शारीरिक, मानसिक, आर्थिक संकटों से भी गुजरी, किन्तु कभी भी परिवार या मित्रों के सामने पैसों के लिए हाथ नहीं फैलाए। बिटिया की शादी, मकान इत्यादि सभी खर्चे स्वयं कमाए धन से ही किए। उनके भीतर एक विशेष गुण भी था, मन्नू भण्डारी उतने ही पैर पसारती थी जितनी उनकी चादर (सामर्थ्य) होती थी। मन्नू भण्डारी स्त्री–आत्मसम्मान का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए लिखती हैं कि "पैसे का संकट चाहे जितना रहा हो....ज़रुरत भी रही हो, पर पैसे का लालच तो आज तक कभी नहीं रहा। पैसे के लिए मैंने कभी भी किसी भी तरह के समझौते नहीं किए, न अपने लेखन में...... न ही अपनी व्यक्तिगत जिन्दगी में। जितनी चादर थी, उतने ही पैर फैलाने की आदत शुरु से ही डाल ली थी, इसलिए कभी किसी से उधार तक नहीं माँगा..........न घर बनवाते समय, न टिंकू की शादी के समय और न ही अपनी हारी–बीमारी के दौरान।"[120]

मन्नू भण्डारी की आत्मकथा में स्त्री–आत्मसम्मान का दूसरा स्वर वहाँ दिखाई देता है, जब मन्नू भण्डारी स्वयं पाठकों को बताती है कि विवाह के पश्चात् भी वह कभी पति राजेन्द्र यादव पर आश्रित नहीं रही। ब्याह के बाद भी उन्हें ही अपनी रोटी कमानी पड़ी।

स्त्री जब ब्याह के बाद भी अपना सारा खर्च, अन्य पारिवारिक जिम्मेदारियाँ अकेले ही उठाती है, तो उसे स्त्री–आत्मसम्मान की दृष्टि से देखा जाना चाहिए। मन्नू भण्डारी राजेन्द्र यादव के 'हंस' प्रकाशन की स्थापना में भी सहायता करती रही है। इस संदर्भ में मन्नू भण्डारी लिखती हैं कि "उनका यश चाहे जितना फैला हो और जहाँ–जहाँ तक फैला हो, मैंने उस यश की सीढ़ी चढ़कर न तो अब तक अपने लिए कुछ पाया है, न चाहा है। इनके किसी भी सम्पर्क–संबंध को अपने किसी लाभ या महत्त्वाकांक्षा के लिए आज तक जो कभी भुनाया हो! बल्कि मेरे ही एक–दो सम्बन्धों ने हंस के लिए राजेन्द्र की मदद जरुर की। अपनी रचनाओं की समीक्षा के लिए... पुरस्कारों के लिए या अन्य किसी उपलब्धि के लिए इनके नाम की बैसाखी मैंने नहीं लगाई.....।"[121]

प्रभा खेतान की आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' में स्त्री–आत्मसम्मान के कई स्वर मुखरित होते हैं। प्रथमतः जब प्रभा खेतान हॉलीवुड से ब्यूटी थैरेपी का कोर्स करने अमेरिका जाती है, तो वहाँ कुछ एक व्यक्तियों को छोड़कर अन्य सभी लोग उन्हें एक गरीब देश से आई महिला की दृष्टि से देखते हैं। ग्रेटा गारबो अमेरिका की प्रसिद्ध अभिनेत्री के फैशियल में प्रभा डायना त्रातस्की की मदद करती हैं। जाते समय ग्रेटा गारबो प्रभा को पचास डॉलर टिप में देती है, जिसे प्रभा खेतान वापस लौटा देती है। पैसे की जरुरत होने के बाद भी प्रभा अपने आत्मसम्मान से समझौता नहीं करती। वह कैथी से कहती हैं– "तुम अमीर देश की, अमीर बाप की, अमीर आदमी की बीवी, तुम कैसे समझोगी कि यहाँ आकर कैसे मुझे एक–एक डॉलर के लिए मोहताज होना पड़ा है।"[122] प्रभा की बातें सुनकर कैथी कहती हैं कि "प्रभा, औरत अभी मनुष्य श्रेणी में नहीं गिनी जाती और तुम अमीर–गरीब का सवाल उठा रही हो? तुम मुझे राष्ट्र का भेद समझा रही हो? माई स्वीट हार्ट! हम सब औरतें अर्ध–मानव हैं। पहले व्यक्ति तो बनो, उसके बाद बात करना।"[123]

अपने आत्मसम्मान की रक्षा करते हुए प्रभा खेतान बड़े ही सहज भाव से ग्रेटा गारबो से कहती हैं– "नहीं–नहीं मैं यानी हम भारतीय टिप नहीं लेते।"[124] उन दिनों प्रभा आइलिन के यहाँ पैइंग गेस्ट के तौर पर रहती थीं। प्रभा जब शाम को घर पहुँचती है, तो पार्लर में घटित पूरी घटना क्रमानुसार आइलिन को बताती हैं। किस तरह से उन्होंने ग्रेटा गारबो की टिप लौटा दी, प्रभा की इस बहादुरी एवं स्वाभिमान को देखकर आइलिन पाश्चात्य देशों की मानसिकता (भारतीय लोगों को लेकर जो बनी हुई) से प्रभा खेतान को अवगत कराते हुए कहती हैं– "उसने डॉलर

दिए और तुमने स्वीकार लिया? तुमने उसकी भीख ले ली क्योंकि तुम एक गरीब देश से आई हो? तुमको पता है तुम्हारे देश की कैसी दयनीय छवि यहाँ का मीडिया दिखाता है?"[125]

प्रभा कहती हैं– "नहीं, आइलिन, मैंने डॉलर लिये ही नहीं, इसीलिए तो त्रातस्की नाराज हो रही थी।"[126]

प्रभा ने जिस तरह अपने आत्मसम्मान की रक्षा की, उससे खुश होकर आइलिन प्रभा से कहती हैं– "अच्छा किया। सुनो, इस तरह अपना आत्मसम्मान नहीं बेचा करते।"[127]

'अन्या से अनन्या' आत्मकथा में स्त्री–आत्मसम्मान का दूसरा प्रसंग वहाँ दिखाई देता है, जब प्रभा खेतान दिनोंदिन सफलता की सीढ़ी चढ़ती जा रही है और डॉ. साहब को स्वयं की कमजोरी पर गुस्सा आता है, प्रभा खेतान कुछ समय के लिए डॉ. साहब से दूरी बना लेती है और चमड़ा व्यापार में ही पूरा ध्यान देती है। अविवाहित मातृत्व से मुक्ति पाने के लिए प्रभा स्वेच्छा से गर्भपात कराती है, इस घटना से प्रभा टूट–सी जाती है। जीवन में अकेलापन महसूस करती है और डॉ. साहब भी उन दिनों अपने परिवार को लेकर घूमने चले जाते हैं, जबकि इस समय डॉ. साहब की सबसे ज्यादा जरुरत अगर किसी को थी तो प्रभा को थी, ऐसी घड़ी में भी डॉ. उनका साथ नहीं देते। प्रभा खेतान डॉ. साहब द्वारा की गई बेरुखी से आहत होकर लिखती हैं कि "भला प्रेमिका की भूमिका भी कोई भूमिका हुई? प्रेम तो सभी करते हैं। प्रेम करने वाली स्त्री, माँ, बहन, पत्नी वह कुछ भी हो सकती है या फिर सीधे–सीधे उसे रखैल कहो ना। रखैल का क्या अर्थ हुआ? वहीं जिसे रखा जाता है, जिसका भरण–पोषण पुरुष करता हो लेकिन डॉक्टर साहब तो मेरा भरण–पोषण नहीं करते, उनसे मैंने कभी कोई आर्थिक सहायता नहीं ली। मैं तो खुद कमाती थी, स्वावलम्बी थी, एक आत्मनिर्भर संघर्षशील महिला थी। डॉ. साहब से प्यार जरुर करती थी।"[128]

प्रभा खेतान की आत्मकथा में स्त्री–आत्मसम्मान का तीसरा प्रसंग वहाँ दिखाई देता है, जब मरील क्लारा ब्राउन के पहने हुए कपड़े प्रभा खेतान को देती है। प्रभा खेतान कहती हैं कि "मरील! तुम मेरे बारे में क्या सोचती हो, क्या मैं भिखमंगी हूँ? क्लारा ब्राउन के उतारे हुए कपड़े पहनूँगी? ग्रेटा गारबो से टिप लूँगी? मिसेज डी की मेहरबानी पर पलूँगी? क्या समझा है तुम लोगों ने? रुपये का अवमूल्यन हो गया, पर क्या हम भारतीयों का कोई आत्मसम्मान नहीं है?"[129]

यहाँ पर मरील का उद्देश्य प्रभा के आत्मसम्मान को चोट पहुँचाना नहीं था अपितु मरील तो प्रभा खेतान की मदद करना चाह रही थीं। वहाँ के फैशन के अनुसार प्रभा भी कपड़े पहने। मरील स्वयं भी पार्लर में काम करती थीं। उसकी भी आर्थिक स्थिति इतनी सुदृढ़ नहीं कि वह बाजार से नए वस्त्र खरीद कर प्रभा को दे सके।

'अन्या से अनन्या' आत्मकथा में स्त्री–आत्मसम्मान का चतुर्थ प्रसंग वहाँ दिखाई देता है, जब प्रभा डॉ. साहब के क्लीनिक में काम करती थीं। उसी दौरान डॉ. साहब के मित्र की पत्नी अपनी आँखों का चैकप करवाने आती है। डॉ. और प्रभा के प्रेमसम्बन्ध पर प्रभा को गालियाँ देती है, प्रभा अपमान से जमीन में धँसी जा रही थीं। अपने आत्मसम्मान पर चोट पहुँचते देख प्रभा सुन्न रह जाती हैं, किन्तु होश आते ही सोचती है कि "लेकिन मेरे आत्मसम्मान को क्या हो गया था? मैं क्यों इतनी दयनीय और कातर हो गई कि अपने पक्ष में कुछ कह न सकी? मिसेज......की ऊँची आवाज, गाली–गलौज बाहर स्टाफ ने भी सुना होगा। क्या सोच रहे होंगे वे सब मेरे बारे में? और ठीक ही तो कह रही हैं मिसेज..., मैं डॉक्टर साहब की एक अदना सेक्रेटरी ही तो हूँ।"[130]

प्रभा खेतान की आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' में स्त्री–आत्मसम्मान का पंचम प्रसंग वहाँ दिखाई देता है, जब प्रभा डॉ. साहब के दिल के इलाज के लिए उनके साथ अमेरिका (सेंट लुईस) डॉक्टर केडिया के घर पहुँचती है। वहाँ भोजन की मेज पर प्रभा का परिचय करवाते हुए डॉ. साहब कहते हैं– "इंडिया टूडे में इनकी फोटो निकली है, ये बहुत डॉयनामिक महिला है।"[131] डॉ. साहब के इस कथन से ही प्रभा के प्रति उनका आत्मसम्मान झलकता है।

मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथात्मक कृति 'गुड़िया भीतर गुड़िया' में स्त्री–आत्मसम्मान के कई स्वर मुखरित हुए हैं। प्रथमतः यू.पी.एस.सी. चेयरमैन के घर आने पर मैत्रेयी उनके स्वागत की तैयारियाँ करती हैं। घर को सजाती है। अपनी पाक–कला से सारे क्वारे डॉक्टर देवरों का जिस तरह दिल जीत लेती है। उसी प्रकार आज चेयरमैन साहब के लिए पकवान बनाती हैं। पकवानों की महक से सारा घर महक उठता है। घर आने पर मैत्रेयी भी उनके स्वागत में उनका अभिवादन करने जाना चाहती थीं, किन्तु पति देवता द्वारा उन्हें रसोईघर में ही रहने का आदेश मिलता है। मैत्रेयी ठहरी भारतीय नारी आखिर कैसे वह पति द्वारा खींची गई रेखा को लांघती। रसोईघर की ओट में से ही उनकी एक झलक देखने की कोशिश करती हैं। चेयरमैन साहब के जाने के बाद मैत्रेयी एकान्त में बैठी अपने भीतर झाँकने की कोशिश करती हैं कि उनमें ऐसी कौन–सी कमी थी कि पति देव ने इस तरह अपमानित किया वह लिखती हैं कि "प्रियतम, मेरी उसी भावना ने तुम्हारे दीक्षान्त समारोह में तुम्हारे साथ जाने की ठानी थी, तुम नहीं ले गए। मैं आहत और अपमानित हुई क्योंकि अयोग्य ठहराई गई। मैंने घर आए यू.पी.एस.सी. चेयरमैन से बाहर आकर अभिवादन करना चाहा था, तुमने मुझे रसोई में सिकुड़े रहने की हिदायत दी, मेरे मन को ठेस लगी। ऐसी घटनाओं पर तुम से किसी ने कुछ नहीं कहा। मैंने भी नहीं, क्योंकि मैं विनम्र रहना सीख रही थी।"[132]

अपने अपमान से आहत मैत्रेयी सोचती हैं कि मैंने तो पति की सेवा, सत्कार में कभी कोई कमी ही नहीं आने दी। बस दिन–रात पति की तरक्की के लिए ही ईश्वर से दुआ माँगी। मेरे समर्पण को पति देव ने मेरी कमजोरी मान लिया। मैं अपना दर्द किसी से नहीं कहती। पति देव की एक मुस्कुराहट पाकर ही खुश हो उठती हूँ। वह लिखती हैं कि "मुश्किल है मेरी, बड़ी मुश्किल। सारे दिन तुम्हारी खुशी के बारे में सोचूँ। स्वाद के लिए खाना बनाओ। सेहत का ख्याल रखो। पर्सनैलिटी सजे, ऐसे कपड़े सजाओ। यह सब कुछ आसान है, लेकिन मुँह लटकाकर आओ तो खुश कैसे करुँ आलीजाह को?।"[133]

सिमोन द बाउवार ने अपनी पुस्तक 'द सैकेण्ड सेक्स' में सत्य ही कहा है औरत की सारी स्वतंत्रता उसके पर्स में ही निहित है। स्त्री–आत्मसम्मान का दूसरा पहलू उसकी आत्मनिर्भरता में भी छुपा है। विवाह के बाद आज मैत्रेयी पुष्पा उर्फ डॉ. आर.सी. शर्मा को लगने लगा कि उनकी माँ सत्य ही कहा करती थी– "लाली, ब्याह तो हो गया, पर तू नासमझ औरतों की तरह व्यवहार मत करना। पाँव–फाँव मत पूजना किसी के भी। सुन ले कि 'रोटी छुआई' की रस्म, रस्म नहीं, तुझे चूल्हे–चौके से बाँधने का महूरत निकलेगा। साफ मना कर देना।"[134]

आज मैत्रेयी के कानों में माँ कस्तूरी के कहे शब्द गूँज रहे हैं– "तू पढ़–लिखकर ऐसी पराधीन हो जाएगी, मैंने सोचा न था। अरे दिल्ली बड़ा शहर है तो रहा करे। रास्ते मिलते नहीं तो ढूँढे जाते हैं लाली।"[135] मैत्रेयी पुष्पा कहती हैं– "रास्ते कहाँ खोजू, कौन से रास्ते....मेरी दुनिया पढ़ने–लिखने के माहौल से कट चुकी है, माताजी। यहाँ तुम्हारा दामाद ही मेरा पथप्रदर्शक हैं।"[136]

गोल्ड मेडलिस्ट मैत्रेयी आज जब किसी आत्मनिर्भर महिला को देखती हैं, तो वह भी अपने द्वारा लिए गए विवाह के फैंसले पर पछताती हैं। मैत्रेयी 'लिंग्विस्टिक कोर्स' में प्रवेश के लिए फार्म भरकर आती है। इंटरव्यू कॉल पति के पास आता है। डॉ. शर्मा इस विषय में मैत्रेयी को नहीं बताते। रेखा अग्रवाल मैत्रेयी से इंटरव्यू में नहीं आने का कारण पूछती हैं– "इंटरव्यू में क्यों नहीं आई?" मैत्रेयी पुष्पा – "कैसा इंटरव्यू?।"

रेखा अग्रवाल – "लिंग्विस्टिक वाला।" कहकर ऐसे देखा जैसे मैं अयोग्य भी हूँ और लापरवाह बेवकूफ भी।

मैत्रीय पुष्पा कहती हैं– "कैसे आती। कॉल ही नहीं आया।"

"आया कैसे नहीं? आपका नाम लिस्ट में था।" 'अच्छा!' मैंने अफसोस भरे स्वर में कहा और उसी क्षण सोचा, रेखा स्वाभिमानी है, क्रूर नहीं 'आया था तो गया कहाँ?' मैंने रेखा से ही पूछा। 'आप ही जानें। नहीं जानती तो मालूम कीजिए।"[137]

डॉ. शर्मा– "हाँ आया था। मैंने तुम्हें दिया नहीं।.....क्या करतीं तुम उसका? बस सवेरे से भागी फिरती शाम तक।......मेरा नाम था वहाँ। जरुर होगा।"[138]..... मैं कुछ सीखती। मैं सीखकर उसका उपयोग करती। पति के इस कृत्य से आहत मैत्रेयी पति से कहना चाहती थीं– "अगर मैं भी ऐसा ही करुँ तो?। पति कहते है– करो न। अपना ही नुकसान करोगी। इस घर के लिए कौन कमाएगा?।"[139]

अपने आत्मसम्मान को पाने के लिए मैत्रेयी पुष्पा डॉ. शर्मा से कहती हैं– "यह मत कहो। आजकल औरतें भी कमाकर गृहस्थी चला रही हैं। इस सच को मैंने भी नजरंदाज किया है, तभी तो आज यह हालत......।"[140]

अस्थिर–सी बैचेनी, अवरुद्ध कंठ से आज मैत्रेयी महिला मंगली माँ को याद करती हैं। माँ द्वारा उन्हें कभी यह शिक्षा दी गई थी कि "लाली तेरे हाथ में ज्ञान का दीपक है, तू अपना रास्ता खुद बनाती जाएगी।"[141] मैत्रेयी अपने जीवन के अंधकार से घबरा उठती है और माँ से कहना चाहती है– "माँ, तुमने यह क्यों नहीं बताया कि ज्ञान बड़ा खतरनाक होता है। जिन्दगी मुहाल कर देता है क्योंकि शांति भंग होती है क्योंकि ज्ञान बदलाव के लिए प्रेरित करता है। काश, माँ तुम मुझे इस ज्ञान से न गुजारती!"[142]

इस आत्मकथा में मैत्रेयी पुष्पा अपनी बेटियों के आत्मसम्मान के लिए भी पूरे सिकुर्रा गाँव से भिड़ जाती है।

रमणिका गुप्ता की आत्मकथात्मक कृति 'आपहुदरी' में रमणिका गुप्ता एक ऐसी स्त्री हैं, जिनकी अपनी अस्मिता है, आत्मसम्मान है। अपने आत्मसम्मान की रक्षा करना रमणिका गुप्ता बखूबी जानती है। वह पुरुष प्रधान समाज की नग्नता देखकर शर्म से भागने वाली नहीं बल्कि नग्नता का जवाब वहाँ डटे रहकर देगी। इस संदर्भ में वह लिखती हैं कि "मैं, मैं हूँ। मेरी पहचान है, मैं सम्पूर्ण स्त्री बनकर दिखाऊँगी, जो सम्पूर्ण मनुष्य होती है। अर्धांगिनी नहीं, अपने में सम्पूर्ण।"[143] रमणिका गुप्ता के इस वक्तव्य से उनके दृढ़ संकल्प के साथ–साथ सम्पूर्ण स्त्री बनकर सदियों से चली आ रही परम्परा को तोड़ने का भाव भी स्पष्ट दिखाई देता है। शिव–पार्वती के उदाहरण द्वारा पार्वती अपने अर्धांग नग्न शिव का ताडव नृत्य देखकर पार्वती शर्म से भाग जाती और शिव की जीत हो जाती है। शिव की इस मुद्रा पर रमणिका लिखती हैं कि "मैं अखाड़े से भागने वाली पार्वती नहीं बनूंगी! मैं नंगई से नहीं डरुंगी, नंगई को ही भागने को मजबूर करुंगी। मैं अपनी नंगी आँखों से नंगई देखती रहूंगी, शरमाऊँगी नहीं। शरमा गयी, तो हार गयी। हारेगा तो वह जो नंगा होकर नाच रहा है।"[144]

सुषम बेदी की आत्मकथा 'आरोह–अवरोह' में स्त्री का आत्मसम्मान स्वावलम्बी बनने, अपने पैरों पर खड़ा होने में दिखाई देता है। सुषम बेदी जब भारत में रहती थी तब भी वे आत्मनिर्भर थीं। कॉलेज में अध्ययनरत रहते हुए भी वह स्कूल में पढ़ाने का काम करती थी। विवाह के बाद भी उन्होंने नौकरी करना नहीं छोड़ा। आज भी सुषम बेदी न्यूयार्क शहर में 'हिंदी' विषय के रूप में ही अपनी पहचान जीवित रखे हुए हैं। सुषम बेदी स्त्री आत्मनिर्भरता में ही स्त्री–आत्मसम्मान के दर्शन पाती हैं। इस संदर्भ में वह लिखती हैं कि "मेरे लिए खुद कमाना बहुत जरुरी था क्योंकि तभी मैं महसूस कर पाती कि मैं आर्थिक रूप से स्वतंत्र हूँ। यूं मुझे कभी राहुल ने यह महसूस नहीं होने दिया कि यह उसकी कमाई का पैसा है और मेरा नहीं बल्कि इस बात को बनाए रखा किय यह उतना ही मेरा है, जितना उसका, लेकिन यह मेरे अन्दर की जरुरत थी। चूँकि भारत में मैं कमाती थी, सो यहाँ बिना कमाए रहना मेरे लिए अपना आत्मसम्मान खो देने जैसा था।"[145]

'आरोह–अवरोह' आत्मकथा में सुषम बेदी अपने आत्मसम्मान से जुड़ी बचपन की एक घटना का ज़िक्र करती हैं। वे बताती हैं एक बार बचपन में उन्होंने और उनकी सहेली ने रेडियो नाटक का ऑडिशन दिया था। सहेली सरोज पास हो गई और सुषम नर्वस हो गई कुछ देर बाद अपने को संभालते हुए धीमे स्वर में बोली कि– "मैं भी गा लेती हूँ। शायद मुझे अपना खोया हुआ सम्मान वापस लाना था।"[146]

सुषम बेदी गीत गाकर अपने वजूद को सबित ही नहीं करती अपितु खोए हुए आत्मसम्मान को भी वापस पा लेती है।

निष्कर्ष

हम कह सकते हैं कि इक्कीसवीं सदी की सभी आत्मकथा लेखिकाएँ न केवल अपनी अस्मिता की रक्षा करते हुए दिखाई देती है अपितु समाज की अन्य महिलाओं की अस्मिता को बनाए रखने के लिए भी संघर्षरत हैं।

♦ ♦ ♦ ♦

संदर्भ सूची

1. संस्कृत हिंदी कोश, वामन शिवराम आप्टे, पृ.–1138
2. मानक हिंदी कोश, सं.–रामचन्द्र वर्मा, पांचवा खण्ड, पृ.–298
3. बृहद् हिंदी कोश, सं.–कालिका प्रसाद, पृ.–1576
4. राजपाल हिंदी कोश, डॉ. हरदेव बाहरी, पृ.–854
5. निरुक्त, स्त्रियः स्त्यायतेः अपत्रपणकर्मणः
6. अष्टाध्यायी, पाणिनी, सूत्र संख्या, 4/1/3
7. महाभाष्य, पंतजलि, पृ.–89
8. महाभाष्य, पंतजलि, पृ.–98
9. निरुक्त, मानयन्ति एनाः पुरुषाः 3/21/2
10. ग्ना गच्छन्ति एनाः, वही
11. निरुक्त, योषा यौतेः मिश्रणार्थस्य, सा हिमित्रयति आत्मानं पुरुषेणसाकम्, 3/51/1
12. सौन्दर्यम् वयति।
13. सु+उन्द (गीला करना) अर+ङीप। सुष्ठु नन्दयति इति नैरुक्ताः, क्षीरस्वामी, 3/1/52
14. प्रमद् सम्मदौ हर्षे च
15. लल् इच्छायाम्
16. संस्कृत हिंदी कोश, वामन शिवराम आप्टे, पृ.–133
17. संस्कृत हिंदी कोश, वामन शिवराम आप्टे, पृ.–132–133
18. बृहत् हिंदी कोश, सं. कालिका प्रसाद, पृ.–126
19. मानक हिंदी कोश, सं. रामचन्द्र वर्मा, पृ.–286
20. राजपाल हिंदी शब्दकोश, हरदेव बाहरी, पृ.–71
21. हिंदी शब्द सागर, सं. श्यामसुंदर दास, प्रथम भाग, पृ.–386
22. प्रसाद के नाटकों में धार्मिक–दार्शनिक अस्मिता (लेख), डॉ. सुरेन्द्रनाथ सिंह, पृ.–53
23. प्रसाद के नाटक और भारतीय अस्मिता, सुरेश चन्द्र गुप्ता, पृ.–9
24. प्रसाद के नाटक और भारतीय अस्मिता, सुरेश चन्द्र गुप्ता, पृ.–12
25. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, तोहि भावे, पृ.–23
26. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, तोहि भावे, पृ.–23
27. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–221
28. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–165

29. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–77
30. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–248
31. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–212–213
32. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–180
33. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–180
34. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–12
35. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–207
36. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–207
37. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–207
38. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, काहे री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.–17
39. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, एक सुहागिन जगत पियारी, पृ.–74
40. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, एक सुहागिन जगत पियारी, पृ.–75
41. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, एक सुहागिन जगत पियारी, पृ.–75
42. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, तृषावंत जो होयगा, पृ.–130
43. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पति संग जागी सुंदरी.......पृ.–248
44. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, दोहरे मापदंड, पृ.–70
45. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, ईष्या और डाह, पृ.–252
46. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, ईर्ष्या और डाह, पृ.–254
47. हादसे, रमणिका गुप्ता, औरत अगर खुदसर हो, पृ.–16
48. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, अमेरिका आवासन के खट्टे–मीठे अनुभव, पृ.–162–163
49. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, अमेरिका आवासन के खट्टे–मीठे अनुभव, पृ.–160
50. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–29
51. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–29
52. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–214
53. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–86
54. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–86
55. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–98
56. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–179
57. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–83
58. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, काहे री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.–17

59. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, तृषावंत जो होयगा....पृ.–131
60. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, तृषावंत जो होयगा....पृ.–131
61. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, भाभी, पृ.–131
62. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, शंकाकी शुरुआत, पृ.–248
63. हादसे, रमणिका गुप्ता, स्त्री के प्रति पत्रकारों, पार्टियों व स्वयं स्त्रियों की मानसिकता, पृ. –264
64. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, यात्राएँ अंतर्जगत की, पृ.–188
65. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–13
66. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–13
67. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–12
68. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–156
69. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–196
70. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–196
71. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–203
72. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–167
73. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–11
74. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, एक सुहागिन जगत पियारी, पृ.–65
75. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, एक सुहागिन जगत पियारी, पृ.–75
76. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, धिय सबै कुल खोयो, पृ.–92
77. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, धिय सबै कुल खोयो, पृ.–92–93
78. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पति संग जागी सुन्दरी, पृ.–246
79. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, मैं घोड़े पर पहाड़ चढ़ूंगी, पृ.–27
80. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, मैं घोड़े पर पहाड़ चढ़ूंगी, पृ.–27
81. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, मैं घोड़े पर पहाड़ चढ़ूंगी, पृ.–28
82. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, मैं घोड़े पर पहाड़ चढ़ूंगी, पृ.–29
83. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, सिर ढककर चलो, पृ.–33
84. हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ–यात्रा, पृ.–31–32
85. हादसे, रमणिका गुप्ता, स्त्री होने के कारण ही, पृ.–245
86. हादसे, रमणिका गुप्ता, स्त्री होने के कारण ही, पृ.–245
87. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, नन्ही स्मृतियां, पृ.–55

88. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, परम्परा और परिवर्तन, पृ.–97
89. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–9
90. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–10
91. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–29
92. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–56
93. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–87
94. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–84
95. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–174
96. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–172
97. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–173
98. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–173
99. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–173
100. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–173
101. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–173
102. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–173
103. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, काहे री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.–15
104. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, काहे री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.–15
105. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, काह री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.–18
106. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पति संग जागी सुन्दरी, पृ.–247
107. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, धरती बरसै अम्बर भीजै, पृ.–295
108. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, भाभी, पृ.–129
109. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, भाभी, पृ.–129
110. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, भाभी, पृ.–129
111. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, भाभी, पृ.–129
112. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, भाभी, पृ.–129
113. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, भाभी, पृ.–130
114. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, भाभी, पृ.–132
115. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, यौवन की देहरी पर–81
116. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–78
117. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–78

118. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–79
119. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–79
120. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–130
121. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–222
122. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–157
123. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–157
124. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–148
125. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–149
126. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–149
127. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–149
128. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–9
129. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–155
130. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–104
131. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–11
132. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, काहे री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.–15
133. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, काहे री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.–11
134. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, कैसे नीर भरे पनिहारी?, पृ.–242
135. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, जो पै पिय के मन नहिं भाभी, पृ.–47
136. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, जो पै पिय के मन नहिं भाभी, पृ.–47
137. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, काहे री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.–24
138. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, काहे री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.–24
139. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, काहे री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.–25
140. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, काहे री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.–25
141. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, काहे री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.–25
142. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, काहे री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.–25
143. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, मद्रास, पृ.–340
144. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, मद्रास, पृ.–340
145. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, अमेरिका आवासन के कुछ खट्टे, कुछ मीठे अनुभव, पृ.–160
146. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, यौवन की देहरी पर, पृ.–67

पंचम अध्याय

इक्कीसवीं सदी के स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य में शिल्प–विधान

पंचम अध्याय

इक्कीसवीं सदी के स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य में शिल्प–विधान

किसी भी साहित्य में शिल्प का अत्यन्त महत्त्व होता है क्योंकि साहित्यकार अपनी अनुभूतियों एवं मनोभावों को अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रस्तुत करता है। इस प्रस्तुतीकरण में साहित्यकार जिन उपादानों, प्रक्रिया, ढंग व कौशल से अनुभूतियों को चित्रित करता है। वह शिल्प पक्ष कहलाता है। 'शिल्प' शब्द के लिए अंग्रेजी भाषा में 'टेकनीक' शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'टेकनीक' शब्द पर अपने विचार व्यक्त, करते हुए जैनेन्द्र कुमार लिखते हैं कि 'टेकनीक' एक ढाँचे के नियमों का नाम है पर ढाँचे की उपयोगिता इसी में है कि वह सजीव मनुष्य के जीवन में काम आये, वैसे ही 'टेकनीक' साहित्य सृजन में योग देने के लिये हैं।[1]

शिल्प साहित्य में अभिव्यक्ति का माध्यम होने के साथ–साथ रचना में सौन्दर्य निर्माण, साहित्य को अलंकृत एवं परिमार्जित भी करता है। साहित्यकार अनुभूतियों को सहज, सरल, सशक्त एवं विशिष्ट बनाने के लिए शिल्प का प्रयोग करता है। साहित्य में शिल्प द्वारा ही कला पक्ष सुदृढ़ प्रभावी एवं सम्प्रेषणीय होता है। साधारणतयाः किसी वस्तु का गठन, निर्माण शिल्प द्वारा ही होता है। साहित्य सृजन की प्रक्रिया में शिल्प का विशेष महत्त्व है। शिल्प शब्द में 'शिल्प' धातु एवं 'पक' प्रत्यय से मिलकर बना है। बृहत् हिन्दी कोश में शिल्प शब्द के अनेक शाब्दिक अर्थ बतलाए गए हैं–"शैली, कार्य–पद्धति, विशेष उपाय, यंत्र।"[2] "शिल्प के अन्य अर्थों में हस्तकर्म, कारीगिरी, कलाक्रम, दक्षता, रूप, निर्माण, सृष्टि एवं आकृति इत्यादि।"[3]

शिल्प पर अपने विचार व्यक्त करते हुए डॉ. सत्यपाल चुग लिखते हैं कि "उपन्यास रचना में जिस प्रक्रिया से लक्ष्य तथा संवेदनानुभूति उसके तत्वों–कथानक, पात्र, वातावरण आदि में परिणत हो औपन्यासिक रूप का निर्माण करते हैं। वही उसकी शिल्प विधि है।"[4]

अन्त में हम कह सकते हैं कि शिल्प अभिव्यक्ति का कलात्मक ढंग, कौशल, प्रक्रिया है। जो किसी भी रचना के आरम्भ से लेकर अन्त तक अपना प्रभाव बनाए रखता है। भाषा प्रयोग, शब्द प्रयोग, लोकोक्ति एवं मुहावरे तथा शैलीगत प्रयोग आदि का समावेश होता है। मैत्रेयी पुष्पा, रमणिका गुप्ता, मन्नू भण्डारी, प्रभा खेतान, सुषम बेदी इत्यादि लेखिकाओं के आत्मकथा–साहित्य में शिल्प पक्ष कथानक अनुरूप है।

5.1 भाषा (भाषा के विविध प्रयोग)

भाषा मानव के भीतर की चेतना को बाह्य जगत् में व्यक्त करने का सशक्त माध्यम है। 'भाषा' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'भाष' धातु से मानी गई हैं, जिसका अर्थ होता है– 'व्यक्त वाणी'। यहाँ व्यक्त वाणी से तात्पर्य मानव–वाग् (उच्चारण की स्पष्टता, सार्थक एवं अर्थपूर्ण भाषा) से हैं। अष्टाध्यायी के रचयिता एवं भाषा वैज्ञानिक 'पाणिनी' ने 'भाषा' के लिए 'व्यक्तवाचां' शब्द का प्रयोग किया है।[5] जिसका अर्थ है–स्पष्टवाणी। भाषा गद्य की सभी विधाओं में अन्विति, आवरण तथा अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। अतः गद्य में उसका वही महत्त्व है, जो मानव–व्यक्तित्व में उसके शरीर का। शरीर की संरचना में अस्थि, मांस–मज्जा, त्वचा एवं सभी शरीरावयवों का आधार होता है और गद्य की संरचना में कथानक, देश–काल, वातावरण, चरित्र–चित्रण, भाषा व उद्देश्य इत्यादि का। कथानक भाषा गद्य की आत्मा होती है। अतः कथानक को शारीरिक जामा पहनाने का कार्य भाषा करती है। गद्य भाषा का महत्त्व अपरिमेय है। "भावाभिव्यक्ति के लिए भाषा–संधान के लिए कितना प्रयत्न करती है, यह कदाचित कहने की आवश्यकता नहीं।"[6] शिल्प के निर्माण में भाषा की कलात्मक अभिव्यक्ति कार्य करती है। भाषा के शब्द रूपों में तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी का प्रयोग आवश्यक है। भाषा को प्रभावशाली एवं समृद्ध बनाने में भाषा के घटकों यथा मुहावरे, कहावतें (लोकोक्ति), शब्द शक्ति, सरल, मिश्रित एवं संयुक्त वाक्य विन्यास का योगदान महत्त्वपूर्ण होता है। भाषा के ये सभी घटक मिलकर भाषा के भाव सौन्दर्य को उत्कर्ष तक पहुँचाते हैं एवं सही भाव ग्रहण करने में भी सहायक होते हैं। संस्कृत सभी आर्य भाषाओं की जननी है। हिंदी भाषा की उत्पत्ति संस्कृत भाषा से हुई है।

सहज, सरल एवं प्रभावी भाषा

हिन्दी भाषा में अपनी लेखनी का जादू चलाने वाली मैत्रेयी पुष्पा, रमणिका गुप्ता, मन्नू भण्डारी, प्रभा खेतान, सुषम बेदी इत्यादि लेखिकाओं के आत्मकथा–साहित्य में भाषा सहज, सरल एवं प्रभावी है।

मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा 'कस्तूरी कुण्डल बसै' में भाषा सहज एवं सरल है। भाषा में प्रवाहात्मकता का प्रभाव जगह–जगह दिखाई देता है। औरत की गुलामी पर कस्तूरी कहती हैं– "खाली खाने–कपड़े की खातिर औरत आदमी के पाँवों में किस कदर बिछ–बिछ जाती है। वह कहीं भी, कुछ भी करने का हक मालिक को सौंप देती है कमाल है, देह मन, आत्मा सब आदमी के हवाले सब स्वामी की सुविधा पर।....औरत का बन्धुआगीरी कभी टूटने वाली नहीं.....।"[7]

इस आत्मकथा में मन्नू भण्डारी का देश–प्रेम स्पष्ट दिखाई देता है। कहीं–कहीं पर भाषा में प्रवाहात्मकता का प्रभाव भी भाषा सौष्ठव को बढ़ा देता है। "मेरा अभिप्राय न तो यहाँ, जो कुछ हुआ, उसका समर्थन करना था, न ही उसे ढकना, लेकिन क्योंकि बात देश की छवि की थी, तो उसे बचाने के लिए मेरे पास एक ही तरीका बचा था कि उन्होंने आरोप की जो गेंद बड़े ताककर मुझ पर, मेरे देश पर उछाली थी, उसे दुगने वेग और दुगने प्रहार के साथ उन्हीं के पाले में उछाल दूँ और यही मैंने किया।"[8]

प्रभा खेतान की आत्मकथात्मक कृति 'अन्या से अनन्या में भाषा बोधगम्य है। "हर हिन्दुस्तानी लड़की का बस एक वही शाश्वत सपना–कब वह लाल चुनरी ओढ़ेगी? कब उसकी सुहागरात होगी, कब कोई धीरे से उसके लाज भरे चेहरे को हथेलियों में भरकर चूम लेगा। मेरी जिन्दगी में भी तो सब कुछ कितनी जल्दी घट गया। मगर बिना किसी उत्सव के बिना मेंहदी के, बिना सिन्दूर के। अम्मा की चिट्ठी में फिर एक और नसीहत, बेटा शादी कर लें, लाल घाघरे में सारे दाग छुपते हैं लेकिन सफेद आँचल में लगा जरा–सा छींटा सबको दिखाई पड़ता है, तो क्या अम्मा को डॉक्टर साहब के साथ मेरे सम्बन्ध की भनक लग गई? नहीं....ऐसा नहीं है। यदि मालूम पड़ जाता तो अम्मा मुझे इतनी दूर आने नहीं देतीं। वहीं कलकत्ते में जमीन में दफना देतीं।"[9]

भाषा में प्रवाहात्मकता का प्रभाव भी स्पष्ट दिखाई देता है। "मुझे लगता, मैं समाज से लड़ सकती हूँ पर डॉक्टर साहब से नहीं। यों ही लोग मेरे इस अवैध रिश्ते के कारण मुझे बुरी औरत कहते हैं और अब यदि डॉक्टर साहब से भी लड़ाई ठन जाए, तो लोगों की नज़र में मैं एकदम गिर जाऊँगी। डॉक्टर पुरुष हैं, समर्थ हैं, लोग तो उन्हीं की बातों पर भरोसा करेंगे, मुझ पर नहीं।"[10]

मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथात्मक कृति 'गुड़िया भीतर गुड़िया' में भाषा सहज एवं सरल है। मैं जानती हूँ, परिवारों में पुरुषों का यह रवैया सामान्य है। यदि खाने में नमक–मिर्च की कमी दिखे या ज्यादा लगे, तो थाली उठाकर मोरी की ओर फेंकी जा सकती है। घर की स्त्रियाँ इस बात को अपने सामान्य डर के रूप में लेतीं, क्योंकि लगभग घर–घर में ऐसे डरों को बनाए रहने का चलन है। मगर 'स्त्रियों की छाती में थालियाँ झनझनाती है'।[11]

रमणिका गुप्ता की आत्मकथा 'आपहुदरी' में भाषा में प्रवाहात्मकता का प्रभाव सहज रूप से दिखाई देता है। कहीं–कहीं पर भाषा बोधगम्य हो गई है। सामन्ती समाज की कसौटियों का बोध करवाती यह आत्मकथा स्त्री दृष्टि की कसौटी को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने की कोशिश भी करते हुए दिखाई देती है। "एक तरीका जो सभी जगह समान है, वह है औरत का यौन–शोषण। बड़े लोग छिप कर शालीनता की ओट में सब कुछ करते हैं और आम लोग

खुलेआम सब करते हैं। यह दोहरे मापदंड की दोहरी–दुमुंही चाल मेरे मन में बचपन से ही चोट करती थी। मेरा परिवार भी इन दोहरे मापदंडों में अग्रणी था क्योंकि सामंत था।"[12]

सुषमबेदी की आत्मकथा 'आरोह–अवरोह' में भाषा सहज एवं सरल है। "पर मजेदार बात यह है कि हर संपादक या लेखक ने मेरी सूरत पर ध्यान तो दिया ही, चाहे उनके तौर–तरीके शालीन रहे हों या चाहे मैं खुद इस बात को नजर अन्दाज करती रही हूँ। बहुतों ने अब कहा जबकि मुझे सुनना अच्छा लगने लगा है क्योंकि कहने वाले ही खत्म हो रहे हैं।"[13]

काव्यात्मकता

मैत्रेयी पुष्पा, रमणिका गुप्ता, मन्नू भण्डारी, प्रभा खेतान, सुषम बेदी इत्यादि लेखिकाओं ने अपनी आत्मकथाओं में स्थान–स्थान पर लोकगीतों के माध्यम से पाठकजन को ग्राम्य संस्कृति के दिग्दर्शन कराये हैं। इन लोकगीतों के कारण इन सभी लेखिकाओं की आत्मकथाओं में भाषा जीवित हो उठी है। भाषा में काव्यात्मकता के कारण प्रसंगों में सौन्दर्यानुभूति की वृद्धि भी देखी जा सकती है। कुछ उदाहरण दृष्टिगत है–

'कस्तूरी कुण्डल बसै' आत्मकथा में मैत्रेयी पुष्पा के विवाह की रस्में शुरु होती है। मंगल कलश भरे जाते हैं। तेल–हल्दी का शगुन हो रहा है। गाँव की सभी औरतें कस्तूरी के आँगन में बैठी मंगल गीत गा रही है। विवाह उत्सव पर गाए जाने वाले गीतों का बड़ा ही रोचक व सुन्दर वर्णन यहाँ किया गया है। आरते गाए जा रहे हैं–

"बुँदबुँदियन बरसैगौ मेह,
झमकारेन भीजैगौ माढ़यौ,
तुम बैठो लढ़लढ़ी हो चौक,
तिहारी बुआ करेंगी आरतौ।

– **मैं तोय पूछूँ वरनी, तेरे माथे मरुअट किन्ने रे दई?**
बहना रानिन के जुर गए झुण्ड, मेरे माथे मारुअट उनने रे दई।
– **मैं तोय पूछूँ वार वरनी, तेरे आँगन हल्दी किन्ने रे दई**
भाभी चाचिन के जूर गए झुंड मेरे अँगन हल्दी उनने रे दई।"[14]

'हादसे' आत्मकथा में रमणिका गुप्ता देश प्रेम की भावना से ओत–प्रोत होकर कविता गाती है–

"रंग–बिरंगी तोड़ चूड़ियाँ
हाथों में तलवार गहूँगी।
मैं भी तुम्हारे संग चलूँगी
मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी।"[15]

'अन्या से अनन्या' आत्मकथा में प्रभा खेतान राजनीति से अनभिज्ञ है। यथार्थ से कटी–कटी रहती है। बंगाल की युवा शक्ति को पहचान नहीं पाई, किन्तु एक कविता लिखती है–

"दृष्टि धुँधली पड़ गई है/कभी न सच होने वाले
उस स्वप्न को देखते हुए/और मैं वह अकेली
चिड़िया हूँ/जो सागर किनारे प्रतीक्षा कर रही/आने वाले तूफान की......।"[16]

'गुड़िया भीतर गुड़िया' आत्मकथा में मैत्रेयी पुष्पा कंचन का पत्र पढ़कर भावुक हो उठती है, किन्तु एक कशम–कश के कारण पत्र का जवाब देने में संकोच करती है। आत्मकथा लिखते समय उन्हें दाई की संतो बहुत याद आ रही है, तो 'कायस्थ के लाल' वाला ढोला मैत्रेयी के लिए गाती थी–

"मेरे घर अइयो रे, अरे कायथ के लाल,
मेरे घर अइयो रे, मेरी कमर उठी है पीर, मेरे घर....
मैं कैसे आँऊ री, अरी मेरी राजदुलारि
मैं कैसे आँऊ री, तेरे द्वार खड़े ड्योढ़ी मान, मैं कैसे...

(कायथ के लाल तू मेरे घर आना। मेरी कमर में पीर उठी है बूटी लाना। मैं कैसे आऊँगा, मेरी राजदुलारी, तेरे द्वार पर तो द्वारपाल खड़े हैं। मैं द्वारपालों को हटा दूँगी। कह दूँगी मेरे वैद्य आ रहे हैं।)

'पर सरकिजा रे अरे मेरे ड्योढ़ीमान,
परे सरकिजा रे
मेरे आवत बैद हकीम, परे सरकिजा रे....।"[17]

'आपहुदरी' आत्मकथा में रमणिका गुप्ता बड़े–बड़े कवि सम्मेलनों में कविता–पाठ करके कविताओं के माध्यम से स्त्रियों को प्रोत्साहित करती है उनकी कविता की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार है–

"विमूढ़–सी मैंने देखा
सामने एक पगडंडी थी
न कोई स्वागत करने वाला
न दुतकारने वाला था वहां
राह में कांटे भी मिले
और फूल भी
मैं उस पर
चलती रही
कांटे चुभते रहे
मैं उस पर
चलती रही
कांटे चुभते रहे
मैं फुल बीनती रही....।"[18]

'आरोह–अवरोह' आत्मकथा में सुषम बेदी लंदन में रहते हुए एक कविता लिखती है। लंदन भारत जैसा ही लगता है जबकि भारत तो नहीं है। 'भारत से बाहर भारत' शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य है–

"सब तो वैसा का वैसा है
वही मंदिर के कलश
वैसे ही गुम्बद गुरुद्वारे के
मीनारें मस्जिदों की
सिर ढकी पंगतें
शीश नवाए भक्त
डर से आहत
सुखों की कामना से विचलित...
हां वैसा का वैसा ही है
फिर भी कुछ तो है
कह जाता है
वैसा का वैसा तो नहीं?
क्या सचमुच वैसा का वैसा ही है?"[19]

चित्रात्मकता

'चित्र' शब्द (संज्ञा पु.) (स.) मस्तक पर चंदन आदि का चिह्न सजीव और विस्तृत विवरण काव्य का एक भेद जिसमें व्यंग्य की प्रधानता नहीं रहती"[20] अर्थात् चित्रात्मक से आशय किसी भी प्रसंग के जीवित एवं विस्तृत वर्णन से है।

मैत्रेयी पुष्पा, रमणिका गुप्ता, मन्नू भण्डारी, प्रभा खेतान, सुषम बेदी इत्यादि लेखिकाओं ने अपनी आत्मकथाओं में रूप एवं दृश्य चित्रों को चित्रित किया है। घटना एवं पात्र, पात्रों की स्थिति, प्रसंग आदि का ऐसा सूक्ष्म चित्र उकेरा है, जिसे पढ़कर, सुनकर, पाठक के सम्मुख घटना साकार हो उठती है। उनके चित्रण में यह स्पष्ट दिखाई देखा है कि वह जिस वातावरण का दृश्य प्रस्तुत कर रही है वह इनके द्वारा साक्षात् देखी एवं अनुभव की गई है।

'कस्तूरी कुण्डल बसै' आत्मकथा में रात्रि का चित्रात्मक वर्णन मैत्रेयी पुष्पा की साक्षात् अनुभूति का प्रभावी उदाहरण है– "नहीं, रात के दूसरे पहर, जब सारा गाँव खा–पीकर सो गया, वह चूल्हे में कंडे सुलगा रही है। दाल, साग कब रन्धेगा? बच्ची भूखी सो गई। बूढ़े सबेरे से राह देखते हुए बैठे हैं। उन्होंने गाय–बछड़ों के चारे–पानी का जिम्मा ले लिया है। रेंगती चाल से खेतों पर हो आते हैं। दोनों हाथों में लोटा थामकर बच्ची को नहला देते हैं।......रोटी भी बना लेते।

खाना तैयार हुआ। ससुर को परसा।

अक्सर ऐसा हो जाता है कि खुद खाने बैठती है तो दाल कच्ची या साग में नमक कम या ज्यादा रह जाता है। शर्मा आती है दादाजी क्या कहेंगे? आज तो खैर ढिबरी के तेल नहीं बचा, चूल्हे की आग ही रोशनी थी, मगर हमेशा जो रोटी जल–लख जाती है? दुख लगा, पश्चाताप रह गया।"[21]

'एक कहानी यह भी' आत्मकथा में मन्नू भण्डारी के अन्तर्मन में राजेन्द्र यादव को लेकर जो शंका पल रही थी आज उस शंका के समाधान का अवसर मन्नू भण्डारी के हाथ लगता है। राजेन्द्र यादव के बक्से की चाबी जिसमें राजेन्द्र यादव का अतीत, अतीत की सच्चाई छुपी पड़ी थी। इस आत्मकथा में मन्नू भण्डारी ने चित्रात्मकता का बेजोड़ वर्णन किया है। "मैंने चुपचाप पलंग के नीचे रखे बक्से का ताला खोला...........चाबी को उसी जगह सरकार इन्हें विदा किया। पत्रों और डायरियों से भरा वह बक्सा मेरे सामने खुला पड़ा था.........सारी घटनाओं, स्थितियों, संवादों और मानसिक दशाओं के विस्तृत ब्योरों से भरी वह डायरी मेरे हाथ में थी। बहते आँसुओं के बीच मैं उसे पढ़ती जा रही थी और लग रहा था जैसे मेरे पाँव के नीचे की ज़मीन ही सरकती जा रही है।"[22]

'अन्या से अनन्या' आत्मकथा में प्रातःकाल का चित्रात्मक वर्णन प्रभा खेतान का अद्वितीय उदाहरण है–

अचानक सूरज निकल आया। सुबह हो गई....किसी ने सलेटी रंग पर लाल–नीली स्याही से मार्किंग कर दी हो। देर हो रही है। चाय की केटली का स्विच ऑन करती हूँ।

चाय पीते हुए टीवी के कान उमेठती हूँ। अजीब–सा भयानक दृश्य था टीवी के पर्दे पर। तेल से भीगी चिड़िया चोंच उठाए छटपटा रही थी। फिर वही दृश्य। यों टी.वी. वाले एक ही दृश्य को बार–बार क्यों दिखाते हैं?..........खिड़की से बाहर बादलों के छोटे–छोटे गोले नजर आ रहे थे। इधर–उधर छितरे हुए, हरे–भरे जंगलों के धब्बे, पठारों के बीच कोई शान्त सड़क.....और दूर बादलों को चीकर चमकता हुआ कैथेड्रल।............ ख्यालों में खोई मैं सुपर मार्केट से आधा फर्लांग और आगे निकल गई थी। चौड़ी सड़कों पर दौड़ती हुई गाड़ियाँ, बच्चों की पीठ पर रंग–बिरंग स्कूली बस्ते। काली नंगी डालियाँ, फूटती हुई कलियों की भाँति आने वाले मौसम की सूचना दे रही थी। वापस लौट पड़ी, अब दाहिने जाना था। इस नुक्कड़ को मैं पहचानती थी। सामने प्रदर्शनी के साइनबोर्ड नजर आ रहे थे। अब करीब बीस मिनट और चलना होगा।"[23]

मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी आत्मकथा 'गुड़िया भीतर गुड़िया' में गुरुकुल के मार्ग का प्रभावी एवं चित्रात्मक वर्णन किया है।

'गुड़िया भीतर गुड़िया' आत्मकथा में बाबा मैत्रेयी पुष्पा को गुरुकूल छोड़ने जाते हैं। गुरुकुल का मार्ग, कच्ची–पक्की सड़क, सड़क किनारे हरे–भरे खेत, पक्षियों का शोर–गुल इत्यादि का मनोहारी व चित्रात्मक वर्णन किया है।

"कन्या गुरुकुल का अहाता बहुत लम्बी चारदीवारी ईंट–सीमेंट से बनी हुई। दरवाजा इतना बड़ा और ऊँचा कि फाटक के बीच से हाथी निकल जाए। काफ़ी लम्बा रास्ता पार करके हम कार्यालय तक पहुँचे थे। चलते समय मैंने अपनी दाईं ओर देखा तो पेड़ों वाला मैदान दिखाई दिया, मैदान के पार सफेद इमारत थी, जिसे नंबरदार ने माँ को विद्यालय बताया, बाई ओर खेत थे। सब्जियों की क्यारियों में बैंगन, टमाटर और हरी मिर्च के पौधों को मैं पहचान रही थी। खेतों के एक कोने पर रहट लगी थी, जिसे कोई औरत चला रही थी। विद्यालय को छोड़ दें, तो बाकी माहौल मेरे लिए अपरिचित नहीं था, और इसी वातावरण के लिए नंबरदार वहाँ की आचार्य की प्रशंसा कर रहे थे।

आचार्या।

मैं गाँव से बिछुड़ने के दुःख में कहीं न कहीं पहचाने जोड़ने लगी। आचार्या का चेहरा–मोहरा हमारे गाँव की भूपो दादी जैसा था। रंग भी सांवला ही। मगर खादी की हरे किनारे वाली साड़ी की भव्यता ने उन्हें भूपो दादी से एकदम अलग करके रख दिया। पद का रुतबा ही रहा होगा कि नंबरदार के साथ गाँव के अन्य लोगों ने हाथ जोड़कर नतमस्तक होना ज़रुरी समझा। वरन् छोटे कद की यह भारी स्त्री मेरी माँ से ज्यादा मुझे अच्छी नहीं लगी। माँ इस विद्यामंदिर से चकाचौंध बस हाथ जोड़े खड़ी रही।"[24]

रमणिका गुप्ता ने अपनी आत्मकथा 'आपहुदरी' में सतलज नदी का मनोहारी एवं चित्रात्मक वर्णन किया है– "अंधेरा घिर रहा था। नीचे सतलज बह रही थी और चांदनी में चमक भी रही थी। एकाएक बादल घिर आए। अन्धेरा सा हो गया। सर्दी काफी थी।......हम पुल पर बैठकर सतलज का बहना सुन रहे थे। चांद की लुका–छिपी में हम स्वयं भी लुक–छिप कर प्यार कर लेते थे।"[25]

'आरोह–अवरोह' आत्मकथा में सुषम बेदी ने नन्हीं स्मृतियों का बड़ा ही सुन्दर, मनोहारी एवं चित्रात्मक चित्रण उकेरा है– "मेरा स्कूल, स्कूल का चौबारा, खेल का मैदान, सहेलियां, भाई–बहनों से भरा घर, घर के बरामदे की पींग, पींग पर झूलते हुए महल का वह गीत गाना–आएगा, आएगा, आने वाला, आएगा और भी बहुत से बिम्ब घर के बाहर बंधी गाय या भैंस, घर के साथ लगा बड़ा–सा सब्जियों का बगीचा, टमाटर से लदे पौधे, चप्पन कद्दू और लौकी की बेलें, गन्ने की क्यारियाँ।.....बगीचे से ताज़े उतरे टमाटरों की खट्टी–मीठी चटनी बनाती मां। उसका–सिरका, चीनी और मेवों का मिला–जुला स्वाद अब भी मुँह में है।"[26]

वातावरण प्रयोग

मैत्रेयी पुष्पा, रमणिका गुप्ता, मन्नू भण्डारी, प्रभा खेतान, सुषम बेदी इत्यादि लेखिकाओं ने अपने आत्मकथा–साहित्य में देशकाल को सर्वोच्च स्थान दिया है। वातावरण चित्रण के प्रस्तुतीकरण में उन्होंने अपने आस–पास के वातावरण से रचना की सामग्री एकत्र की है। वातावरण के अन्तर्गत शहरी, ग्रामीण एवं कस्बाई इत्यादि वातावरण का बड़ा ही प्रभावी चित्रांकन किया है। इन सभी लेखिकाओं के आत्मकथा–साहित्य में वातावरण का प्रयोग रचना को रोचक बनाने के लिए ही नहीं अपितु जटिल अनुभूतियों एवं अनुभवों को व्यक्त करने के लिए भी हुआ है। करुणा, हास्य तथा भय इत्यादि रसों के प्रयोग से वातावरण सजीव हो उठता है। रचना में सौन्दर्यानुभूति भावों के स्पष्ट प्रस्तुतीकरण में सहायक होती है।

'कस्तूरी कुण्डल बसै' आत्मकथा में मैत्रेयी की चोटी माँ द्वारा काटे जाने का कारुणिक वातावरण प्रस्तुत हुआ है– "'मांऽऽआ!' मैत्रेयी लोट–पोट हो गई कि माँ अस्त–व्यस्त होने लगी।

पर माँ के बराबर लड़की में ताकत कहाँ? महीन आवाज में चीख ऐसी गूँजी कि छान–छप्पर, भीत–दीवारें वार करके शान्ति भाभी के आँगन में गूँजने लगी। रुदन में शोक था। शोक चोटी का था।"[27]

'एक कहानी यह भी' आत्मकथा में मन्नू भण्डारी ने बेटी टिंकू से बिछड़ने का कारुणिक एवं प्रभावी वातावरण वर्णन प्रस्तुत किया है– "सो तीन साल की उस नन्हीं–सी जान को मैंने कलकत्ता भेज दिया और वह चुपचाप चली भी गई।.....सो टिंकू भी कलकत्ता जाने के उत्साह में उनकी गोद में चढ़ गईं। पर एयरपोर्ट में जब हमें छोड़कर उसे अकेले अन्दर जाना पड़ा तो एकदम उसकी आँखें छलछला आईं। अँसुआई–आँखों से जैसे ही उसने अपने नन्हें–नन्हें हाथ हिलाकर बाय–बाय किया, राजेन्द्र तो वहीं फूट–फूटकर रो पड़े।"[28]

'अन्या से अनन्या' आत्मकथा में प्रभा खेतान ने डॉ. सर्राफ की बीमारी तथा उनकी मृत्यु का अत्यन्त कारुणिक वातावरण प्रस्तुत किया है– "लॉन के बीचोंबीच उनकी अर्थी रखी हुई थी और अब ऊपर वाले फ्लैट से रुलाई का एक सैलाब उमड़ा....कुछ औरतें मिसेज सर्राफ को लेकर नीचे आ रही थीं। पुरुषों ने फेरी दे ली थी और अब घर की औरतों की बारी थी लेकिन मुझे उसमें शामिल नहीं किया गया क्योंकि मैं परिवार की औरत नहीं थी। औरतों की फेरी पूरी हो चुकी तब भीड़ में किसी ने मुझसे कहा– 'आप भी जाइए ना....' 'ओह हाँ!' किसी ने मुझे माला पकड़ा दी। मैं डॉक्टर साहब के चरणों में झुक जाती हूँ....बर्फ से ठंडे चरण....माला रखकर उसी कोने में लौट आती हूँ जहाँ पहले खड़ी थी.....भीड़ में से कुछ आँखे मुझे घूर रही थीं। शायद देखना चाहती थीं कि मैं रो रही हूँ या नहीं? और सच में मेरी आँखें सूखी थीं। मैंने अपने को समझा लिया था....यहाँ नहीं....सबके सामने नहीं रोना है। अपने कमरे में अकेले रो लूँगी जिन्दगी भर रो लूँगी रोना है। अपने कमरे में अकेले रो लूँगी जिन्दगी भर रो लूँगी लेकिन इस वक्त यहाँ नहीं।"[29]

'गुड़िया भीतर गुड़िया' आत्मकथा में मैत्रेयी पुष्पा ने माताजी की मृत्यु का कारुणिक दृश्य एवं भयावह वातावरण प्रस्तुत किया है–

"डॉ. सुभाष का फोन

"हैलो सुभाष, ऑपरेशन हो गया? हम आ जाएँ?" फोन एक क्षण के लिए मौन।

"हैलो सुभाष!"

"हाँ, मम्मी....माताजी की तैयारी करो अब।"

"तैयारी! कैसी....."

"शी इज नो मोर...."

यह मैंने क्या सुना? जो अब तक सोचा न था, वह सुना....फोन पकड़े खड़ी नहीं रह पाई। धरती पर बैठ गई। गौरा ने मेरी आँखों में जो देखा हो, वे निश्चित ही आँसू तो नहीं थे। लेकिन गौरा अचानक रो पड़ी—अरी हमें छोड़कर कहाँ चली गई री....अब मैं कैसे जिन्दा रहूँ री.......।"[30]

'आपहुदरी' आत्मकथा में रमणिका गुप्ता ने महात्मा गाँधी की मृत्यु का कारुणिक वातावरण प्रस्तुत किया है— "वैष्णव जन तो तैठों कहिए जो पीर पराई जाने रै की धुन बज रही थी। 'रघुपति राघव राजा राम' की ध्वनि चहुंदिश गूंज रही थी। 'महात्मा गाँधी अमर रहे' के नारे आसमान भेद रहे थे। भीड़ में से सिसकियाँ उठ रही थीं। जैसे रोने ने एक आदिम—आलाप का स्वर ले लिया हो, जो सन्नाटे से अधिक विराट था। कहीं कुछ शून्य—सा फैलता जा रहा था।"[31]

'आरोह—अवरोह' आत्मकथा में सुषम बेदी ने पिता के आकस्मिक देहान्त का बेहद कारुणिक एवं भयावह वातावरण वर्णन इस प्रकार किया है— "चलते—चलते मन में उत्साह था, पिताजी से यह बतलाने का कि देखो मैं तो पैदल ही आ गयी। दूर से घर के गेट के बाहर की अपने मौसेरे भाइयो को देखा तो भी हैरान लेकिन उत्साहित ही थी। उसने मेरे उत्साह भरे अभिवादन का जवाब न देकर सिर्फ इतना कहाँ—भाई जी (मेरे पिता को वह भाई जी बुलाता था, हमारे यहाँ मौसा, फूफा को इसी सम्बोधन से बुलाया जाता था)। फिर मेरे कन्धे को अपनी बांह से घेरा और सीधे बैठक के दरवाजे पर लाकर खड़ा कर दिया, जहाँ नंगे फर्श पर बर्फ की सिल्लियों के बीच पिता जी का मृत शरीर रखा हुआ था।"[32]

ध्वन्यात्मकता

मैत्रेयी पुष्पा, रमणिका गुप्ता, मन्नू भण्डारी, प्रभा खेतान, सुषम बेदी इत्यादि आत्मकथा लेखिकाओं ने अपने आत्मकथा—साहित्य में ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग किया है। ध्वन्यात्मक शब्दों के प्रयोग से उनकी आत्मकथाएँ जीवन्त हो उठी है कुछ उदाहरण प्रस्तुत है—

"माँ ने गुस्से में कस्तूरी की पीठ को धाँय—धाँय कूटा।"[33]

"हाय कठकरेज लुगाई! औरतों ने कहा और मर्दों ने च् च् च् करके आश्चर्य जताया।"[34]

"आवाजें, हँसी का शोर, मशीनों की घर्र—घर्र।"[35]

"शी...शी। उसने मेरे मुँह पर हाथ रखते हुए कहा, ऐ लड़की! इन बातों को पेट में रख।"[36]

"ऊपर खिड़की पर खड़े—खड़े मेरी आँखों से भी टप—टप आँसू गिरने लगे।"[37]

"दो—एक जगह दो—चार औरतों का झुंड गुटट—गूँ करता नजर आया।"[38]

"अचानक भीड़ का रेला, गोलियों की आवाज़, काँच की बोतलों की बरसात........धड़ाधड़ दुकानें बंद होने लगी।"[39]

"लेकिन वह टैक्सी वाला पीं....पीं......पीं.......हॉर्न पर हॉर्न बजाए जा रहा था।"[40]

"हवा के साथ एक ही बात कानों में साँय–साँय कर रही थी क्या होता यदि पासपोर्ट खो जाता....और इसकी ईमानदारी........दो घंटे से एक अनजान औरत का पासपोर्ट लिये घूम रही है।"[41]

"केवल रेतीली जमीन को रौंदते हुए कतार–दर–कतार टैंक....ओलों की तरह टपाटप बम बरसते हुए प्लेन और काले अंधेरे में अनार की रोशनी की तरह फूटती हुई मिसाइलें।"[42]

"छिः मेरा गाल जूठा कर दिया।"[43]

"छन–छन आवाज़ होती, कचरा उछाल कर नीचे गिरा दिया जाता है।"[44]

5.2 शैली

'शैली' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के "शील" से मानी जाती है। शील के अनेक अर्थ है–स्वभाव, लक्षण, आदत, झुकाव, चरित्र इत्यादि।[45] ये सभी अर्थ व्यक्ति की विभिन्न विशिष्टताओं के द्योतक हैं, इन शब्दों की व्यापकता असंदिग्ध है। 'शील' का संबंध व्यक्ति की मनोवृत्ति, रूचि, आदत, व्यवहार, चरित्र आदि विभिन्न पक्षों से हैं।

शैली के अन्य अर्थों में–चाल, प्रणाली, रीति–प्रथा, ढंग एवं वाक्य–रचना के विशिष्ट प्रकार से है। ज्ञान शब्द कोशानुसार शैली अर्थात्– "किसी काम के करने का ढंग, तरीका, रीति, पद्धति, साहित्य, कला आदि की रचनात्मक अभिव्यक्ति का कौशल है।"[46] 'शील' का संबंध व्यक्तित्व के अधिक निकट जान पड़ता है। शैली में व्यक्तित्व की अपेक्षा व्यक्ति के क्रियात्मक पक्ष को विशेष महत्त्वपूर्ण माना गया है। रचना के विविध तत्त्व शैली के द्वारा ही उद्घाटित (उजागर) होते हैं क्योंकि शैली में साहित्यकार के अन्तःस्थल का सृजनात्मक एवं क्रियात्मक पक्ष प्रतिबिम्बित होता है। शैली भाषा के संरचनात्मक सौन्दर्य को उभारती है। शैली भावों, विचारों एवं संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने का तरीका भी है। 'गेटे' महोदय ने शैली को किसी भी लेखक के मस्तिष्क की सच्ची प्रतिलिपि कहा है।[47]

'बफन' के अनुसार "शैली स्वयं व्यक्ति है, वह उसकी आकृति का एक अंग है।"[48]

'प्लेटो' के अनुसार– "जब विचार को तात्त्विक रूपाकार दे दिया जाता है, तो शैली का उदय होता है।"[49]

हिंदी साहित्य में कई शैलियाँ है यथा— विश्लेषणात्मक, विवेचनात्मक, वर्णनात्मक, पूर्वदीप्ति, पत्रात्मक, काव्यात्मक, आत्मकथात्मक, चित्रात्मक, सूक्तियात्मक इत्यादि। विषय एवं विधा के अनुसार आत्मकथा—साहित्य की शैलियों में मुख्यतया भावात्मक, विचारात्मक, वर्णनात्मक, व्यंग्यात्मक, अहंवादी इत्यादि शैलियाँ प्रमुख मानी गई हैं।

भावात्मक शैली

भावात्मक शैली में भावों की प्रधानता रहती है। रस एवं भाव संयोजित होकर आत्मकथा को विशिष्ट बनाते हैं। भावों के अभाव में रचना पाठकों को आनन्दित नहीं कर पाती, जिससे पाठकों को रचना का उचित अर्थ ग्रहण करने में कठिनाई होती है। रचना को पढ़ते समय पाठक स्वयं के व्यक्तित्व से पृथक् होकर रचनाकार के व्यक्तित्व के सम्मुख आ जाता है रचनाकार के भावात्मक वेग में बहने लगता है। इस शैली में भावों के प्रवाह में तारतम्यता सदैव एक समान नहीं बहती। कभी—कभी प्रायः रचनाकार भावों के प्रवाह के अतिरेक में बह जाता है, तो कभी भावों एवं भाषा में सन्तुलन बिगड़ जाता है, जिससे कहीं सशक्त एवं कहीं शिथिल भाषा का प्रयोग दिखाई देता है। भावों के उचित प्रवाह के लिए भाषा एवं भावों के मध्य तारतम्यता होना नितान्त आवश्यक है। "भावों के प्रवाह में शैलीकार की भाषा भावों से तदाकार हो जाती है। भाव या रस शैली का श्रेष्ठ नियामक तत्व है। इस स्थिति में रसौचित्य के अनुसार शैली में वेग या प्रवाह रहता है। मस्तिष्क का सन्तुलन बिगड़ जाने से शैलीकार भाव—विभोर होकर अस्त—व्यस्त वाक्य विन्यास में अनगढ़ प्रयोग करता है। कहीं उसकी भाषा सशक्त हो जाती है और कहीं शिथिल। शब्दों और पदों की आवृत्ति भावात्मक शैली में लक्षित होती है।"[50] मैत्रेयी पुष्पा, रमणिका गुप्ता, मन्नू भण्डारी, प्रभा खेतान, सुषम बेदी इत्यादि लेखिकाओं के आत्मकथा—साहित्य में भावात्मक शैली के उदाहरण दृष्टव्य है—

मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा 'कस्तूरी कुण्डल बसै' में गौरों की बदसलूकियों से बेटी की अस्मिता को बचाने के लिए माँ स्वयं आगे आ जाती है। आज माँ, बेटी का रिश्ता सखी—सहेली अर्थात् सुख—दुख की साथी जैसा प्रतीत हो उठता है। इस आत्मकथा में भावात्मक शैली का बेजोड़ उदाहरण प्रस्तुत हुआ है— "अपने भाईयों की दुश्मन माने जाने वाली परकाला कस्तूरी को, जब माँ ने अपनी ओर खींचा और खुद आगे हो गई, तब उसका पत्थर कलेजा फूट पड़ा था। चुपचाप रोती जा रही थी। माँ जानती है—कारिन्दों के संग गोरे आ गए, तो कारिन्द उन्हें खुश करने के लिए औरतों को उनके आगे धकेलेंगे। बेटी बच जाए, माँ इसलिए आगे हो रही है। रक्त मांस की बनी कस्तूरी के खून में ऐंठन पड़ने लगीं। माँ को कातर भाव से देखती हुई सोचने लगी—इस विपदा में माँ बेटी का रिश्ता खत्म होता जा रहा है, सो हम सखी—सहेली हो उठे। दो

औरतों जैसे। तभी माँ कराहकर बोली आज हमारी गाँठ में आठ आने होते तो जमींदार का नजराना ले जाते। बसूली की मियाद बढ़ जाती। इज्जत बचा लेते।"[51]

रमणिका गुप्ता की आत्मकथा 'हादसे' में राजपूतों, जमींदारों के अत्याचारों ने मजदूरों, किसानों एवं दलितों का जीवन जीना दुर्लभ कर रखा था। उनसे उनके खेत–खलिहान, जंगल, जमीनें तक छीन लिए थे। सबका पेट भरने वाला अन्नदाता स्वयं ही भूख से मरने के लिए विवश था। चुम्बा बस्ती की माटी सर्वाहारा, पूंजीपतियों के जुल्म की कहानी बयां कर रही थी। मजदूरों के दर्द को देखकर रमणिका गुप्ता की आँखों से बहते आँसू उनकी वेदना को प्रकट कर रहे थे। इस आत्मकथा में भावात्मक शैली का उदाहरण प्रस्तुत है– "ऐसे ही ऐरे–गैरे नत्थू खेरे के कहने पर हम चुम्बा के बाबू साहब की मुख़ालफ़त करने चले जाएँगे क्या? ये लोग बदमाश हैं और तुम्हें गुमराज करके उनके ख़िलाफ़ खड़ा करना चाहते हैं। वे लोग तो हमारे मित्र हैं।" मैं अवाक् रह गई। मेरी आँखों में आँसू भर आए और उस दलित कार्यकर्ता से मैंने कहा– "ठीक है, मैं अकेली ही आऊँगी कभी तुम्हारे गाँव। तुम संगठन तैयार करो।"[52]

मन्नू भण्डारी की आत्मकथा 'एक कहानी यह भी' में ग्यारह साल की बेटी द्वारा अपने अस्तित्व को लेकर पूछे गए प्रश्न से मन्नू भण्डारी भाव–विह्वल हो उठी है। टिंकू (बेटी) कहती हैं– "हमकों सच–सच बताओ...हम किसके बच्चे हैं.....कौन है हमारी असली ममी....प्लीज़ हमको बताओ.....हमको सच–सच बताओं कि हम किसके बच्चे हैं...?......यह भावना कि हम किसके हैं..... हमारी असली जड़ें कहाँ हैं...हमारे जन्म के तार किसके साथ जुड़े हुए हैं, क्या सचमुच इतनी प्रबल होती है कि हमारे पूरे वजूद को ही हिलाकर रख दे? सिद्धान्त के तौर पर शायद जानती भी होऊँ पर ज़िन्दगी में पहली बार उस दिन इस भावना की सच्चाई को....इसकी गहराई को मैंने.. .....इसकी सघनता को मैंने इतनी शिद्दत के साथ महसूस किया था।"[53]

प्रभा खेतान की आत्मकथात्मक कृति 'अन्या से अनन्या' में लम्बी बीमारी के चलते आइलिन की मृत्यु हो जाती है, किन्तु आइलिन मरते हुए भी प्रभा खेतान के भीतर जानवर से प्रेम का भाव भर जाती है। आइलिन के इस दुनिया से चले जाने का गम उसके मित्रों, रिश्तेदारों से कहीं ज्यादा पेपे (कुत्ता) को होता है। पेपे की आँखों से निरन्तर झरते आँसू उसके दर्द को प्रकट करते हैं। जानवर और आदमी के परस्पर प्रेम भाव का एक अद्भुत उदाहरण भी इस आत्मकथा में देखने को मिलता है– "आइलिन नहीं रही। दो तारीख को उसे कब्रिस्तान ले जाया गया। सब लोग सिर झुकाए खड़े थे। अचानक पेपे आकर मेरे पैरों से लिपट गया। मैं पेपे को अपने से सटाकर रो पड़ी, "पेप, वह हम सबकी माँ थी।

पेपे चुपचाप कब्र की कच्ची मिट्टी पर बैठ गया। किसी ने कुछ नहीं कहा। न ही किसी ने पेपे को हटाया। हम लोग लौट आए थे, पर पेपे की वे बड़ी–बड़ी आँखें! उसके आँसू कुछ न कहते हुए भी बहुत कुछ कह रहे थे।

आइलिन जा चुकी थी हमेशा के लिए। उसे जाना ही था। जेफ का फोन आया था। फोन में उसकी सिसकियाँ थीं पर अन्तिम संस्कार पर आने में वह असमर्थ था। बस पेपे की एक जोड़ी नीली आँखें निरन्तर रोती रहतीं। पेपे क्लीनिक में आता और आइलिन की कुर्सी के पास चुपचाप बैठा रहता। मुझे देखकर धीरे से आकर पैरों से लिपट जाता।

आह! जानवर में आदमी और आदमी में जानवर! आइलिन ने मुझे यही तो देखने और समझने को कहा था।"[54]

मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा 'गुड़िया भीतर गुड़िया' में भावात्मक शैली का प्रभावी उदाहरण दृष्टव्य है– "'मम्मीऽऽ' मेरी बेटी का रोने वाला स्वर कि सारी वत्सलता एकदम आशंकाओं में डूब गई। वह बीमार है या कहीं गिरकर चोट खा गई? उसके स्वर की कातरता सीधी मेरे दिल में पहुँच रही थी।

मैं काँपती टाँगों से बाहर आ गई।

देखती की देखती रह गई। सामने इल्माना चली आ रही हैं। उनकी गोद में मोहिता, कन्धे से चिपकी हुई। मेरी भावनाओं का सैलाब, मैंने एक साथ दो अमूल्य निधियाँ पाली हो जैसे। इल्माना ने मुझे यूँ देखा, जैसे मोहिता पर उनका ही अधिकार हो। वे मुझको आदेश निर्देश देने वाली, युद्ध के दौरान हुई घटना को भूल गईं। मैं तो हतप्रभ सी। विस्मय विमूढ़ता में कभी बच्ची को छुऊँ, तो कभी इल्माना की बाँह का स्पर्श करूँ।

मेरी आँखें छलक आईं इल्माना रो रही थीं। मैं उनके स्वभाव को जानती हूँ। अपनी अटूट दृढ़ता के साथ वे ऐसे मौकों पर गीली मिट्टी–सी कच्ची हो उठती हैं।

जब हमने खुद को सँभाला, तो वे घर के अन्दर आकर बताने लगीं– "वैसे तो मोहिता को मैं रोज ही देखती हूँ। आज इसके पीछे एक पागल कुत्ता पड़ गया। बच्ची रोने लगी। मैं भागी। मैंने एकदम से इसे गोद में ले लिया, फिर नहीं उतारा। कहीं पागल कुत्ता इसे काट न खाए।"[55]

रमणिका गुप्ता की आत्मकथा 'आपहुदरी' में मातृत्व भाव से ओत–प्रोत भावात्मक शैली का उदाहरण प्रस्तुत है– "कभी–कभी भीतर से आई किसी बच्चे की रोने की आवाज़ मुझे बेचैन कर देती थी। बच्चे के रोने की आवाज़ मेरे कुंद दिमाग पर चोट मारती थी कि मैं जालन्धर के उस मांटेसरी हॉस्टल में पहुँच जाती थी, जहाँ मेरी याद में बिलखता–रोता हुआ टूटू अपने बैड की

बाही पर सिर पटकता, बैठे–बैठे सिसकता और कभी सोए–सोए 'ममी–ममी' कहकर रोता दिखने लगता था। बाद में मैं जब कभी टूटू से मिलने गयी तो हॉस्टल की सुपरिंटेंडेंट ने उसका ठीक वैसा ही ब्यौरा दिया, जैसा मैं कल्पनाओं में देखा करती थी। उसकी हॉस्टल की मैडम भी कहती थी, "पता नहीं ये बच्चा क्यों घुलमिल नहीं रहा, ये हमेशा आप ही की बात करता है। यह आपको बहुत याद करता है और अपना माथा तकिये से पीटता है और मम्मी–मम्मी पुकारता है। किसी से बात नहीं करता।"[56]

'आरोह–अवरोह' आत्मकथा में पिता के आकस्मिक देहान्त पर सुषम बेदी द्वारा भावात्मक शैली में वर्णित उदाहरण इस प्रकार है– "माँ को कितना शौक था कि अपना घर हो। घर हुआ, तो पति का साथ ही छूट गया। मां को कहीं दोष भी देती कि न ये घर बनवाने की जिद करतीं, न उन पर स्ट्रेस पड़ता, न ही मौत होती। दोष तो खुद को भी देती कि उस दिन अगर वे मुझे सुबह कॉलेज न छोड़ने जाते, तो स्ट्रेस ही न पड़ता और वे घर में आराम से रहते। मेरी आँखों को वैवाहिक जीवन के स्वप्न और माँ के कष्ट और अकेलेपन का दुःख दोनों ही आद्र कर रहे थे।"[57]

विचारात्मक शैली

आत्मकथा की यह शैली मनोविज्ञान के अधिक निकट है। डॉ. चौऋषि ने लिखा है कि– "ज्ञानेन्द्रियों का ऊपरी विवरण, वर्णन या चित्रण की शक्ति के ऊपर उठकर जब मस्तिष्क की शक्ति से षण आदि के द्वारा प्रतिपादन या स्पष्टीकरण किया जाता है, तब विवेचनात्मक (विचारात्मक) शैली ही अधिक उपयुक्त रहती है। विषयानुसार इसमें गम्भीरता, प्रौढ़ता और शुष्कता रहती है।"[58]

इस शैली में रचनाकार बुद्धि का सहारा लेकर तर्क, वितर्क, वार्ता, चिन्तन, मनन या विभिन्न सिद्धान्तों को उदाहरण द्वारा समझाता है। गद्य साहित्य की इस शैली की भाषा सरल, सुगठित, संक्षिप्त एवं बौद्धिकता से परिपूर्ण होती है, जिससे पाठक, रचनाकार के मर्म एवं संवेदनाओं को भली–भाँति ग्रहण करने में सफल हो सकें। मैत्रेयी पुष्पा, रमणिका गुप्ता, मन्नू भण्डारी, प्रभा खेतान, सुषम बेदी इत्यादि लेखिकाओं के आत्मकथा–साहित्य में विचारात्मक शैली के उद्धहरण दृष्टव्य हैं–

मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा 'कस्तूरी कुण्डल बसै' में अनमेल विवाह के भय से मन ही मन चिन्तन करती हुई कस्तूरी अपनी माँ से अपने मन के भय को उजागर करते हुए कहती हैं– "डर! डर ही तो लगता है चाची। सच्ची, ब्याह से बड़ा डर लगता है।

– सो क्यों?

– मुझमें सती होने की हिम्मत नहीं है। मुझे मरने से डर लगता है–कस्तूरी की आवाज उस बछिया की–सी हो गई, जो रम्भाते हुए माँ को पुकारती है।

– हाय बेटा! तू कैसा असगुन सोच रही है! तू सती क्यों होगी? सौ–सौ बरस जिए तेरा सुहाग। तू काए को मरेगी, मरें तेरे बैरी।

– चाची, पति मरेगा तो सुहाग जिन्दा नहीं रहेगा और सुहाग मरेगा, तो मुझे ही मरना पड़ेगा। तेरी आशीष में इतना दम कहाँ कि मुझे बचा ले।

– पर तो पति मरेगा ही काए को?

– वह बूढ़ा है, बीमार है, कब तक जिएगा? जो वर ढूँढा है, मुझे पता चल गया है और यह तू भी जानती है कि पति की चिता पर बैठकर जिन्दा जल मरने वाली औरत को लोग पूजते हैं। जिन्दा रही तो जीते–जी मार डालेंगे। चाची, मैंने रेशम कुँवर सती की किताब पढ़ी है? माँ चौकी– "किताब पढ़ी है?"[59]

'हादसे' आत्मकथा में रमणिका गुप्ता बचपन के दरवाजे खटखटाती हैं। विचार करती है उन सभी घटनाओं पर, जो समाज के विरुद्ध थी। इस आत्मकथा में विचारात्मक शैली का उदाहरण इस प्रकार है– "मैं अपने बचपन के दरवाजे खटखटाती हूँ, तो ऐसी कई यादें उभर आती हैं, जब मैंने निर्णायक हठ किए और अप्रिय लगने वाले कदम उठाए। वे मेरे लिए निर्णायक घड़ियाँ होती थीं। मेरे सामने प्रश्न था अपने विचारों अपनी धारणाओं को सार्थक सिद्ध करने का और लोक–लाज के रुढ़िगत विचारों के विरुद्ध खड़ा होने का। मैंने अपने मानदण्ड खुद गढ़े। औरतों के लिए मेरी अपनी अलग मान्यताएँ थीं, जो सम्भवतः मेरे समय से बहुत आगे थीं, इसलिए समायोजन में काफी कष्ट हुआ, संघर्ष करना पड़ा।"[60]

'एक कहानी यह भी' आत्मकथा में मन्नू भण्डारी जर्मनी में आयोजित कवि सम्मेलन में भारतीयों की निरक्षरता, गरीबी पर एक विदेशी महिला लेखिका द्वारा पूछे गए प्रश्न पर भारत लौटकर विचार करती हैं– "आज जब ठंडे दिमाग से उन सारी बातों पर सोचती हूँ, तो लगता है कि निरक्षरता हो या जाति–प्रथा.....उनके सोच की सीमा तो हो सकती है लेकिन उनकी और से आए ये आरोप बिल्कुल निराधार तो नहीं ही हैं। सारे साक्षरता अभियानों के बावजूद.....जिन पर पैसा भी कम नहीं बहाया गया–आज भी तीस–पैंतीस प्रतिशत निरक्षरता तो है ही (ये सरकारी आँकड़ें हैं, असलियत शायद कुछ और ही हो)। सामाजिक सुधार के सारे आन्दोलनों के बावजूद

हम जाति–प्रथा से कहाँ मुक्त हो पाए हैं? बल्कि आज तो उसका विकटतम रूप देखने को मिल रहा है।"[61]

प्रभा खेतान की आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' में विचारात्मक शैली का उदाहरण दृष्टव्य है– "मैं अपनी पहचान चाहती थी, एक ऐसा जीवन जो स्थानीयता के साथ वैश्विक हो। जीवन, रोमांस, सैक्स, सम्बन्ध सबके अलग–अलग कोड होते हैं। इन चिन्हों के अर्थ अलग होते हैं। बंगाली और पंजाबी समाज से हमारा मारवाड़ी समाज भिन्न था। प्रगतिशीलता के सन्दर्भ में मैं किसी समाज को कम–ज्यादा कहकर नहीं तौलना चाहती लेकिन यही सोचती हूँ कि आखिर कौन इन्हें निर्मित करता है? व्यक्ति ही ना। इनमें से बहुतेरे कोड हैं, जिन्हें तर्क के सरौते से मैं काटना चाहती हूँ। बादाम की गिरी जैसी इनकी भी कोई अलग गिरी होगी और कैसा होगा उसका स्वाद? किन्तु यह भी जानती हूँ कि इसे इतनी आसानी से तोड़ा नहीं जा सकता। बड़ा सख्त है इनका छिलका।"[62]

'गुड़िया भीतर गुड़िया' आत्मकथा में गहरे विचारों में डूबी मैत्रेयी पुष्पा पति द्वारा पूछे जाने पर– "क्या सोचने लगीं माय स्वीट हार्ट?" पति ने चाय की मीठी चुस्की के बाद पूछा, मैं होश में आई।

"कुछ नहीं। मैं पालि की किताबें फेंक दूँगी।"

"बिस्किट ले आओ।"

मैं बिस्किट के डिब्बे को भीतर तक टटोलने लगी। बिस्किट तले तक चले गए। याद रखना चाहिए था, क्या–क्या खत्म हो रहा है? याद रख रही हूँ कि मेरा क्या–क्या चला गया? पढ़ना–लिखना, अपनी तरह सोचना, जिन्दगी जीना.....क्यों रख रही हूँ याद? इन सबको कोई बाजार से बिस्किटों की तरह ला देगा? मैं खरीद लाऊँगी?

मेरे जीवन में कुँआरापन था मेरी आजादी का युग, आम्रपाली का समय। उस समय को मैंने बरकरार ही कहाँ रहने दिया? समाज के चलाए कारोबार में घुला–मिला डाला। कहाँ सहपाठियों और प्रेमियों से कहती थी–मैं इन लड़कियों जैसी लड़की नहीं। मैं अपने तेवर बचा लूँगी। मगर अब मैं न वैसी लड़की हूँ, न तेवर। मैंने संतों की दोस्ती को पति के डर से खो दिया।

मैं ऐसा ही ऊलजलूल सोचती रहती हूँ,, गर्भ के बच्चे पर क्या असर पड़ेगा? लड़की हुई, तो कैसे मिजाज की होगी? तौबा!"[63]

'आपहुदरी' आत्मकथा में रमणिका गुप्ता अब तक की जी हुई जिन्दगी के विषय में विचार करती है। एक गृहिणी से लेकर एक कलाकार बनने, जन–सेवा करते हुए राजनीति तक पहुँचने की यादें स्मृति पटल पर उभर आती है। इस आत्मकथा में विचारात्मक शैली का उदाहरण इस प्रकार है– "पीछे मुड़कर देखती हूँ तो महसूस होता है, मैंने जिन्दगी को भरपूर जिया। तुमुल कोलाहल–कलह के बीच भी मैंने अपने मन को कभी बनवास नहीं दिया। मेरी प्रेम–यात्राएँ कभी रुकी नहीं। बचपन, कैशोर्य और उम्र के रोमानी युवा दौर से गुजरकर, मैं एक पढ़ी–लिखी गृहिणी और माँ की भूमिका निभाने लगी। शादी के बाद मैंने अपनी पढ़ाई जारी रखी, वह पूरी हो गयी। मैं एक कुशल गृहिणी का रोल अदा करने के लिए सिलाई और किताबें पढ़–पढ़ कर खाना बनाने में पटुता हासिल करने लगी। कभी पड़ोसिनों से होड़ लगाती, तो कभी उनसे कुछ नया सीखने जाती। जब हमने मद्रास छोड़ा, उस समय मैंने उम्र के 31 वर्ष पार कर लिए थे लेकिन मेरी आंखों में एक कलाकार, एक रचनाकार, एक नर्तकी और अभिनय के सपने तैरना बंद नहीं हुए थे।"[64]

सुषम बेदी की आत्मकथा 'आरोह–अवरोह' में विचारात्मक शैली का उदाहरण दृष्टिगत है– "मैं सोचती हूँ कि मेरा विदेश जाना मेरे लेखन के लिए वरदान ही था। यूं लिखने का तो जिन्दगी के हर पहलू और पड़ाव पर सोचती थी, पर हमेशा कुछ और महत्त्वपूर्ण सामने आ जाता, जो ज्यादा अहमियत पा जाता। छुटपुट लेखन किया भी, जब चंडीगढ़ में पढ़ा रही थी, एक–दो अधूरी–सी कहानियाँ लिखीं, कुछ लेख लिखें। तभी ब्रसल्स जाने से पहले मेरे ससुर जी ने कहा कि अज्ञेय जी से मिल लूं। अज्ञेय उन दिनों नवभारत टाइम्स के संपादक थे। मेरे ससुर जी का उनसे परिचय था। अज्ञेय जी की छोटी बहन अनन्तलता और एक भाई हरीश भनोट से पापा (ससुर जी) की मित्रता थी। पापा के साथ ही अनन्तलता जी की बेटी की शादी में भी मैं उनके साथ गयी थी और वहाँ अज्ञेय जी से मिली थी।"[65]

वर्णनात्मक शैली

आत्मकथा–साहित्य की यह शैली 'कथानक' के अधिक निकट है क्योंकि इसमें किसी वस्तु, स्थान, घटना, पात्रों को रचनाकार यथातथ्य, क्रमबद्ध रूप से एवं विभिन्न दृश्यों के द्वारा परदे की ओट से स्वयं बोलकर व्यक्त करता रहता है। इसमें सभी ज्ञानेन्द्रियों की सहायता ली जाती है। गद्य साहित्य की यह शैली भाषा को सरल एवं विषय को रोचक प्रकार से अभिव्यक्त करती है। आत्मकथा–साहित्य लेखन के लिए यह शैली सरल एवं सुगम मानी गई है। मैत्रेयी पुष्पा, रमणिका गुप्ता, मन्नू भण्डारी, प्रभा खेतान, सुषम बेदी इत्यादि लेखिकाओं के आत्मकथा–साहित्य में वर्णनात्मक शैली के उदाहरण दृष्टव्य है–

मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा 'कस्तूरी कुण्डल बसै' में जमींदारों के साथ गौरों का प्रवेश एक आँधी की तरह होता है। गाँव के स्त्री, पुरुष, बच्चें, बूढ़े गौरों के भय से डर के भाग रहे हैं। कस्तूरी की माता जी घबराकर कभी घर के भीतर जाती है, तो कभी बाहर। माताजी की स्थिति का वर्णन करते हुए कस्तूरी के होंठ खुल आए– "किशोरी लड़की का साँवला चेहरा काला–सा पड़ गया होंठ खुल आए। आँखों में अंधेरे का रेत भरा हो जैसे। वह लम्बी–लम्बी उसाँसे लेती हुई माँ को सिर्फ महसूस कर रही थी, देख नहीं पा रही थी। उसने ताकत लगाकर लगभग आँखें फाड़कर देखा–माँ का यह रूप..? उसने माँ के अनेक रूप देखे हैं–रोते–घबराते, चीखते–चिल्लाते, भीख माँगते, रिरिआते, लेकिन आज इनमें से कुछ नहीं, माँ का चेहरा आग की तरह गनगना रहा है। अँगार गर्दन पर संभाले दुबली–पतली मझोले कद की माँ अपना जर्जर लहँगा समेटती हुई और ओढ़नी सीने पर ढँकती हुई कभी इधर भागती है, कभी उधर। मौहल्ले की सारी औरतें ज्यों जौहर के लिए तैयार हो रही हो, भाग–भाग कर पौर में जुटने लगीं।"[66]

'हादसे' आत्मकथा में रमणिका गुप्ता स्कूल एवं कॉलेज में घटित तमाम घटनाओं के बारे वर्णन करती है– "बचपन से ही मैं राजनीतिक और सामाजिक बदलाव की धारणा से जुड़ी रही। पाँचवी–छठी कक्षा में पढ़ती थी, तो 'सत्यार्थ प्रकाश' के समर्थन में मूर्ति–पूजा के खिलाफ घंटों बहस करती रहती थी। मेरी बहसों की शिकायत विक्टोरिया स्कूल व कॉलेज पटियाला की प्रिंसिपल मिस सेन के पास गई, तो उन्होंने मुझे बुलाकर खूब डाँटा। कुछ वर्ष बाद जब मैं फिर उसी कॉलेज में इंटर में पढ़ती थी, तो मैंने डटकर भगवान के विरुद्ध बहस करनी शुरु की। ऐसी बहसें करने में मुझे बड़ा मजा आता था। लगभग 14 वर्ष की उम्र से ही मैं स्कूल व कॉलेज में होने वाले वाद–विवाद, खेलकूद, नाटक तथा कविता के कार्यक्रमों में भाग लेती थी और उनका अच्छा–बुरा फल भोगने को तैयार रहती थी।"[67]

'एक कहानी यह भी' आत्मकथा में मन्नू भण्डारी अपने विवाह की तैयारियों में जुटी मित्रमंडली के सहयोग का यहाँ वर्णन करती है– "मैं उस समय इन्दौर गई हुई थी...मुझे तुरन्त बुलाया गया और लौटते ही सुशीला ने शादी के लिए 22 नवम्बर की तारीख तय कर दी–मुहूर्त देखकर नहीं, बस यह देखकर कि इतवार है, तो लोगों को आने में, सुविधा होगी। ठाकुर साहब–भाभीजी जुटे हुए थे राजेन्द्र की ओर से, क्योंकि राजेन्द्र ने अपने घरवालों को आने के लिए बिल्कुल मना कर दिया था। सुशीला–जीजाजी, भाई–भाभी, मित्र और सहकर्मियों की एक पूरी टोली जुटी हुई थी मेरी और से। प्रतिभा बहिन जी, नारायण साहब, प्रतिभा अग्रवाल, मदन बाबू, जसपाल, कैलाश आनन्द सब में ऐसा उत्साह या मानो यह सबका साझा कार्यक्रम हो। मिसेज आनन्द से तो मैंने इस अवसर पर एक मंगलसूत्र ही झटक लिया। हुआ यूँ कि पूजा की

छुट्टियाँ शुरु होने से पहले वे एक नया खूबसूरत–सा मंगलसूत्र पहनकर आईं। मैंने तारीफ़ की तो बोलीं–"तू अवसर तो पैदा कर तुझे भी ऐसा ही मंगलसूत्र दूँगी। छुट्टियाँ समाप्त होते ही यह अवसर पैदा हो जाएगा, ऐसा उन्होंने शायद सोचा भी नहीं होगा पर जब हो ही गया तो बड़ी खुशी–खुशी उन्होंने आकर मेरे गले में मंगलसूत्र पहनाया।"[68]

'अन्या से अनन्या' आत्मकथा से प्रभा खेतान जर्मनी की एक घटना का वर्णन कर रही है– "काम के सिलसिले में जर्मनी जाना हुआ। हैमबर्ग में ऑरोप्रेशर हॉफ होटल से निकलते–निकलते दिन चढ़ आया था। चौराहे की दुकान पर पत्रिकाएँ और अखबार झाँक रहे थे। पर सभी जर्मन भाषा में थे, जो कि मेरी समझ से परे थे। हाथ में शहर का नक्शा था, ध्यान से देखने पर समझ में आया कि हर्मन हैंसे की ऑफिस अगले चौराहे से दाहिने मुड़ने पर मिलेगी। पैदल ही चली जाती हूँ, टैक्सी की जरुरत नहीं। चौराहे पर दाहिने मुड़ती हूँ, सौ डेढ़ सौ कदम... अरे यही तो 14 नवम्बर है मगर इतनी जल्दी? मैं तो वक्त से पहले पहुँच गई। मैं फिर वापस लौट पड़ती हूँ, आधे घण्टे का समय जो बाकी था। आसपास की दुकानों के साइनबोर्ड पढ़ने की कोशिश करती हूँ, हाथ में नक्शा थामें मैं व्यापारी कम टूरिस्ट ज्यादा लग रही हूँ। अचानक घड़ी देखती हूँ, साढ़े तीन बज गए। हर्मन हैंसे ने चार बजे ही तो बुलाया था। बाहर अंधेरा घिर आया था। स्टेनग्लास की खिड़कियाँ सड़क की रोशनी में चमक रही थीं। चौराहे पर मैं कॉफी पीने एक रेस्त्राँ में घुसती हूँ। अचानक मेरे चारों और शोर–शराबे की लहरें ऊँची होने लगीं, कैफे की छत से टकराती हुई आवाजें, मानो पूरी बिल्डिंग को हवा में उछालकर रख देंगी....आवाजें, रेलवे स्टेशन की ऊँची बुर्ज को छूकर लौटी हुई आवाजें, क्षण भर को मुझे लगता है मैं कितनी अकेली और असहाय हूँ। प्रार्थना में दो हाथ आपस में जुड़ जाते हैं–तू सब कुछ है प्रभु! तेरे सामने मैं कुछ भी नहीं, लेकिन फिर भी मैं एक स्त्री हूँ, और इस बीहड़ दुनिया में स्त्री भाँति ही जीना चाह रही हूँ। आपने आप में यह कोई बहुत बड़ी, बेहद असम्भव महत्त्वाकांक्षा तो नहीं।"[69]

'गुड़िया भीतर गुड़िया' आत्मकथा में मैत्रेयी पुष्पा अपने नाम से जुड़ी कुछ बातों के विषय में वर्णन करते हुए बताती है– "हमारा गाँव ऐसे भीतरी कोने में बसा है, जहाँ ताँगा, मोटर तक नहीं जाते। बहुत से बूढ़ों ने रेलगाड़ी नहीं देखी थी अब तक। कोई भी डॉक्टर वहाँ नहीं गया, बस हरिया नगरिया के शोभाराम वैद्य हर मर्ज के हकीम जी कहलाते। .... मेरा जन्म एक लड़की का जन्म था, फिर भी मेरे पिता ने रिवाज तोड़कर बीस कोस दूर खुर्जा से बाबूलाल पंडित जी को मेरा नामकरण करने बुलाया। वह इसलिए कि इस साल खेत में फसल बहुत अच्छी हुई थी। पंडित जी के लिए दावत बन सकती थी, दक्षिणा दी जा सकती थी। गाँव के लोगों को पकवान परोसे जा सकते थे। रिवाज के अनुसार लड़की का नाम फूलों पर–चम्पा, चमेली, बेला, गुलमेहंदी

और गुलकन्दी या फिर प्रेमवती, सरला, लज्जा या कि शिवदेवी, हरदेवी, शान्ति, अंगूरी, कैलाशी, महादेवी......। मेरे पिता ने पूछा था, हमारी बेटी विदुषी बनेगी, पंडित जी "हाँ, ग्रह तो ऐसे ही हैं।"[70]

रमणिका गुप्ता की आत्मकथा 'आपहुदरी' में दर्जी के चरित्र के प्रस्तुतीकरण में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। रमणिका गुप्ता दर्जी की घटिया हरकतों के बारे में अपनी सहेली तोषी को जोर–जोर से बताती है उनके पास से गुजर रहा लड़का सारी बातें सुनकर अपने मित्र को सम्बोधित करते हुए कहता है– "कल से कोई तंग नहीं करेगा।" और वह चला गया। और सचमुच अगले दिन से दर्जी हमें देखकर भी अपनी दुकान से बाहर नहीं निकला। हम दोनों उसकी इस बात पर और भी मोहित हो गयीं। हमें वह कोई सूरमा या राजकुमार की तरह लगने लगा था, जो घोड़े पर चढ़कर आया और तलवार के वार से दुश्मन का सिर कटाकर धड़ से अलग कर, हमें घोड़े पर बिठाकर ले गया। हम दोनों घोड़े पर आने वाले राजकुमार की चर्चा प्रायः करतीं। हमें एक ही राजकुमार सफेद घोड़े पर आता दिखता, जो हममें से एक को आगे, एक को पीछे बैठाकर ले जाता। कौन आगे बैठे, कौन पीछे, इसमें भी हम दोनों आपस में एक–दूसरे के लिए अपना हक छोड़ने, त्याग करने की होड़ लगातीं। एक अजीब–सा आदर्श था हमारे आगे, कुर्बान हो जाने का, प्रेम के लिए, दोस्ती के लिए या वायदा निभाने की यानी 'प्राण जाई पर वचन न जाई' की ग्रन्थि के लिए। एक ही पुरुष के लिए आकर्षण! मैं जो बात कह देती, उसे पूरा करने के लिए कितना भी भीतर या बाहर संघर्ष करना पड़ता, मैं उसे पूरा करती। वचन पूरा करने का यह हठ, राजकुमार के सपने ने तथा अरेबियन नाइट्स और दादी से सुने राजकुमारी को राक्षस से छुड़ाने के किस्सों ने रच दिया था।"[71]

सुषम बेदी की आत्मकथा 'आरोह–अवरोह' में वर्णनात्मक शैली का उदाहरण दृष्टव्य है– "मैं यूनिवर्सिटी स्पेशल बस में किताब लेकर सबसे आगे वाली सीट पर बैठ जाती कि बस के शोर–हंगामें से दूर रहूं। एक लम्बा शालीन–सा लड़का भी पढ़ता रहता था बिना किसी से बात किए। मैंने बी.ए. शुरु की थी और वह एम.ए. कर रहा था। अजीब बात है कि कुछ सालों बाद उसी के यहाँ से शादी का प्रस्ताव आया। उससे मेरी बात कभी नहीं हुई थी। उसकी शालीनता से प्रभावित जरुर थी। फिर कल्पना की उड़ान को तो कोई रोक नहीं सकता। खैर, आज की भाषा में सोचती हूँ कि मैं जरुर मैरिज मैटीरियल रही हूंगी, पर तब मैं एम.ए. करना चाहती थी। शादी के लिए तैयार नहीं थी।"[72]

व्यंग्यात्मक शैली

व्यंग्यात्मक शैली में व्यंग्यों की प्रधानता रहती है। व्यंग्यवाणों द्वारा प्रतिद्वंद्वी को नीचा दिखाने के लिए या खिल्ली उड़ाने के लिए इस शैली का प्रयोग किया जाता है। इस शैली में

भाषा को विचारों की पराकाष्ठा तक कसकर प्रस्तुत किया जाता है। इस शैली में लक्षणा एवं व्यंजना शब्द शक्ति का प्रयोग किया जाता है। अलंकारों में अर्थालंकार (श्लेष, निंदा, अन्योक्ति, व्याजस्तुति) का प्रयोग होता है। मैत्रेयी पुष्पा, रमणिका गुप्ता, मन्नू भण्डारी, प्रभा खेतान, सुषम बेदी इत्यादि लेखिकाओं के आत्मकथा–साहित्य में व्यंग्यात्मक शैली के उद्धहरण दृष्टव्य है–

'कस्तूरी कुण्डल बसै' आत्मकथा में कस्तूरी अपनी मुँह दिखाई की रस्म का विरोध करती है। तभी गाँव की एक बूढ़ी स्त्री व्यंग्य करते हुए कहती हैं– "ओ, आठ सौ की घोड़ी, तू मुँह नहीं दिखाती, तेरी यह मजाल! हम तो सोच रहे थे नई छोटी की तरह शरमा रही है, पर तू तो जोर आजमा रही है। तेरे भइया ने खनखनाते चाँदी के कलदार वसूले हैं, मुफ्त में नहीं आई सो नखरे पसार रही है।"[73]

'हादसे' आत्मकथा में रमणिका गुप्ता अपने राजनैतिक दल के साथ अपने घर पहुँचती है किन्तु वेदप्रकाश को यह सब उचित नहीं लगता वह रमणिका गुप्ता से व्यंग्य करते हुए कहते हैं– "मैं बराबर उन्हें कहती थी कि पत्नी को स्वतन्त्र विचार रखने का अधिकार है जिसके चलते मेरे घर आने के अधिकार में सरकार बाधक नहीं हो सकती। तब वे व्यंग्य से कहने लगे– "पर तुम अकेली कहाँ आई हो? फौज के साथ आई हो।"

मैंने उत्तर दिया– "कहो तो मैं इस फौज के साथ घर के बाहर चली जाती हूँ। हम सड़क के किनारे सो जाऐगें। क्या उसे भी तुम या तुम्हारी सरकार रोक देगी?"[74]

'एक कहानी यह भी' आत्मकथा में मन्नू भण्डारी बीमार है। राजेन्द्र यादव मन्नू भण्डारी को ऐसी अवस्था में अकेले छोड़कर अपने मित्र को सालगिरह की बधाई देने चले जाते हैं। पीछे से मन्नू भण्डारी की मित्र प्रतिभा एवं उनके पति नारायण साहब घर आते हैं। मन्नू की यह हालत देख उनसे राह नहीं जाता और वह मन्नू को डॉक्टर के यहाँ ले जाते हैं। पीछे से राजेन्द्र यादव घर पहुँच जाते हैं। राजेन्द्र यादव को व्यंग्य कसते हुए नारायण साहब कहते हैं– "कहिए, कहाँ से तफ़रीह करके लौट रहे हैं? उनके व्यंग्य की तरफ ध्यान दिए बिना, राजेन्द्र अपनी ही रौ में बताने लगे (स्वर में खीज का काफी पुट था)। 'अरे, आज भाभीजी (ठाकौर साहब की पत्नी) का जन्मदिन था सो मैं काफ़ी–हाउस से उठकर सीधा उन्हें विश करने चला गया। वहाँ जाकर देखा कि चन्दर तो उन लोगों को डिनर पर ले गया है....और वे चले भी गए! जबकि वे अच्छी तरह जानते हैं कि मैं चाहे कहीं भी होऊँ...उनकी सालगिरह पर ज़रुर उनके पास जाता हूँ.... बस इन्हें तो कोई भी खाना खिलाने या मौज कराने ले जाए ये फिर....।"[75]

'अन्या से अनन्या' आत्मकथा में डॉ. साहब की पत्नी की मित्र को प्रभा और डॉ. सर्राफ के प्रेम सम्बन्ध के विषय में पता चलता है, तो वह डॉ. साहब के क्लीनिक पहुँचकर प्रभा खेतान को

खरी–खोटी सुनाते हुए व्यंग्य करती है। कहती है– "तुम डॉक्टर साहब की सेक्रेटरी बनकर आईं और तुमने उन्हीं के घर में सेंध मारी? हमने तो एक मारवाड़ी भाई की बेटी को सहायता दी थी और तुमने हमारे एहसास का यह बदला चुकाया। अभी बुलाती हूँ मैं सावित्री डॉक्टर साहब की पत्नी को....।" उन्होंने फोन उठाया और बाहर बैठे टेलीफोन ऑपरेटर विलियम से कहा, 'मिसेज सर्राफ को बुला दें'। वापस वे मेरी और मुखातिब हुई–

"हाँ, तो बोलो कितना धन चाहिए तुम्हें? लाख–दो लाख का चेक हम अभी लिखकर देते हैं।"

"मैं अपना पैसा आप कमाती हूँ...मुझे आप पैसा क्यों दिखा रही हैं...?"

"तो और तुम यहाँ क्या कर रही हो हरामजादी!"

"प्लीज आप मुझे गाली नहीं दीजिए।"

"गाली नहीं दूँ, तो क्या करुँ? हम लोगों की जिन्दगी तुमने खराब कर दी...जहर घोलकर रख दिया जीवन में....तुम हमारी नौकर थीं और आज तुम्हारी यह हिम्मत की मालिक की बगल में बैठी हो।"[76]

'गुड़िया भीतर गुड़िया' आत्मकथा में मैत्रेयी पुष्पा का व्यंग्यात्मक उदाहरण दृष्टिगत हैं– "किबाड़ें बन्द कर लेना। मैं जा रहा हूँ।"

"जाओ।"

"वे निकल गए। मैं दस मिनट बाद उठी और द्वार बन्द करने पहुँची। देखकर चौंक गई, वे बाहर वाले बरामदे में खड़े थे।"

"अरे गए नहीं?"

"किस मुँह से जाऊँ? तुमने छोड़ा है जाने लायक?"

"बात क्या है?" मैंने गम्भीर होकर पूछा, रिरियाकर नहीं।

"क्यों मेरे मुँह से कहलवा रही हो?"

"अरे! यह भी कोई बात हुई? मैं अन्तर्यामी हूँ क्या?"

"तो चलो सुन लो।" वे सख्ती से मेरी बाँह पकड़कर भीतर आ गए।

"सुनो कि लोग कह रहे हैं, मिसेज शर्मा को डॉ. शर्मा नहीं भा रहे। लोग, लोग कह रहे हैं, मिसेज शर्मा को डॉ. सिद्धार्थ डुगडुगी की तरह नचा....।"

"डुगडुगी?"

"हाँ, डुगडुगी। वह तुम्हारी कमर में हाथ डालकर मनमाने तौर पर नचा नहीं रहा था?"[77]

रमणिका गुप्ता की आत्मकथा 'आपहुदरी' में व्यंग्य स्वरूप 'बनिया' शब्द का प्रयोग किया गया है। व्यंग्यात्मक शैली का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया गया है– "गाँव में बनियों की कंजूसी, जुल्म तथा कमीनगी के किस्से मशहूर थे, जो लोकगीतों में भी गाये जाते थे। किसी को कायर कहना हो, भगोड़ा कहना हो या छली–कपटी कहना हो अथवा कंजूस–मक्खीचूस कहना हो तो, उसे 'बनिया' कह दिया जाता था। 'बनिया' शब्द कायरता और कंजूसी का पर्याय था।.........मेरे पूछने पर लेफ्टिनेन्ट अग्रवाल ने बताया था, मैं तो लड़ाई के मैदान में सामान पहुँचाने वाला हूँ, उसके रास्ते बनाने वाला इंजीनियर हूँ। जैसे डॉक्टर साहब घायलों का इलाज करने वाले हैं, मरते को जीवन दान देने वाले हैं, वैसे ही मैं टूटे पुलों को जोड़ने वाला डॉक्टर हूँ ताकि फौज आ–जा सके। मैं पुलों को तोड़ने वाला भी हूँ ताकि दुश्मन न आ सके।

मैं लेफ्टिनेन्ट अग्रवाल से तरह–तरह के सवाल पूछती और वे जवाब देते।

मैं पूछती, आपको फौज में किसलिए भरती किया, आप तो डरकर भाग जाएंगे न? अंकल आप तो गरीबों का खून चूसते हैं? यह किसका खून चूसेंगे?

वह हँसकर कह देता, "यहाँ कोई गरीब ही नहीं है। हम यह काम नहीं करते।

उसके इस जवाब से मैं बहुत खुश हो गयी थी और मैंने पापा जी से कहा था, अंकल अब बहुत अच्छे आदमी हो गए हैं। वे डरकर भागेंगे भी नहीं और वे अब खून भी नहीं चूसते।"[78]

अहंवादी शैली

अहंवादी शैली आत्मकथा–साहित्य की प्रमुख शैलियों में से एक मानी गई है। इस शैली में 'मैं' का भाव बहुत अधिक प्रबल होता है। इसलिए आत्म–प्रकाशन के निकट इस शैली को माना गया है। इस प्रकार की शैली के आत्मकथाकार का उद्देश्य स्वयं को ही सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शित करना होता है। 'स्व' का भाव आत्मकथा में आरम्भ से लेकर अंत तक बना ही रहता है। मैत्रेयी पुष्पा, रमणिका गुप्ता, मन्नू भण्डारी, प्रभा खेतान, सुषम बेदी इत्यादि लेखिकाओं के आत्मकथा–साहित्य में अहंवादी शैली के उद्धहरण दृष्टव्य है–

मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा 'कस्तूरी कुण्डल बसै' में अहंवादी शैली का प्रभावी उदाहरण प्रस्तुत है– "आँख की अन्धी, कान की बहरी, तुम्हें कुछ पता है कि कहाँ जा रहा हूँ? हद होती है ईगो की, अहंकार की। माँ वहाँ बँधी पड़ी है, बेटी को औरत के नखरों से फुर्सत नहीं।। कहकर

डॉ. साहब ने डंक मारना चाहा, मगर मैत्रेयी को लगा पति ने उसे जलते ताप से खींच लिया है।"[79]

रमणिका गुप्ता की आत्मकथा 'हादसे' में पुरुष के अहं को व्यक्त करता हुआ उदाहरण दृष्टव्य है। आखिर अवधेशजी से रहा नहीं गया। वे बोल ही पड़े– "रमणिकाजी को स्त्री होने का फ़ायदा मिल रहा है।

मुझसे भी रहा नहीं गया। मैंने कहा–मैं मिट्‌टी की माधो नहीं हूँ, बुद्धि भी रखती हूँ। मिट्‌टी के माधो की पूजा होती है, तर्कशील व्यक्ति सराहे जाते हैं। यहाँ मेरी पूजा नहीं हो रही, हम सबकी सराहना हो रही है, मुझे केवल प्रतीक बनाया जा रहा है।" पर अवधेश जी से तर्क की बात कठिन था। स्त्रियों के प्रति सम्भवतः वे किसी पूर्वाग्रह से ग्रसित थे या हीन–भावना से त्रस्त थे, जो उनके अहं पर बार–बार चोट करती थी। मेरे खयाल में हर पुरुष–स्त्री के समक्ष ऐसी ही हीन–भावना से ग्रस्त होता है और वह उसकी भरपाई करने हेतु ही स्त्री पर हमला करता है।"[80]

'एक कहानी यह भी' आत्मकथा में मन्नू भण्डारी राजेन्द्र यादव की सामन्ती मानसिक एवं अहंभाव को व्यक्त करती है। अहंवादी शैली का उदाहरण इस प्रकार है– "मैं नहीं जानती थी कि हमेशा लीक छोड़कर चलने की गुहार लगाने वाले, सामन्ती संस्कारों की धज्जियाँ बिखेरने वाले राजेन्द्र का पूरा व्यक्तित्व इन्हीं संस्कारों में इस कदर लिपट पड़ा है, जिसने इन्हें इस परम्परागत धारणा से कभी मुक्त ही नहीं होने दिया कि परिवार में वर्चस्व और प्रभुत्व केवल उसी का हो सकता है, जो परिवार का भरण–पोषण करें.....उसकी जिम्मेदारियाँ निभाए। आज भी शायद ही कोई पुरुष इस धारणा से मुक्त होगा। अहंकार की परतों में लिपटे राजेन्द्र के अहं को यह प्रभुत्वहीन और वर्चस्वहीन (केवल अपनी नज़रों में) जीवन स्वीकार्य ही नहीं था।"[81]

'अन्या से अनन्या' आत्मकथा में प्रभा खेतान व्यापार में दिनोंदिन सफलता की सीढ़ी चढ़ती जा रही है। प्रभा को आगे बढ़ते देख डॉ. सर्राफ के अहं को चोट पहुँचती है। इस आत्मकथा में अहंवादी शैली का बेजोड़ उदाहरण दृष्टिगत है– "मुझे अपने स्त्रीपने से चिढ़ हो रही थी, आखिर हम स्त्रियाँ अपने प्रिय पुरुष की अहं सन्तुष्टि के लिए खुद का अवमूल्यन क्यों करती हैं, किसलिए गुलाम की तरह उस पुरुष की हर मूर्खता एवं कुंठा को झेलती रहती हैं। मैं ही आखिर क्यों और किसलिए यह सब बर्दाश्त करुँ? क्या मैं मेहनत नहीं करती? क्या मैं पैसे नहीं कमाती? दूसरा मन तुरन्त पलटकर मुझसे कहता, चुप! बिलकुल चुप!! इन बातों को जबान पर नहीं लाना। नहीं तो मार दी जाओगी। लाखों–करोड़ों का मामला है, संभलकर चलना सीखो।

कभी मैं सोचती क्या इसी के लिए मैंने इतनी कीमत दी? हमारे बीच अब वह प्यार का रिश्ता नहीं रहा था। एक मोल–भाव हम दोनों के बीच चलता रहता था...वे मुझे छूट दे

रहे थे, देने को बाध्य हो रहे थे और इसके लिए मन–ही–मन पछता भी रहे थे, कहे बिना रह नहीं पाते... "मैंने तुम्हें पैसा कमाना सिखाकर गलती की।"[82]

मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा 'गुड़िया भीतर गुड़िया' में अहंवादी शैली का प्रभावी उदाहरण इस प्रकार है –

"मेरा नाम था वहाँ।"

"जरुर होगा।"

होगा नहीं, था....। मैं वहाँ चुनी जाती। मैं कुछ सीखती। मैं सीखकर उसका उपयोग करती। तुमने मुझसे कब का बदला लिया? कहना चाहती थी, लेकिन कहा– "अगर मैं भी ऐसा ही करूँ तो?"

"करो न। अपना ही नुकसान करोगी। इस घर के लिए कौन कमाएगा?"

"यह मत कहो। आजकल औरतें भी कमाकर गृहस्थी चला रही हैं। इस सच को मैंने भी नजरअंदाज किया है, तभी तो आज यह हालत....।"[83]

रमणिका गुप्ता आत्मकथा 'आपहुदरी' में अहंवादी शैली का उदाहरण प्रस्तुत है– "अरे क्या हो गया? चोर के भाग का था, वह ले गया। कर्नल साहब की बेटी है, ऐसी बालियाँ और आ जाएंगी। हमारी बहन से बढ़कर क्या बालियाँ हैं? इतनी फिक्र क्यों? खाओ–पिओ मौज करों। नहीं तो चलो मैं खरीद देता हूँ बालियाँ। इतनी छोटी चीज़ को लेकर आप फिक्र क्यों करते हैं?"

प्रकाश से ये सब बर्दाश्त नहीं हो रहा था।

"ये कर्नल साहब की बेटी हो सकती है, पर अब ये एक मामूली गरीब अफसर की बीवी है। मेरी औकात के अनुसार ही रहना होगा इसे। इसे यह भूलना होगा कि यह कर्नल की बेटी है और सुपरिटेंडेंट इंजीनियर की बहन।"

भाई साहब को ये उम्मीद न थी कि प्रकाश ऐसा कहेगा।"[84]

सुषम बेदी की आत्मकथा 'आरोह–अवरोह' में लेखिका की मित्र उन्हें कवि–लेखकों के अहंभाव के विषय में बताती है– "कवि–लेखकों की कला की जितनी भी प्रशंसा कर लो, व्यक्तिगत रूप से उनसे बचकर रहो क्योंकि वे ज्यादातर घटिया किस्म के इंसान होते हैं। जिम्मेदार और भरोसे लायक नहीं होते। लड़कियों से दोस्ती वे अपने अहम को सहलाने के लिए करते हैं, निभाने के लिए नहीं। यह बात सिखाई साधना भटनागर ने ही थी, जो कवियों की घटिया हरकतों के बारे में किस्से सुनाती रहती थी। बी.ए. और एम.ए. के पाँच साल हमने साथ

गुजारे थे, सो खासी पक्की नींव डाल दी थी उसने। हम लड़कियों ने सोच लिया था कि किसी लेखक से प्रेम या शादी के चक्कर में कभी नहीं पड़ेंगे। सच तो यह है कि हममे से कोई भी लड़की साहित्य प्रेमी होते हुए भी किसी लेखक के झांसे में कभी नहीं आई, हाँ मेरी मित्रता और सद्भाव बहुत से लेखकों या दूसरे व्यवसाय के पुरुषों से रहा है।"[85]

5.3 शब्द–चयन

शब्द का अर्थ – उच्चारण की दृष्टि से ध्वनि भाषा की लघुत्तम इकाई मानी गई है किन्तु सार्थक अर्थ प्रकट करने की शक्ति में ही निहित है। भाषा को विचारों के आदान–प्रदान करने का सशक्त माध्यम माना गया है। किसी भी भाषा में शब्दों का अपना ही महत्त्व होता है क्योंकि शब्द ही विचारानुभूतियों को अभिव्यक्त करते हैं। शब्द भाषा में भाव सौन्दर्य की अभिवृद्धि कर चमत्कार उत्पन्न करते हैं। शब्द ही अक्षरों को संवार कर पदों और वाक्यों में परिवर्तित करते हैं।

परिभाषा – वर्णों के सार्थक मेल को शब्द कहा जाता है।[86]

शब्द–चयन – किसी भी भाषा में अर्थ एवं विचारों का विशेष महत्त्व होता है। भाषा में दिखाई पड़ने वाली बात आसाधारण शब्द–योजना या शब्द–प्रयोग है।[87]

उक्त परिभाषा के अनुसार भावों की अभिव्यक्ति शब्द–चयन ही शब्द–प्रयोग या शब्द–योजना है। मैत्रेयी पुष्पा, रमणिका गुप्ता, मन्नू भण्डारी, प्रभा खेतान, सुषम बेदी इत्यादि लेखिकाओं ने अपने आत्मकथा–साहित्य में तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी (अंग्रेजी, अरबी–फ़ारसी) शब्दों का प्रयोग किया है। इन सभी आत्मकथा लेखिकाओं का शब्द–भण्डार अत्यन्त ही समृद्ध है।

तत्सम शब्द (Pure Words)

'तत्सम', शब्द दो शब्दों के योग से बना है 'तत्' + 'सम्' अर्थात् उसी के समान, जिन शब्दों को संस्कृत भाषा से हिंदी भाषा में बिना कोई परिवर्तन किए ज्यों का त्यों प्रयोग में लाया जाता है। वे तत्सम शब्द कहलाते हैं। 'मानक हिन्दी कोश' के तत्सम शब्दों को परिभाषित करते हुए लिखा गया है कि "किसी भाषा का वह शब्द जो किसी दूसरी भाषा में अपने मूल रूप में चलता हो।"[88] मैत्रेयी पुष्पा, रमणिका गुप्ता, मन्नू भण्डरी, प्रभा खेतान, सुषम बेदी इत्यादि लेखिकाओं ने अपने आत्मकथा–साहित्य में प्रसंगानुसार तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य है–

कस्तूरी के पागलपन की खबर जब मायके पहुँची तो माँ ने अपना **कपाल** पीट लिया और जल्दी–से–जल्दी अपनी विश्वसनीय धोबिन के हाथ खबर भेजी।[89]

पति तो गुलाम देश के गुलाम **पुरुष** रहे।[90]

बस ऐसी ही **सम–विषम** बातों का चरखा चलाते–चलाते समय बीतने लगा।[91]

सोचते–सोचते पता नहीं कौन–सी बात याद आ जाती, शायद वही, जिसकी **विषबेल** जीवन पर फैली है।[92]

क्या इस लड़की का **कण्ठ** इतना मीठा है?[93]

जिसमें बच्चों का **पृष्ठ** आता था।[94]

रुदन में **शोक** था।[95]

दादा के यहाँ कोई **पुत्री** नहीं है, बेटी का दर्जा उसी का है।[96]

....मगर **सिंहनी** अपने ही शावक को कैसे खा जाए?[97]

मैं बूढ़ी हो चली! हाथ से **वयस** खिसक गई।[98]

जैसे–जैसे माँ के चेहरे पर **करुणा** फैलने लगी, मैत्रेयी पश्चाताप के **गर्त** में गिरने लगी।[99]

लेकिन मैत्रेयी के लिए अधिक सोचना बेकार था क्योंकि जीवन में सबकुछ पाने और सबकुछ लुटा देने की अदम्य लालसा **हस्त** रेखाओं के ऊपर निकल चुकी थी।[100]

महाराज **बुद्धि–विवेक** से सोचो।[101]

जैसे वही **भस्म** करने वाली विवाह की अग्नि हो और वही दहेज प्रथा की राक्षसी।[102]

विष उगलना सीख गई मैत्रेयी।[103]

मन में रही एक फोटोग्राफ–सी धुँधली **श्वेत–श्याम** छाया, जैसे कि संसार के तमाम बच्चे होते हैं।[104]

माधवी की पीठ फिरते ही कुमुद के **कपाट** खुले हो जैसे, 'मदन मानव दगाबाज है।'[105]

लड़कों के एकमात्र कॉलेज के **छात्र** मेरे साथ वायदा करके भी निभा न पाए थे।[106]

धर्म के नाम पर कत्लेआम हो रहा था।[107]

इसके अतिरिक्त **रात्रि** के समय माल लेकर जाने और माल लेकर आने वाले ट्रक चला करते थे जो आज भी चलते हैं।[108]

नौका जो बहुत बड़ी थी हमें नदी पार करवा कर गुजरात की सीमा से सौराष्ट्र की सीमा में ले जा रही थी।[109]

फिर आप तो बहुत **विद्वान** हैं।[110]

बिना परिवार से अलग हुए और बिना शादी किए भी **मित्र** बनकर रहा जा सकता है।[111]

दरअसल कांग्रेसी **भीरू** थे।[112]

यह वह युग था जब राजा का हैलीकॉप्टर ऊपर उड़ता था तो जंगलों में नीचे आदिवासी **साष्टाँग** लेटकर उन्हें जोहार–जोहर कहकर प्रणाम करते थे।[113]

उन्होंने बिना एक नया पैसा **पूँजी** लगाए अपने लिए लाखों रूपए की **मासिक** आय का जुगाढ़ कर लिया।[114]

कहीं उसके विचार और विश्वास गुँथे हुए हैं तो कहीं उसके **उल्लास** और अवसाद के **क्षण**....।[115]

पर मन को निरन्तर कंगाल और शरीर को **रुग्ण** बनाती।[116]

स्वस्थ और हँसमुख बहिन सुशीला से हर बात में तुलना और फिर उसकी **प्रशंसा** ने ही क्या मेरे भीतर ऐसे गहरे हीनभाव की ग्रन्थि पैदा नहीं कर दी कि नाम, सम्मान और प्रतिष्ठा पाने के बावजूद आज तक मैं उससे उबर नहीं पाई?[117]

अब यह **पैतृक** पुराण यहीं समाप्त कर अपने पर लौटती हूँ।[118]

त्यौहारों में केवल दीवाली मनाते हैं।[119]

महीने–दो महीने में भाईयों के साथ सिनेमा जाने की अनुमति मिलती तो **उत्सव** जैसा लगता था।[120]

एक के संकट को सबने अपना संकट माना तो एक ही खुशी सबको **पुलकित** करती चली गई।[121]

उनकी **मृत्यु** की सूचना के बाद भी नहीं।[122]

मुझे तो **चमत्कृत** कर दिया।[123]

वर्षा के दिनों में वर्षा–मंगल, होली पर फाग....सरस्वती–पूजा पर बसन्त के **नृत्य**–गीतों से हॉल गूँज उठता था।[124]

बार–बार मैं उस **पत्र** को पढ़ती थी और मन होता था कि जाकर सबको बता आऊँ कि देखों मेरी पहली ही कहानी स्वीकृत हो गई है।[125]

कहानी का क्लाइमेक्स है **प्रतीक्षा** में।[126]

इस सूचना मात्र से सोमा बुआ **आनन्दित...पुलकित।**[127]

हांलाकि यह भी जानती हूँ कि यह पाठक–**पिपासा** आपको आसानी से 'लोकप्रिय साहित्य' चाहें तो व्यावसायिक भी कह लें, के विवादस्पद मुहाने पर ले जाकर खड़ा कर सकती है।[128]

आधा घंटे में ही अजित जी अपने **कवच–कुंडल** से लैस होकर आ खड़े हुए और राजेन्द्र को अपने टू–व्हीलर पर बिठाकर पहले बीस मील की अस्पताल की यात्रा, फिर वहाँ की भाग–दौड़।[129]

'**मृत** देह की जाति नहीं होती, उसका कोई धर्म नहीं हुआ करता।'[130]

वह गौरवपूर्ण, **उन्नत ललाट,** काले घुँघराले बाल, वह स्वच्छ पारदर्शी दृष्टि...**पुरुष** का ऐसा भी रूप होता है।[131]

सर! आज से आप मेरे **गुरु** हुए।[132]

पिछली रात की बातें याद करके आपमान और लज्जा से मेरा **सर्वांग** जल उठा और बगल में बैठी यह विदेशिन, सत्तर साल की वृद्धा, अर्द्धपागल।[133]

यहाँ बालों का **श्रृंगार** पुरुष कह रहे थे।[134]

मैंने दूर से ही कहा, 'मैं अपने व्यवहार के लिए **लज्जित** हूँ।[135]

स्मृति की गलियों में एक कदम आगे बढ़ाती हूँ तो दो कदम पीछे लौट जाती हूँ।[136]

मुझे लगा यदि अमेरिकी स्त्रियाँ अंग **सौष्ठव** चाहती हैं तो भारतीय स्त्रियाँ क्यों नहीं चाहेंगी?[137]

उन्हीं के सामने मुझे **धवल, पवित्र** होना था और जो मुझे गलत कह रहे थे।[138]

इतनी तीखी **घृणा....घृणा** का समन्दर हिलोरे ले रहा था।[139]

मैं अक्सर एकान्त और मधुर **क्षणों** की खोज में रहती हूँ।[140]

ऐसी विकट **मुद्रा स्वास्थ्य** के लिए अच्छी नहीं, तुम खूब जानते हो।[141]

नजरें बेरहमी से मेरे वजूद को कोंचती हुई और मैं **धरा** के **धैर्य** सी सर्द स्त्री।[142]

वह मेरी प्यार से सिंचित, भरोसे से बढ़ती–फूलती लता **वल्लरी–सी** भावना आज भी हरी–भरी है।[143]

मेरा मनोरथ पूरा होगा, मैं मान रही थी क्योंकि पति के **अहंकार** को ठेस पहुँचाने से यथासम्भव बचती रही हूँ।[144]

मैं फिर **चमत्कृत** हुई।[145]

मैं **अवसन्न** क्या बताऊँ, क्या करती?[146]

मैं आर्य समाज के दस नियम **कंठस्थ** कर चुकी थी।[147]

उत्सव में मेरा यज्ञोपवती **संस्कार** किया गया।[148]

जैसे तुम्हारा बेटा मर गया और कोई **पुत्र–पौत्र** नहीं है अतः वंश डूब गया।[149]

वहाँ न कोई **ब्राह्मण** न **शूद्र**।[150]

'दादी, एक **वर** के कारण निन्यानवे चाहने वाले खारिज?'[151]

मैं देखती हूँ, सभागार, जिसमें कभी मैं सामने बैठे **विद्यार्थियों** जैसी एक **विद्यार्थी** होती थी।[152]

एक **क्षण** को भी नहीं भूली।[153]

कमरे में **हिंडोला** था कि मेरा दिल झूमने लगा।[154]

धूप में निकलकर अपने भीतर से निकलते **सूर्य** देख रही हूँ।[155]

मेरे पिता ने पूछा था, हमारी बेटी **विदुषी** बनेगी, पण्डित जी?[156]

उनसे कुछ सीखने की लालसा उन्हें **मृग–मरीचिका** के पीछे दौड़ाती रहती है।[157]

अपनी महिमा और मर्दानगी की खातिर सोने की सीता आग में उतार दी हो और सोने की काया **कुन्दन** हो गई थी।[158]

संध्या चार बजे चाय, फिर **रात्रि** आठ बजे खाना।[159]

उसने मुझे अपने भीतर पनपी **घृणा** से मुक्त होकर प्यार करना सिखाया था।[160]

हम दोनों **प्रथम** श्रेणी के वेटिंगरूम में जा बैठे।[161]

पार्टी का काम **भूमिगत** ढंग से होता था।[162]

मैंने गोपीकृष्ण के यहाँ जाकर कत्थक **नृत्य** सीखना शुरु कर दिया था।[163]

शहर जाना एक **उत्सव** जैसा होता है।[164]

आत्मा की पराकाष्ठा है वर्ना **मानुस** जनम व्यर्थ हो जाएगा।[165]

अगर ऐसा न होता तो कोई भी आवासी अपनी **भूमि** छोड़ किसी दूसरी भूमि को उम्र भर के लिए, यहाँ तक कि आने वाली पुस्तों के लिए अपना न बना पाता।[166]

वहाँ सुबह की **प्रार्थना** अंग्रेजी में होती थी जो मुझे कतई याद नहीं।[167]

चाहे बर्फ की **उज्ज्वलता** हो या हरियाली की घनी छाया, वसंत के फूलों से लदे पेड़ या पतझड़ में पूरी–पूरी पहाड़ियों का ही रंगों से नया श्रृंगार।[168]

तभी कला के नमूने आदिमकाल के **प्रस्तरों** में ही दिखने लगते हैं।[169]

तद्भव शब्द (Impure Words)

'तदभव' शब्द 'तत्'+'भव' के योग से बना है, जिसका अर्थ होता है–किसी से उत्पन्न होना या रूप–परिवर्तित। जो शब्द संस्कृत भाषा के है किन्तु रूप–परिवर्तित करके हिन्दी भाषा में प्रयुक्त किए जाते हैं, तद्भव शब्द कहलाते हैं। मैत्रेयी पुष्पा, रमणिका गुप्ता, मन्नू भण्डरी, प्रभा खेतान, सुषम बेदी इत्यादि लेखिकाओं ने अपने आत्मकथा–साहित्य में तद्भव शब्दों का भरपूर प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य है–

मैं **ब्याह** नहीं करुँगी।[170]

कस्तूरी, दीठ किशोरी, माँ की आँखों में उठती प्रचंड **आग** की ओर से मुँह फेरकर खड़ी हो गई।[171]

इस बात का **सपना** कैसे देखा जा सकता था?[172]

खेरापतिन ने मैत्रेयी के **सिर** पर **हाथ** रखकर कहा।[173]

एदल्ला को बस्तों के पास छोड़ा और कहा तू चमार है, सबसे पीछे **पानी** पिएगा।[174]

उसकी **आँखें** ढँक गईं।[175]

हमारा खाना छूकर **धरम** बिगाड़ दिया।[176]

वह हाजिर होने के जुर्म में इतना पिटा कि **नाक** से और **दाँत** में चोट लगने से **खून** की धारें बहीं।[177]

राई–भर अक्ल वाली लड़की के कारण **पहाड़** –सा संकल्प ढहा दें।[178]

लड़की के पास 'उस जगह' की कल्पना नहीं कि **गाय** और बोरे में कसे सामान की तरह वह कहाँ भेजी जाएगी या पटकी जाएगी?[179]

माँ **कड़ुवा मुँह** बनाकर कलावती को धिक्कारने लगी।[180]

कस्तूरी उन्हें एक मन गेहूँ और **बीस** रूपए प्रतिमाह देगी।[181]

वह अल्हड़ किशोरी हो गई कि असमय **बूढ़ी** होने से बच गई मैत्रेयी।[182]

रात के समय एक खटिया पर शयन....[183]

नादान **लड़की धरती** की ताकत के बारे में क्या जाने?[184]

नरम **पत्तों** और रंग–बिरंगे फूलों से भर गए।[185]

आजादी के बावजूद, जमींदारी खत्म होने के बारह वर्ष बाद भी गाँव के **किसान** में यह हौंसला नहीं है कि उनकी बात को एकदम खारिज कर दें।[186]

बेटी के कन्यादान की खातिर तो लोग **बैल–भैंस** बेचते और बर्तन–भाँडे रेहन चढ़ा देते हैं।[187]

ये तीन–चार वाक्य उन्होंने अपने साँवले कठोर **होंठ** को भरसक काबू में रखते हुए कहे, नतीजतन कनपटी की नस भयानक रूप से फूल उठी।[188]

कोठे की कड़ियों में रात को **साँप** आता है।[189]

नारियल रखा और नोट थमाए।[190]

मैं **औरत** के संदर्भ में पतित शब्द की परिभाषा से सहमत नहीं हूँ।[191]

हवा के साथ तो हजारों **तिनकें** उड़ते रहते हैं।[192]

वे मेरे **भाई** सत्यव्रत बेदी के **दोस्त** थे।[193]

मैंने इंटर की **परीक्षा** दी थी।[194]

मैंने अपने **घर** में न परदा किया और न छुआछूत चलने दी।[195]

वैसे भी हम पहले ही **पचपन** से घटकर **ग्यारह** रह गए थे।[196]

कुछ ताँगेवालों ने भी एक **गाँव** का फासला तय करने की पेशकश की।[197]

पानी से मुँह मत धोना।[198]

सबके चेहरे, सर के **बाल** और कपड़ें सीमेट से लथपथ थे।[199]

ऐसे हमारा **बिछौना** कहीं **धरती** थी तो कहीं ट्रक के ऊपर की छत या ट्रक के पीछे का डाला या किसी ताँगे का फट्टा था।[200]

हम **लोगों** के कपड़े काफी **मैले** हो चुके थे।[201]

मैं **मिट्टी** की माधो नहीं हूँ, बुद्धि भी रखती हूँ।[202]

दोपहर में हमें उनके साथ भुज शहर में घूमना था।[203]

जब तक हम मांडवी में रहे मैं अवधेश जी के **बर्तन** मलती रही।[204]

मेरा **कुत्ता** भी खड़ा होगा तो जीत जाएगा।[205]

सस्ता लाठा उपलब्ध कराने के लिए नए डिपो खोलने तथा ग्रामीणों का छावन–जलावन की **लकड़ी** के लिए नए कूप आवंटित करने के साथ–साथ... ।[206]

अंधेरा घिर रहा था।[207]

मैं **खून** के घूँट पीकर रह गई।[208]

मज़दूरों ने रातोंरात जुटकर **पहाड़ी** से केदला कोलियरी तक सड़क बनाई।[209]

अरे बेटी के **बाप** बन गए हो, अब तो उठो।[210]

जो किताबें बिकतीं उनका पैसा वसूल करना और भी टेढ़ी **खीर** था।[211]

लोग कम्पनी का पैसा चुराएँगे और माँ काली के दरबार में जाकर **बकरा** काटेंगे, भला यह कोई **धरम** निभाना हुआ?[212]

बरसात के मौसम में अम्मा परेशान हो जाती।[213]

गीता बिना कुछ कहे उठ जाती है....लकड़ी का पटरा धड़ाम से **जमीन** पर।[214]

आक्....किशन ने पीछे से धक्का दे दिया, उल्टे मुँह मैं **कीचड़** भरे **पानी** में।[215]

यह प्रभा तो मिलिट्री का **घोड़ा** है। देखो कैसे दौड़ती है।[216]

दो, बड़े–बड़े काले **कौवे** फड़फड़ाते हुए सर के ऊपर से निकाल गए।[217]

तुम इस **आग** में मत कूदो, यह मेरा **नरक** है मुझे इसमें अकेला रहने दो।[218]

वे चले गए **गाँवों** में **किसानों** के पास।[219]

खड़े–खड़े **पैर** दुखने लगे।[220]

कहते है कि **पत्नी** से बड़ा 'शॉक एब्जॉर्बर' कोई नहीं होता।[221]

मेरा **माथा** ऊँचा हुआ।[222]

बड़ और **पीपल** की परिक्रमा बहुत जरुरी थी बहू जी..... ।[223]

पटवारी अपना **सिर** हिलाने लगे, 'नहीं–नहीं', नंबरदार नहीं।[224]

देखा था नंदकिशोर की बहू जब **कुएँ** में कूद गई थी और मैंने उसे कांटा डलवाकर, आदमी कुएँ में कुदाकर निकलवा लिया था।[225]

राणाप्रताप का एक **घोड़ा** था, नाम था चेतक।[226]

नदी को न **पत्थर** बांध सकते हैं, न बांध।[227]

बाहर विशाल **आंगन** में था नानी का रसोई घर।[228]

में फाहे–सी बर्फ की बौछार को झोली में भरती और **आकाश** की तरह मुँह करके ज़ोर से चिल्लाती, 'और भर दो मेरी झोली'।[229]

हम भी तो इस **धरती** पर पैदा हुए हैं।[230]

शायद खसरा या चिकनपॉक्स हुआ है और मां मुझे **दूध** में बना मीठा साबूदाना खिला रही है।[231]

जब तक माला गूंथी जाती है, **फूल** मुरझा जाते हैं।[232]

देशज शब्द

ये वे शब्द होते हैं जो जन–जीवन में आमतौर पर बोलचाल की भाषा में प्रयुक्त किए जाते हैं, जो संस्कृत या किसी अन्य भाषा से हिन्दी भाषा में नहीं लिए गए है अपितु आवश्यकतानुसार एवं क्षेत्रीय प्रभाव के कारण बोलियों द्वारा बना लिए गए है, देशज शब्द कहलाते हैं। मैत्रेयी पुष्पा, रमणिका गुप्ता, मन्नू भण्डरी, प्रभा खेतान, सुषम बेदी इत्यादि लेखिकाओं ने अपने आत्मकथा–साहित्य में देशज शब्दों का प्रयोग किया है। इन सभी लेखिकाओं का शब्द–भण्डार समृद्ध है। उसका एक कारण इन सभी लेखिकाओं के जीवनानुभव से भी जुड़ा है। यह अनुभव ग्रामीण एवं शहरी दोनों परिवेशों से होना है। अपनी आत्मकथाओं में रोचकता लाने के उद्देश्य से एवं भाषा में चमत्कार उत्पन्न करने हेतु देशज शब्दों का प्रयोग किया है, कुछ उदाहरण दृष्टव्य है–

अपने परिवार की महिमा के **चाँद** में कलंकनामु यह बहन......[233]

माँ ने गुस्से में कस्तूरी की पीठ को **धाँय–धाँय** कूटा–बाद में अपनी छाती पीटी और दाँत घिस–घिसकर गालियाँ दी।[234]

हर दम न **कपडे–लत्ते** पूरे हों, न मिर्च–मसाले ठीक से जुटे।[235]

बद्री बनिया ने मैली–सी अठन्नी कस्तूरी की हथेली पर धरी तो उसकी आँखों के आगे सारा माहौल **चकमक–चकमक** करने लगा।[236]

जो अब **रोटी–कपड़ा** देने वाला है।[237]

जो बद्री बनिया के **चबूतरे** पर बिछी **खाट** पर गाढ़े की कमीज पहने बैठे थे, बातें कर रहे थे। तुम्ही थे![238]

रस्सा, हँसिया, खुरपी, डलिया लेकर निकले तो आँखें झुकी रहें, चेहरा ढँका हुआ है।[239]

भोले गले वाली उसकी बेटी....**तड़ाक्–तड़ाक** तीन–चार थप्पड़ लगाए।[240]

फ्रॉक पकड़कर जबर्दस्ती बिठाई और दो **चोटियों** में एक चोटी **खचाक्** से काट डाली।[241]

चिड़िया के बच्चे–सी सहमी हुई।[242]

खुद ही टिकिट लिया, खुद ही **गाड़ी** बदली।[243]

गप–गप लड्डू खाते रहे।[244]

जितना वजन नहीं है, उतना रूपया **चूरन** हुआ है, तू कहती क्यों नहीं?[245]

कमरे में कुर्सी पर बैठी **झकाझक** सफेद पोशाक पहने माताजी की नजर मैत्रेयी के चेहरे पर कैसे पड़ गई? गाँवों में विवादस्पद लड़की की दूर–दूर **छिः–छिः** हो रही है।[246]

तभी न घर के छप्पर की **खूँटी** उखड़ने लगी।[247]

लालटेन की ढिबरी आघात से खुल पड़ी।[248]

जब कभी हारी–बीमारी में आई तरबूज, काशीफल, **लौकी** लेती आईं।[249]

स्पीड तेज होती उससे पहले **डिब्बा** आया, उसी में घुस गई।[250]

चन्दोवे से गोलू के **जूतों** के खुले तस्मे बाँधने लगी।[251]

पर खाँड़ **कटोरा** तो वर जीव्य–फूंका का नेग होता है।[252]

उन दिनों उन सबकी **चाँदी** हो गईं थी।[253]

ड्राइवर भी कुछ **ऐसी–वैसी** हरकतें करता नजर आया।[254]

हम लोग **फटाफट** अपना सामान समेटकर उतर गए।[255]

हड़िया (माड़ से बनी एक खास जड़ी–बूटी डालकर भात से बनी देशी शराब) भी यह लोग बनाते और बेचते है।[256]

कौन जाने, इन **ठूँठ** जैसी टहनियों में भी कुछ अंकुरित होने की प्रक्रिया शुरु हो जाए।[257]

बेटी और घर (जिसकी पूरी–पूरी जिम्मेदारी मेरे ऊपर थी)।[258]

दिन सप्ताह में और सप्ताह महीने में बदल गए पर उत्तर नहीं आया तो समझ लिया कि जरुर उसे उठाकर कूड़े की **टोकरी** में फेंक दिया होगा इसलिए रिमाइंडर भेजने की हिम्मत भी नहीं हुई।[259]

क्योंकि वह परिवार भी था तो **पड़ौसी** ही।[260]

मैं **बिस्तर** पर पड़ी थी।[261]

मुझे लगा इसी की आड़ में अब यह मना कर देगा पर नहीं, वह आगे बढ़ा और बिना **नापे–तौले** एक छोटी टंकी हमारी ओर बढ़ा थी।[262]

भली औरत **सड़ाक–सड़ाक** चाबुक चलाए जा रही थी। चोट तो मुझे ही लगनी थी।[263]

ऐसी परिस्थिति में मैं अपने ही बाल नोंचने लगती, **चप्पलों** से अपना सर पीटने लगती थी।[264]

मैं तो मर ली इस **छोरी** के पीछे।[265]

डर के मारे मुझे **झुरझुरी** हो जाती थी, क्योंकि दाई माँ से मैंने हरिया को बातें करते हुए सुना था.. . 'अरे मौसी कल रात ऊ नीम का पेड़ पर उहाँ **भूतनी** बैठी रही थी।[266]

अम्मा सफाई करवाती, रंग करवाती, सारे घर को **चम–चमाचम** बना देती।[267]

"यह हमेशा की बोकी है, **भाटा**–पत्थर है, उटपटाँग बातें पूछने में माहिर।"[268]

अरे वही जो सामने **झोपड़पट्टी** में रहती है, उसी के बेटे खेदखा से तेरी शादी होगी।[269]

अम्मा की पानी पीने की **काँच** की एक केटली थी, बड़ी नफीस–सी...जो मेरे हाथों गिरकर टूट गई।[270]

लोटा–कम्बल लेकर आए और हमारे बंगाल को लूट–लूटकर इतनी–इतनी बड़ी मिल्कियत खड़ी कर ली।[271]

यह एक **चटकदार** देश प्रेम है, जिसकी अश्लीलता से भींगी हुई हवा देश के बुद्धिजीवियों को भिगो रही है।[272]

कुछ और शब्द...कुछ और **बकझक,** मारपीट हुई नहीं पर होने की नौबत...यह तो रोज की घटना थी।[273]

आइलिन की **बक–बक** जारी थी।[274]

छोटा टॉमी कमरे की **देहरी** पर कुकिया रहा था।[275]

आवाजें, हँसी का शोर, मशीनों की **घर्र–घर्र,** इनके बीच डायना त्रातस्की का ऊँची आवाज में आदेश, 'ठीक से करो....पैर जरा और उठाओ...पेट निकालकर मत खड़ी होओ।[276]

अचानक भीड़ का रेला, गोलियों की आवाज, काँच की बोतलों की बरसात......**धड़ाघड़** दुकान बन्द होने लगी।[277]

मुझे **बक्सा** पैक करते देख डॉक्टर साहब ने पूछा– "कल जो सामान खरीदा उसमें केशर वाला पैकेट कहा गया, दिखलाई नहीं पड़ रहा?"[278]

बम की आवाज से **खिड़की** दरवाजे तक टूट गए।[279]

भाभी रात के समय बेध्यानी में काजल की **डिबिया** लेकर छत के रास्ते तुम्हारे घर पहुँच जाती है।[280]

भूखे रहने के कारण मेरे **सिर** में दर्द हो रहा था।[281]

क्योंकि शहर में ऐसा सब मकानों और कोठियों के बन्द **किबाड़ों** के भीतर छिपा रहता है।[282]

बैयर तो सोने–**चाँदी** के कील–काँटे से ही बहलाई गई हैं।[283]

अपने बक्से में रूपये रखकर **ताला** बन्द करके सोए थे।[284]

जब तक कि उसमें से कोई मसालेदार **चूरन–चटनी** जैसे पदार्थ न बना लिया जाए।[285]

नानी मौली बांध कर **नारियल** ले आई।[286]

लम्बा–चौड़ा काला, क्रूर चेहरे वाला, **लुंगी** पहने, गले में फीता डाले दर्जी हमें आते देखकर दुकान से बाहर आ जाता।[287]

मेरी आदर्शवादी सोच जो अतीत और आधुनिकता की **खिचड़ी** थी, को यह तथ्य स्वप्नवल लगता था।[288]

पटियाला रियासत के घरों में मामी की माँ के आचरण की चर्चा काफी **चुस्कियां** लेकर की जाती थीं।[289]

वे कोई तीन–चार **तोले** की रही होंगी।[290]

मुझे याद है मेरी कहानी **चिड़िया** और **चील** पढ़कर बहुत से पाठकों की ऐसी चिट्ठयाँ आई थीं।[291]

अपने **झकझक** सफेद पतले से आरगंडी के फ्रॉक में ठंड झेलती रही।[292]

अमिताभ के बारे में **गपशप** भी साधना ही सुनाती।[293]

इसी तरह उस दिन रमणिका जी के यहाँ राजेन्द्र यादव बोले कि सुषम बहुत **पटाखा** हुआ करती थीं।[294]

भीतर **खचाखच** भरा पड़ा है लोभ।[295]

वहाँ यूं **सरसों** नहीं, राई मिलती थी। इसी तरह पंजाबी तरीके की गोभी, बैंगन का भरता, सूखी–भुनी या साबुत सूखा मसाला भरी **भिंडी** और भरवां करेले भी।[296]

वह जो भी प्रोजेक्ट मुझे सौंपती, मैं **खटाखट** कर डालती।[297]

विदेशी (अंग्रेजी, अरबी–फ़ारसी)

वे शब्द जो हिंदी में अंग्रेजी, फ्रेंच, स्पेनिश, अरबी, फारसी, तुर्की, पुर्तगाली, चीनी, फ्रांसीसी इत्यादि भाषाओं के शब्द भी प्रयोग में लाए जाते हैं, विदेशी या आगत शब्द कहलाते हैं।

अंग्रेजी–शब्द

गाँव भाग जाए या **मोटर** से कट जाए।[298]

दस साल की उम्र में वह **पैसेंजर ट्रेन** में बैठकर अकेली झाँसी गई थी।[299]

खुद ही **टिकिट** लिया, खुद ही गाड़ी बदली।[300]

झाँसी के **बस स्टैंड** पर उरई, कालपी, कोंच, जालौन जाने वाली बस ग्राम खिल्ली से गुजरती है।[301]

गाड़ी से उतरने के बाद भी लगता रहा वह **रेल** से **सफर** कर रही है।[302]

हाँ, माताजी! कहकर उसने **रेडियो** का **स्विच** बन्द कर दिया।[303]

माँ की **पोस्टिंग** किसी दूसरे **ब्लॉक** में थी।[304]

वे अपना बड़ा–सा चमड़े का **पर्स** उठाए गाँव–गाँव वर खोजती फिरतीं।[305]

विकास **ऑफिस** जाते हुए उनकी छाया पड़ी कि सकपका गई मैत्रेयी।[306]

बेटी न स्वयं उन जैसी है, न गौरा जैसी, यह बात समझाते उन्होंने **बी.ए.** करने वाली मैत्रेयी के लिए सोचा कि वह **अफसर, डॉक्टर** और **इंजीनियर** जैसी आधुनिक विधाओं की ज्ञाता के रूप में किसी पद पर प्रतिष्ठित नहीं हो पाई तो क्या, विवाह का सदुपयोग इस तरह किया जा सकता है।[307]

लव मैरिज तो अंगरेज ही करते थे और **लव** मन्दा पड़ते ही **मैरिज** तोड़ देते थे।[308]

मैं अब तैयार होती हूँ तुम्हारे **हेडक्लर्क** सारस्वत के स्वागत को।[309]

दूसरे **टिचर** के पीछे–पीछे चली जाओ।[310]

एक्स्ट्रा **क्लास** के लिए आना हो तो इसी कमरे में इंतजार करो लड़की, यहाँ कोई खतरा नहीं।[311]

को–एज्यूकेशन इस तरह नहीं चलती।[312]

माँ को तब पता चला, जब बात **रेस्टीकेशन** के कगार पर आ गई।[313]

अन्तिम वाक्य कहा! हाँ मेरी **पासबुक** निल है।[314]

यही सोचकर एक रोज उसके माथे में उन्होंने **गिलास** दे मारा।[315]

मगर **ड्राइवर** मामूली आदमी नहीं, गेयर बदलने में माहिर, **स्पीड** बढ़ने–घटने का मास्टर।[316]

उसके **कोट** पर काला और सलेटी महीन चारखाना मेरी नजरों से टकराता।[317]

मैं राघव के पास जाऊँगी, **टेलर मास्टर** जी।[318]

फिर–फिर पड़ती है–Reading on 12th January.[319]

लुक एट हर फेंस, हर माउथ, लुक।[320]

टॉफी देकर संग ले जाएगी, मम्मी कह रही थीं।[321]

खटिया पर एक **पैकेट** रखा था, खोल डाला।[322]

आय एम अ नार्मल पर्सन! हाँ, यहाँ इस बात को कोई समझने वाला नहीं। कोई नहीं, **दैट इज व्हाय, आय एम अनफोर्च्यूनेट।**[323]

दीज डेज आर डेंजरस।[324]

मेरी बहसों की शिकायत विक्टोरिया **स्कूल** व **कॉलेज** पटियाला की **प्रिंसिपल मिस** सेन के पास गई तो उन्होंने मुझे बुलाकर खूब डाँटा।[325]

मैं नहीं मानी तो उन्होंने **अल्टीमेटम** दे दिया।[326]

सुना था वे **मशीनगन** लेकर किले के झरोखों में बैठ गए थे तो राजमाता उन्हें मनाकर नीचे उतारकर ले आई थीं।[327]

परेड **ग्राउंड** के शुरु में सड़क के किनारे एक बड़े सामन्त का घर था।[328]

मेरे लिए सवाल था–**टू बी और नॉट टू बी।**[329]

पिता सशंकित–भयभीत **हॉल** के बाहर चले गए।[330]

महारानी द्वारा **मीटिंग** खत्म कर दी गई।[331]

रिज़ल्ट नहीं आया था।[332]

एम्पलायमेंट **ऑफिसर** थे।[333]

निर्णय हुआ कि एक **ट्रक** से मामा का परिवार तथा उनके कार्यालय के सभी लोग दिल्ली चलें।[334]

चिन्ता थी तो बस यही कि हम लोग **पब्लिसिटी** पा जाएगें।[335]

स्कूटर वालों की भी आज हड़ताल है।[336]

मेरे भाई टाइम्स ऑफ इंडिया के चीफ प्रेस **फोटोग्राफर** थे।[337]

उन दोनों लड़कियों को लोकसभा की **गैलरी** में पहुँचाने का जिम्मा मेरा था।[338]

कि अपनी ज़िन्दगी ख़ुद जीने के इस आधुनिक दबाव ने महानगरों के **फ्लैट** में रहने वालों को हमारे इस परम्परागत 'पड़ोस–**कल्चर**' से विच्छिन्न करके हमें कितना संकुचित, असहाय और असुरक्षित बना दिया है।[339]

आय एम रिअली प्राउड ऑफ यू.....क्या तुम घर में घुसे रहते हो भंडारी जी...घर से निकला भी करो। **यू हैव मिस्ड समथिंग।**[340]

सन् 1947 के मई महीने में शीला अग्रवाल को कॉलेज वालों ने **नोटिस** थमा दिया।[341]

इसलिए जुलाई में **थर्ड इयर** की क्लासेज़ बंद करके हम दो–तीन छात्राओं का प्रवेश निषिद्ध कर दिया गया।[342]

जुलाई में जब हम **एडमिशन** लेने गए तब यह सूचना देना कहाँ तक तर्क–संगत है....।[343]

घर लौटकर रात में अपनी **डायरी** में, जिसमें मैं सम्भावित कहानियों के कथ्य और **आइडियाज़** बीज रूप में आँकती रहती हूँ।[344]

इसी स्कूल की **लाइब्रेरी** के लिए किताबें मँगवाने के सिलसिले में राजेन्द्र से परिचय हुआ।[345]

मेरी भेजी हुई किसी कहानी की **स्क्रिप्ट** को कभी संशोधित–परिवर्तित करके भेजा।[346]

क्योंकि दो–चार बार कॉफी–**हाउस** में उन्हें देखा था।[347]

कहानी का **क्लाइमेक्स** है प्रतीक्षा में।[348]

गोपनीय और एक तरह से वर्जित भी सो उसके इस अन्तर्द्वन्द्व को उजागर करने के लिए **डायरी फार्म** का सहारा लेना मुझे अनिवार्य लगा।[349]

इनकम–टैक्स के **ऑफिस** में नौकरी करने वाली एक लड़की मेरे पास आने लगी।[350]

बट वी आर मैरिड।[351]

और अब तो **हार्ट** का **चेकअप** भी हो गया, **डॉक्टर** गुट ने सब कुछ ठीक है हार्ट एकदम **नॉर्मल** है, इसका भी एलान कर दिया।[352]

मगर साथ में सामानों की **लिस्ट** पकड़ा दी गई थी और अब राजा नील अपनी डायरी खोलकर एक–एक खरीदे गए समान की **लिस्ट** से मिलान कर रहे थे।[353]

मेरी आँखें अर्जुन की आँख की तरह दुकानों में टँगे **फैशन बैग** पर टिकी रहती, कितने रंग, कितनी तरह की **डिजाइने,** बनाना **रिपब्लिक.....**हाँ यही तो वह दुकान है।[354]

और डॉक्टर साहब **टैक्सी** में बैठकर चले गए, साथ में मेरा **पासपोर्ट** और **वॉलेट** भी लेते गए।[355]

वैसे जानती हो मर्द हमेशा औरत को रुलाता है, **ऑल मैन आर बास्टर्ड।**[356]

पहले ब्यूटी **थेरापी** का **कोर्स** हॉलीवुड से किया और अपना **ब्यूटी पार्लर** खोला था।[357]

इंडिया टूडे में इनकी फोटो निकली है, ये बहुत **डायनामिक** महिला है।[358]

मिसेज केडिया ने भोजन की मेज पर बैठते ही फिर एक गोली और दागी।[359]

कोई भी काम कर लूँगी और कुछ नहीं तो एक **रेस्टोरेंट** ही खोल लूँगी।[360]

मेरी गन्दी **फ्रॉक** देख अम्मा रुआँसी हो जाती हैं।[361]

दाई माँ! **बाथरूम** जाना है।[362]

ग्यारहवीं की परीक्षा हो गई थी, **रिजल्ट** भी अच्छा आया।[363]

नरेश सर पढ़ा रहे हैं– **काजिटो अरगो सुम....आई थिंक देयरफोर आई एम।**[364]

तुम्हे पता है **स्टेनलैस स्टील** के दाम?[365]

वह इन **प्रोफेसरों** की बातें भी ध्यान से नहीं सुनता था और न कभी उन लोगों की **क्लास** में कोई **नोट्स** लेता।[366]

टेबल पर मुक्का बरसाता हुआ वह लड़का चीख रहा था।[367]

'Appearance is not reality' मेरा मन नहीं लगता।[368]

उसने **पेंसिल** से मेरे ललाट को छूते हुए कहा।[369]

क्लास के **ब्लैक बोर्ड** पर किसी ने लिखा–'हिन्दू–मुसलमान' आपस में क्यों लड़ते हैं?[370]

उन लोगों ने बेकर **लैबोरेटरी** में आग लगा दी।[371]

उन्होंने कलम उठाई और **प्रेसक्रिप्शन** लिखने लगे।[372]

सब कुछ भूल जाओ, क्षणों का बहाव था, **'टेक इट इजी'**, ज्यादा गम्भीरता से इन बातों को मत लो।[373]

डॉ. साहब का **चेम्बर** काफी बड़ा था, दीवार के सहारे **लाइन** से आँख देखने की मशीनें रखी हुई थीं।[374]

प्रत्युत्तर में मुझे बहुत कुछ कहना चाहिए था, पर मैं एकदम शून्य थी...कुछ भी कहने में असमर्थ....मैं सिर्फ पैरों पर गिर पड़ी...'**प्लीज** आप गालियाँ नहीं दें....।'[375]

इसी बीज लॉयंस **क्लब** के **यूथ एक्सचेंज के प्रोग्राम** में मुझे अमेरिका जाने का अवसर मिला।[376]

लेकिन **फ्रिज** खोलकर कुछ निकालने की मेरी हिम्मत नहीं पड़ी।[377]

छिः मिसेज डी आपको मालूम होना चाहिए कि मैं एक हिन्दू, **वेजिटेरियन** हूँ और हम लोगों के लिए गाय का मांस खाना वर्जित है।[378]

बाथ मैट से बदन पोंछा?[379]

डॉक्टर डी तो सुबह छह बजे **ऑपरेशन** करने निकल जाते हैं।[380]

मरील ने कहा, **शेम ऑन देम**।[381]

अरे नाच और शराब की मदहोशी में दोस्त लोक अचानक प्रेमी–प्रेमिका को **स्वीमिंग पूल** में ढकेल देते हैं।[382]

क्या मैं **डेटिंग** पर जा रही हूँ?[383]

आइलिन ने तो तुम्हें बताया होगा कि मैं अब भी यहाँ के माहौल में पूरी तरह **एडजस्ट** नहीं हो पाई हूँ।[384]

जीवन में पहली बार मैंने एक **नाइट** क्लब देखा, वह भी एक अमेरिकन व्यक्ति के साथ।[385]

फिर थोड़ा रुककर उसने पूछा...."क्या तुम्हारा कोई **ब्वायफ्रेंड** नहीं हैं।"[386]

कभी वे अपने कमरे में बनी रहतीं और मैं **पार्टी** की पूरी तैयारी खतम कर खाना बनाकर वापस नीचे अपने फ्लैट में लौट आती।[387]

झटका खाना हमारी **ड्यूटी** में शामिल हो तो भी हम नहीं छुएंगे।[388]

सेहत का ख्याल रखो। **पर्सनैलिटी** सजे, ऐसे कपड़े सजाओ।[389]

चॉकलेट, टॉफी, आइसक्रीम, वात्सल्य के प्रतीक नहीं थे, वत्सलता थी आँखों में।[390]

कश्मीर वाली **क्रॉन्फ्रेंस** में मेरे पति का एक सहकर्मी बुरी तरह मेरे पीछे पड़ गया था।[391]

पति शायद पछताते—बीबी को **स्मार्ट** बनाना चाहा था, हाथ से निकलने लगी।[392]

तब तो हम तीन से छह वाले **शो** में 'अनपढ़' **पिक्चर** देखने चले गए थे।[393]

घर मैं सफाई कर ली, **डस्टिंग** रह गई है।[394]

मैं **पी.एच.डी.** में आपका **रजिस्ट्रेशन** नहीं करा पाई, यह भी एक स्थिति थी।[395]

हतभाग्य! **इंटरव्यू कॉल** नहीं आया।[396]

मैंने बच्ची को स्नान कराया, खुद नहाई और माँ—बेटी ने वह **टैल्कम पाउडर** लगाया।[397]

मैंने सोचा, यहाँ तो अलीगढ़ के घर के **टॉयलेट्स** से बुरा **सिस्टम** है।[398]

वरन् इतनी जल्दी रहने का **अरेंजमेंट....।**[399]

प्राइवेट कॉलौनिज में **सिक्योरिटी** की ज्यादा जरुरत रहती है।[400]

वह अपने **ट्यूशन मास्टर** से...।[401]

अगले ही दिन देखती क्या हूँ कि एक पैकेट **ड्रैसिंग टेबल** पर रखा है।[402]

गुड़ डॉक्टर्स स्माइल इन ट्रवल, गैदर स्ट्रेंग्थ फ्रॉम स्ट्रैस एंड ग्रो ब्रेब बाय प्रेयर्स। सेंडिट टू अ वर्दी डॉक्टर। आय एम जस्ट डिड।सदीप।[403]

कमीज **कोट** तक कन्धों पर चढ़ाती हैं।[404]

हाँ, यही मेरी **डायरी** में लिखा है।[405]

जीजी, वह **इंजीनियर** है न।[406]

विधान का उल्लंघन, **कटेम्ट ऑफ कोर्ट।**[407]

सम्भवतः ये **ट्रांजीशन पीरियड** के लक्षण थे।[408]

अंग्रेजों द्वारा पेशावर को **फैमिली स्टेशन** घोषित कर देने के कारण फौजियों को वहाँ **बंगले** दे दिए गये थे।[409]

लोग उसे **कार नहीं, मोटर** ही कहते थे।[410]

कभी मिलिट्री की **जीप** भी लिवाने—छोड़ने आ जाती।[411]

वे अपना पैसा उसी **बैंक** में जमा करते थे।[412]

फोटो बहुत ही सुन्दर थी और नैन—नक्श फोटोजेनिक थे।[413]

उनकी कई **फैक्ट्रियां** थी।[414]

हम दोनों **रेडियो** पर खबरें सुनतीं।[415]

भाभी की सहेली गुजरां वाले में ही मेरी **पैनफ्रैंड** बन गयी थी।[416]

वहाँ आबादी इतनी है, सो हर कोई आसानी से **डिस्पोजेबल** हो जाता है।[417]

यह भी नहीं सोच पाते कि आखिर यहाँ उसका कुछ **रेलेवेंस** है या कि नहीं।[418]

यूरोपीय देशों ने अपने लिए चाहे एक ही **पार्लियामेंट** की ईजाद कर ली है।[419]

और होगा, यहा सोचकर बहुत साल पहले दिल्ली में एक **अपार्टमेंट** लिया था।[420]

2 अक्टूबर 1969 को हम उस घर में शिफ्ट हो गये पर अभी वहाँ बिजली की **फिटिंग्ज** हो रही थीं।[421]

यूं **लाइन** में लगी होती थी टाट की पट्टियाँ।[422]

हमको **होमसाइंस** पढ़ाती थी।[423]

उसके आसपास वाले **वीकेंड** पर होता है।[424]

वहाँ **रेस्ट हाउस** में ठहरे।[425]

मैं और मेरी बहन **गर्ल गाइड** बने हाथों में झंडे उठाए थे।[426]

जिन दो लड़कों के बीच मेरी **डेस्क** थी।[427]

क्लास का **मॉनिटर** भी था।[428]

आठवीं में थी और महिला होने का वरदान या कहूं **सर्टिफिकेट** भी मिल चुका था।[429]

यूं भी बचपन से रेडियो **प्रोग्रामों** का कौतूहल था।[430]

सरोज ने बच्चों के किसी रेडियो नाटक का **ऑडिशन** दिया।[431]

अचानक जब मुझे **स्क्रिप्ट** पढ़ने को कहा गया तो मैं तैयार नहीं थी।[432]

आमतौर पर गाते हुए मैं अकसर **नर्वस** हो जाती थी।[433]

आवाज की **क्वालिटी** भी बहुत अच्छी है, नाटकों में हिस्सा क्यों नहीं लेती।[434]

हम लोगों ने **टैक्सियों** का इन्तजाम किया था।[435]

चाची मुझे कनाट **प्लेस** के टिवालो रेस्तरां में आइस्क्रीम खिलाने ले गयी थीं।[436]

अरबी–फ़ारसी शब्दावली

मैत्रेयी पुष्पा, रमणिका गुप्ता, मन्नू भण्डारी, प्रभा खेतान, सुषम बेदी इत्यादि लेखिकाओं ने अपने आत्मकथा–साहित्य में हिन्दी के अतिरिक्त उर्दू, अरबी–फ़ारसी के शब्दों का प्रयोग किया है। यह शब्द आमजन में इस तरह से घुलमिल गए हैं कि उन्हें पहचान पाना थोड़ा जटिल है। यह शब्द आम जनता में बड़े ही सहज भाव से बोले जाते हैं। इसलिए आत्मकथा लेखिकाओं ने इनका प्रयोग अपनी आत्मकथाओं में सहजता से किया है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य है–

जिन्होंने यह नहीं पूछा कि ब्याह **आखिर** वह क्यों नहीं करना चाहती?[437]

बाप नहीं है तो क्या तू **आजाद** हो गई?[438]

माँ की यह सदा की **आदत** है।[439]

मेरा मतलब यह नहीं कि विवाह बुरी **चीज़** है।[440]

'स्वागतम्' लिखा हुआ **तकिया** पलँग पर रखने की कल्पना से उसका चेहरा लाल हो जाता है।[441]

बिना पढ़ी औरत का छोटा दिमागी दायरा, उसमें लियाकत और **तमीज** कहाँ से पैदा करें।[442]

मैत्रेयी की आस्था लोक **अदालत** में है।[443]

विवाह किस नूर का **खजाना** है।[444]

लड़कियों वाली विधवाएँ–घायल की गति घायल जाने के **मुहावरे** जैसी....।[445]

खत डाला कि खत उसे धरती पर उतार लाने की कोशिश भर था, चले आने की अनिवार्यता नहीं।[446]

इस बस्ती को **कानून** और व्यवस्था की सचमुच दरकार है।[447]

जिला मजिस्ट्रेट के पास मैं उसको लेकर गई थी।[448]

लगभग 14 वर्ष की **उम्र** से ही मैं स्कूल व कॉलेज में होने वाले वाद–विवाद, खेलकूद, नाटक तथा कविता के कार्यक्रमों में भाग लेती थी और सबसे आगे रहती थी।[449]

शरणार्थियों ने औरतों को नंगा करके **जुलूस** निकाला।[450]

हम सन् 1960 में परिवार सहित धनबाद आ गए थे चूँकि प्रकाश का **तबादला** मद्रास से धनबाद सहायक श्रमायुक्त (केन्द्रीय) के पद पर हो गया था।[451]

लेकिन समाजवादियों में सेक्स के प्रति दूसरों से भिन्न कुछ **अजीब गरीब** धारणाएँ थीं, खासकर युवा वर्ग में।[452]

चूँकि जनसंघ के लोग भी इस आन्दोलन में साथ थे इसलिए कई सेठों ने अपनी गद्दियों पर बिठाकर हमें नाश्ता भी कराया और कई **हलवाइयों** ने खाना भी खिलाया।[453]

तो क्या इसका असर आपकी **औलाद** पर नहीं पड़ेगा।[454]

वहाँ बराबर का **मुकाबला** जरुरी होता है चाहे हिंसक ही क्यों न हो।[455]

वह टूटा और बिना किसी की **मदद** के कलकत्ता से बी.ए. और बनारस से एम.ए. किया।[456]

उस ज़माने के **हिसाब** से तो अच्छे–खासे प्रयोग थे ये और जिसका सिलसिला आगे की कुछ कहानियों में भी ढूँढ़ा जा सकता है।[457]

कि राजेन्द्र के **दिमाग** में एकाएक समानान्तर ज़िन्दगी की जो यह अवधारणा पैदा हुई है।[458]

और ऐसे काम करने की असमर्थता के चलते ही मैं एक बार मकान–**मालिक** द्वारा चलाए गए मुक़दमें में हार भी गई थी।[459]

अब जैसे **हवा** है...उसी से तो हम साँस लेते हैं।[460]

पुलिस को **खबर** करूँ? टूरिस्ट लगती हो।[461]

मेरा यह **अजीब** स्वभाव रहा है।[462]

मगर समस्या तो यही है कि अपनी **तमाम** समझ के बावजूद डॉक्टर साहब के अलावा अन्य किसी से भी मुझे लगाव नहीं था।[463]

बाबूजी गद्दे पर बैठे हुए **अखबार** पढ़ रहे थे, वे बड़े भैया को समझा रहे थे कि दूसरी पँचवर्षीय योजना तक सबको नौकरी मिल जाएगी।[464]

व्यापार करने का जो प्यार के **नशे** से भी ज्यादा तीखा था।[465]

हवाई बासन्ती **मौसम**...अनन्ननास की खुशबू से महकती हुई **हवा** आज भी मुझे बेहद याद आती है।[466]

यह **फायदा** क्या कम है?[467]

डॉक्टर साहब उठे! **कुंडी** खोली, 'प्लीज कम' कहा।[468]

अपने सबसे बढ़िया कपड़ों में महंगे से महँगा **इत्र** लगाकर?[469]

मरीजों का **इलाज** क्या धर्म, जात और वर्ण देखकर किया जाता है?[470]

किताब–कॉपी और यूनीफार्म हो जाए।[471]

अपनी **तरफ** से थोड़ी मिठाई और भेजी।[472]

अब बच्चों को छोटे–छोटे क़दमों से इगलास **(तहसील)** तक जाने का लम्बा रास्ता पार नहीं करना पड़ेगा।[473]

तेरी बात का **मतलब** है बेटा कि मेरा नाम....पर क्या नाम है मेरा?[474]

अल्लाह! इल्माना ने कहा और हाथ ऊपर उठाकर दुआ पढ़ने लगी।[475]

तुम तो हमारी **वकील** बेटी हो।[476]

ये दूसरों को महज इसलिए जलील करते हैं कि वे इनसे छोटे हैं, **गरीब** हैं।[477]

जहाँ पापा जी की सन्तरा नाम की **मरीज़** दोस्त आया करती थी।[478]

मैनेजर ने मेरे सामने मेरा हस्ताक्षरित वह **कागज** रख दिया।[479]

भीतर से हमेशा चौंका हुआ **जवाब** आया...क्यों?[480]

यह ज़रूर है कि आपको मेरी **ईमानदारी** पर तो विश्वास होगा कि जो कुछ मुझे सच और सही नजर आता है।[481]

इतवारों की ही **सुबह–सुबह** जमादार अंगीठी जलाकर पीपे में साबुन और पानी डालकर गर्म करने रखा देता।[482]

हम लोग **कुर्सियाँ** जोड़कर, उन पर चादर बिछाकर खुद नीचे छुप जाते।[483]

हमारे मानटेसरी स्कूल की नयी **इमारत** का शिलान्यास करने।[484]

सड़क पर लड़कों का राह चलती लड़कियों को बुरी तरह छेड़ना, फब्तियाँ कसना, बहुत **आम** बात थी यहाँ।[485]

मुझे लगा कि मैं भी **तरक्की** कर रही हूँ।[486]

मां के जन्मदिन की तो **तारीख** भी किसी को मालूम नहीं थी, उनको खुद भी।[487]

जमींदार का कोड़ा लड़कों पर बरसेगा।[488]

चुटिया पकड़ने वाला पाँच हाथ का **आदमी** काबू में रखता है।[489]

लगान देना किसके बस की बात है और कुर्की के लिए **जिन्दगी** हाजिर है।[490]

अब वह हुक्का परे सरकाकर उठ खड़ा हुआ और पास बैठे व्यक्ति से धीमी **आवाज** में कुछ–कुछ बोला।[491]

कॉपी, कलम, **स्याही** का खर्चा कहाँ?[492]

एक कोने में पड़े **तख्त** पर रंगीन दरी बिछी है।[493]

मैत्रेयी लपककर **दीवार** के पीछे छिप गई।[494]

गोश्त मंडी का कासिम कसाई और डी.बी. इंटर कॉलेज के प्रिंसिपल से लेकर क्लर्क तक हाथ आजमाने की जुर्रत करते?[495]

तेरे बाप के मरने के बाद मैंने **हिम्मत** नहीं हारी, क्योंकि हिम्मत साधी थी।[496]

मैत्रेयी की आवाज में आक्रोश था, मगर स्वर **गीला** था।[497]

पर कोई चेहरे को क्या करे, जो ऐसे बदला जैसे अपनी भूल पर **अफसोस** पोत बैठा हो।[498]

दरबारी साहब बोलने में माहिर।[499]

वे अपना पढ़ने वाला **चश्मा** उतारना भूल गई थीं।[500]

शाहिदा बेगम ने **सब्जी** छोंकी।[501]

छुआछूत का **तमाशा**।[502]

जेबों में **रुमाल** झाँक रहे हैं।[503]

चिड़ियाघर का **जानवर** शहर में कैसे रहे।[504]

पंजाब में लड़कों की **शादी** सदैव एक समस्या रही हैं।[505]

उस खाली ट्रक में इतने धक्के लग रहे थे कि स्वस्थ आदमी भी **बीमार** हो जाए।[506]

मैं और शफीक ड्राइवर की **बगल** में बैठे और बाकी लोग पीछे।[507]

सोशलिस्ट पार्टी और संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी (सं.सो.पा) दोनों ही पार्टियाँ कच्छ आन्दोलन में शामिल थीं पर दोनों की कार्यशैली में **ज़मीन–आसमान** का अन्तर तो था ही साथ ही व्यक्तिगत तौर पर मतभेद और मनभेद भी था।[508]

एक **सरदार** से मैंने पंजाबी में रास्ता पूछा और उसने बताया कि हम बिहार से आ रहे हैं।[509]

मांडवी जेल से लौटने के बाद जॉर्ज ने मुझे **अगल–बगल** की बस्तियों को संगठित करने के लिए कहा।[510]

हजारी **बाग** का 'पद्मा' ग्राम, उसकी राजधानी थी।[511]

धुएँ के **गुब्बारों** में अपना सिर छिपाए।[512]

मर गई, छोड़ दे **मुर्दा** को क्या मारना?[513]

पहले तो वे हैरान–सी मेरा **चेहरा** देखती रहीं पर जब मक़सद बताया तो बेहद प्रसन्न।[514]

इस उम्मीद में कि कहीं कुछ सनसनीखेज मिले तो उसमें कुछ और **नमक**–मिर्च लगाकर उस पात्र और उसके घरवालों की ऐसी की तैसी करें।[515]

बहुत ऐश–**आराम** की चाहना मैंने कभी नहीं की।[516]

तीन दिन बीतने–न–बीतते वह तो अच्छे–ख़ासे घाव में बदल गया।[517]

जो इनकी देखभाल के बदले **तनख्वाह** के अतिरिक्त और कोई अपेक्षा न करें।[518]

क्योंकि मामला बहुत ही **नाज़ुक** है।[519]

प्रसंग है लम्बे समय से **ख़मोश** बैठे एक ख्याति प्राप्त लेखक के साक्षात्कार का।[520]

अब वह आ नहीं सकी, फिर खर्च का भी सवाल है, इतनी **जल्दी** फॉरेन एक्स्चेंज मिलता नहीं, प्रभाजी तो हमेशा विदेश यात्रा पर जाती रहती हैं।[521]

एक दिन की घटना मुझे **याद** है।[522]

नीचे गेट पर बैठा छत्रसाल सिंह **दरबान** जो पच्चीस साला से अपनी ड्यूटी कर रहा है।[523]

तुम ऐसे शहर जा रही हो, जो देश के लिए सभ्यता का **दरवाजा** है।[524]

मैंने स्टीयरिंग थामें बैठे **गुलाब** को देखा।[525]

पलकों के नीचे जमती **बर्फ** से उठता धुआँ।[526]

उफ् ऐसे मैं अपने काम को **अंजाम** नहीं दे पाऊँगी।[527]

मान लीजिए, यह हमारी **खरगोश**–वृत्ति ताकतवरों से भिड़ जाने का या अपने ही जैसों को बचाने के नुस्खे...नहीं जानती कि क्या हैं।[528]

रियासत का विक्टोरिया स्कूल, जहाँ जनरैलों, करनैलों, कप्तानों या रियासत के दीवानों की पर्दानशीन लड़कियाँ वाहनों में **पर्दा** लगाए, **चादर** ओढ़ पढ़ने आती थीं।[529]

जाटों की लड़की की क्षत्रियों के घर कैसे **शादी** हो सकती है भला? बीबी जी की तरफ से **जहर** खाने की धमकियाँ और दूसरों की मिसालें घर में दी जाने लगी थीं।[530]

गर्मी के लिए **शर्बत** और जूस के लिए कट–ग्लास, शीशे के जग, चांदी के हैंडल वाले टी–पॉट, चांदी के डोंगे और कटोरियां भरी पड़ी थी।[531]

मीट–मछली–शिकार **प्याज** और लहसुन के साथ खाना रोज़ उस किचन में पकने लगा।[532]

कई साजिशों का **शिकार** रही तो कई–कई साजिशों से उबरी भी।[533]

खासतौर से **अगर** शरीर में खेलने का दम बचा हो।[534]

सर्दियों में **अंगीठी** के आसपास वे कम्बल लिए होते तो मैं भी उनके साथ घुस जाती पर उनका साथ बहुत थोड़ी देर का होता था।[535]

मैं तो आदी थी चाय के साथ समोसे, पकोड़े और गुलाबजामुन या **जलेबी** वगैरह खाने की।[536]

पैरों की **जुराबों** पर आया ने बेहद ही छोटे से रबरबैंड बांधे हुए थे।[537]

5.4 कहावतें/लोकोक्तियाँ एवं मुहावरे

कहावतें (लोकोक्तियाँ)

लोकोक्ति संस्कृत भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ होता है लोक+उक्ति अर्थात् जन कथन, लोक में प्रचलित एवं प्रसिद्ध उक्ति। साधारणतया लोकोक्ति को 'कहावत' भी कहा जाता है। लोकोक्तियाँ/कहावतें मानव जीवन की किसी घटना या अन्तर्कथा से सम्बन्ध रखती है। विस्तृत रूप में 'कहावत' शब्द लोकोक्ति की तुलना में अत्यधिक प्रयुक्त होता है। लोकोक्ति लोक जीवन के व्यापक अनुभव से जन्म लेती है। लोकोक्ति लोक जीवन के सत्य को प्रकट करती है। इसमें भावगत विशेषता होने के कारण कम–से–कम शब्दों में अधिकाधिक भावों को रोचक ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है। लोकोक्तियाँ मुख्यतयाः ग्राम्य परिवेश में अधिक प्रयुक्त होती है इसलिए इनमें गँवारूपन आ जाता है एवं भाषा व्याकरण रहित हो जाती है। लोकोक्तियों में व्यंग्यार्थ का भाव प्रकट होता है एवं भाषा में व्यंजना शब्द–शक्ति अधिक प्रकट होती है।

'हिंदी साहित्य कोश' में लोकोक्ति के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा गया है कि–लोकोक्ति गागर में सागर भरने की प्रवृत्ति का काम करती है।[538]

मैत्रेयी पुष्पा, रमणिका गुप्ता, मन्नू भण्डारी, प्रभा खेतान, सुषम बेदी इत्यादि लेखिकाओं की आत्मकथाओं में उदाहरणों के रूप में प्रयुक्त कहावतें (लोकोक्ति) आत्मकथा–साहित्य के भाव सौन्दर्य में अभिवृद्धि करती है। उदाहरण दृष्टव्य है–

तू यहाँ चौंतरा करके बैठी रहना, यही चाहती है नठिया (नाँठ करने वाली)?[539]

मेरी सोत तू **खानदान की जड़ में दीमक,** हम सबका सफाया कर देगी?[540]

चाची कहती है–सुरसा मुख लगान! जितनी जमीन नहीं, उतनी रकम।[541]

गोरे अँधेर करें तो सूरज भी डर के मारे छिपा रहे।[542]

अरे...**गाय मरे अभागे** की, बेटी मरे सुभागे की।[543]

स्वागतकर्ता स्त्रियों ने कड़ा रुख अपनाया और आवाज खींचकर एक कटकटी बूढ़ी ने सुना दिया– **'ओ, आठ सौ की घोड़ी, तू मुँह नहीं दिखाती, तेरी यह मजाल'।**[544]

जमींदार के लिए जनानखाने में जनानी का जाना, **चींटी के बिल में चींटी का जाना है।**[545]

किस भूखे किसान की बेटी को ब्याह लाए, कि **भींत गए या भींतना आया।**[546]

कस्तूरी ने ऐसा कुछ नहीं किया कि बाद में पश्ताना पड़े। **'चिड़िया चुग गई खेत'** वाली कहावत जीवन का सार है।[547]

डॉक्टर, इंजीनियर से भिड़कर लाली का **पाँव तो काठ के पीछे फंसेगा,** तुम्हारे कंधे पहले टूट जाएंगे।[548]

आज बेटी पाठक, **तू डाल–डाल तो हम पात–पात।**[549]

मछली का जाल मछुआरे के हाथ में हैं।[550]

चिमनसिंह बोहरे न कराहकर कहावत कही, **बेटी होत बुरी, बेटी जाते बुरी। बेटा जाते खुशी बेटा ब्याहे खुशी।**[551]

चींटे का गुड़ पर आना, शिकार पर गीदड़ का झुकना।[552]

लड़कियाँ एक रात में एक साल की बढ़वार ले जाती है।[553]

विवाह किस नूर का खजाना है?[554]

कहनावत तो यह भी कि **राँड का पूत बिगड़े, रँडुआ की धिय।**[555]

राजा का राज चला जाएगा तो भी मरा हाथी सवा लाख का।[556]

अचानक का आक्रमण! ताकत समेटकर **'मरता क्या न करता'।**[557]

चौदह वर्ष की लड़की के लिए चवालीस का आदमी ढूँढ लिया, **बड़ा मोर मार लिया!**[558]

गौर ठीक ही कहती है **शहर के अन्देसे में मियाँ जी दुबले।**[559]

लाल गेंद–सा सूरज देखते–देखते–**सुबरन का थाल सरीखा** हो जाता है।[560]

ऊँट रे ऊँट, तेरी कौन–सी कल सीधी? यहाँ तो सारा ढर्रा ही ऊबड़–खाबड़ है।[561]

राजा की रानी एक, बान्दी हजार।[562]

बुआ ने कहा था **दाता बखत देखकर दीन की परिच्छा लेता है।**[563]

मुफत का चंदन घिस मेरे नंदन, दो दिन से देख रहा हूँ।[564]

चमरिया से चाची कही तो चौका में हीचली आई! तू सँवारेगी हमारे काज?[565]

पागल लड़की! डॉक्टर क्या सोचेगा–**काग पढ़ाए पींजरा, पढ़ गए चारों वेद। जब सुधि आई कुटम की रहे ढेड़ के ढेड़।**[566]

तब तो, युद्ध और प्रेम के हर चीज जायज़ हैं।[567]

कहते हैं– **समरथ को नहि दोष गुसाई।**[568]

अंधा क्या चाहे दो आँखें।[569]

छोटा नागपुर में एक यह कहावत भी प्रचलित है **'घटले घटवार, बढ़ते टिकैत'।**[570]

न पूँजी लगी, न मेहनत, न हींग लगी और न फिटकरी और पूरा–का–पूरा माल पद्मा के महल में पहुँचने लगा।[571]

जिसने यमराज से माँगा था–**सोने के कटोरे में अपने पोते को दूध पीते हुए देखूँ** यानी उसने सुहाग भी माँगा, औलाद भी माँगी और समृद्धि भी माँगी।[572]

ठेकेदारों की **जिसकी लाठी उसकी भैंस** वाली मानसिकता के खिलाफ यह रणनीति अपनाना हमारी मजबूरी थी।[573]

वह **लातों के भूत है–बातों की नहीं मानेगी।**[574]

तब सामाजिक न्याय का नारा नहीं उछला था पर लोहियाजी का **पिछड़े पावें सौ में साठ** का नारा जोर पर था।[575]

फिर वे ऐसे गायब हुए जैसे **गधे के सिर से सींग।**[576]

दुनिया देखी है– जिन्दगी का अनुभव**....धूप में बाल सफेद नहीं किए।**[577]

दो टूक शब्दों में खोलकर रख देना चाहिए उसके कुकर्मों का ब्योरा लेकिन सख़्त भाषा का भी एक लेखकीय संयम होता है...होना चाहिए वरना गाली–गलौज की भाषा या **'खाल खींचकर भुस भरवा दूँगा'** जैसी अशोभनीय बातें प्रहार कम और अनर्गल प्रलाप ज्यादा लगने लगती है।[578]

यह **प्रभा तो मिलिट्री का घोड़ा है।**[579]

पाथर पूजै हरि मिले तो मैं पूजु पहाड़।[580]

जगत मिथ्या, ब्रह्म सत्य।[581]

आह! जानवर में आदमी और आदमी में जानवर! आइलिन ने मुझे यही तो देखने और समझने को कहा था।[582]

नेकी कर और कुएँ में डाल।[583]

वे या फिर उनके सर्कल की अन्य स्त्रियों का कहना था **बाजार की चाट एक ही दिन अच्छी लगती है,** घर की रोटी आपको बारह महीने स्वस्थ रखती है।[584]

अरे साब जान है तो जहान है।[585]

चिड़िया हाथ से निकल जाएगी....उनके एक व्यापारी दोस्त ने कहा।[586]

कहते है **गंगा नहानें से पाप धुल जाते हैं।**[587]

यह मत भूलों कि **एक अंगारा सौ दीयों को जलाता है।**[588]

जान है तो जहान है।[589]

यथा राजा तथा प्रजा के रूप में ऐसी शादियाँ होने लगी।[590]

हथेली पर सरसों जमाने जैसी बात है।[591]

माय मरी तब जानियों, जब रोबत आबै धिय माँ का मरना तब है, जब उसकी बेटी रोती आए।[592]

फिर एक बार यही कि **नानी के नक्श धेवती में** कहावत तुम्हारे रूप में चरितार्थ हो।[593]

ऊसर का रेह फ्रॉक के घेर में चाँदी बनता जाए।[594]

आपकी एक कहावत याद आ रही है मुझे—**'पर उपदेस कुशल बहुतेरे**——है न?[595]

और अंत में वे कहते हैं—**एक पंथ दो काज।**[596]

घोड़ी नाची तो अपनी शोभा को।[597]

हाँ, **'सार—सार' को गाहि रहे, थोथा देय उड़ाय** का सिद्धान्त अनुकरणीय है।[598]

नहीं चाहती, लेकिन दुर्भाग्य से यह समझती हूँ कि **मुक्ति फलों से सजे रास्ते से नहीं आती।**[599]

आदिम बर्बरता ज्यों की त्यों भी नहीं **चौड़े मुँह की सुरसा हो चली** है।[600]

'अपने मरे बिना स्वर्ग नहीं दिखता' यह कहावत जीवन का अमिट सच है।[601]

पत्थर की लकरें पानी के बुलबुलों में कब डूब जाएं, वे भी नहीं जानते।[602]

हमारी बिल्ली, हम से ही म्याऊँ।[603]

पैनी वाइज पाऊंड फुलिश (**कोयले पर अशफियों की लूट**) यानी थान भले हार दो, गज मत हारो।[604]

कभी नाव पर आदमी, तो कभी आदमी पर नाव।[605]

एक अजीब—सा आदर्श था हमारे आगे, कुर्बान हो जाने का प्रेम के लिए, दोस्ती के लिए या वायदा निभाने की यानी, **प्राण जाई पर वचन न जाई** की ग्रन्थि के लिए।[606]

हमला मुझे घृणा स्पद लगता था, तो बचाव निरर्थक **भैंस के आगे बीन बजाने जैसा।**[607]

क्या हुआ! **लड़का—लड़की राज़ी तो क्या करेगा काजी?**[608]

You love me, love my dog वाली कहावत मुझ पर और प्रकाश की मित्र पर लागू हो रही थी।[609]

ठगनी, माया कहा डाला।[610]

लेकिन मुझे एक राजनेता के रूप में स्वीकारने के बावजूद **चित भी मेरी, पट्ट भी मेरी** की चाहत पालता था।[611]

सच—झूठ को अलग करना जैसे आटे में से नमक को।[612]

दूर के ढोल सुहावने होते हैं, वाली कहावत को सच करते जाना।[613]

सुबह का भूला अगर देर से घर आ जाए! बात तो घर पहुँचने की है न।[614]

मुहावरे

मुहावरा एक ऐसे पदबन्ध को कहा गया है, जिसका शाब्दिक अर्थ अर्थात् भावार्थ कुछ और ही निकलता है। यह किसी भी रचना में प्रयुक्त होकर अपना विशेष अर्थ प्रकट करता है। वाक्य में चमत्कार उत्पन्न करने में मुहावरों का प्रयोग किया जाता है। भावों के सौन्दर्य प्रस्तुतीकरण में मुहावरों का अत्यन्त महत्त्व है। मुहावरें छोटे होते हैं। मुहावरों के रूप में लाक्षणिक शब्द–शक्ति प्रयुक्त होती है। मैत्रेयी पुष्पा, रमणिका गुप्ता, मन्नू भण्डारी, प्रभा खेतान, सुषम बेदी इत्यादि लेखिकाओं ने अपनी आत्मकथाओं में उचित स्थान पर मुहावरों का प्रयोग किया है। आत्मकथाओं में उदाहरणों के रूप में प्रयुक्त मुहावरें आत्मकथा–साहित्य के भाव सौन्दर्य में अभिवृद्धि करते हैं। उदाहरण दृष्टव्य हैं–

'और बिरादरी?' जाति के नाम पर छोटे भाई **ने दाँत पीसे।**[615]

तू अपने भाइयों को **खेत की मूली** समझ रही है?[616]

जबकि वह खेतों में **जी–तोड़ मेहनत करती** है।[617]

माँ **सिसक–सिसकर** रोई थी।[618]

कस्तूरी ने ये सारी बातें चबूतरें पर बैठे, चिन्ता में डूबे हुए, भयभीत लोगों के मुंह से सुनी तो उसका **कलेजा मुँह को आ** गया।[619]

उसने ताकत लगाकर लगभग **आँख फाड़कर देखा।**[620]

अपने भाइयों की दुश्मन मानी जाने वाली परकाला कस्तूरी को जब माँ ने अपनी ओर खींचा और खुद आगे हो गई, तब उसका **पत्थर कलेजा फूड पड़ा था।**[621]

रक्त–मांस की बनी कस्तूरी के **खून में ऐंठन पड़ने लगी**। माँ को कातर भाव से देखती हुई सोचने लगी।[622]

कहते–कहते धोबिन की पसीजती **हथेली ठंडी पड़ गई**।[623]

'बस!' पति ने कडुवा मुँह बनाया कि **चेहरा नीला पड़ने लगा**।[624]

पर कैसे समझाऊँ कि **मेरे सामने आने वाले दिन बाघ की तरह मुँह फाड़े खड़े हैं।**[625]

ऐसी नर्मान्तक चीख की माँ का **दिल दहला उठा**।[626]

मुझे गँवारो से बात नहीं करनी–माताजी ने **ईंट का जवाब पत्थर से दिया**।[627]

उसकी हुँकार से मैत्रेयी का **कलेजा काँप जाता**।[628]

कल्पना में आकार लेता भावी वर **आँख मिचौली** खेल रहा है।[629]

गाँव की कच्ची डगर, गँवई किसान परिवार और कच्चा घर देखा कि **जी उचाट हो गया।**[630]

यह एक उदाहरण गाँव के हर उस घर की भाभई है, जिसमें रहते किसान ने अपना **खून–पसीना लगाकर** बेटे को ऊँची शिक्षा दिलाई है।[631]

दो पल विराम जरुरी लगा कि नम्बरदार को **उनका जवाब मुँह पर मारा तमाचा न लगे।**[632]

'गाँव के लोग चाहते हैं, बेटे वाला लात भी मारे तो हम उसके **तलवे चाटें।**[633]

माँ ने **कटे पर नमक छिड़का** कि अपना दुख बरसाया।[634]

यह **बात गाँठ में बाँध ले** कि मर्द की जात से होशियार रहकर चलना होता है, भले वह साठ साल का बूढ़ा हो।[635]

वह असहाय की तरह **फूट–फूटकर** रो पड़ी।[636]

मामाजी ने पहले ही कहा था, **इस आग में हाथ मत डारो।**[637]

उनका चेतनाहीन–सा पीला चेहरा देखकर मैत्रेयी का **दिल काँप जाता** है।[638]

समझ लो कि वे दादा से **लोहा लेती है।**[639]

ग्रामसेवक के साथ विवाह करके तुम्हारे रुक्खड़ और अक्खड़पन पर **पानी फेर दिया।**[640]

कस्तूरी के सामने अँधेरी **रात में एक तारा उदित हुआ।**[641]

लेकिन **उलटी गंगा** तो देखो कि उन्हीं की बेटी आगे की ओर नहीं, पीछे की ओर चल रही है।[642]

अपने ऊपर, केवल अपने अकेले पर इतना भरोसा रहता है कि जीवन में आए **लोभ–मोह को अँगूठे पर गिने।**[643]

यहाँ तो बेटी के लिए आमों के पेड़ लगाए और उसके **बबूलों के बीच से रास्ता चाहा** है।[644]

मारे गुस्से के उसके **हाथ–पाँव काँप रहे थे।**[645]

माताजी आहत हुई जैसे बेटी ने उनके **सिर पर भारी पत्थर गिरा दिया हो।**[646]

शायद लड़की की **फटी–फटी आँखें** देखकर आशंकित हो जाती है।[647]

क्योंकि वह आगे उनके लिए **सोने के अंडे देने वाली मुर्गी सिद्ध होगी।**[648]

कहती हुई कोप के घोड़े पर सवार कि **लाल–पीली आँधी** का रूप हुई? कुएँ की ओर भागी।[649]

लड़कियों वाली विधवाएँ–**घायल की गति घायल जाने** के मुहावरें जैसी.....प्रगाढ़ भाव और अभिन्न एकता के बिना स्त्रियाँ के दुख काटना असम्भ है।[650]

मेरी छाती चौड़ी हो जाती है, भौजाई के **नाम सन्नाम हो रहा है।**[651]

यही न कि इज्जतदार सभ्य लोगों की बेटियों के **मुँह पर तमाचा मारें?**।[652]

तुम जैसे इन फीरिअरों के सामने? राजकुमारी ने **ईंट का जवाब पत्थर से** दिया।[653]

मैत्रेयी का **गुस्सा सातवें आसमान पर** पहुँच गया।[654]

कौन–सा **दीया लिये घूम रही थीं,** वही जिसमें तेल की जगह अपना खून भरा?[655]

जाट जैसे इसी चिनगारी के इन्तजार में बैठे हों, खबर पाते ही **आग बबूला हो गए।**[656]

वह तो अकूत दुख और लज्जा ने मजबूर किया कि मुँह से निकल गया, 'भाभी ने **चौड़े में हड़िया फोड़ने की ठानी है।**[657]

कोयलों की दलाली में हाथ काले, पास खड़े रामजी लाल के स्वर में नीम मिलाकर कहा।[658]

यहाँ तो **बिल्ली मारे पहली रात** वाले मुहावरे ने सारा बदन कुचल डाला।[659]

रंग में भंग हो गया।[660]

क्या कहना चाहती है अब? मैत्रेयी ने **कान बिछा दिए।**[661]

डॉक्टर कहकर बाहर बरामदें में चले गए थे कि माताजी की चप्पलों की आवाज पर मैत्रेयी **के कान खड़े हो गए।**[662]

अपने पाँव में हमने खुद कुल्हाड़ी मारी है लाली।[663]

गोरे लाल चपरासी ने **तिल का ताड़** बनाया हो।[664]

कोई और सरीखा होता तो कलम–कागज को ठोकर मारकर कस्तूरी की **चटनी बना देता**।[665]

बिना उनकी मदद के यह कैसे सम्भव हुआ। जरुर **दाल में कुछ काला** है! यह डाह ही दुश्मन खड़ा कर देती है।[666]

पैरों पर खड़ा होने के लिए प्रोत्साहित करती हूँ।[667]

रिसायत की **नज़र मुझ पर टिक गई**।[668]

छुई–मुई बनने से समाज में काम चलने वाला नहीं है। **आग पर चलने** की हिम्मत जुटाना जरुरी है।[669]

उन दिनों उन सबकी **चाँदी हो गई** थी।[670]

वे मुझे कच्चा खा जाने को उतावली थीं और 'कचीचियाँ' लेकर **दाँत पीसकर बुदबुदा रही थीं।**[671]

पर माँ से कहा–सम्भालो इसे, **हाथ से निकली जा रही है।**[672]

हमने एक जत्था कच्छ भेजने का फैसला क्या लिया कि जैसे **बर्रे के छत्ते में हाथ लगा दिया।**[673]

उन्हें डर था कि हमारे जाने से उनका **रंग–रुतबा फीका पड़ जाएगा।**[674]

उन हिचकोलों में ठण्डी हवा का आनंद भी हम नहीं ले पाए, बस **एक धून सिर पर सवार थी** कि हमें पहुँचना है।[675]

खनन सुरक्षा विभाग की आँखों में **धूल झोंकने** के लिए रखा जाता था।[676]

ये लोग सरकार के साथ मुकदमेंबाजी में रैयतों को फँसाकर **अपना उल्लू सीधा करते हैं।**[677]

कौड़ी के भाव खरीदी, **कौड़ी के भाव बेची।**[678]

मैंने एक सवाल मजदूरों में छोड़ा था–**चूहों की तरह घुट–घुटकर मरना** है या बाहर आकर लड़ते हुए।[679]

उस समय ठेकेदारों उनके मुंशियों और **लठेतों का मुँह काला पड़ जाता** था।[680]

रास्ते भर अमीर खान **खून का बदला खून से लेंगे** के नारे लगाता रहा।[681]

आप ऐसा नहीं करेंगे तो जोशी जी खत्म भी हो जाएगें तो भी बर्ड कम्पनी **टस–से–मस** नहीं होगी।[682]

देखिए प्रबन्धन 24 घंटे में **घुटने टेक देगा।**[683]

श्रमायुक्त से अपनी बात अलग–अलग कहते थे और वे कॉमन प्वाइंट खोजकर अपनी तरफ से **बीच का रास्ता निकालने** का प्रयास करते थे।[684]

जिन कारणों से आपने खदानों का राष्ट्रीकरण किया है, उस सब **किए–कराए पर पानी फिर जाएगा।**[685]

हमारा सारा **धन्धा चौपट हो रहा** है इस इमरजेंसी में।[686]

मुझे दी गई ठेकेदार की गाली। उनके **खून को खौला** रही थी।[687]

हरियाणा में **आयाराम–गयाराम** का एक नया मुहावरा कांग्रेस के ही भजन लाल से शुरु हुआ था।[688]

मेरे बारे में भी मशहूर था कि बड़े–बड़े अधिकारियों को हम मज़दूरों–किसानों की एकता के बल पर **नाकों चने चबवा** चुके हैं।[689]

उस दिशा से पूरी तरह **मुँह मोड़ने** का संकल्प लेकर बैठ गई।[690]

भारती जी ने तो काफी पहले से इस पद पर बैठकर धर्मयुग के साथ–साथ अपने नाम के आगे भी **चाँद–तारे टाँग लिये** थे।[691]

उस समय औपचारिक आपातकाल तो था नहीं, सो इन सबके विस्तृत ब्यौरे छपे थे और लोगों के मन में इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप **आक्रोश का ज्वार तो फूटना ही था।**[692]

बहते आँसुओं के बीच मैं उसे पढ़ती जा रही थी और लग रहा था जैसे **मेरे पाँव के नीचे की जमीन ही सरकती जा रही थी।**[693]

मगर बैग का दाम सुनते ही **आकाश टूट पड़ा।**[694]

मैं जल रही थी आग की तरह, वह **दाल में घी का तड़का लगा रही थी....**।[695]

सब कुछ मुझे अकेले ही झेलना पड़ेगा और आपके **मुँह में दही जमा है?**[696]

दिनभर के **चुभे हुए काँटों को निकालते** ऐसी बहुतेरी रात खत्म हुई थी।[697]

मेरे **मुँह में पानी भर आया**।[698]

कसाइयों ने **मेरा सुहाग लूट लिया।**[699]

अम्मा की ज़िदद्, मैं उनकी **इज्जत मिट्टी में नहीं मिलाऊँगा।**[700]

पानी बहे जा रहा है....पर वह बच्ची अब **खिलखिलाकर हँसती** है।[701]

अल्लाह ने तो भगवान के **सीने में छुरी नहीं भौंकी**।[702]

फिर गालों पर, होंठ, कानों के पीछे–**मैं आग का दरिया** थी।[703]

घर लौटते हुए मैं **हवा के पंखों पर सवार** था।[704]

उनके कन्धे पर **सर रख मैं फूट–फूटकर रो पड़ी।**[705]

अन्य और सहेलियाँ **मुँह चुराने लगी** थीं और मैंने खुद को डॉक्टर साहब की बांहों में हमेशा के लिए कैद कर लिया।[706]

ओह! **मैं पसीना–पसीना हो गई** थी।[707]

यूँ ही तुम काफी मेहनत कर रही हो, और सुनो, वह मरील की बच्ची आज तुम्हें बड़ा **सब्ज बाग दिखाएगी।**[708]

कौन होती है आइलिन, एक पराए मर्द के सामने मेरी जिन्दगी की **बखिया उधेड़ने वाली?**[709]

और वह **फूट–फूटकर रो रही** थी।[710]

प्रभा! यो **तिल–तिलकर घूटने** के लिए तो तुम पैदा नहीं हुई।[711]

वह **कमर कसकर** मैदान में उतर पड़ती है।[712]

मैंने एक **फटी हुई चादर ओढ़ रखी** है और **फटे में पाँव रखना** वे कभी नहीं भूलते थे।[713]

चलो हटो तुम कल के छोकरे अभी **दूध के दाँत टूटे नहीं,** बने फिरते हो क्रान्तिकारी।[714]

कोल्हू का बैल बना आदमी कहने लगा था–हमारे लिए जिन लोगों ने सोचा वे सब भर गए।[715]

इतना आसाधारण क्रूर निर्णय उन्होंने क्यों लिया कौन जाने पर कांग्रेस के माथे पर **कलंक का यह टीका लगना ही था।**[716]

मौका पड़ने पर दो–चार को मार गिराना उसके **बाएँ हाथ का खेल है।**[717]

मेरी **आँखें छलछला आई।**[718]

माना कि पढ़ी–लिखी, आत्मनिर्भर स्त्री है पर ऐसी स्त्री **समाज की नाक नहीं बन सकती।**[719]

डॉक्टर साहब से जब मैंने मिस्टर बसु के बारे में कहा, वे तो **आग बबूला** पराए मर्द के साथ कैसे काम करोगी?[720]

लेकिन डॉक्टर साहब थे कि **शब्दों के चाकू से मुझे चीरते रहते।**[721]

सन्तुलन कहाँ रख पाती हूँ और मेनोपॉस के बाद, पोर–पोर से फूटती हुई निराशा, मेरा चेहरा कभी कपूर की भाँति धक से जल उठता, कभी **हथेलियाँ पसीज उठती,। कभी रातों की नींद उड़ जाती।**[722]

पार्टी खतम होते ही मैं डॉक्टर साहब पर गुस्से में फट पड़ी....''आप यदि लायंस क्लब का यह चुनाव नहीं लड़ते तो कौन–सा **पहाड़ टूट पड़ता?**''[723]

वे बड़े दबे–ढँके मासूम लोग थे, महानगरों की सामन्ती परिवारों की ऊपरी कलई की चमक से इनकी **आँखें चौंधियाई हुई थीं।**[724]

चिन्दियों में बिखेर दी जाऊँगी, बड़ी गैरजरुरी लड़ाई होगी वह।[725]

भावी अनिष्ठ की आशंका से **कलेजा मुँह को आने लगा।**[726]

अनचाहे **आँखें भर आई,** खामोश आँसू टपकते रहे...यानी डॉक्टर साहब पूरी तरह ठीक नहीं हुए हैं।[727]

इन्हें **गेरू घोलने।** कलह खींचने। की बुरी आदत है।[728]

मिसेज शर्मा को डॉ. सिद्धार्थ **डुगडुगी की तरह नचा...**।[729]

धन्यवाद! शुक्रिया उन सबका, जो हमें नीची निगाह से देखते हुए हमारी योग्यता को **धूल चटाते** रहते हैं।[730]

रात में सूरज पैदा करना चाहते हैं और यही करते–करते हरा–भरा जीवन सूखकर कब ठूँठ हो जाता है, जान भी नहीं पाते।[731]

भाभी प्यारी से प्यारी लगती गई और मौहल्ले की औरतें **पानी में आग लगाने** वाली जमालों का रूप।[732]

अम्मा अब्बा से रुठ जाती, पर मुझे समझाती 'औरत और मर्द होना **चाँद सूरज होना** है। रात और दिन का फर्क।[733]

मैं उन्हें देख रही थी, लगा कि मेरे भी **दाँत कसते चले जा रहे हैं।**[734]

यहाँ **कोढ़ में खाज** इल्माना की एक काजिर से नजदीकियाँ।[735]

उफ मेरी जिंदगी, रतीभर आजादी की हकदार नहीं यही बातें **मेरा कलेजा काटती रहती** है।[736]

'हाय गजब कोई **तारा टूटा'** आज तक याद आता है, क्या कभी भूल सकूँगी उस कल को?[737]

यहाँ वह गाँव का मुहावरा चलता है **'बेटी सौ साठ, तबहुँ बबा की नाठ।'**[738]

अरे, जब पैदा हुई थी, उससे पहले ही भाई को खा गई और डेढ़ साल की नहीं हो पाई कि **बाप के ऊपर गाज–सी गिरी।**[739]

तुम अच्छे–अच्छों की **छुट्टी कर दो** जैसे मेरी कर दी।[740]

और मैं **फफक–फफक कर रो उठती** हूँ। जैसे मैंने अपंग बच्चे को जन्म दे दिया हो।[741]

मेरे मित्र, सहयोगी, शुभाचि–तक मुझसे एक–एक करके किनारा कर रहे हैं।[742]

ओ कुँवार जी, मेरे हाथ का पानी बहुत लगाने वाला है, पीते ही **प्राणपखेरू उड़ जाएँगे**।[743]

ये हम जैसों पर **दाव लगते है** कि जीतते रहे।[744]

मनोहर श्याम जोशी, न सार्वजनिक जगह पर **आँखें चुराने** का छदम न अपनी बात से मुकर जाने की भंगिमा।[745]

तीसरी कक्षा में 'आओ हम सब झूला झूलें/पेंग बढ़ाकर नभ को छूले' जैसी कविता से जुड़कर मैंने यही जाना की **धरती पर खड़े होकर आकाश को छुना चाहती हूँ।**[746]

उनकी बिटिया को किसी मच्छर ने भी कटा तो **खून की नदियाँ बहा देंगे।**[747]

प्रेम की तरलता के अभाव में या मर्दानी जिद्द में पति ने मेरी इच्छामयी रचना को रचना नहीं, **पान–सुपारी समझा**। चबाया और थूका।[748]

मेरी झांई ही पड़ी होगी कि वह फुर्ती से **पीठ फेरकर खड़े हो गए**।[749]

मुझे पता है उनकी आदत में प्रतिशोध इसी तरह पलता है, एकदम **आस्तीन के साँप** की तरह बेआवाज....।[750]

तब शासन का रूप बनता है भ्रष्ट, **आँखों पर पट्टी बाँधे** अज्ञान से भरा हुआ मूढ़।[751]

और उसकी **आँखें डबडबा आईं।**[752]

एक पल ऐसा आता है, जब हमारे **रोंगटे खड़े हो जाते** हैं।[753]

घबराकर **आकाश की ओर देखती हूँ!** शून्य से जैसे पूछती हूँ।[754]

उसका तेवर रंगों में **दौड़ते खून में खलबली मचाए रहा।**[755]

यह मैं क्या सोच रही हूँ? कि अपने आत्मीय जनों में शामिल दतिया के के.बी.एल. पांडेय, झाँसी के मदन मानव, खिल्ली, मडोरा खुर्द के देवीदयाल और कबूतरा जनजाति पर शोध करने वाले प्रो. पी.आर. शुक्ल के साथ मिलकर सुधारवादी **नीति की बखिया उधेड़ रही हूँ?**[756]

ऊबड़–खाबड़ रास्ते के सफर में मैं **मुँह के बल गिरी हूँ।**[757]

लेकिन सब कुछ **काना फूँसी जैसा।**[758]

यह आदमी **जीते जी अपनी पूजा कराना** चाहता है! च च च![759]

दुश्मनों के **दाँत खट्टे करें।**[760]

झूठ नहीं बोलूँगी, मैं **पत्थर सी हो गई।**[761]

अपने **घर में सेंघ** तो चोर भी नहीं लगाता।[762]

मुझे **काटो तो खून नहीं**।[763]

डॉ. साहब **चौकन्ने हुए।**[764]

तलवार की धार पर चलने का हुक्म स्त्री के लिए पूर्व नियोजित है।[765]

ये सब बताते–बताते ताई हँस–हँस कर **लोट–पोट** हो जाती।[766]

पंजाब में अफ्रीका जाने की **होड़–सी लग गयी** थी।[767]

बीवी जी तो बस **पानी–पानी हो गयी।**[768]

उनकी तो **नाक कट गयी।**[769]

बहू तो **हाथ से बाहर हो गयी** थी, अब बेटी भी हाथ से निकल रही है।[770]

हजारों लोगों से भरे हाल में तालियों की गूंज नाना की **आँखों में चमक पैदा कर रही थी।**[771]

काश मुझे भी भैया जैसा पति मिले, जो मुझे **मुफ्त हवा में उड़ने दे,** तो मैं भी अपने सिर से कहीं ऊँची उड़ान भर लूंगी। मैं सोचा करती थी।[772]

उसके पति ने कई बार उन दोनों को **रंगे हाथों पकड़ लिया।**[773]

पहले मन हुआ उठकर भाग जाऊं, पर पता नहीं किस आकर्षण से **मेरे पांव जकड़ गये।**[774]

कुछ आवेश भी था उस स्नेह में, जो **खून के खौलने** पर मुझे महसूस होता।[775]

स्वतन्त्रता का जोश ठाठे मार रहा था।[776]

क्योंकि उन हत्याओं में सबकी **मिली–भगत** होती थी।[777]

हमीद को बचाना है, जिसकी सांप–सी सुंदर आंखें मुझे **मंत्र–मुग्ध** कर देती थीं।[778]

मेरे **पंख उगने लगे थे** और मैं हर प्रतिबंध के खिलाफ झंडा बुलन्द करने के लिए उठ गयी थी।[779]

मैं प्रतिबद्ध हो रही थी और मेरा पूरा परिवेश जो सामन्ती घोर दम्भी और अवसरवादी था, कटिबद्ध था मेरे **पंख काट देने के लिए।**[780]

मैंने भी उत्सुकतावश उन देखती आंखों को देखा, फिर **मुंह मोड़ लिया।**[781]

कोई सरदार पटेल की तरफ **उंगली उठा रहे थे।**[782]

मेरे **चेहरे का रंग लाल हो गया था।**[783]

मैं उससे, मुझसे विवाह करके, बीवी जी और उस घर से निज़ाज दिलाने की मिन्नत करुँगी, ताकि मास्टर के **चंगुल से निकल सकूं।**[784]

उसके कान **गुस्से से लाल हो गये,** क्यों? **पैसे क्या पेड पर लगते** हैं, जो फेंक दें।[785]

इसके **जली–कटी भी सुनाती रहती थीं।**[786]

उनका यह दृष्टिकोण मेरे मन में भी **दूसरों के काम आने** का आदर्श स्थापित कर गया था।[787]

बहस करके मैं प्रकाश को न हो आहत करना चाहती थी और न ही **एहसान फरामोश बनना।**[788]

एक दिन यशपाल और मैं **गप्पे हांक रहे थे और कहकहे लगा** रहे थे।[789]

वह **गड़े मुर्दे उखाडता** था।[790]

वही बीच–बीच में मुझे बार–बार **टकटकी लगाकर** देख लेता था।[791]

वे विरोधियों का भयादोहन करते हैं या अपनी **गोटी फिट करते हैं।**[792]

भोला प्रसाद **तिलमिला उठे।**[793]

नहीं जी, गाँधी जैसा होने का कोई मुगालता नहीं है मुझे। उनके **पैरों की जूती** भी नहीं।[794]

देखा जाए तो यह सोचकर कि रहने की कोई जगह भारत में नहीं होगी, बहुत तकलीफ होती है जैसे कि वहाँ से **जड़े ही कट गई हों।**[795]

फिर **कल्पना की उड़ान** को तो कोई रोक नहीं सकता।[796]

मुझे लगा वे इस तरह से मुझे घूर रहे थे कि **आंखों से ही निगल जाएंगे** साबुत का साबुत।[797]

पर जब दूसरों का **राह में कांटा** बनकर खड़ी होन लगती है।[798]

अपनी बेटी और बेटे को डॉक्टर के रूप में देख वे **फूली नहीं समातीं** लेकिन अपनी मजबूरी वे आज तक भूली नहीं।[799]

समय जैसे धरती और क्षितिज के हर हिस्से पर अपनी **कूंची फेरता चला** जाता है, अलग–अलग रंगों की।[800]

अपने ओहदेदार पिताओं के बूते पर कमजोरों या निचले तबके वालों को अपने **पैरों के नीचे दबाकर** रखता है।[801]

पार करते हुए दोनों ओर पानी का भयावह प्रवाह और शोर **रोम–रोम सिहरा** देता।[802]

रोंगटे खड़े हो गए थे।[803]

अब तो खैर स्थिति कुछ बेहतर हो रही है पर आवासी के लिए **रास्ते कांटों भरे ही होते हैं।**[804]

अपने लिए जगह बनाने के लिए वे किसी के भी **पैरों के नीचे से कालीन सरकाने से कतराएंगे नहीं** पर यह तो दुनिया की रीत ही है न।[805]

असफलता मिलने पर भी **हाथ पर हाथ धर बैठना** नहीं होता बल्कि चलते रहने होता है।[806]

सही है कि जो हम लिखते हैं, वह हमारे हालात का आईना होता है या वह हालात को **आईना दिखाता भी रहता** है।[807]

दिमाग में फितूर जो बैठ गया था कि और पढ़कर होगा भी क्या।[808]

खास तौर से जब मैं नाटक वालों से मिलती हूँ तो जैसे दबा हुआ **घाव हरा होने लगता** है।[809]

मनु को आज की औरतें चुनौती न देतीं तो उनकी स्मृति का तो एक–एक अक्षर **पत्थर की लकीर** बना हुआ था।[810]

सिर पर कफन बांधने का जोश।[811]

और वे अपनी बेटी को पूरी तरह से **फलने–फूलने देना चाहते थे।**[812]

ऐसा क्या **तीर मार लिया** था मैंने।[813]

निष्कर्ष

इक्कीसवीं सदी की स्त्री हिन्दी आत्मकथाओं के विश्लेषण व विवेचन करने के पश्चात् यह स्पष्ट होता है कि मैत्रेयी पुष्पा, रमणिका गुप्ता, मन्नू भण्डारी, प्रभा खेतान, सुषम बेदी इत्यादि लेखिकाओं के आत्मकथा–साहित्य का शिल्प–विधान अपनी पूर्ण आभा से मंडित है। इक्कीसवीं सदी में लिखी गई आत्मकथाएँ– 'कस्तूरी कुण्डल बसै', 'हादसे', 'एक कहानी यह भी', 'अन्या से अनन्या', 'गुड़िया भीतर गुड़िया', 'आपहुदरी', 'आरोह–अवरोह' इत्यादि में तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी शब्दों का भरपूर प्रयोग भावों के सौन्दर्य में वृद्धि करता है। भावात्मक, विचारात्मक, वर्णनात्मक, व्यंग्यात्मक, अहंवादी इत्यादि शैलियाँ कथ्य की विराटता को एवं शिल्प सौन्दर्य के प्रवाह को गति प्रदान करती है। कहावतें (लोकोक्ति) एवं मुहावरे आत्मकथा–साहित्य के भाव सौन्दर्य में अभिवृद्धि करते हैं।

अन्ततः इक्कीसवीं सदी में स्त्री आत्मकथा लेखिकाओं द्वारा लिखी गई आत्मकथाएँ शिल्प की दृष्टि से सुगठित, परिष्कृत, सशक्त एवं बेजोड़ हैं।

♦♦♦♦

संदर्भ सूची

1. साहित्य का श्रेय और प्रेय, जैनेन्द्र कुमार, पृ.–370
2. बृहत् हिन्दी कोश, ज्ञान मण्डल, लिमिटेड, बनारस, पृ.–1750
3. बृहत् हिन्दी कोश, ज्ञान मण्डल, लिमिटेड, बनारस, पृ.–1334
4. प्रेमचन्द्रोदय उपन्यासों की शिल्पविधि, डॉ. सत्यपाल चुग, पृ.–17–18
5. अष्टाध्यायी, पाणिनी, व्यक्तवाचांसमुच्चारणे, पृ.–1/3/48
6. मंझन का सौन्दर्य दर्शन, डॉ. लालता प्रसाद सक्सेना, पृ.–130
7. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पानी में अंगन जरै, पृ.–271
8. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–164
9. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–147
10. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान,पृ.–165
11. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, काहे री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.–10
12. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, दोहरे मापदंड, पृ.–71
13. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, यौवन की देहरी पर, पृ.–87
14. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, दुल्हनियाँ गाओ री मंगलचार, पृ.–224
15. हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ–यात्रा, पृ.–29
16. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–106
17. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, तेरा झूठा–मीठा लागा, पृ.–42
18. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, मैंने समाज–सेवा और राजनीति के दरवाजे एक साथ खोल दिए, पृ.–371
19. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, घर की खोज, पृ.–21
20. नालन्दा विशाल शब्द सागर, पृ.–377
21. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ ताहि भावे, पृ.–13
22. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–212
23. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–272
24. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, धिय सबै कुल खोयो, पृ.–106–107
25. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, सतलज बहती रही, पृ.–226
26. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, नन्हीं स्मृतियां, पृ.–39
27. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, उलट पवन कहाँ राखिए....पृ.–48

28. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–75
29. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–287
30. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, धिय सबै कुल खोयो, पृ.–126
31. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, दूसरी प्रेम–यात्रा, पृ.–188
32. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, चाय के बगीचों में, पृ.–118–119
33. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–11
34. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–26
35. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–126
36. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–134
37. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–136
38. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–138
39. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–160
40. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–198
41. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–230
42. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–272
43. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, दोहरे मापदंड, पृ.–71
44. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, बचपन का पहला एहसास, पृ.–73
45. संस्कृत–शब्दार्थ कौस्तुभ, द्वारिका प्रसाद चतुर्वेदी
46. साहित्य का वैज्ञानिक विवेचन, डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, पृ.–208–209
47. ".....An authors style is a faithful copy of his mind." The new dictionary of thought : T. Edwards.
48. "Style is a mans sown, it is a part of his nature." Buffon (from N.D.T.)
49. हिंदी साहित्य कोश, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा
50. द्विवेदी युग की गद्य शैलियों का अध्ययन, डॉ. शं. चौऋषि, पृ.–85
51. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–15
52. हादसे, रमणिका गुप्ता, टाटा से टक्कर, पृ.–76
53. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–77–78
54. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–151–152
55. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, जिउरा फिर उदास, पृ.–86
56. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, भटकावों का दौर, पृ.–287–288

57. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, चाय के बग़ीचों में, पृ.–120
58. द्विवेदी युग की गद्य शैलियों का अध्ययन, डॉ. शं. चौऋषि, पृ.–85
59. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–10–11
60. हादसे, रमणिका गुप्ता, औरत अगर खुदसर हो, पृ.–17
61. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–165
62. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–210
63. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, जो पै पिय के मन नहिं भायी, पृ.–44
64. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, यात्राएँ और मुक्ति की छटपटाहट, पृ.–343
65. आरोह–अवरोह, सुषमबेदी, यात्राएँ अंतर्जगत की, पृ.–187
66. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–14
67. हादसे, रमणिका गुप्ता, औरत अगर–खुदसर हो, पृ.–16
68. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–54
69. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–215–216
70. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, अखियाँ जान सुजान भई, पृ.–183
71. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, प्रेम का पहला एहसास, पृ.–112
72. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, यौवन की देहरी पर, पृ.–79
73. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–17
74. हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ–यात्रा, पृ.–38
75. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.58
76. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–103–104
77. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, काहे री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.–12
78. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, सवालों के साये, पृ.–115
79. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जो घर जारै आपनो..., पृ.–325
80. हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ–यात्रा, पृ.–44
81. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–216
82. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–213
83. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, काहे री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.–24–25
84. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, पहला झगड़ा, पृ.–237
85. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, यौवन की देहरी पर, पृ.–86
86. सम्पूर्ण हिन्दी व्याकरण और रचना, डॉ. अरविन्द कुमार, पृ.–78

87. सुगम हिन्दी व्याकरण तथा रचना, सुखलाल गुप्त, पृ.–148
88. मानक हिन्दी कोश, खण्ड 02 सं. रामचन्द्र शर्मा, पृ.–501
89. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–32
90. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–33
91. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–34
92. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–34
93. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, उलट पवन कहाँ राखिए, पृ.–36
94. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, उलट पवन कहाँ राखिए, पृ.–43
95. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, उलट पवन कहाँ राखिए, पृ.–48
96. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, उलट पवन कहाँ राखिए, पृ.–56
97. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, उलट पवन कहाँ राखिए, पृ.–59
98. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, उलट पवन कहाँ राखिए, पृ.–61
99. कस्तूरी कुण्डल बसे, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–63
100. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–65
101. कस्तूरी कुण्डल बसे, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–74
102. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–78
103. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–133
104. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, 'तुम्ह पिंजरा, मैं सुअना तोरा' पृ.–135
105. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, 'तुम्ह पिंजरा, मैं सुअना तोरा', पृ.–173
106. हादसे, रमणिका गुप्ता, औरत अगर खुदसर हो, पृ.–17
107. हादसे, रमणिका गुप्ता, विभाजन और दंगे, पृ.–20
108. हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ–यात्रा, पृ.–33
109. हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ–यात्रा, पृ.–43
110. हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ–यात्रा, पृ.–47
111. हादसे, रमणिका गुप्ता, अपराध बोध और आत्मदया की ग्रन्थियाँ, पृ.–53
112. हादसे, रमणिका गुप्ता, मांडू का चुनाव, पृ.–55
113. हादसे, रमणिका गुप्ता, मांडू का चुनाव, पृ.–57
114. हादसे, रमणिका गुप्ता, राजा खदान, पृ.–63
115. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–7
116. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–14

117. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.—18

118. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.—19

119. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.—17

120. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.—20

121. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.—28

122. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.—31

123. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.—35

124. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.—35

125. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.—37

126. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.—43

127. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.—44

128. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.—52

129. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.—102

130. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—56

131. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—63—64

132. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—64

133. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—116

134. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—126—127

135. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—136

136. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—159

137. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—170

138. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—175

139. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—184

140. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, काहे री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.—9

141. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, काहे री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.—9

142. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, काहे री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.—11

143. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, काहे री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.—18

144. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, काहे री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.—19

145. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, काहे री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.—22

146. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, काहे री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.—24

147. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, धिय सबै कुल खोयो, पृ.–115

148. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, धिय सबै कुल खोयो, पृ.–116

149. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, धिय सबै कुल खोयो, पृ.–116

150. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, धिय सबै कुल खोयो, पृ.–117

151. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, मोरा मन मतवारा, पृ.–147

152. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, मोरा मन मतवारा, पृ.–149

153. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, मोरा मन मतवारा, पृ.–151

154. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, अखियाँ जान सुजान भईं, पृ.–173

155. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, अखियाँ जान सुजान भईं, पृ.–173

156. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, अखियाँ जान सुजान भईं, पृ.–183

157. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, कहूँ रे कहिबे की होय, पृ.–194

158. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पति संग जागी सुन्दरी, पृ.–240

159. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, हवेली और मोरनी दरवाजा, पृ.–54

160. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, मिथक ढह गया, पृ.–158

161. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, हाँ! प्रकाश के पास गई थी, पृ.–213

162. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, दस रूपये में गुजर कर लूंगी, पृ.–239

163. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, सीबा, शेबा, शीबा, पृ.–328

164. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, घर की खोज, पृ.–17

165. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, घर की खोज, पृ.–24

166. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, घर की खोज, पृ.–35

167. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, नन्ही स्मृतियां, पृ.–47

168. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, परम्परा और परिवर्तन, पृ.–106

169. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, प्रकृति के आदिम रिश्ते, पृ.–195

170. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–9

171. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–9

172. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–34

173. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, उलट पवन कहाँ राखिए...., पृ.–38

174. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, उलट पवन कहाँ राखिए...., पृ.–39

175. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, उलट पवन कहाँ राखिए...., पृ.–39

176. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, उलट पवन कहाँ राखिए...., पृ.–40

177. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, उलट पवन कहाँ राखिए...., पृ.–41
178. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, उलट पवन कहाँ राखिए...., पृ.–46
179. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, उलट पवन कहाँ राखिए...., पृ.–47
180. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, उलट पवन कहाँ राखिए...., पृ.–48
181. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, उलट पवन कहाँ राखिए...., पृ.–50
182. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, उलट पवन कहाँ राखिए...., पृ.–56
183. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–59
184. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–58
185. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–65
186. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–68
187. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–76
188. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–77
189. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–104
190. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, हम घर साजन आए, पृ.–192
191. हादसे, रमणिका गुप्ता, औरत अगर खुदसर हो, पृ.–16
192. हादसे, रमणिका गुप्ता, औरत अगर खुदसर हो, पृ.–17
193. हादसे, रमणिका गुप्ता, रियासतों का हस्तान्तरण, पृ.–19
194. हादसे, रमणिका गुप्ता, विभाजन और दंगे, पृ.–22
195. हादसे, रमणिका गुप्ता, प्रेम और विवाह, पृ.–25
196. हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ–यात्रा, पृ.–31
197. हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ–यात्रा, पृ.–33
198. हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ–यात्रा, पृ.–34
199. हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ–यात्रा, पृ.–34
200. हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ–यात्रा, पृ.–34
201. हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ–यात्रा, पृ.–38
202. हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ–यात्रा, पृ.–44
203. हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ–यात्रा, पृ.–45
204. हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ–यात्रा, पृ.–46
205. हादसे, रमणिका गुप्ता, मांडू का चुनाव, पृ.–56
206. हादसे, रमणिका गुप्ता, टाटा से टक्कर, पृ.–77

207. हादसे, रमणिका गुप्ता, केदला कोलियरी, पृ.–83

208. हादसे, रमणिका गुप्ता, जब लाठी–भाले का वश नहीं चला, पृ.–115

209. हादसे, रमणिका गुप्ता, लाठी–केदला की हड़तालों पर सौदेबाजी, पृ.–135

210. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–59

211. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–85

212. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–8

213. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–15

214. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–18

215. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–19

216. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–21

217. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–29

218. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–76

219. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–107

220. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–126

221. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, काहे री नलिनी तू कुम्लानी, पृ.–9

222. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, एक सुहागिन जगत पियारी, पृ.–60

223. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, धिय सबै कुल खोयो, पृ.–93–94

224. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, धिय सबै कुल खोयो, पृ.–111

225. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, धिय सबै कुल खोयो, पृ.–113

226. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, अखियाँ जान सुजान भई, पृ.–165

227. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, सच बोलना क्यों जरुरी....पृ.–14

228. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, हवेली और मोरनी दरवाज़ा, पृ.–54

229. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, बदलती देह, पृ.–120

230. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, दंगे शुरु हो गये, पृ.–166

231. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, नन्हीं स्मृतियां, पृ.–44

232. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, यौवन की देहरी पर, पृ.–88

233. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–9

234. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–11

235. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–12

236. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–16

237. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–17
238. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–18
239. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–31
240. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, उलट पवन कहाँ राखिए....पृ.–37
241. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, उलट पवन कहाँ राखिए....पृ.–48
242. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, उलट पवन कहाँ राखिए....पृ.–52
243. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, उलट पवन कहाँ राखिए....पृ.–55
244. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन मन, मन नाहि विसराम, पृ.–88
245. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन मन, मन नाहि विसराम, पृ.–88
246. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन मन, मन नाहि विसराम, पृ.–101
247. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन मन, मन नाहि विसराम, पृ.–103
248. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन मन, मन नाहि विसराम, पृ.–132
249. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, तुम्ह पिंजरा, मैं सुअना तोरा, पृ.–142
250. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, हम घर साजन आए, पृ.–164
251. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, हम घर साजन आए, पृ.–181
252. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, दुल्हनियाँ गाओ री मंगलचार, पृ.–235
253. हादसे, रमणिका गुप्ता, विभाजन और दंगे, पृ.–21
254. हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ–यात्रा, पृ.–36
255. हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ–यात्रा, पृ.–36
256. हादसे, रमणिका गुप्ता, राजा खदान, पृ.–67
257. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–15
258. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–13
259. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–36
260. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–46
261. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–58
262. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–159
263. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–13
264. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–13
265. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–20
266. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–21

267. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–22

268. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–22

269. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–23

270. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–38

271. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–43

272. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–51

273. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–61

274. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–121

275. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–121

276. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–126

277. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–160

278. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–167

279. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–183

280. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, जो पै पिय के मन नहिं भायी, पृ.–40

281. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, एक सुहागिन जगत पियारी, पृ.–62

282. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, धिय सबै कुल खोयो, पृ.–100

283. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पति संग जागी सुन्दरी, पृ.–240

284. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, यह तन जारो, मसि करो, पृ.–264

285. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, अन्तर भीगी आत्मा, पृ.–312

286. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, भाई की कुड़माई, पृ.–96

287. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, प्रेम का पहला एहसास, पृ.–110

288. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, पहली प्रेम–यात्रा, पृ.–169

289. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, रिफ्यूजी कैम्प, पृ.–180

290. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, पहला झगड़ा, पृ.–236

291. आरोह–अवरोह सुषम बेदी, भूमिका, पृ.–10

292. आरोह–अवरोह सुषम बेदी, नन्हीं स्मृतियां, पृ.–59

293. आरोह–अवरोह सुषम बेदी, यौवन की देहरी पर, पृ.–83

294. आरोह–अवरोह सुषम बेदी, यौवन की देहरी पर, पृ.–87

295. आरोह–अवरोह सुषम बेदी, परम्परा और परिवर्तन, पृ.–105

296. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, चाय के बग़ीचों में, पृ.–122

297. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, अमेरिकी आवासन के कुछ खट्टे–मीठे अनुभव, पृ.–167

298. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, उलट पवन कहाँ राखिए...पृ.–52

299. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, उलट पवन कहाँ राखिए...पृ.–55

300. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, उलट पवन कहाँ राखिए...पृ.–55

301. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, उलट पवन कहाँ राखिए...पृ.–55

302. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, उलट पवन कहाँ राखिए...पृ.–55

303. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–61

304. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–63

305. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–64

306. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–65

307. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–66

308. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–70

309. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–79

310. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–91

311. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–91

312. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–91

313. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–92

314. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–114

315. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–115

316. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–125

317. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–129

318. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–134

319. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, हम घर साजन आए, पृ.–150

320. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, हम घर साजन आए, पृ.–166

321. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, हम घर साजन आए, पृ.–181

322. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, हम घर साजन आए, पृ.–189

323. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पानी में अगन जरै, पृ.–279

324. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जो घर जारै आपनो.....पृ.–293

325. हादसे, रमणिका गुप्ता, औरत अगर–खुदसर हो, पृ.–16

326. हादसे, रमणिका गुप्ता, परम्परा और परिवर्तन, पृ.–18

327. हादसे, रमणिका गुप्ता, रियासतों का हस्तान्तरण, पृ.—19

328. हादसे, रमणिका गुप्ता, विभाजन और दंगे, पृ.—20

329. हादसे, रमणिका गुप्ता, विभाजन और दंगे, पृ.—21

330. हादसे, रमणिका गुप्ता, विभाजन और दंगे, पृ.—22

331. हादसे, रमणिका गुप्ता, विभाजन और दंगे, पृ.—22

332. हादसे, रमणिका गुप्ता, विभाजन और दंगे, पृ.—22

333. हादसे, रमणिका गुप्ता, विभाजन और दंगे, पृ.—22

334. हादसे, रमणिका गुप्ता, प्रेम और विवाह, पृ.—24

335. हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ—यात्रा, पृ.—32

336. हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ—यात्रा, पृ.—40

337. हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ—यात्रा, पृ.—41

338. हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ—यात्रा, पृ.—51

339. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.—19

340. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.—25

341. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.—25

342. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.—25

343. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.—25

344. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.—31

345. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.—34

346. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.—38

347. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.—40

348. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.—43

349. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.—47

350. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.—49

351. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.—53

352. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—5—6

353. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—5

354. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—6

355. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—7

356. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—10

357. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–11

358. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–11

359. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–12

360. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–14

361. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–20

362. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–39

363. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–42

364. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–46

365. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–47

366. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–49

367. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–50

368. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–53

369. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–54

370. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–55

371. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–64

372. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–66

373. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–75

374. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–102–103

375. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–104

376. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–105

377. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–110

378. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–112

379. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–120

380. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–124

381. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–134

382. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–139

383. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–142

384. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–143

385. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–143

386. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–145

387. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–173

388. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, कोह री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.–12

389. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, कोह री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.–11

390. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, कोह री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.–17

391. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, कोह री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.–17

392. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, कोह री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.–19

393. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, कोह री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.–23

394. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, कोह री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.–24

395. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, कोह री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.–23

396. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, कोह री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.–23

397. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, तेरा झूठा–मीठा लागा, पृ.–29

398. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, तेरा झूठा–मीठा लागा, पृ.–29

399. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, तेरा झूठा–मीठा लागा, पृ.–31

400. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, तेरा झूठा–मीठा लागा, पृ.–36

401. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, तेरा झूठा–मीठा लागा, पृ.–41

402. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, जो पै पिय के मन नहिं भायी, पृ.–49

403. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, एक सुहागिन जगत पियारी, पृ.–57

404. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, एक सुहागिन जगत पियारी, पृ.–63

405. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, जियरा फिरे उदास, पृ.–79

406. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, मोरा मन मत बारा, पृ.–148

407. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, एक सुहागिन जगत पियारी, पृ.–250

408. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, उनका रूठना–मनाना, पृ.–43

409. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, मंझले भाई का प्रेम–प्रसंग, पृ.–49

410. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, बड़े भैया–भाभी और परिवार, पृ.–52

411. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, कोयटा के किस्से, पृ.–87

412. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, कोयटा के किस्से, पृ.–90

413. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, मंझले भाई की शादी, पृ.–136

414. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, मंझले भाई की शादी, पृ.–136

415. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, जल उठी सदभाव की फसल, पृ.–160

416. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, दंगे शुरु हो गये, पृ.–163

417. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, घर की खोज, पृ.–25
418. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, घर की खोज, पृ.–26
419. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, घर की खोज, पृ.–27
420. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, घर की खोज, पृ.–29
421. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, नन्ही स्मृतियां, पृ.–44
422. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, नन्ही स्मृतियां, पृ.–45–46
423. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, नन्ही स्मृतियां, पृ.–47
424. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, नन्ही स्मृतियां, पृ.–51
425. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, नन्ही स्मृतियां, पृ.–57
426. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, नन्ही स्मृतियां, पृ.–59
427. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, यौवन की देहरी पर, पृ.–63
428. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, यौवन की देहरी पर, पृ.–63
429. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, यौवन की देहरी पर, पृ.–65
430. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, यौवन की देहरी पर, पृ.–66
431. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, यौवन की देहरी पर, पृ.–67
432. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, यौवन की देहरी पर, पृ.–67
433. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, यौवन की देहरी पर, पृ.–67
434. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, यौवन की देहरी पर, पृ.–68
435. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, यौवन की देहरी पर, पृ.–85
436. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, परम्परा और परिवर्तन, पृ.–105
437. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–9
438. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–10
439. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–10
440. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहिं विसराम, पृ.–64
441. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहिं विसराम, पृ.–65
442. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहिं विसराम, पृ.–67
443. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहिं विसराम, पृ.–96
444. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहिं विसराम, पृ.–97
445. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, 'तुम्ह पिंजरा, मैं सुअना तोरा', पृ.–143
446. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, हम घर साजन आए, पृ.–151

447. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, हम घर साजन आए, पृ.–159

448. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, हम घर साजन आए, पृ.–181

449. हादसे, रमणिका गुप्ता, औरत अगर खुदसर हो, पृ.–16

450. हादसे, रमणिका गुप्ता, विभाजन और दंगे, पृ.–20

451. हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ–यात्रा, पृ.–19

452. हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ–यात्रा, पृ.–30

453. हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ–यात्रा, पृ.–35

454. हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ–यात्रा, पृ.–47

455. हादसे, रमणिका गुप्ता, यूनियन का गठन, पृ.–80

456. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–27

457. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–39

458. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–57

459. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–151

460. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–195

461. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–10

462. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–14

463. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–15

464. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–25

465. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–203

466. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–243

467. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, काहे री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.–11

468. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, काहे री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.–30

469. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, एक सुहागिन जगत पियारी, पृ.–58

470. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, जियरा फिरे उदास, पृ.–82

471. गुड़िया भीतर गुड़िया, धिय सबै कुल खोयो, पृ.–93

472. गुड़िया भीतर गुड़िया, धिय सबै कुल खोयो, पृ.–110

473. गुड़िया भीतर गुड़िया, धिय सबै कुल खोयो, पृ.–110

474. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, तृषावंत जो जायेगा, पृ.–129

475. गुड़िया भीतर गुड़िया, काजल केरी कोठरी, पृ.–217

476. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, बुरी लड़की : अच्छी लड़की, पृ.–31

477. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, दोहरे मापदंड, पृ.–70
478. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, अतीत के सांप, पृ.–78
479. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, घर–वापसी, पृ.–295
480. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, भूमिका, पृ.–9
481. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, भूमिका, पृ.–10
482. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, नन्हीं स्मृतियां, पृ.–40
483. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, नन्हीं स्मृतियां, पृ.–40
484. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, नन्हीं स्मृतियां, पृ.–59
485. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, यौवन की देहरी पर, पृ.–62
486. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, यौवन की देहरी पर, पृ.–69
487. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, चाय के बग़ीचों में, पृ.–117
488. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–11
489. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–13
490. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–13
491. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–15–16
492. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–30
493. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, उलट पवन कहाँ राखिए, पृ.–49
494. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, उलट पवन कहाँ राखिए, पृ.–54
495. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–91
496. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–111
497. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–115
498. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, 'तुम्ह पिंजरा, मैं सुअनातोरा' पृ.–145
499. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, हम घर साजन आये, पृ.–172
500. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, हम घर साजन आये, पृ.–186
501. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, दुल्हनियाँ गाओ री मंगलचार, पृ.–220
502. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, दुल्हनियाँ गाओ री मंगलचार, पृ.–221
503. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, दुल्हनियाँ गाओ री मंगलचार, पृ.–241
504. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, कैसे नीर भरे पनिहारी, पृ.–248
505. हादसे, रमणिका गुप्ता, विभाजन और दंगे, पृ.–21
506. हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ यात्रा, पृ.–33

507. हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ यात्रा, पृ.—33

508. हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ यात्रा, पृ.—34

509. हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ यात्रा, पृ.—39

510. हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ यात्रा, पृ.—48

511. हादसे, रमणिका गुप्ता, राजा खदान, पृ.—61

512. हादसे, रमणिका गुप्ता, राजा खदान, पृ.—61

513. हादसे, रमणिका गुप्ता, कुजू—कूच, पृ.—104

514. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.—34

515. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.—44

516. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.—55

517. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.—58

518. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.—199

519. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.—217

520. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.—225

521. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—11

522. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—63

523. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—248

524. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, तेरा झूठा—मीठा लागा, पृ.—27

525. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पति संग जागी सुंदरी, पृ.—238

526. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पति संग जागी सुंदरी, पृ.—248

527. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, यह तन जारों, मसि करो, पृ.—254

528. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, हम न मरहिं मारहिं संसार, पृ.—350

529. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, जब आस्थाएँ टूटी, पृ.—40

530. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, मंझले भाई का प्रेम—प्रसंग, पृ.—48

531. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, हवेली और मोरनी दरवाज़ा, पृ.—53

532. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, कुलच्छनी नहीं, पृ.—67

533. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, परिदृश्य, पृ.—347

534. आरोह—अवरोह, सुषम बेदी, भूमिका, पृ.—9

535. आरोह—अवरोह, सुषम बेदी, घर की खोज, पृ.—30

536. आरोह—अवरोह, सुषम बेदी, चाय के बग़ीचों में, पृ.—116

537. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, चाय के बग़ीचों में, पृ.–137
538. हिंदी साहित्य कोश, संपादक डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, भाग–1
539. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–11
540. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–11
541. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–12
542. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–12
543. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–13
544. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–17
545. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–22
546. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–22
547. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, उलट पवन कहाँ राखिए..., पृ.–46
548. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–67
549. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहिं विसराम, पृ.–72
550. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहिं विसराम, पृ.–75
551. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहिं विसराम, पृ.–76
552. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहिं विसराम, पृ.–87
553. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहिं विसराम, पृ.–91
554. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहिं विसराम, पृ.–97
555. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहिं विसराम, पृ.–100
556. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहिं विसराम, पृ.–113
557. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहिं विसराम, पृ.–116
558. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, 'तुम्ह पिंजरा, मैं सुअना तोरा', पृ.–139
559. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, 'तुम्ह पिंजरा, मैं सुअना तोरा', पृ.–141
560. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, हम घर साजन आए, पृ.–153
561. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, हम घर साजन आए, पृ.–160
562. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, दुल्हनियाँ गाओ री मंगलचार, पृ.–197
563. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, दुल्हनियाँ गाओ री मंगलचार, पृ.–212
564. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, दुल्हनियाँ गाओ री मंगलचार, पृ.–214
565. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, कैसे नीर भरे पनिहारी?, पृ.–227
566. हादसे, रमणिका गुप्ता, कैसे नीर भरे पनिहारी?, पृ.–246

567. हादसे, रमणिका गुप्ता, औरत अगर खुदसर हो, पृ.–15

568. हादसे, रमणिका गुप्ता, औरत अगर खुदसर हो, पृ.–17

569. हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ यात्रा, पृ.–35

570. हादसे, रमणिका गुप्ता, राजा खदान, पृ.–61

571. हादसे, रमणिका गुप्ता, राजा खदान, पृ.–63

572. हादसे, रमणिक गुप्ता, लोकसभा में याचिका, पृ.–92

573. हादसे, रमणिका गुप्ता, कोयले की बौछारों से आकाश 'करिया' हो गया, पृ.–122

574. हादसे, रमणिका गुप्ता, कोयले की बौछारों से आकाश 'करिया' हो गया, पृ.–127

575. हादसे, रमणिका गुप्ता, याचिका समिति के गोवा दौरे में उठा विवाद, पृ.–252

576. हादसे, रमणिका गुप्ता, स्त्री–मुक्ति का अर्थ पुरुष विरोध नहीं, पृ.–266

577. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–119

578. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–169

579. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–21

580. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–32

581. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–48

582. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–152

583. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–175

584. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–177

585. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–187

586. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–206

587. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–217

588. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–257

589. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–270

590. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, धिय सबै कुल खोयो, पृ.–109

591. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, धिय सबै कुल खोयो, पृ.–112

592. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, धिय सबै कुल खोयो, पृ.–127

593. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, धिय सबै कुल खोयो, पृ.–128

594. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, मोरा मन मतबारा, पृ.–152

595. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, अखियाँ जान सुजान भईं, पृ.–164

596. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, कहूँ रे जो कहिबे की होय, पृ.–191

597. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, कहूँ रे जो कहिबे की होय, पृ.–199
598. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, काजल केरी कोठरी, पृ.–224
599. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पति संग जागी सुंदरी, पृ.–239
600. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, यह तन जारों, मसि करो, पृ.–266
601. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, यह तन जारों, मसि करों, पृ.–280
602. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, हम न मरहिं मारहि संसारा, पृ.–337
603. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, हम न मरहिं मारहि संसारा, पृ.–340
604. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, बचपन का पहला अहसास, पृ.–72
605. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, औरत को सुरक्षा चाहिए या प्यार, पृ.–103
606. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, प्रेम का पहला अहसास, पृ.–112
607. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, अगवा लड़कियों की खोज, पृ.–177
608. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, कोई बन्दिश न लगाई जाए, पृ.–193
609. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, हनीमून, पृ.–231
610. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, औरतः गुटबंदी का एक तेज हथियार, पृ.–403
611. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, हम चल नये आकाश में उड़ने, पृ.–447–448
612. आरोह, अवरोह, सुषम बेदी, भूमिका, पृ.–11
613. आरोह, अवरोह, सुषम बेदी, घर की खोज, पृ.–32
614. आरोह, अवरोह, सुषम बेदी, सलेटी घेरे में, पृ.–223
615. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–9
616. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–10
617. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–10
618. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–12
619. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–14
620. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–14
621. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–15
622. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–15
623. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–20
624. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–23
625. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, पृ.–26
626. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, उलट पवन कहाँ राखिए, पृ.–45

627. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, उलट पवन कहाँ राखिए, पृ.–48

628. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–63

629. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–65

630. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–67

631. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–67

632. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–69

633. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–78

634. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–79

635. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–53

636. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–54

637. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–54

638. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–56

639. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–57

640. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–60

641. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–61

642. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–61

643. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–62

644. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–62

645. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–94

646. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–97

647. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–105

648. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–109

649. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम, पृ.–131

650. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, 'तुम्ह पिंजरा, मैं सुअना तोरा', पृ.–143

651. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, 'तुम्ह पिंजरा, मैं सुअना तोरा', पृ.–143

652. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, हम घर साजन आए, पृ.–170

653. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, हम घर साजन आए, पृ.–171

654. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, हम घर साजन आए, पृ.–198

655. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, दुल्हनियाँ गाओ री मंगलचार, पृ.–223

656. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, दुल्हनियाँ गाओ री मंगलचार, पृ.–228

657. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, दुल्हनियाँ गाओ री मंगलचार, पृ.–237

658. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, दुल्हनियाँ गाओ री मंगलचार, पृ.–238

659. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, कैसे नीर भरे पनिहारि? पृ.–249

660. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, कैसे नीर भरे पनिहारि? पृ.–251

661. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, कैसे नीर भरे पनिहारि? पृ.–267

662. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पानी में अगन जरै, पृ.–273

663. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जो घर जारै आपनो, पृ.–300

664. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जो घर जारै आपनो, पृ.–325

665. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, जो घर जारै आपनो, पृ.–327

666. हादसे, रमणिका गुप्ता, औरत अगर खुदसर हो, पृ.–15

667. हादसे, रमणिका गुप्ता, औरत अगर खुदसर हो, पृ.–16

668. हादसे, रमणिका गुप्ता, औरत अगर खुदसर हो, पृ.–17

669. हादसे, रमणिका गुप्ता, औरत अगर खुदसर हो, पृ.–17

670. हादसे, रमणिका गुप्ता, विभाजन और दंगे, पृ.–21

671. हादसे, रमणिका गुप्ता, विभाजन और दंगे, पृ.–22

672. हादसे, रमणिका गुप्ता, विभाजन और दंगे, पृ.–22

673. हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ–यात्रा, पृ.–31

674. हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ–यात्रा, पृ.–31

675. हादसे, रमणिका गुप्ता, मेरी कच्छ–यात्रा, पृ.–34

676. हादसे, रमणिका गुप्ता, राजा खदान, पृ.–63

677. हादसे, रमणिका गुप्ता, राजा खदान, पृ.–67

678. हादसे, रमणिका गुप्ता, राजा खदान, पृ.–68–69

679. हादसे, रमणिका गुप्ता, केदला कोलियरी में पहली मीटिंग, पृ.–85

680. हादसे, रमणिका गुप्ता, लोकसभा में याचिका, पृ.–93

681. हादसे, रमणिका गुप्ता, कुजू–कूच, पृ.–104

682. हादसे, रमणिका गुप्ता, कोयले की बौछारों से आकाश 'करिया' हो गया, पृ.–127

683. हादसे, रमणिका गुप्ता, कोयले की बौछारों से आकाश 'करिया' हो गया, पृ.–127

684. हादसे, रमणिका गुप्ता, कोयले की बौछारों से आकाश 'करिया' हो गया, पृ.–128

685. हादसे, रमणिका गुप्ता, संजय गांधी से मुलाकात, पृ.–181

686. हादसे, रमणिका गुप्ता, संजय गांधी से मुलाकात, पृ.–187

687. हादसे, रमणिका गुप्ता, आपातकाल, पृ.–189

688. हादसे, रमणिका गुप्ता, 1976 से 1980 के बीच की घटनाएँ, पृ.–202

689. हादसे, 1980 का विस्थापित आन्दोलन, पृ.–207

690. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–36

691. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–95

692. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–137

693. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.–212

694. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–6

695. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–12

696. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–12–13

697. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–14

698. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–20

699. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–34

700. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–35

701. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–37

702. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–56

703. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–66

704. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–71

705. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–81

706. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–85

707. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–93

708. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–138

709. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–146

710. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–158

711. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–159

712. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–171

713. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–173

714. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–184

715. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–186

716. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.–192

717. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—192

718. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—197

719. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—198

720. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—205

721. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—213

722. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—215

723. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—241

724. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—245

725. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—250

726. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—262

727. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ.—267

728. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, काहे री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.—11

729. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, काहे री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.—12

730. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, काहे री नलिनी तू कुम्हलानी, पृ.—21

731. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, एक सुहागिन जगत पियारी, पृ.—57

732. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, एक सुहागिन जगत पियारी, पृ.—60

733. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, एक सुहागिन जगत पियारी, पृ.—66

734. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, एक सुहागिन जगत पियारी, पृ.—66

735. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, एक सुहागिन जगत पियारी, पृ.—69

736. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, एक सुहागिन जगत पियारी, पृ.—71

737. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, जियरा फिरे उदास, पृ.—91

738. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, धिय सबै कुल खोयो, पृ.—95

739. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, धिय सबै कुल खोयो, पृ.—100

740. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, मोरा मन मतबारा, पृ.—155

741. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, कहूँ रे जो कहिबे की होय, पृ.—215

742. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, कहूँ रे जो कहिबे की होय, पृ.—220

743. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, कहूँ रे जो कहिबे की होय, पृ.—220

744. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, कहूँ रे जो कहिबे की होय, पृ.—222

745. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, कहूँ रे जो कहिबे की होय, पृ.—227

746. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पति संग जागी सुन्दरी, पृ.—232

747. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पति संग जागी सुन्दरी, पृ.–238

748. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पति संग जागी सुन्दरी, पृ.–248

749. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पति संग जागी सुन्दरी, पृ.–249

750. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पति संग जागी सुन्दरी, पृ.–249–250

751. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, यह तन जारों, मसि करों, पृ.–253

752. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, यह तन जारों, मसि करों, पृ.–256

753. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, यह तन जारों, मसि करों, पृ.–261

754. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, यह तन जारों, मसि करों, पृ.–262

755. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, यह तन जारों, मसि करों, पृ.–271

756. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, यह तन जारों, मसि करों, पृ.–272

757. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, यह तन जारों, मसि करों, पृ.–277

758. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, धरती बरसै अम्बर भीजै, पृ.–282

759. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, धरती बरसै अम्बर भीजै, पृ.–283

760. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, धरती बरसै अम्बर भीजै, पृ.–296

761. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, धरती बरसै अम्बर भीजै, पृ.–302

762. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, तन छूटे मन कहाँ समाई, पृ.–327

763. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, तन छूटे मन कहाँ समाई, पृ.–328

764. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, हम न मरहिं मारहिं संसारा, पृ.–349

765. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, हम न मरहिं मारहिं संसारा, पृ.–350

766. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, एक मर्द बराबर हजार औरत, पृ.–93

767. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, भाई की कुड़माई, पृ.–94

768. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, भाभी, पृ.–129

769. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, भाभी, पृ.–129

770. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, भाभी, पृ.–130

771. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, भाभी, पृ.–130

772. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, भाभी, पृ.–132

773. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, फौजी भाई चारा, पृ.–135

774. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, मिथक ढह गया, पृ.–152

775. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, मिथक ढह गया, पृ.–153

776. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, जल उठी सद्भाव की फसल, पृ.–160

777. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, जल उठी सद्भाव की फसल, पृ.–162

778. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, पहली प्रेम यात्रा, पृ.–167

779. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, पहली प्रेम यात्रा, पृ.–168

780. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, पहली प्रेम यात्रा, पृ.–169

781. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, दूसरी प्रेम–यात्रा, पृ.–186

782. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, दूसरी प्रेम–यात्रा, पृ.–186

783. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, निजात की मुहिम, पृ.–190

784. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, दोहरी जिन्दगी, पृ.–201

785. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, हनीमून, पृ.–229

786. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, दस रुपये में गुजर कर लूंगी, पृ.–241

787. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, दस रूपये में गुजर कर लूंगी, पृ.–241

788. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, ईर्ष्या और डाह...पृ.–251

789. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, ईर्ष्या और डाह, पृ.–251

790. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, पैसों की जरुरत का अहसास, पृ.–286

791. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, मद्रास–यात्रा, पृ.–333

792. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, सुरक्षा कवच, पृ.–381

793. आपहुदरी, रमणिका गुप्ता, पांव–छू–बाबा, पृ.–401

794. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, भूमिका, पृ.–13

795. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, घर की खोज, पृ.–29

796. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, यौवन की देहरी पर, पृ.–79

797. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, यौवन की देहरी पर, पृ.–86

798. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, यौवन की देहरी पर, पृ.–96

799. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, परम्परा और परिवर्तन, पृ.–99

800. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, परम्परा और परिवर्तन, पृ.–106

801. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, परम्परा और परिवर्तन, पृ.–109

802. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, चाय के बग़ीचों में, पृ.–132

803. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, चाय के बग़ीचों में, पृ.–134

804. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, अमेरिकी आवासन के कुछ खट्टे–मीठे, अनुभव, पृ.–173

805. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, अमेरिकी आवासन के कुछ खट्टे–मीठे, अनुभव, पृ.–174

806. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, यात्राएँ अंतर्जगत की, पृ.–180

807. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, यात्राएँ अंतर्जगत की, पृ.–182

808. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, यात्राएँ अंतर्जगत की, पृ.–187

809. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, प्रकृति के आदिम रिश्ते, पृ.–207

810. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, सलेटी घेरे में, पृ.–211

811. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, सलेटी घेरे में, पृ.–217

812. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, सलेटी घेरे में, पृ.–218

813. आरोह–अवरोह, सुषम बेदी, सलेटी घेरे में, पृ.–222

उपसंहार

उपसंहार

आत्मकथा–साहित्य गद्य की गौंण विधाओं में से एक हैं। हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श पर पिछले पचास वर्षों से लेकर अब तक काफी मात्रा में लिखा एवं पढ़ा गया है। वर्तमान समय में भी स्त्री विमर्श पर कई लेख प्रकाशित हो रहे हैं, किन्तु स्त्री आत्मकथा–साहित्य बीसवीं सदी से प्रकाशन में आया है। ऐसा नहीं है कि इससे पूर्व स्त्री आत्मकथाएँ नहीं लिखी गयी। इससे पूर्व भी बांग्ला भाषा में रससुंदरी, बिनोदिनीदासी, देवीशरद सुंदरी, निस्तारिणी देवी, प्रसन्नमयी देवी, अमिय बाला, सुदक्षिणा सेन एवं मराठी भाषा में रमा बाई रानके, अन्नपूर्णा बाई रानके, लक्ष्मी बाई तिलक, मीनाक्षी साने, पार्वती बाई आठवले इत्यादि का नाम उल्लेखनीय है। हिंदी साहित्य में दुःखिनी बाला, श्रीमती यशोदा देवी, शिवरानी देवी, जानकी देवी बजाज आदि का नाम उल्लेखनीय है। बीसवीं सदी के अन्तिम दशक पर साहित्य की इस गौंण विधा ने अपनी रफ्तार तेज की है। इक्कीसवीं सदी में कई आत्मकथाएँ साहित्यिक पटल पर उभर रही हैं, जिनमें मैत्रेयी पुष्पा (कस्तूरी कुण्डल बसै, गुड़िया भीतर गुड़िया), रमणिका गुप्ता (हादसे, आपहुदरी), मन्नू भण्डारी (एक कहानी यह भी), प्रभा खेतान (अन्या से अनन्या), सुषम बेदी (आरोह–अवरोह), चन्द्रकिरण सौनरेक्सा (पिंजरे की मैना) आदि प्रमुख है।

स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य : एक अनुशीलन (इक्कीसवीं सदी के विशेष सन्दर्भ में) प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध को पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है।

प्रथम अध्याय : आत्मकथा : एक सामान्य परिचय शीर्षक से है, जिसके अन्तर्गत आत्मकथा का परिचय, व्युत्पत्ति, परिभाषा एवं स्वरूप, आत्मकथा लेखन का प्रयोजन, आत्मकथा की विशेषताएँ इत्यादि का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है। 'स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य का इतिहास' के अन्तर्गत आत्मकथा–साहित्य को तीन युगों में विभाजित किया गया है– 1. प्रारम्भिक युग (1876 ई. से 1927 ई.) 2. विकास युग (1928 ई. से 1946 ई.) 3. उत्कर्ष युग (1947 ई. से 2000 ई.) तक। तीनों युगों में लिखी गई विभिन्न आत्मकथाकारों की आत्मकथाओं को उनके युगों एवं प्रकाशन वर्ष के अनुसार लिखने का प्रयास इस शोध–प्रबन्ध में किया गया है। 'स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य : परिचय (इक्कीसवीं सदी के विशेष सन्दर्भ में), मैत्रेयी पुष्पा (कस्तूरी कुण्डल बसै–2002 ई., गुड़िया भीतर गुड़िया–2008 ई.), रमणिका गुप्ता (हादसे–2005 ई.,

आपहुदरी–2014–15 ई.), मन्नू भण्डारी (एक कहानी यह भी–2007 ई.), प्रभा खेतान (अन्या से अनन्या–2007 ई.), सुषम बेदी (आरोह–अवरोह–2014–15) इत्यादि आत्मकथाओं का विशेष तौर पर अध्ययन किया गया है।

द्वितीय अध्याय : इक्कीसवीं सदी के स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य में चेतना के विविध आयाम पर आधारित है, जिसके अन्तर्गत राजनीतिक चेतना, सामाजिक चेतना, आर्थिक चेतना, सांस्कृतिक चेतना इत्यादि को विभिन्न विद्वानों एवं विश्वकोशों में दी गई परिभाषाओं द्वारा समझाने का प्रयास किया गया है। मैत्रेयी पुष्पा, रमणिका गुप्ता, मन्नू भण्डारी, प्रभा खेतान, सुषम बेदी इत्यादि लेखिकाओं के आत्मकथा–साहित्य में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक चेतनाओं से संबंधित उदाहरण दिए गए हैं।

तृतीय अध्याय : इक्कीसवीं सदी के स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य में बोल्ड–लेखन के अन्तर्गत मैत्रेयी पुष्पा, रमणिका गुप्ता, मन्नू भण्डारी, प्रभा खेतान, सुषम बेदी इत्यादि लेखिकाओं के आत्मकथा–साहित्य में बोल्ड–लेखन को विभिन्न उदाहरणों द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

चतुर्थ अध्याय : इक्कीसवीं सदी के स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य में अस्मिता के प्रश्न में स्त्री एवं अस्मिता के अर्थ को समझाते हुए विभिन्न विद्वानों एवं विश्वकोशों में दी गई परिभाषाओं पर विहंगम दृष्टि डाली गई है। इक्कीसवीं सदी की स्त्री आत्मकथाओं में स्त्री–अस्मिता, स्त्री–समानता, स्त्री–अधिकार, स्त्री–स्वतंत्रता, स्त्री–आत्मसम्मान के स्वर उच्च स्वर में मुखरित हुए हैं, जिन्हें उदाहरणों द्वारा समझाया गया है।

पंचम अध्याय : इक्कीसवीं सदी के स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य में शिल्प–विधान के अन्तर्गत भाषा, शैली, शब्द–चयन, कहावतें एवं मुहावरे इत्यादि को उदाहरणों द्वारा लिखा गया है। शिल्प–विधान के विवेचन व विश्लेषण से यह स्पष्ट हुआ है कि इक्कीसवीं सदी की सभी आत्मकथाएँ शिल्प की दृष्टि से रचना के सौन्दर्य को उभारने में सफल ही नहीं हुई अपितु अपनी आत्मकथाओं में छिपी मूल संवेदनाओं को भी सहज एवं प्रभावी रूप से संप्रेषित कर पाई हैं। **उपसंहार** के अन्तर्गत शोध कार्य का मूल्यांकन एवं निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है।

इन सभी आत्मकथाओं में अपने समय की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक स्थितियों का चित्रण बखूबी किया गया है। नारी सदियों से ही उत्पीड़न का शिकार होती रही है। समाज के सभी नियम स्त्री पर ही थोप दिए गए हैं। स्त्री को समाज में वह सम्मान एवं अधिकार नहीं दिए, जो एक मानव को प्रकृति द्वारा प्रदत हैं अपितु समाज की महत्त्वपूर्ण इकाई माने जाने

पर भी प्रतिबंध लगा दिए गए। स्त्री नाम से ही एक अलग जाति बना दी गई है। जिसे 'स्त्री जाति' नाम दिया गया। जब स्त्री समाज की मुख्यधारा से पृथक् रखी गयी, तो अपने परिवार में भी उसे पृथक् ही रखा गया। अपने अस्तित्व को भूलकर वह पति परमेश्वर के पैरों की जूती ही बनी रही। कभी दहेज के नाम पर, तो कभी पति देवता की लाश पर सती धर्म को निभाने के लिए जीवित ही आग में जला दिया जाता रहा है, जिस स्त्री ने समाज के इन नियमों के विरुद्ध अपनी आवाज उठाने का साहस भी किया, तो उसे कुल्छनी, कुल्टा, निर्लज्ज, बेशर्म जैसे अपमानजनक शब्दों से पुकारा गया। समाज में स्त्रियों की गिरती हुई स्थिति को सुधारने में समाज सुधारकों का योगदान विशेष प्रशंसनीय एवं सराहनीय रहा है। जिनमें महात्मा गाँधी, राजाराममोहन राय (ब्रह्म समाज), दयानंद सरस्वती (आर्य समाज), गोविन्द रानाडे (प्रार्थना समाज), स्वामी विवेकानंद (सत्यार्थ प्रकाश), ईश्वरचन्द विद्यासागर, अगारकर (महाराष्ट्र), वीरसिंह लिंगम (आंध्रप्रदेश), नटराज (मद्रास) इत्यादि प्रमुख हैं।

सन् 1955 में 'हिंदू–कोड–बिल' पारित हुआ, जिसमें महिलाओं को कई कानूनी अधिकार मिले। स्त्री–अधिकार की दिशा में उठाया गया यह पहला कदम रहा। 73वें और 74वें संविधान संशोधन के पश्चात् महिलाओं ने राजनीति में सक्रिय रूप से प्रवेश किया। आज हर क्षेत्र में महिलाएँ पुरुषों से बराबरी करती ही नज़र नहीं आ रही है वरन् पुरुषों से भी आगे निकल रही हैं। हम युगों–युगों से स्त्री–अस्मिता, स्त्री–संघर्ष, स्त्री–अधिकार की दास्तानें सुनते–पढ़ते आए हैं। मैत्रेयी, गार्गी, द्रौपदी, मीराँ से लेकर मथुरा और भंवरी तक न जाने कितनी शोषण, अन्याय, उत्पीड़न की शिकार स्त्रियों ने पुरुष–सत्तात्मक समाज के विरुद्ध अपनी अस्मिता, अपने अस्तित्व, अपने अधिकार हेतु लड़ाइयाँ लड़ी हैं और समाज के समक्ष एक मिसाल कायम की हैं। स्त्रियों से उनके अधिकार छीनना पुरुष प्रधान समाज की सोची समझी साज़िश रही है। स्त्री–अधिकारों से हमारा तात्पर्य स्त्री–स्वतंत्रता, स्त्री–समानता, स्त्री–शिक्षा इत्यादि से है। शिक्षा का अधिकार सभी अधिकारों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। शिक्षा ही वह साधन है, जो व्यक्ति को पशु जगत् से अलग करती है आत्माभिव्यक्ति के लिए तैयार करती है। पुरुष समाज स्त्री शिक्षा से भयभीत है क्योंकि वह जानता है कि अगर स्त्री शिक्षित हो जाएगी, तो वह हर अन्याय का प्रतिकार करेगी। पुरुष समाज द्वारा जो तिरस्कार, अपमान, प्रताड़ना उसे दी गयी है, उन्हें पुनः उसी समाज को वापस लौटाएँगी। सदियों से अपनी मौनवृति तोड़ती इक्कीसवीं सदी की ये सभी लेखिकाएँ अपनी अस्मिता, अस्तित्व, अधिकार, आत्मसम्मान हेतु लड़ाईयाँ लड़ रही हैं धारदार हथियार से नहीं अपितु कागज, कलम को अपना हथियार बनाकर। इसी शृंखला में मैत्रेयी पुष्पा, रमणिका गुप्ता, मन्नू

भण्डारी, प्रभा खेतान, सुषम बेदी, कृष्णा अग्निहोत्री, चन्द्रकिरण सौनरेक्सा सरीखी स्त्री आत्मकथाकारों की आत्मकथाओं को पढ़ना जहाँ रुचिकर लगा वहीं, दूसरी ओर उनकी आपबीती को सुनकर, पढ़कर हृदयस्पर्शी संवेदनाओं ने अन्तःस्थल की गहराईयों को छू लिया। इक्कीसवीं सदी में लिखी गई ये सभी आत्मकथाएँ स्त्री चेतना और स्त्री–विमर्श की एक नयी इबारत लिख रही हैं। अपनी निजी जिन्दगी को इस तरह सरेआम बेपर्दा करती आत्मकथा 'कस्तूरी कुण्डल बसै' में नारी की निरक्षरता, गरीबी, दुर्बलता का लाभ उठाकर उसे भेड़, बकरियों की तरह ब्याह मण्डी में बेच दिया गया। 'अन्या से अनन्या' आत्मकथा में प्रभा खेतान आत्मनिर्भर होने पर भी समाज में अपने आत्मसम्मान को पाने के लिए आजीवन संघर्ष करती रहती है। डायनामिक महिला होने के बावजूद भी उन्हें अपने जीवन में अधूरापन महसूस होता है। लोक–लाज एवं समाज में अपनी इज्जत चली जाने के भय से अविवाहित प्रभा गर्भपात कराती है सूनी माँग, सूनी गोद का दुःख ताउम्र ढोती हैं खुलकर अपने आपको डॉ. सर्राफ की प्रेमिका घोषित करती है। बोल्ड और निर्भीक आत्मस्वीकृति होने के बाद भी उन्हें बेशर्म और निर्लज्ज स्त्री कहा गया। पूजा–पाठ, प्रार्थना, बड़ों का आदर–सत्कार करना हमारी भारतीय संस्कृति का ही एक अभिन्न हिस्सा रहा है। बालक अध्ययन करने जब विद्यालय जाते हैं तो प्रार्थना गाते हैं–

अस्तो मा सद्ग्मय
तमसो मा ज्योर्तिग्मय
मृत्यु मा अमृतग्मय

अर्थात् हे! सरस्वती माँ आप मुझे अज्ञान से ज्ञान की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमरता की ओर ले चलें। ज़ाहिर–सी बात है मैत्रेयी भी अपने अध्ययनकाल के दौरान यह प्रार्थना गाती होगी। ज्ञान के उजाले में आने के लिए उन्हें इतनी बड़ी कीमत चुकानी पड़ेगी कभी सोचा भी न होगा। ज्ञान के मार्ग पर चलते हुए यौन उत्पीड़न जैसी अमानवीय पगडंडियों से भी गुजरना होगा उसके बालमन पर कल्पना भी न उभरी होगी। प्रिंसिपल, सगे–सम्बंधियों ने उसकी शुचिता को बार–बार खण्डित किया। इस आत्मकथा में मैत्रेयी शिक्षित होने की सभी कीमतें चुकाती हैं। शिक्षित होकर जब वह कलम उठाती है, तो अपने जीवन के उजले पक्ष के साथ–साथ धुंधले पक्ष को उजागर करती है, जिसे पढ़कर पुरुष समाज उन पर आरोपों की बौछार करने लगता है। मैत्रेयी पुष्पा अपनी कलम से ऐसी–ऐसी कहानियाँ, उपन्यास लिखती हैं, जिसमें वह पुरुष समाज को आईना दिखाती हैं आइने में अपने समाज की सूरत देखकर पुरुष समाज के होश उड़ जाते हैं मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा 'गुड़िया भीतर गुड़िया' समाज के सामने एक गम्भीर

सवाल रखती हैं कि क्या हम भी अपनी बहन, बेटियों को ऐसी शिक्षा देना चाहेंगे, जहाँ उसकी शारीरिक पवित्रता को मैला किया जाए? अपनी आत्मकथा के द्वारा जो सवाल मैत्रेयी पुष्पा ने समाज के सम्मुख रखा है। इक्कीसवीं सदी में भी हम उनके इस प्रश्न पर निरुत्तर है, समय आगे बढ़ रहा है। समय के साथ–साथ समाज भी गति कर रहा है, किन्तु फिर भी कुछ एक क्षेत्रों को छोड़कर कई क्षेत्रों में आज भी स्त्रियों की स्थिति में सुधार की आवश्यकता है।

रमणिका गुप्ता की आत्मकथा 'आपहुदरी' की बात की जाए तो हम देखते हैं कि इक्कीसवीं सदी की सभी स्त्री आत्मकथा लेखिकाओं ने अपने आत्मकथा–साहित्य में अपने जीवन में घटित तमाम घटनाओं के लिए समाज, परिवेश, सामाजिक व्यवस्था पर दोष लगाया है, लेकिन रमणिका गुप्ता ने लोक–लाज की परवाह किए बगैर सारा अपराध, दोष, जीवन में घटित तमाम उचित–अनुचित घटनाओं के लिए समाज या सामाजिक व्यवस्था पर दोष न लगाते हुए स्वयं को ही कटघरे में खड़ा किया हैं, वास्तव में यह उनका साहसिक कदम है। इसलिए रमणिका गुप्ता को आपहुदरी कहा जाता है। 'आपहुदरी' आत्मकथा रमणिका गुप्ता की स्वीकारोक्ति न होकर आलोचनात्मक कृति भी है। रमणिका गुप्ता की पहली आत्मकथा 'हादसे' एक स्त्री के अदम्य साहस, समाज सेवा का दृढ़ निश्चय लेकर राजनीति में प्रवेश करने, स्त्री जीवन की आकांक्षाओं को जीते हुए पिता एवं पति से हटकर अपनी स्वच्छंद पहचान के लिए संकल्पित, महत्त्वाकांक्षी जीवन की चाह को पूरा करने की गाथा है।

सुषमबेदी की आत्मकथा 'आरोह–अवरोह' उनके सुखी एवं सम्पन्न जीवन की सफलता की कहानी बयां करती है। मन्नू भण्डारी (एक कहानी यह भी), प्रभा खेतान (अन्या से अनन्या) रमणिका गुप्ता (आपहुदरी) सरीखी स्त्रियाँ स्वेच्छा से विवाह करती हैं 'चयन की स्वतंत्रता' के अधिकार का पालन करती हैं। मन्नू भण्डारी 'एक कहानी यह भी' आत्मकथा में पति राजेन्द्र यादव के आधुनिकतम पैटर्न सामानान्तर जिन्दगी से परिचित होती है। राजेन्द्र यादव से बिना विवाद के अपने को अलग कर लेती है। शायद यही मन्नू भण्डारी जैसी अन्य स्त्रियों की मुक्ति हैं। यह सभी लेखिकाएँ स्त्री समाज का भविष्य सुधारने, उचित दिशा एवं दशा देने के लिए अपना वर्तमान दाव पर लगा रही हैं।

वर्तमान समय में नारी घर के किसी कौने में सिमट कर नहीं बैठी वरन् वह तो सारी चौखटे लांघकर देश–विदेश तक पहुँच रही हैं। देश की राजनीति से विश्व की राजनीति में योगदान करती उसकी भूमिका समाज, देश में ही नहीं बल्कि पूरे विश्व में महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो रही

है। राष्ट्रीय निर्माण में सहयोग दे रही हैं। शिक्षित नारी मानवी बनकर आत्म–सम्मान से जीने की राह पर चल रही हैं, तो नित नयी चुनौतियाँ उसके समक्ष पैदा हो रही हैं। वर्तमान समय में परिवार विखण्डन, तलाक समाज की बड़ी समस्या बनकर उभर रही हैं।

नारी के जीवन में संघर्ष खत्म ही नहीं हो रहे हैं। या यूं कहे कि नारी जीवन ही अपने आपमें एक संघर्ष है, तो अतिश्योक्ति न होगा। कई बार पुरुषों की हवस का शिकार होती स्त्री को ही आत्महत्या का कदम उठाना पड़ता है। समय बदल रहा है बदलते समय के साथ हम सभी को भी बदलना चाहिए। स्त्रियों के प्रति समाज में सकारात्मक दृष्टिकोणों को विकसित करना चाहिए। यह तभी सम्भव होगा जब हम अपने परिवार में बेटों (पुरुष) को स्त्री सम्मान के लिए जागरुक करेंगे। हमारा छोटा–सा यह प्रयास भविष्य में जाकर सुखद परिणाम देगा। तभी हम निराला द्वारा रचित पंक्ति 'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी, आँचल में है दूध और आँखों में पानी' को पूरी तरह से बदल सकने में सफल हो सकेंगे।

♦ ♦ ♦ ♦

शोध सारांश

शोध–सारांश

पुंसवादी सामाजिक व्यवस्था में स्त्री सदियों से शोषित–उत्पीड़ित होती रही है–मनुष्यता से पदच्युत। स्त्री को मादा रूप में देखा एवं भोगा गया है। वस्तुतः स्त्री का जीवन शोषण, अन्याय, पीड़ा, दुःख की अन्तहीन दास्तां बयां करता है। युगों–युगों से अपनी अस्मिता को खोजती स्त्री अपने अस्तित्व को भूलाकर पति परमेश्वर (पुरुष) की छत्रछाया में जीवनयापन करने को अभिशप्त है। एक स्त्री को अपने जन्मकाल से लेकर मृत्युपर्यन्त तक अनेक बंधनों में जीना–मरना होता है। उसके बोलने, चलने, उठने–बैठने, हंसने–रोने पर भी कई पहरे लगा दिए गए थे, इतना ही नहीं उसके कपड़े पहनने के तौर–तरीकों पर भी अनेक बन्दिशें पुरुष प्रधान समाज द्वारा लगाई गई हैं। स्त्री के अस्तित्व पर मंडराता खतरा उसकी सामाजिक सोच एवं भेदभाव का परिणाम है। यूँ कहें कि स्त्री का जीवन रोक–टोक, बंधन एवं सेंसरशिप का दुःखद एवं विडम्बनात्मक फसाना है। स्त्री को कभी पति परमेश्वर की लाश पर सती होकर अपने जीवन की आहूति देनी पड़ती है, तो कभी तालिबानी नियमों के अन्तर्गत बुरके की सियाह कैद में घुटना होता है। इतना ही नहीं बाजार की चीज़ बनकर जब माल बेचना होता है, तो उसे वस्त्रविहीन भी प्रदर्शित किया जाता है।

इन दुर्गम राहों से गुजरते हुए जो स्त्रियाँ पढ़–लिखकर साहित्यकार बनती हैं उनमें कुछ ऐसी साहसिक स्त्रियाँ भी होती है जो अपने जीवन के संघर्ष, पीड़ा, अन्याय, शोषण के साथ–साथ स्त्री–अस्तित्व, स्त्री–अधिकार, स्त्री–स्वतंत्रता को आत्मकथा–साहित्य के माध्यम से बयां कर एक नई जमीन तैयार करती हैं तथा स्त्री–विमर्श और बोल्ड–लेखन का एक नया अध्याय प्रस्तुत करती हैं। वस्तुतः स्त्री आत्मकथाएँ स्त्री–शोषण, स्त्री–अन्याय के विरुद्ध प्रतिरोध का सच्चा दस्तावेज हैं।

प्रतिभा अग्रवाल, कुसुम अंचल, कृष्णा अग्निहोत्री, पद्मा सचदेव, कौसल्या बैसंत्री, शीला झुनझुनवाला, मैत्रेयी पुष्पा, रमणिका गुप्ता, मन्नू भण्डारी, प्रभा खेतान, चंदकिरण सौनरेक्सा, सुषम बेदी इत्यादि ऐसी महिला लेखिकाएँ हिंदी–साहित्य में हुईं, जिन्होंने अपने आत्मकथा–साहित्य के माध्यम से शोषण, दमन, अन्याय के विरुद्ध जहाँ इतिहास रचा, वहीं स्त्री–अधिकार, स्त्री–स्वतंत्रता, स्त्री–अस्तित्व के शंखनाद का उद्घोष भी किया।

अपने अस्तित्व को तलाशती हुई इक्कीसवीं सदी की हिंदी आत्मकथा लेखिकाएँ यथा मैत्रेयी पुष्पा–कस्तूरी कुण्डल बसै (2002 ई.), गुड़िया भीतर गुड़िया (2008 ई.), रमणिका गुप्ता–हादसे 2005 ई., आपहुदरी (2014–15 ई.), मन्नू भण्डारी–एक कहानी यह भी (2007 ई.),

प्रभा खेतान–अन्या से अनन्या (2007 ई.), सुषम बेदी–आरोह–अवरोह (2014–15) ई. इत्यादि को आधार बनाकर मैंने आलोच्य शीर्षक **"स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य : एक अनुशीलन (इक्कीसवीं सदी के विशेष सन्दर्भ में)"** विषय शोध–प्रबन्ध के अन्तर्गत शोध कार्य को विस्तार देने का प्रयास किया है।

इस शोध कार्य से स्त्री समाज में एक नई चेतना जाग्रत होगी, वहीं दूसरी तरफ याचक की भूमिका का वहन करने वाली नारी इस रूप से बाहर आकर अपने अधिकारों की माँग खुलकर करेंगी। आत्मकथा–साहित्य के माध्यम से स्त्रियों में समानता, स्वतंत्रता, अधिकार, स्वावलम्बन, बोल्डनेस की भावना विकसित हुई है।

"स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य : एक अनुशीलन (इक्कीसवीं सदी के विशेष सन्दर्भ में)" विषय शोध–प्रबन्ध को पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है। जो इस प्रकार से है–

प्रथम अध्याय : (अ) 'आत्मकथा : एक सामान्य परिचय' शीर्षक के अन्तर्गत आत्मकथा का परिचय, व्युत्पत्ति, परिभाषा एवं स्वरूप, आत्मकथा लेखन का प्रयोजन, आत्मकथा की विशेषताएँ इत्यादि पर प्रकाश डाला गया है। आत्मकथा के अर्थ एवं स्वरूप को भली–भाँति समझने के लिए संस्कृत, हिंदी, विभिन्न कोशों, भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं द्वारा समझाने का प्रयास इस शोध–प्रबन्ध में किया गया है। 'आत्मनः विषयेकथ्यते यस्मां सा आत्मकथा' अर्थात् जहाँ स्वयं के संबंध में बात कही जायें, वही आत्मकथा है। आत्मकथा शब्द दो शब्दों के संयोग से मिलकर बना है। 'आत्म+कथा'। 'आत्म' शब्द का अर्थ है– अपना, स्वयं का, मन का, आत्मा का एवं 'कथा' शब्द का अर्थ है–कहानी, दास्तां, गाथा। आत्मकथा अंग्रेजी के 'ऑटोबायोग्राफी' का हिंदीकरण है। आत्मकथा सत्यबयानी के द्वारा आत्मकथाकार के स्वयं के जीवन का चित्रण है। साहित्यकार स्मृतियों को पाथेय बनाकर जब अपनी आत्मा का मंथन करता है, तो उस मंथन से कुछ विशिष्ट तथ्य निकलकर आते हैं इन्हीं तथ्यों को साहित्यकार कलम की सहायता से कागज़ों पर उकेरता है उसे ही आत्मकथा कहा जाता है। आत्मकथा–साहित्य को गद्य की गौंण विधाओं में से एक माना गया है। यहाँ गौंण शब्द से तात्पर्य उस भीतरी सत्य के उद्घाटन से है, जो अब तक प्रकाशन में नहीं आया क्योंकि आत्मकथा–साहित्य में आत्मकथाकार अपने जीवन के अनछुए एवं रहस्यमय सत्यों का भी प्रकाट्य करता है, जो भविष्य में उसके लिए घातक भी हो सकता है। आत्मकथा लेखन सत्य की कसौटी पर किया जाता है।

आत्मकथा शब्द का पहली बार प्रयोग सन् 1796 ई. में हुआ था। इस शब्द का पहला प्रयोग 'हर्डर' नामक व्यक्ति ने किया था, जो जर्मनी के रहने वाले थे। उस समय आत्मकथा को जीवनी के समकक्ष माना गया था, इसलिए इसे 'आत्मजीवनी' नाम से जाना जाता था। 18वीं

शताब्दी के उत्तरार्द्ध और 19वीं शताब्दी के आरम्भ में आत्मकथा को जीवनी से पृथक् करते हुए एक स्वतंत्र विधा के रूप में लिखा एवं पढ़ा जाने लगा। तब से लेकर आज तक आत्मकथा के विषय में कई परिभाषाएँ विद्वानों द्वारा रची जा रही है, जो आत्मकथा–साहित्य के वैशिष्ट्य को इंगित करती है।

जहाँ तक आत्मकथा–साहित्य की उत्पत्ति का प्रश्न है, तो यहाँ कह देना उचित होगा कि वैदिक काल में यत्र–तत्र रूप से ही आत्मकथा के उद्‌भव की मद्धम–मद्धम किरणें बिखरने लगी थीं, किन्तु उस काल में साहित्य की इस विधा का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं था। इसीलिए प्राचीन मनीषियों ने अपने विषय में लिखने के स्थान पर अपने मंत्रों को अपने नाम से समायोजित किया। वेदकाल के पश्चात् यह विधा पाली साहित्य में भिक्षुण–भिक्षुणी की गाथाओं के रूप में प्राप्त होने लगी। इस दृष्टि से पाली साहित्य से आत्मकथा की विकास–यात्रा आरम्भ होती है।

आत्मकथा के छः तत्त्व प्रमुख माने गए हैं–विषय–वस्तु, निष्पक्षता, वैयक्तिकता (व्यक्तित्त्व–चित्रण), ऐतिहासिक तथ्य, भाषा–शैली, उद्देश्य। किसी भी कार्य को करने के पीछे व्यक्ति का कोई न कोई निश्चित प्रयोजन होता है इसी प्रकार आत्मकथा लेखन का प्रयोजन यश की प्राप्ति, लोकमंगल की कामना, अर्थ की प्राप्ति, व्यवहार–ज्ञान, आत्मशांति, कान्ता सम्मित (आत्मकथा गुरु की भाँति हमारे अवगुणों को दूर कर सही मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करती है) इत्यादि है।

आत्मकथा–साहित्य की कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं, जो उसे गद्य–साहित्य की अन्य विधाओं (जैसे कहानी, नाटक, उपन्यास इत्यादि) से उच्च कोटि का स्थान प्रदान करती है। इसका प्रमुख कारण यह भी है कि गद्य की अन्य विधाओं में किसी दूसरे व्यक्ति को केन्द्र में रखकर घटना एवं कहानी का ताना–बाना तैयार किया जाता है इस प्रकार की रचनाओं में हृदयस्पर्शी चित्रण, संवेदनाएँ इत्यादि तो महसूस होती हैं, किन्तु वास्तविकता एवं सत्य की कसौटियों का अभाव बना ही रहता है। जबकि आत्मकथा–साहित्य में आत्मकथाकार स्वयं के जीवन का आत्म–विश्लेषण करता है, पथ–प्रदर्शक के रूप में समाज एवं राष्ट्र के लिए एक मॉडेल, प्रतिमान प्रस्तुत करता है, यहाँ पर भी उसका कवि हृदय जनकल्याण, परोपकार जैसे भावों से ओत–प्रोत रहता है क्योंकि आत्मकथाकार अपने जीवन के सभी पक्षों (श्वेत पक्ष, श्याम पक्ष) का उद्‌घाटन सत्य के तराजू पर तौलते हुए करता है, इसके पीछे लेखक का भाव सिर्फ़ और सिर्फ़ यही रहता है कि इससे समाज प्रेरणा ले सके, जो गलती लेखक ने अपने जीवन काल में की, उसे पाठकजन न दोहराए।

(आ) – स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य का इतिहास के अन्तर्गत आत्मकथा–साहित्य को तीन युगों में विभाजित किया गया है। 1. प्रारम्भिक युग (1876 ई. से 1927 ई.), 2. विकास युग (1928 ई. से 1946 ई.), 3. उत्कर्ष युग (1947 ई से 2000 ई.) तक।

आधुनिक हिंदी गद्य का सर्वप्रथम उदय भारतेन्दु हरिशचंद से हुआ है। खड़ी बोली हिंदी–गद्य के उत्थान करने से लेकर गद्य के स्वरूप निर्धारण करने, हिंदी–गद्य को नवीन मार्ग पर ले जाने तक का महत्त्वपूर्ण कार्य भारतेन्दु हरिशचन्द एवं भारतेन्दुयुगीन रचनाकारों ने किया है। भारतेन्दु मण्डल के कवियों में बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमधन', प्रताप नारायण मिश्र, ठाकुर जगमोहन सिंह, अम्बिकादत्त व्यास, राधाकृष्णदास, नवनीत चतुर्वेदी, गोविन्द गिल्लाभाई, राधाचरण गोस्वामी, दुर्गादत्त व्यास इत्यादि का नाम उल्लेखनीय है। भारतेन्दु युग की सबसे बड़ी उपलब्धि खड़ी बोली हिंदी–गद्य रही है, इसलिए इस युग को गद्यकाल के नाम से भी जाना गया। भारतेन्दु हरिशचन्द ने न केवल खड़ी बोली हिंदी–गद्य को विकसित किया, अपितु गद्य–साहित्य के क्षेत्र में नयी–नयी रचनाएँ जैसे रिपोर्ताज, संस्मरण, रेखाचित्र, आत्मकथा पर लेखन कार्य के साथ–साथ नाटक, उपन्यास, कविता, निबन्ध इत्यादि भी लगातार लिखते रहे हैं। उनके लेखन में राष्ट्रप्रेम, देशभक्ति, मातृभूमि से प्रेम, जन–कल्याण, समाजसुधार, पुनर्जागरण का स्वर उच्चस्वर में मुखरित हुआ है। भारतेन्दु ने 'हिंदी समारोह' के मंच से हिंदी भाषा पर भाषण देते हुए कहा था– **'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति के मूल'**। उक्त पंक्ति से ही उनका भाषा प्रेम स्पष्ट झलकता हुआ दिखाई देता है। हिंदी आत्मकथा–साहित्य का उदय भी इसी काल से मानना समीचीन है। हिंदी की पहली गद्य आत्मकथा भारतेन्दु बाबू हरिशचन्द द्वारा रचित **'कुछ आपबीती कुछ जग बीती'** है। यह आत्मकथा सन् 1876 ई. में लिखी गई थी। इस आत्मकथा का पहली बार प्रकाशन 'कवि वचन सुधा' नामक मासिक पत्रिका में भाग–8 सन् 22 वैशाख, कृष्ण 4, 1932 संवत् में हुआ। यह आत्मकथा एक अपूर्ण एवं अधूरी आत्मकथा है, जिसे भारतेन्दु दो पृष्ठ में ही लिख पाए। भारतेन्दु बाबू हरिशचन्द को यूं ही हिंदी–गद्य का जनक नहीं माना गया। हिंदी–गद्य के विकास में कविवचन सुधा, हरिशचंद्र मैगजीन, बाला–बोधिनी, हरिशचंद्र चंद्रिका इत्यादि पत्रिकाओं के प्रकाशन ने हिंदी–गद्य को एक सशक्त एवं समृद्ध दिशा प्रदान की है। खड़ी बोली हिंदी–गद्य के अभ्युदय में भारतेन्दु जी का योगदान अतुलनीय एवं अविस्मरणीय रहेगा।

हिंदी साहित्य की पहली एवं पूर्ण आत्मकथा बनारसीदास जैन द्वारा विरचित **'अर्द्धकथानक'** को माना गया है। यह आत्मकथा सन् 1641 ई. में लिखी गई थी। इस आत्मकथा की सबसे बड़ी पहचान इसका पद्य रूप में लिखा जाना था। इस दृष्टि से यह एक पद्यात्मक आत्मकथा थी, जिसमें कुल 675 पद संकलित थे। इस आत्मकथा का पहली बार प्रकाशन जुलाई 1943 ई. में 'हिंदी–ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, 'बम्बई' से हुआ। इस आत्मकथा का सर्वप्रथम संपादन श्री नाथूराम प्रेमी ने किया था।

हिंदी साहित्य में आत्मकथा लेखन की परम्परा का सूत्रपात इस काल की ही देन है। भारतेन्दु युग तक हिंदी–गद्य का स्वरूप निर्धारित हो गया था, किन्तु अभी भी गद्य–साहित्य में सुधार की आवश्यकता थी। भारतेन्दु जी के हिंदी–गद्य के परिमार्जन का कार्य आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने किया। सन् 1903 से 1920 तक वह जानी–मानी 'सरस्वती पत्रिका' से जुड़े रहे। द्विवेदी जी ने ही गद्य–पद्य दोनों भाषाओं की शैलियाँ एवं वर्तनी को आधुनिक बनाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। द्विवेदी युग के पश्चात् छायावाद युग का आरम्भ हुआ। इस काल में भारतीय जन मानस को ही पलटकर रख दिया, जनसंघर्ष से राष्ट्रीय प्रेम की भावना विकसित होने लगी। सामाजिक कार्यों में लोगों की भागीदारी दिनोंदिन बढ़ने लगी। इस युग में अनेक साहित्यकारों, स्वतंत्रता सेनानियों ने अपनी आत्मकथाएँ लिखी। इसी शृंखला में यदि उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद की चर्चा न की जाए, तो बात अधूरी ही रहेगी। प्रेमचंद ने सितम्बर सन् 1931 में 'हंस' का एक विशेषांक 'आत्मकथांक' शीर्षक से प्रकाशित किया। इस विशेषांक में कुल 32 रचनाएँ छपी थीं। प्रेमचंद ने उन्हें 'आत्मकथा' संज्ञा से अभिहित किया। जो आत्मकथा–साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

राजेन्द्र यादव जब हंस के संपादक बने, तो उन्होंने इसका पुनः प्रकाशन 'हंस आत्मकथांक विशेषांक' से वर्ष 2008 ई. में दिल्ली से करवाया। इस विशेषांक में कुल 52 आत्मकथाएँ संकलित हैं। इस विशेषांक की सबसे बड़ी उपलब्धि यही है कि इसमें 20 आत्मकथाएँ लेखिकाओं की संकलित है। राजेन्द्र यादव द्वारा रचित आत्मकथा 'देहरि भई विदेश' (2005 ई.) समूचे हिंदी आत्मकथा–साहित्य की एक अमूल्य निधि है। अम्बिकादत्त व्यास (निजवृतान्त, 1901 ई.), स्वामी दयानंद (कल्याण मार्ग का पथिक, 1924 ई.), महावीर प्रसाद द्विवेदी (मेरी जीवन रेखा, 1933 ई.), भवानीदयाल संन्यासी (प्रवासी की कहानी, 1939 ई.), डॉ. श्यामसुन्दरदास (मेरी असफलताएँ, 1946 ई.), डॉ. राजेन्द्र प्रसाद (आत्मकथा, 1947 ई.), सत्यदेवपरिव्राजक (स्वतंत्रता की खोज में, 1951 ई.), देवेन्द्र सत्यार्थी (चाँद सूरज के बीरन, 1952 ई.), डॉ. हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथा चार खण्डों में प्रकाशित एक स्मृति–यात्रा–यज्ञ है। बच्चन की क्या भूलू क्या याद करुँ, 1969 ई., नीड़ का निर्माण फिर, 1970 ई., बसेरे से दूर 1977 ई., दस द्वार से सोपान तक, 1985 ई. इत्यादि सर्वश्रेष्ठ पुरुष आत्मकथाएँ हैं। महिला आत्मकथा–साहित्य का सर्वप्रथम सूत्रपात भी बांग्ला भाषा में 'आमान जीबोन' (1876 ई.) से हुआ है। इसकी लेखिका 'रससुंदरी देवी' हैं। इस लिखित आत्मकथा में स्त्री जीवन की बेहद गोपनीय एवं निजत्त्व भरी जिन्दगी की दास्तां को न केवल सार्वजनिक किया, अपितु अपनी प्रतिरोधी चेतना भी समय–समय जाहिर करती रही हैं। यह आत्मकथा स्त्री असमानता एवं स्त्री अन्याय का कच्चा चिट्ठा खोलती है। बांग्ला भाषा के बाद मराठी भाषा में भी महिलाओं ने आत्मकथा लिखने का साहस किया। बांग्ला एवं मराठी भाषाओं के बाद अनेक

भाषाओं में आत्मकथाएँ लिखने का कार्य बड़ी तेजी से हो रहा है। बांग्ला भाषा में रससुंदरी देवी की आत्मकथा के पश्चात् बिनोदिनीदासी (आमार कोथा, 1912 ई.), देवी शरद सुंदरी (आत्मकोथा, 1913 ई.), निस्तारिणी देवी (सेकाले कोथा, 1913 ई.), प्रसन्नमयी देवी (पूर्वकोथा, 1913 ई.), अमियबाला (अमियबाला की डायरी, 1929 ई.), सुदक्षिणा सेन (जीवन स्मृति, 1932 ई.) इत्यादि प्रमुख हैं। मराठी भाषा में लिखी गई आत्मकथाओं में रमाबाई रानके (आमच्या आयुष्यांतीत कांही आठवणी–1910 ई.), अन्नपूर्णा बाई रानके (स्मृति तरंग–1931 ई.), लक्ष्मी बाई तिलक (स्मृति चित्र–1934 ई.) मीनाक्षी साने (जीवन नृत्य–1934 ई.), पार्वतीबाई आठवले (माझी कहानी–1936 ई.) इत्यादि प्रमुख हैं।

हिंदी भाषा में प्रथम ज्ञात एवं लिखित महिला आत्मकथा **'दुःखिनी बाला'** द्वारा रचित **'सरला : एक विधवा की आत्मजीवनी'** है। यह आत्मकथा विधवा महिला के जीवन दर्द को बयां करते हुए संघर्षमय जीवन के अपराजेय की गाथा है। पुरुष प्रधान समाज के प्रति विद्रोह का भाव इस आत्मकथा में स्थान–स्थान पर नज़र आता है। 'स्त्री–दर्पण' पत्रिका में जुलाई सन् 1915 से मार्च, 1916 तक के अंकों में 'आत्मजीवनी का धारावाहिक रूप' से प्रकाशन भी हुआ था।

इस आत्मकथा के बाद हिंदी भाषा में महिला आत्मकथा–साहित्य पर लेखन कार्य न के बराबर हुआ। 1932 में 'हंस' एक विशेषांक 'आत्मकथांक' शीर्षक से प्रकाशित हुआ, जिसमें श्रीमती यशोदा देवी और शिवरानी देवी द्वारा लिखी गई आत्मकथाएँ प्रकाशित हुई थीं। हिंदी साहित्य में स्त्री आत्मकथा–साहित्य पर लेखन लगभग चार दशक बाद जानकी देवी बजाज की आत्मकथा 'मेरी जीवन यात्रा–1956 ई. से हुआ। यह आत्मकथा बोलकर लिखाई गई थी। श्री रिषभ देव रांका इसके लिपिक थे। बीसवीं सदी के अन्तिम दशक तक आते–आते स्त्री हिंदी आत्मकथा–साहित्य पर लेखन कार्य की रफ़्तार तेज हुई है और एक के बाद एक महिला आत्मथाएँ प्रकाशन में आ रही है। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक में स्त्री आत्मकथाओं के साथ ही साथ दलित आत्मकथाएँ विशेष रूप से प्रकाशन में आई है। प्रतिभा अग्रवाल (दस्तक जिन्दगी की, 1990 ई., मोड़ जिन्दगी का 1996 ई.), कुसुम अंसल (जो कहा नहीं गया–1996 ई.), कृष्णा अग्निहोत्री (लगता नहीं है दिल मेरा–1997 ई.), पद्मा सचदेव (बूँद बावड़ी–1999 ई.), शीला झुनझुनवाला (कुछ कहीं कुछ अनकही– 2000 ई.), इत्यादि महत्त्वपूर्ण आत्मकथाएँ हैं।

तीनों युगों में लिखी गई विभिन्न आत्मकथाकारों की आत्मकथाओं को उनके युगों एवं प्रकाशन वर्ष के अनुसार लिखने का प्रयास इस शोध–प्रबन्ध में किया गया है।

(इ) 'स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य : परिचय (इक्कीसवीं सदी के विशेष सन्दर्भ में)', मैत्रेयी पुष्पा (कस्तूरी कुण्डल बसै–2002 ई., गुड़िया भीतर गुड़िया–2008 ई.), रमणिका गुप्ता (हादसे–2005 ई.,

आपहुदरी 2014–15 ई.), मन्नू भण्डारी (एक कहानी यह भी–2007 ई.), प्रभा खेतान (अन्या से अनन्या–2007 ई.) सुषम बेदी (आरोह–अवरोह 2014–15 ई.), इत्यादि आत्मकथाओं का विशेष तौर पर अध्ययन किया गया है।

मैत्रेयी पुष्पा ने दो आत्मकथाएँ लिखी है 1. कस्तूरी कुण्डल बसै (2002 ई.), 2. गुड़िया भीतर गुड़िया (2008 ई.)। 'कस्तूरी कुण्डल बसै' आत्मकथा मैत्रेयी पुष्पा द्वारा अपनी माँ कस्तूरी के जीवन दर्द को वाणी देती है आजादी से पूर्व भारत का चित्रण, गौरों के अत्याचार, जमींदार के शोषण, शहरी एवं ग्रामीण परिवेश, मूल्यों का दोहन इस आत्मकथा में पग–पग पर परिलक्षित होता है। इस आत्मकथा में नारी संवेदना का चित्रण मैत्रेयी पुष्पा ने बखूबी उकेरा है, जिस समाज में परम्पराओं के गहरें बंधन हैं, उसी समाज में कस्तूरी जैसी साहसी एवं निर्भीक किशोरी अपने अधिकारों की रक्षा करने के लिए अकेले ही समाज से लड़ती रहती है। परम्परागत विवाह पद्धति का खण्डन करते हुए सतीप्रथा जैसी सामाजिक कुरुतियों का मुहँतोड़ जवाब देती है। स्त्री शिक्षा का मार्ग खोजते हुए स्त्री मुक्ति की संकल्पना को साकार रूप प्रदान करती है। भारत में आजादी के बाद भी गरीबी, भूखमरी, बेरोजगारी जस की तस ही बनी रही। आजाद भारत में भी स्त्रियों को मवेशियों की तरह खरीदा एवं बेचा जा रहा था। कलशियों को बेचने पर भी जब लगान नहीं चुक पाया, तो कस्तूरी को उसकी ही माँ ने निर्मोही होकर बेच दिया। नियति का यह कैसा खेल है कि जिस घर लड़की पैदा होती है, कभी–कभी उस घर में भी उसके लिए जगह नहीं बचती, कुछ ऐसी ही दास्तां है कस्तूरी के जीवन की, दिन–रात खेतों में श्रम करती है, परिजनों का पेट पालती है, लेकिन वही परिजन उसे बीमार एवं अधेड़ पुरुष को मात्र आठ सौ चाँदी के सिक्कों के लालच में बेच देते हैं। भौतिकवादी संस्कृति की चकाचौंध मानवीय संवेदना के सारे भ्रम टूट जाते हैं बीमार पति भी जब मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, तो कस्तूरी को सती धर्म का पालन करते हुए पति के साथ जिन्दा ही चिता में जलाने का फरमान समाज की ओर से लागू होता है, किन्तु यहाँ पर भी कस्तूरी अपने अदम्य साहस का परिचय देते हुए धर्म के ठेकेदारों से जा भिड़ती है, ससुर की सेवा करते हुए अपने परिवार का पालन पोषण करती है, तो साक्षात् माँ अन्नपूर्णा का रूप बनकर, अन्न के भण्डार से घर को भर देती है। शिक्षित होकर ज्ञान प्राप्त करती है, तो 'महिला मंगल योजना' में नौकरी पा लेती है। स्त्री शिक्षा की अलख जगाती कस्तूरी को अपनी ईमानदारी की कीमत जीवन भर चुकानी पड़ती है। जिस समाज में दहेज एक सामाजिक प्रथा के रूप में शामिल है, उसी समाज में कस्तूरी अपनी बेटी मैत्रेयी का ब्याह करती है। जिस समाज में शादी–विवाह जैसे जटिल कार्य जहाँ पुरुष वर्ग के कार्यों में शामिल हैं, वहीं यह सब कार्य कस्तूरी जैसी नारी द्वारा कर पाना ही सिद्ध करता है कि कस्तूरी एक साहसिक महिला ही नहीं है अपितु कर्मण्ठ एवं बोल्ड नारी भी है।

क्रान्तिकारी लेखिका मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथात्मक कृति भाग–2 'गुड़िया भीतर गुड़िया' (2008 ई.) सम्पूर्ण स्त्री आत्मकथा–साहित्य की एक अद्वितीय रचना है। इस आत्मकथा में मैत्रेयी पुष्पा ने अपने बाल्यकाल से लेकर लेखिका बनने के मार्ग में आने वाली बाधाओं का वर्णन किया है। इस आत्मकथा में जहाँ एक और लोकजीवन के विभिन्न दृश्य प्रतिबिम्बित हुए हैं, वहीं दूसरी ओर ग्रामीण परिवेश, सामाजिक समस्याएँ एवं पारिवारिक सम्बन्धों पर गहन चिंतन व्यक्त हुआ है। तत्कालीन परिवेश का यथार्थ चित्रण सांस्कृतिक भिन्नताएँ इत्यादि के भी दिग्दर्शन होते हैं। आदिवासी लेखन की महान लेखिका रमणिका गुप्ता की आत्मकथा भाग–1 **'हादसे'** (2005 ई.) में हजारी बाग के संघर्षों के बाद हुए संघर्षों की अपराजेय की गाथा है। जिसमें बिहार (झारखण्ड) के कोयला खदानों के संघर्ष, सामन्तवाद और लोकतंत्र के खूनी द्वन्द्व, राजनैतिक, चालबाजियाँ, आदिवासी महिलाओं का शोषण, उत्पीड़न, महिला यौन शोषण, भू–माफियाओं, मिल मालिकों, राजनेताओं की मिली भगत, काला बाजारियों की पोल खोलती है। **'एक कहानी यह भी'** (2007 ई.) हिन्दी साहित्य की स्त्री आत्मकथात्मक कृति है। जिसमें स्त्री जीवन की घुटन, अन्याय, पति की संकुचित मानसिकता, व्यवहारिक जीवन के दर्द को बयां किया गया है। ये दर्दनाक कहानी हैं। जिसमें लेखिका के भोगे हुए जीवन का सच यथार्थ के धरातल पर प्रकट हुआ है। इस आत्मकथा में मन्नू भंडारी ने अपने कमजोर आत्मविश्वास को हीनता–ग्रन्थि के संदर्भ में रखा है। मन्नू भंडारी ने अपने जीवन काल में कई कहानियाँ, उपन्यास, नाटक इत्यादि लिखें। राजनीतिक चेतना से सम्पन्न 'महाभोज' उनके द्वारा लिखे गए सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में से एक है। 'आपका बंटी' बाल मनोविज्ञान का बेहतरीन उदाहरण है। एक सफल लेखिका के तौर पर हिन्दी साहित्य जगत में उनकी अपनी स्वच्छन्द पहचान है। वह किसी कुंठित लेखनी का करिश्मा नहीं। 'एक कहानी यह भी' में मन्नू भंडारी एक स्त्री के संघर्ष, पीड़ा एवं स्त्री अस्मिता, स्त्री स्वतंत्रता, स्त्री स्वावलम्बन को पिरोए स्त्री विमर्श के अनेक आयामों को प्रस्तुत करती है। प्रभा खेतान की माइलस्टोन रचना **'अन्या से अनन्या'** (2007 ई.) संपूर्ण स्त्री आत्मकथा–साहित्य की एक बेमिसाल रचना है। प्रभा खेतान ने 'अन्या से अनन्या' आत्मकथा में अपने निजी जीवन का वास्तविक चित्रण नग्न यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत किया है। एक साहसिक गाथा के रूप में जहाँ इस आत्मकथा को अकुंठ प्रशंसाएँ मिलीं, वहीं बेशर्म और निर्लज्ज स्त्री द्वारा अपने आपको चौराहे पर नंगा करने की कुत्सित बेशर्मी का नाम भी इसे दिया गया है। एक स्त्री द्वारा अपने प्यार, एबॉशर्न, लिव इन रिलेशनशिप, प्रेम से इतर अन्य पुरुष से संबंध, पीरियड, मेनोपॉस इत्यादि स्त्री की जैविक क्रियाओं को इस तरह सरेआम उजागर करना, किसी भी स्त्री के लिए कोई आम बात नहीं है। यह एक साहसिक कदम है।

आदिवासी–विमर्श की महान लेखिका रमणिका गुप्ता की आत्मकथा भाग–2 **'आपहुदरी'** (एक जिद्दी लड़की की आत्मकथा 2014–15) ई. स्त्री आत्मकथा की ही नहीं बल्कि हिन्दी साहित्य की सद्यः प्रकाशित आत्मकथा है। 'आपहुदरी' में कथा लेखिका के जीवन में घटित तमाम घटनाओं, टकराहटों, संघर्षों एवं भटकावों का आंकलन है। यह आत्मकथा लेखिका के जीवन के दर्द को बयां करते हुए सामन्ती समाज की पोल खोलती है। सुषम बेदी–**'आरोह–अवरोह'** (2014–15 ई. पू.) हिन्दी साहित्य की एक अद्वितीय स्त्री आत्मकथात्मक कृति है। वर्तमान समय की स्त्री आत्मकथात्मक लेखिकाओं में सुषम बेदी की रचना आरोह–अवरोह आत्मकथा के लेखन क्षेत्र में एक सशक्त कृति है। अपनी आत्मकथा आरोह–अवरोह में सुषम बेदी ने स्वयं के जीवन, जीवन से जुड़े लोगों, तमाम घटनाओं, अमेरिका एवं पाश्चात्य देशों के प्रवास के दौरान विभिन्न संस्कृतियों को बहुत बारीकी से जानने समझने के साथ–साथ भारतीय एवं पाश्चात्य संस्कृतियों, रीति–रिवाज, वेश–भूषा, रहन–सहन, तीज–त्यौहार, भाषागत वैविध्य इत्यादि का वर्णन किया है।

द्वितीय अध्याय : 'इक्कीसवीं सदी के स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य में चेतना के विविध आयाम' पर आधारित है। जिसके अन्तर्गत राजनीतिक चेतना, सामाजिक चेतना, आर्थिक चेतना, सांस्कृतिक चेतना पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। सर्वप्रथम चेतना के विविध आयामों को विविध विद्वानों एवं विश्वकोशों में दी गई परिभाषाओं द्वारा समझाने का प्रयास किया गया है। मैत्रेयी पुष्पा रमणिका गुप्ता, मन्नू भण्डारी, प्रभा खेतान, सुषम बेदी इत्यादि लेखिकाओं के आत्मकथा–साहित्य में चेतनाओं के उदाहरण दिए गए हैं। संस्कृत एवं हिन्दी साहित्य में 'चेतना' शब्द भारतीय दर्शनशास्त्र से लिया गया है। 'चेतना' को अंग्रेजी में 'अवेयरनेस' कहते हैं। 'चेतना' मानव मस्तिष्क, का एक विशेष गुण है। चेतना के अन्य अर्थों में ही बुद्धि, ज्ञान, बोध, चैतन्य, जागरुकता, मनोवृति, सुधि इत्यादि शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है। चेतना का स्तर बहुत गहरा है। इसे हम किसी शब्द या परिभाषा में नहीं बांध सकते हैं। चेतना शब्द का गहरा सम्बन्ध 'आत्मा' का समानार्थक भी होता है। चेतना बाहरी जगत की ओर अधिक सक्रिय रहती है चेतना जागृत मन की जागृत अवस्था से होते हुए मन की तीन अवस्थाओं में गतिशील रहती है चेतन, अवचेतन तथा अचेतन। **राजनीतिक चेतना** – भारत में स्त्री–मुक्ति का सूत्रपात 19वीं शताब्दी से प्रारम्भ माना गया है। यहाँ से ही समाज सुधार आन्दोलनों की शुरुआत भी होती है। भारतीय समाज में स्त्री शिक्षा वैषम्य के कारण ही स्त्री का राजनीतिक क्षेत्र में आगमन बहुत लम्बे समय के पश्चात् हुआ है। 19वीं सदी के मध्य में स्त्री शिक्षा पर शिक्षाविदों एवं समाज सुधारकों ने अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किए। भारत में स्त्री–मुक्ति, स्त्री–जागरण की दिशा में पाश्चात्य महिलाओं का भी विशेष योगदान रहा है। 20वीं सदी तक आते–आते स्त्री जाग्रत हो चुकी थी। वह अपनी अस्मिता, आत्म–सम्मान एवं अधिकारों को पाने के लिए खुलकर राष्ट्रीय आन्दोलनों में भाग लेकर समयानुसार अपनी

उपस्थिति दर्ज़ करवाती रही है। स्वतंत्र भारत में महिलाओं को मताधिकार जैसे कई संवैधानिक अधिकार भी प्राप्त हुए। यहीं से राजनीति के क्षेत्र में महिलाओं के लिए प्रवेश द्वार खुले। भूतकाल में कई महिलाएँ ऐसी भी हुई जिन्होंने भारतीय राजनीति में कई नए–नए आयाम भी प्रस्तुत किए हैं, जिनमें स्वर्गीय इंदिरा गाँधी (प्रथम महिला प्रधानमंत्री), श्रीमती प्रतिभा पाटिल (प्रथम महिला राष्ट्रपति), फातिमा बी, विजय लक्ष्मी पंडित इत्यादि का योगदान सराहनीय हैं। स्त्री हिंदी आत्मकथा–साहित्य में राजनीतिक संदर्भों में नारी की स्थिति कुछ खास नहीं रही हैं। वे स्त्रियाँ जो अपने पारिवारिक जीवन की चौखट को लांघकर परम्पराओं से विद्रोह करते हुए राजनीति में प्रवेश करती हैं, उन्हें न केवल अपने समाज से अपितु घर–परिवार से भी नाता तोड़ना पड़ा है। राजनीति में प्रवेश करने वाली स्त्री को समाज हेय दृष्टि से देखता आया है। जहाँ तक स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य में राजनीतिक चेतना का प्रश्न है, यहाँ यह कह देना उचित होगा कि स्त्री आत्मकथा–साहित्य में स्त्री–विमर्श की अनुगूंज ज्यादा है, राजनीतिक चेतना की कम। इस दृष्टि से रमणिका गुप्ता की आत्मकथा में राजनीतिक चेतना का स्वर बुलंद है। अन्य महिला, आत्मकथाकारों के साहित्य में राजनीतिक चेतना के स्वर नहीं के बराबर व्यक्त हुए हैं। प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, मन्नू भण्डारी, रमणिका गुप्ता, सुषम बेदी इत्यादि महिला आत्मकथा लेखिकाएँ परतंत्र भारत में जन्मी हैं। अपने समय से लेकर अब तक की देश की राजनीति एवं राजनीतिक घटनाओं की साक्षी भी रही हैं। 1942 का स्वतंत्रता संग्राम हो या 1947 का आज़ाद भारत, भारत–चीन युद्ध हो या इन्दिरा गाँधी द्वारा देश में आपातकाल की घोषणा, यह सभी लेखिकाएँ स्वयं भी भुक्तभोगी रही हैं। देश प्रेम की भावना इन सभी आत्मकथा नायिकाओं के आत्मकथा–साहित्य में देखने को मिलती हैं। रमणिका गुप्ता की देश प्रेम की भावना को उनकी कविता की इन पंक्तियों द्वारा समझा जा सकता है। "रंग–बिरंगी तोड़ चूड़ियाँ हाथों में तलवार गहूँगी, मैं भी तुम्हारे संग चलूँगी मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी।" **सामाजिक चेतना** – समाज की अनवरत गतिशील प्रक्रिया में प्रवृत रहते हुए बुद्धिविवेक से सम्पन्न प्राणी को पशुजगत से पृथक् करती है मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज एक गत्यात्मक प्रक्रिया है। सामाजिक चेतना, सामाजिक जागरुकता का ही पर्याय है, इक्कीसवीं सदी की आत्मकथा लेखिकाएँ अपने अस्तित्व की तलाश करते हुए समाज एवं सामाजिक रूढ़ियों से मुक्त होने के लिए लम्बा संघर्ष करती हैं। अपने सांवले रंग, दुबली–पतली, मरियल, असुन्दर होने के कारण अपने ही माता–पिता द्वारा भाई–बहनों से तुलना, ताने–उलाहने, उपेक्षा, प्रताड़ना, तिरस्कार के विष को झेलते हुए बड़ी होती हैं। असुन्दर होने के कारण, माता–पिता के लाड़ प्यार को पाने के लिए तड़पती है। इक्कीसवीं सदी की हिन्दी आत्मकथा लेखिकाएँ स्वेच्छा से विवाह करती हैं, विवाह को ही अपनी मुक्ति का मार्ग समझकर अब तक की जिन्दगी उसके उत्पीड़न से मुक्त हो जाना चाहती हैं, किन्तु विवाह

का भीतरी जीवन इतना कष्टमय होगा, नहीं जानती थी। मन्नू भण्डारी पिता के विरुद्ध जाकर राजेन्द्र यादव से विजातीय विवाह करती हैं। राजेन्द्र यादव की शारीरिक कमी को भी नज़रअंदाज कर देती हैं। राजेन्द्र यादव का विवाह पश्चात् मन्नू भण्डारी के साथ अमानवीय व्यवहार, विवाहेत्तर संबंध, समानान्तर जिन्दगी जीने का दुःख झेलती हैं, वहीं सफल व्यवसायी महिला के रूप में वैश्विक स्तर पर अपनी पहचान बना चुकी प्रभा खेतान बाल–बच्चेदार पुरुष डॉ. सर्राफ के धुआँधार प्रेम में पागल हैं। अपना सारा धन, जीवन दाव पर लगा देती हैं, फिर भी डॉ. साहब उनके चरित्र को लेकर आशंकित रहते हैं, पुरुष समाज में तीन बेटियों को जन्म देने के कारण जगह–जगह अपमानित होती मैत्रेयी पुष्पा परम्परागत स्त्री मर्यादा के नाम पर पत्नी रूप के कठोर बंधनों में जकड़ी वंशनाशिनी जैसे आरोप से घिर मानसिक संतापों को निरन्तर झेलती रहती हैं। रमणिका गुप्ता सामाजिक नियमों एवं परम्परा के प्रति विद्रोह करती हैं, जो समाज उन्हें सुरक्षा का अनुभव नहीं करवाता। उस समाज के द्वारा बनाए गए सभी स्त्री विषयक नियम, वर्जनाएँ तोड़ती रहती हैं। इच्छानुसार जीवन जीकर अपनी महत्त्वकांक्षाओं, लालसाओं को पूरा करती हैं। इक्कीसवीं सदी की सभी आत्मकथा लेखिकाएँ अपनी रचनाओं के माध्यम से अनमेल विवाह, बाल विवाह, सती प्रथा जैसी सामाजिक कुरीतियों एवं अंधविश्वासों को शिक्षा के जरिए दूर कर सामाजिक चेतना जागृत करती हैं। **आर्थिक चेतना –** 19वीं सदी के मध्य में स्त्री शिक्षा की दिशा में कई महत्त्वपूर्ण कार्य समाजसुधारकों द्वारा किए गए। जिनमें प्रमुख हैं, राजाराम मोहनराय द्वारा 'ब्रह्मसमाज' (1828 ई.), बंगाल में महादेव गोविंद रानाडे द्वारा 'प्रार्थना समाज' (1870 ई.) बम्बई में, स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा 'आर्य समाज' पंजाब एवं उत्तरी भारत में इसके अतिरिक्त स्वामी विवेकानन्द, ईश्वरचंद विद्यासागर, अगारकर (महाराष्ट्र), वीरसिंह (आंध्र प्रदेश), नटराजन लिंगम (मद्रास) इत्यादि का नाम उल्लेखनीय है। इन समाजसुधारकों द्वारा किए गए कार्यों से सदियों से पराम्परागत रूढ़िवादी जंजीरों की जकड़न से स्त्री समाज शनैः–शनैः मुक्त होने लगा एवं स्त्री समाज में आर्थिक स्वावलम्बन की भावना जागृत होने लगी। इसी का परिणाम इक्कीसवीं सदी की लेखिकाओं के आत्मकथा–साहित्य में देखने का मिलता है। मैत्रेयी पुष्पा, प्रभा खेतान, मन्नू भण्डारी, रमणिका गुप्ता, सुषम बेदी इत्यादि ऐसी महिलाएँ हैं जो शिक्षित होने के साथ–साथ आर्थिक दृष्टि से भी सक्षम हैं। 'अन्या से अनन्या' आत्मकथा की लेखिका प्रभा खेतान अपनी व्यापारिक बुद्धि से मारवाड़ी पुरुषों की दुनिया में घुसपैठ करती हैं और चमड़ा व्यवसाय की दुनिया में धूम मचा देती हैं। कलकत्ता चैम्बर ऑफ कॉमर्स की वह अध्यक्ष बनती हैं, एक के बाद एक उपन्यास और वैचारिक पुस्तकें लिखती हैं। अमेरिका से प्रशिक्षण प्राप्त कर भारत लौटने पर 'फिगरेट' नाम से अपना हैल्थ क्लब खोल लेती हैं। मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा 'कस्तूरी कुण्डल बसै' में कस्तूरी आत्मनिर्भर बनकर अपने परिवार का ही पालन–पोषण ही नहीं करती अपितु अपने कमाए धन से

समाज की अन्य पीड़ित–उपेक्षित महिलाओं की ताकत बनती हैं। उन्हें शिक्षित कर रोजगारोन्मुखी प्रशिक्षण देकर स्वावलम्बी बनाती है। कस्तूरी एक ऐसी भारतीय नारी है जो संघर्ष करती हैं, किन्तु झुकती नहीं। अन्य स्त्रियों के लिए वह आर्थिक सशक्तिकरण की मिसाल कायम करती हैं।

'एक कहानी यह भी' आत्मकथा में मन्नू भण्डारी राजेन्द्र यादव से विजातीय विवाह करती हैं। विवाह के कुछ समय बाद ही राजेन्द्र यादव की बेरुखी, गृहस्थी से मोह भंग हो जाने पर अकेले ही बेटी की परवरिश, शिक्षा, विवाह जैसी जिम्मेदारियाँ निभाते हुए शारीरिक, मानसिक, आर्थिक संघर्षों का सामना करती हैं। कलकत्ता जैसे बड़े शहर में अपना मकान बनाती हैं। एक स्त्री के रूप में भी वह वे सारे काम करती हैं, जो पुरुष वर्ग के खाते में आते हैं। सामन्ती परिवार में जन्मी रमणिका गुप्ता स्वेच्छा से वेद प्रकाश गुप्ता से प्रेम विवाह करती हैं। वेद प्रकाश के साधारण वेतनभोगी होने के कारण रमणिका की महत्त्वकांक्षाएँ पूरी नहीं हो पाती, विवाह के बाद रमणिका का अभावों से भरा जीवन पैसों की किल्लत, पति द्वारा चरित्र पर शक करना इत्यादि ऐसे कारण थे, जिसके कारण रमणिका अपने पैरों पर खड़ी होने की जिद्द करती हैं, उनकी यह जिद्द उन्हें दलाली, देह व्यापार की अंधेरी गुमनाम गलियों में ला खड़ा कर देती हैं। 'आरोह–अवरोह' आत्मकथा की लेखिका सुषम बेदी एक ऐसी भारतीय नारी हैं, जिनके पास भारत एवं पाश्चात्य देशों में हिन्दी भाषा को विषय के रूप में पढ़ने का अनुभव प्राप्त हैं। उनके जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि यही है कि उन्होंने लगातार 24 वर्षों तक 'कोलम्बिया विश्वविद्यालय' में हिन्दी को एक विषय के रूप में पढ़ाकर अपनी एक स्वच्छंद पहचान ही नहीं बनाई, अपितु स्त्री समाज के समक्ष स्त्री आर्थिक चेतना की एक मिसाल भी प्रस्तुत की हैं। **सांस्कृतिक चेतना** – संस्कृति शब्द अंग्रेजी के 'कलचर' (Culture) का हिन्दी रूपान्तरण है। अपने विस्तृत अर्थ में इस शब्द में साहित्य, कला, संगीत एवं अन्य बौद्धिक उपलब्धियों का समावेश होता है। आरम्भ में इसे कृषि और पशुपालन का सूचक माना जाता था। 18वीं शताब्दी के अन्तिम दशक तक यह शब्द अर्थ विस्तार एवं संकोच के विविध स्वरूपों से गुजरा। 19वीं शताब्दी के अन्तिम दो या तीन दशकों में यह आधुनिक अर्थ सन्दर्भ में रूढ़ होने लगा। पाणिनी व्याकरण के अनुसार सम उपसर्ग के होते कृति, करादि की अवस्था में सुट का आगम हो जाता है। इसी सूत्र के अनुसार 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु से 'सुट्' आराम करके क्तिन् प्रत्यय के योग से संस्कृति शब्द निष्पन्न हुआ है। 'संस्कृ' धातु से व्युत्पन्न संस्कृति शब्द का अर्थ को अधिक गहराई से समझने के लिए भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं द्वारा समझाने का प्रयास इस शोध–प्रबन्ध में किया गया है। आचार–विचार, लोक व्यवहार, जीवन–मूल्य, रहन–सहन, वेशभूषा, रीति–रिवाज, विवाह, उत्सव, पर्व, त्यौहार, आमोद–प्रमोद, क्रीड़ा, शिक्षा, नारी–शिक्षा इत्यादि बातें हमारी आधुनिक संस्कृति की ही पहचान है। प्रभा खेतान, मन्नू भंडारी, रमणिका गुप्ता, जात–पात, कुल, गौत्र

इत्यादि से बाहर विवाह कर सांस्कृतिक चेतना का उदाहरण समाज के सामने रखती हैं। वहीं मैत्रेयी पुष्पा करवाचौथ का व्रत भंग करती हैं। सुहागचिन्हों जैसे चूड़ी, बिछिया, महावर, बिन्दी, मंगलसूत्र इत्यादि नारी आभूषणों को त्यागकर बंधनों से स्वयं को मुक्त कर लेती हैं। भारतीय संस्कृति में सोलह संस्कारों की चर्चा की गई है। मृत्यु भी उन्हीं संस्कारों में से एक है। अंतिम संस्कार की रस्म पुरुष द्वारा (पति, पिता, बेटा, सगे–संबंधी) ही की जाती रही है, किन्तु 'कस्तूरी कुण्डल बसै' आत्मकथा में घर में कोई पुरुष न होने के कारण 8–9 साल की बच्ची (मैत्रेयी) द्वारा अपने दादा का अन्तिम क्रियाकर्म करने के लिए श्मशान भूमि में जाना, अग्नि देना इत्यादि ऐसी घटनाएँ हैं, जो परम्परागत रीति–रिवाजों का खण्डन करती हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि इक्कीसवीं सदी की सभी आत्मकथा लेखिकाएँ सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक चेतनाओं के पुनर्जागरण में कहीं भी पुरुषों से पीछे नहीं रही हैं। मानव–मूल्यों एवं नैतिक मूल्यों के पुनरुत्थान में इन सभी लेखिकाओं का योगदान अविस्मरणीय हैं। आज की ये नारियाँ आर्थिक मोर्चों पर भी पुरुषों को चुनौती देती नज़र आ रही हैं। घर की चौखटों को लांघकर पुरुष प्रधान समाज से बराबरी करते हुए वैश्विक अर्थव्यवस्था में भागीदारी निभाते हुए स्त्री–सशक्तिकरण की एक नई इबारत रच रही हैं।

तृतीय अध्याय : 'इक्कीसवीं सदी के स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य में बोल्ड–लेखन' शीर्षक से सम्बन्धित है। जिसके अन्तर्गत मैत्रेयी पुष्पा, रमणिका गुप्ता, मन्नू भण्डारी, प्रभा खेतान, सुषम बेदी इत्यादि लेखिकाओं के आत्मकथा–साहित्य में बोल्ड–लेखन को विभिन्न उदाहरणों द्वारा प्रस्तुत किया गया हैं। आत्मकथा लेखन का अर्थ ही है– सत्य की कसौटी पर खरा उतरना। जीवन में घटित तमाम घटनाओं को सत्य के तराजू पर तोलते हुए वर्णित करना। इक्कीसवीं सदी की यह सभी आत्मकथा लेखिकाएँ सत्य की इसी रहस्यमयी मारक और विध्वंसक शक्ति का प्रयोग करती है। किसी भी स्त्री द्वारा अपने प्रेम प्रसंग, एबॉर्शन, लिव इन रिलेशनशिप, मेनोपॉस, गर्भपात, प्रेम से इतर संबंधों को इस तरह सरेआम उजागर करना कोई साधारण बात नहीं है। यह एक साहसिक कदम है। इस तरह अपने जीवन का नग्न चित्रण करना जहाँ साहसिक कदम है, वहीं यह स्त्री का दुस्साहसिक कार्य भी हैं। हिन्दी साहित्य में अनेक आत्मकथाएँ साहित्यिक पटल पर उभर रही हैं। इनमें प्रभा खेतान 'अन्या से अनन्या', मैत्रेयी पुष्पा 'गुड़िया भीतर गुड़िया', 'कस्तूरी कुण्डल बसै', मन्नू भण्डारी, 'एक कहानी यह भी', रमणिका गुप्ता, 'हादसे', 'आपहुदरी' सुषम बेदी 'आरोह–अवरोह' की आत्मकथाएँ बोल्डनेस तथा स्त्री विमर्श का एक नया अध्याय प्रस्तुत करती हैं। 'कस्तूरी कुण्डल बसै' आत्मकथा लेखिका मैत्रेयी पुष्पा के 'अन्तरंग प्रसंगों की अभिव्यक्ति की स्वीकरोक्ति हैं, जिसमें उन्होंने अपने बाल्यकाल से लेकर किशोरावस्था के प्रेमियों का उल्लेख किया हैं। इस आत्मकथा में मैत्रेयी पुष्पा का बोल्ड रूप 'साईकिल वाली घटना' को प्रस्तुत करने

में ही नज़र नहीं आता बल्कि उस घटना से स्वयं को बचाने में भी नज़र आता है। मैत्रेयी पुष्पा बचपन से ही बोल्ड, निर्भीक एवं साहसिक छात्रा रही हैं, स्कूल प्रिंसिपल एवं ऊँचे औहदेदार अफसरों की बदतमीजियों का पर्दाफाश ही नहीं करती अपितु अपनी अस्मिता के प्रति भी जागरूक रहती हैं। 'आपहुदरी' आत्मकथा रमणिका गुप्ता के प्रेम प्रसंग की कहानी होने के साथ–साथ बोल्ड लेखन का अद्भूत दस्तावेज है। इस आत्मकथा में उन्होंने अपने बाल्यकाल में दैहिक स्तर पर घटी घटना उनके कुँवारेपन में योनि के क्षत–विक्षत होने की घटना को अत्यन्त बेबाक ढंग से प्रस्तुत किया हैं। रमणिका गुप्ता का बोल्ड रूप स्वयं को मास्टर के चंगुल से मुक्त कराने में ही नज़र नहीं आता अपितु भाभी के साथ अपने लेस्वियन संबंध को उजागर करने में भी नज़र आता है। इस आत्मकथा में सेक्स का खुला एवं व्यापक चित्रण रमणिका गुप्ता के बोल्ड–लेखन का दस्तावेज़ है। 'एक कहानी यह भी' आत्मकथा में मन्नू भण्डारी का बोल्डरूप स्वेच्छा से विवाह करने, राजेन्द्र यादव का मीता के साथ विवाहेत्तर संबंध का खुलासा करने में स्पष्ट होता है। राजेन्द्र यादव से अपने को अलग कर लेने का मन्नू भण्डारी का फैसला उनके स्त्री–अस्तित्व, मॉडेल को व्याख्यायित करता हैं। 'अन्या से अनन्या' आत्मकथा प्रभा खेतान के बोल्ड–लेखन का महाख्यान है। 22 वर्षीय प्रभा कलकत्ता शहर के नामी आई सर्जन डॉ. सर्राफ से आँखों का चैकप करवाने जाती है। डॉ. पेंटास्कोप की सहायता से प्रभा की आँखों में झांकते हुए प्रभा की आँखों की गहराईयों में उतर जाते हैं। प्रभा भी डॉ. सर्राफ से प्रेम पाकर लज्जा से डॉ. सर्राफ के सीने से लग जाती है। उसी क्षण प्रभा अपना सब कुछ डॉ. सर्राफ को सौंप देती हैं प्रभा खेतान विवाहित एवं बाल बच्चेदार पुरुष डॉ. सर्राफ से खुलकर प्रेम करती है। विवाह बन्धन में बंधे बिना ही फिजिकल रिलेशन बनाती है पीरियड के रूकने पर माँ बनने की आशंका, समाज में इज्जत चली जाने के डर से बुरी तरह से भयभीत हो जाती हैं अपराध बोध से ग्रसित प्रभा अपनी इस भूल के लिए कभी स्वयं को तो कभी डॉ. साहब को जिम्मेदार ठहराती हैं। एक विवाहित डॉ. के धुआँधार प्रेम में पागल प्रभा डॉ. सर्राफ की इच्छानुसार गर्भपात कराती हैं और स्वयं को डॉ. साहब की प्रेमिका घोषित करती है एवं स्वयं एक अत्यन्त सफल सम्पन्न एवं दृढ़ संकल्पी महिला परम्परागत 'रखैल' का साँचा तोड़ती है क्योंकि वह डॉ. सर्राफ पर आश्रित नहीं हैं। 'अन्या से अनन्या' आत्मकथा में प्रभा खेतान अपने साथ घटित असफल लेस्बियन संबंध की चर्चा भी करती हैं। पाश्चात्य देशों में इस तरह के संबंध साधारण बात हैं। 10वाँ लगते पीरियड का होना 40वाँ लगते मेनोपॉज का बंद हो जाना इत्यादि स्त्री की जैविक क्रियाओं का जिक्र करना जिस समाज में निषेध हो उसी समाज में प्रभा खेतान द्वारा इसे लिखकर सरेआम बेपर्दा करना असाधारण एवं बोल्डकार्य हैं। 'हंस' में धारावाहिक रूप से प्रकाशित इस आत्मकथा को जहाँ एक बोल्ड व निर्भीक आत्म स्वीकृत की साहसिक गाथा के रूप में अकुंठ प्रशंसाएँ मिली वहीं बेशर्म और निर्लज्ज स्त्री

द्वारा अपने आपको चौराहे पर नंगा करने की कुत्सित बेशर्मी का नाम भी इसे दिया गया है। 'आरोह–अवरोह' आत्मकथा में सुषम बेदी का बोल्ड रूप स्त्री की जैविक क्रियाओं यथा पीरियड्स के होने पर अपना औरत कहलाए जाना, बहुत देर तक बाथरूम में बंद रहने पर बड़ी बहनों द्वारा पीरियड्स शुरु होने की बात पूछना इत्यादि घटनाओं का खुलासा करने में नज़र आता हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि स्त्री समाज की मुक्ति की छटपटाहट ही उसे अपने प्रगतिगामी मार्ग बनाने के लिए प्रेरित करती रही हैं। आत्मकथा को पढ़ते हुए आगे की घटनाओं को जानने के लिए पाठक के भीतर बढ़ता कौतूहल ही आत्मकथा–साहित्य की प्रयोजनशीलता को प्रमाणित करता हैं।

चतुर्थ अध्याय : 'इक्कीसवीं सदी के स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य में अस्मिता के प्रश्न' में स्त्री एवं अस्मिता के अर्थ को समझने के लिए विभिन्न विद्वानों एवं विश्वकोशों में दी गई परिभाषाओं द्वारा समझाने का प्रयास किया गया है। मैत्रेयी पुष्पा, रमणिका गुप्ता, मन्नू भंडारी, प्रभा खेतान व सुषम बेदी इत्यादि लेखिकाओं के आत्मकथा–साहित्य में स्त्री–अस्मिता, स्त्री–आत्मसम्मान के स्वर उच्च स्वर से मुखरित हुए हैं। जिन्हें उदाहरण द्वारा समझाया गया हैं। 'कस्तूरी कुण्डल बसै' आत्मकथा में कस्तूरी की अस्मिता पति द्वारा गंगा का कोण बनाकर उसमें खड़ी होकर सौगंध खाने की बात का विरोध करने में प्रकट होता है। मन्नू भंडारी की आत्मकथा 'एक कहानी यह भी' में उनकी आत्मनिर्भरता में ही स्त्री–अस्मिता के दर्शन होते हैं। 'अन्या से अनन्या' आत्मकथा में प्रभा खेतान स्त्री–अस्मिता के अद्भुत उदाहरण समाज के समक्ष रखती है। डॉ. साहब अपनी हीनभावना के कारण कुण्ठित हो जाते हैं। प्रभा खेतान के चरित्र को लेकर आशंकित रहते हैं। प्रभा खेतान भी अपने चरित्र की कैफियत देते–देते थक चुकी होती हैं और अब वह डॉ. साहब से स्पष्ट शब्दों में खुलकर अपनी अस्मिता व स्वतंत्र जीने की चाह को बयां करते हुए कहती हैं– "नहीं....मुझे यह बन्दीघर अच्छा नहीं लगता, आप हर बात की खोज–खबर रखते हैं, कौन आया, कौन गया।" स्विस व्यापारी मिस्टर सिंगर द्वारा व्यापार के सिलसिले में मिलने एवं चमड़े से बनी वस्तुओं का भारी ऑर्डर देने के लिए होटल के कमरें में बुलाते हैं। प्रभा खेतान लाभ–हानि की परवाह किये बिना उनसे कमरें में मिलने के बजाए होटल की लॉबी में बैठकर व्यापार करने की बात कहकर अपनी अस्मिता की बात करती हैं। मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथात्मक कृति 'गुड़िया भीतर गुड़िया' में डॉ. सिद्धार्थ द्वारा नाच के लिए हाथ पकड़कर उठाए जाने पर नाचती है। पति एवं अन्य लोगों की बेरुखी झेलती हैं, अपनी अस्मिता की रक्षा एवं पहचान बनाने के लिए कागज़ कलम थाम लेती हैं। 'आपहुदरी' आत्मकथा में स्त्री–अस्मिता के कई स्वर देखने को मिले हैं। प्रकाश (पति) रमणिका के अतीत को लेकर उन्हें कच्ची टूटी जैसे अपमानजनक शब्दों से आहत करता है रमणिका गुप्ता अपनी अस्मिता को बचाते हुए पलटवार करती हैं। सुषम बेदी की

आत्मकथा 'आरोह–अवरोह' में स्त्री–अस्मिता का स्वर वहाँ दिखाई देता है, जब सुषम बेदी न्यूयार्क शहर के 'ब्लूमिंगडेल्स मॉल' में सेल्स गर्ल की नौकरी करती है। एक दिन उन्हें जूतों के डिपार्टमेंट में भेजा जाता है, वहाँ एक अधेड़ महिला ग्राहक द्वारा जूते पहनानें को कहने पर बड़े ही विनम्र भाव से मना कर अपनी अस्मिता की रक्षा करती हैं। 'कस्तूरी कुण्डल बसै' आत्मकथा में कस्तूरी के भाई हेतराम द्वारा विधवा बहन के घर चोरी करने, भांजी का हक मारने पर बूढ़े बाबा द्वारा शोर मचाकर पूरे गाँव को इकट्ठा कर पोती के अधिकारों की रक्षा करते हैं। मन्नू भण्डारी राजेन्द्र यादव से प्रेम करती है और वह चाहती है कि राजेन्द्र यादव भी प्रेम में निवेश करें। इससे ज्यादा मन्नू भण्डारी ने अपने जीवन में राजेन्द्र यादव से कभी कुछ चाहा नहीं। 'अन्या से अनन्या' आत्मकथा में प्रभाखेतान डॉ. सर्राफ से अपने अधिकारों की मांग करती है। इसे डॉ. साहब की मजबूरी ही कह सकते हैं। डॉ. साहब के पास एक भरा–पूरा परिवार है, जिसमें उनके पाँच बच्चे और एक अशिक्षित व कमजोर पत्नी है। डॉ. साहब समाज के सामने उन्हें वे अधिकार नहीं देते तथा प्रभा खेतान उनके परिवार के पालन–पोषण में सहयोग करने के बाद भी उनके परिवार में एक बाहरी औरत अन्या से अनन्या हैं। 'गुड़िया भीतर गुड़िया' आत्मकथा में मैत्रेयी पुष्पा वैवाहिक जीवन की घुटन को बयां करती है। विवाह के पश्चात् एक स्त्री अपनी पहचान, अपनी अस्मिता, अपने अधिकार तक भूल जाती है। युवा होती बेटियों से अपने दिल के दर्द को साझा करते हुए अपने अधिकार पाने की लालसा को ज़ाहिर करती है। 'आपहुदरी' आत्मकथा में रमणिका के बड़े भाई सत्यव्रत बेदी द्वारा अपनी पत्नी को नृत्य करने की स्वतंत्रता देने, रमणिका द्वारा माँ के समक्ष प्रकाश गुप्ता से विजातीय विवाह करने की इच्छा ज़ाहिर करने में स्त्री–अधिकार की भावना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। 'आरोह–अवरोह' आत्मकथा में सुषम बेदी ने बताना चाहा है कि भारतीय महिलाओं की अपेक्षा विदेशी महिलाएँ अपने अधिकारों के प्रति काफी जागरूक हैं। सुषम बेदी अपने अधिकार पाने के लिए न तो कभी पिता के सामने गिड़गिड़ाई न ही पति के सामने अपितु उनके पति स्वयं ही उनके स्त्री अधिकारों की रक्षा करते हैं, जो इस आत्मकथा की सबसे बड़ी विशेषता है। 'कस्तूरी कुण्डल बसै', आत्मकथा में स्पष्ट दिखाई देता है कि परतंत्र भारत हो या स्वतंत्र भारत, स्त्री की स्थिति जस की तस ही रहने वाली है। समाज में पुरुषों का वर्चस्व ही रहेगा। पुंसवादी समाज में बेटे बोए जाते हैं परन्तु दुर्भाग्यवश ही, बेटियाँ उग जाती हैं खेती जब साथ न दे तो काम आती हैं कस्तूरी जैसी बेटियाँ, फिर भी बेटियों का स्थान समाज में बेटों के बाद ही आता है। 'एक कहानी यह भी' आत्मकथा में पुरुष के ऐसे दो रूप देखने को मिले हैं, जो एक–दूसरे के बिल्कुल विपरीत हैं। राजेन्द्र यादव के रूप में एक ऐसा सामान्ती सोच रखने वाला दंभी पुरुष है जो पत्नी मन्नू को अपने अधिकार देने में कतराता है, वहीं दामाद दिनेश खन्ना आधुनिक समय का वह नवयुवक है, जो सदियों से चली आ रही स्त्री–पुरुष असमानता को

तोड़ता है तथा अपनी पत्नी टिंकू की नृत्य सीखने की इच्छा पूरी करने के लिए कलकत्ता जाने की अनुमति देता है। 'अन्या से अनन्या' आत्मकथा में प्रभा खेतान 'कलकत्ता चैम्बर ऑफ कॉमर्स' की अध्यक्ष बनती है। पुरुषों से बराबरी करते हुए स्त्री–समानता की मिसाल कायम करती हैं। 'गुड़िया भीतर गुड़िया' आत्मकथा में मैत्रेयी पुष्पा अपनी बेटयों की परवरिश, खिलाई–पिलाई घर के पुरुषों की तरह नहीं किए जाने पर पति से झगड़ती है। 'आपहुदरी' आत्मकथा में रमणिका गुप्ता अपने छोटे भाई की तरह घोड़े पर चढ़ने की जिद्द करना, माँ द्वारा सिर ढ़ककर चलने की हिदायत देने पर उच्च स्वर में विरोध करना ही स्त्री–समानता को वाणी देता है। 'हादसे' आत्मकथा में स्त्री–समानता का स्वर रमणिका गुप्ता द्वारा राजनीति में पुरुषों से बराबरी करने, भू–माफियों का मुस्तैदी से मुकाबला करने एवं सफल होने में दिखाई देता है। 'आरोह–अवरोह' आत्मकथा में स्त्री–समानता का स्वर पिता के उक्त कथन से स्पष्ट होता है– "आज कल अच्छे लड़के भी पढ़ी–लिखी संतान माँगते हैं। हमारी असली वैदिक परम्परा में तो लड़कियों को पढ़ाया जाता था।" 'कस्तूरी कुण्डल बसै' आत्मकथा में स्त्री–समानता कस्तूरी द्वारा स्वयं को आत्मनिर्भर एवं मैत्रेयी को स्वावलम्बी बनाने में झलकती है। 'एक कहानी यह भी' में मन्नू भण्डारी अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध जाकर राजेन्द्र यादव से प्रेमविवाह करना ही स्त्री स्वतंत्रता के पक्ष में रखती है। 'अन्या से अनन्या' आत्मकथा में प्रभा खेतान परम्परागत लीक से हटकर अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को स्थापित करती हैं। मैत्रेयी पुष्पा अपनी आत्मकथा 'गुड़िया भीतर गुड़िया' के जरिए स्त्री–स्वतंत्रता के संबंध में सवाल उठाती हैं। घरेलू स्त्री हो या अशिक्षित, पढ़ी–लिखी हो या कामकाजी, आत्मनिर्भर स्त्री सदियों से पुरुषों की गुलामी करने के लिए अभिशप्त है। रमणिका गुप्ता की स्त्री–स्वतंत्रता की भावना को उनके इस कथन से समझा जा सकता है– 'काश मुझे भी भैया जैसा पति मिले, जो मुझे मुक्त हवा में उड़ने दे तो मैं भी अपने सिर से कहीं ऊँची उड़ान उड़ लूंगी'। जिस भारतीय समाज में लड़कियों के सिनेमा देखे जाने पर पाबन्दियाँ लगी हों, उसी समाज में पैदा हुई सुषम बेदी मिसाल कायम करती है। मैत्रेयी पुष्पा, रमणिका गुप्ता, मन्नू भण्डारी, प्रभा खेतान, सुषम बेदी इत्यादि लेखिकाओं का आत्मसम्मान जागृत हैं। 'कस्तूरी कुण्डल बसै' आत्मकथा में कस्तूरी बेटी के ब्याह के लिए वर के पिता के सामने नहीं झुकती उनकी हर अनुचित माँगों का कड़े शब्दों में विरोध करती है। मन्नू भण्डारी के जीवन में कई उतार–चढ़ाव आये लेकिन उन्होंने कभी धैर्य का दामन नहीं छोड़ा शारीरिक, मानसिक एवं आर्थिक संकटों से गुजरने के बाद भी मन्नू भण्डारी ने अपने परिजनों, मित्रों से पैसों की मदद के लिए हाथ नहीं फैलाएँ, बिटियाँ की शादी हो या मकान बनाना इत्यादि सभी कार्य अपने कमाए हुए धन से करना ही उनकी स्त्री–आत्मसम्मान की भावना को प्रमाणित करता है। प्रभा खेतान का स्त्री–आत्मसम्मान ग्रेटा गारबो द्वारा पचास डॉलर टिप अस्वीकार करने में दिखाई देता है। 'नहीं–नहीं हम भारतीय

टिप नहीं लेते'। 'गुड़िया भीतर गुड़िया' आत्मकथा में मैत्रेयी पुष्पा अपनी बेटियों के आत्मसम्मान के लिए पूरे सिकुर्रा गाँव से भिड़ जाती है। रमणिका गुप्ता एक ऐसी नारी है, जो बखूबी अपने आत्मसम्मान की रक्षा करना जानती है। 'अर्धांगिनी नहीं, मैं अपने आपमें सम्पूर्ण हूँ'। उक्त कथन से ही स्त्री–आत्मसम्मान की भावना झलकती हैं। सुषम बेदी की आत्मकथा 'आरोह–अवरोह' में स्त्री का आत्मसम्मान स्वावलम्बी बनने, अपने पैरों पर खड़ा होने में दिखाई देता है।

पंचम अध्याय : 'शिल्प–विधान' से है इसके अन्तर्गत भाषा व शिल्प के महत्त्व को परिभाषा द्वारा व्याख्यायित किया गया है किसी भी साहित्य में शिल्प का अत्यन्त महत्त्व होता है क्योंकि साहित्यकार अपनी अनुभूतियों एवं मनोभावों को अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रस्तुत करता है। इस प्रस्तुतीकरण में साहित्यकार जिन उपादानों, प्रक्रिया, ढंग व कौशल से अनुभूतियों को चित्रित करता है। वह शिल्प पक्ष कहलाता है। शिल्प साहित्य में अभिव्यक्ति का माध्यम होने के साथ–साथ रचना में सौन्दर्य का निर्माण ही नहीं करता वरन् साहित्य को परिष्कृत एवं अलंकृत भी करता है। किसी भी कृति को कलात्मक ढंग से रचने में शिल्प का प्रयोग किया जाता है। साहित्यकार अनुभूतियों को सहज, सरल, सशक्त एवं विशिष्ट बनाने के लिए शिल्प का ही प्रयोग करता है। मनोभावों, विचारों, तथ्यों, घटनाओं तथा प्रसंगों को साकार रूप शिल्प द्वारा ही प्राप्त होता है। किसी भी कृति को रोचक, प्रभावशाली एवं व्यवस्थित बनाने में शिल्प की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। विशिष्ट शैली के प्रयोग द्वारा ही रचना सारगर्भित, सरस, प्रभावपूर्ण, अर्थवान बनती है। इक्कीसवीं सदी की सभी आत्मकथाएँ भाषा, शैली, शब्द–चयन, कहावतें एवं मुहावरे प्रयोग आदि से समृद्ध है। भाषा विचार अभिव्यक्ति का वह साधन है, जिसके द्वारा व्यक्ति अपने भावों, विचारों, अनुभवों को कुशलतापूर्वक दूसरे के सामने व्यक्त करता है। भाषा के अर्थ को स्पष्ट रूप से समझने के लिए विभिन्न विद्वानों, विश्वकोशों में दी गई परिभाषाओं का प्रयोग किया गया है। इक्कीसवीं सदी की सभी आत्मकथाएँ भाषा की दृष्टि से समृद्ध है मैत्रेयी पुष्पा द्वारा रचित आत्मकथा 'कस्तूरी कुण्डल बसै', 'गुड़िया भीतर गुड़िया' में भाषा सहज, सरल एवं प्रभावपूर्ण है। भाषा में प्रवाहात्मकता का प्रभाव जगह–जगह दिखाई देता है। अत्याधिक चटकीलें मुहावरों का प्रयोग भाषा को रोचक बनाने के लिए किया गया है। मन्नू भण्डारी की आत्मकथा 'एक कहानी यह भी' में भाषा सहज, सरल है। रमणिका गुप्ता की आत्मकथा 'हादसे', 'आपहुदरी' में क्षेत्रीय शब्दों का प्रयोग अधिक हुआ है जैसे 'मरजानी, खसमानुखानी,.....। जिद्दी है मोई (मरजानी)।' प्रभा खेतान की आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' में भाषा बोधगम्य है। सुषम बेदी की आत्मकथा 'आरोह–अवरोह' में भाषा सहज, सरल एवं प्रभावपूर्ण है।

शैली–आत्मकथा–साहित्य में शैली का विशेष महत्त्व है। प्रत्येक साहित्यकार की अपनी एक शैली होती है शैली से ही साहित्यकार की पहचान होती है। हिन्दी साहित्य की कई शैलियाँ हैं किन्तु आत्मकथा–साहित्य में पाँच शैलियाँ ही महत्त्वपूर्ण मानी गई है यथा–भावात्मक, व्यंग्यात्मक, विचारात्मक, वर्णनात्मक एवं अहंवादी। शैली के अर्थ को समझाने के लिए विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं का प्रयोग किया गया है। मैत्रेयी पुष्पा, रमणिका गुप्ता, मन्नू भण्डारी, प्रभा खेतान, सुषम बेदी इत्यादि लेखिकाओं के आत्मकथा–साहित्य में भावात्मक, व्यंग्यात्मक, विचारात्मक, वर्णनात्मक एवं अहंवादी शैलियों को उदाहरण द्वारा लिखा गया है।

शब्द–चयन की दृष्टि से इक्कीसवीं सदी में लिखी गई सभी आत्मकथाएँ अत्यन्त समृद्ध हैं। इनमें तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी (अंग्रेजी, अरबी–फ़ारसी) शब्दों का प्रयोग किया गया है।

कहावतें एवं मुहावरे – इक्कीसवीं सदी की सभी आत्मकथाओं में कहावतों एवं मुहावरों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। वाक्य में चमत्कार उत्पन्न करने के लिए मुहावरों का प्रयोग किया जाता है। मुहावरेदार भाषा प्रभावी व आकर्षक होती है। भावों के सौन्दर्य प्रस्तुतीकरण में मुहावरों का अपना महत्त्व है। हिन्दी आत्मकथा लेखिकाओं की आत्मकथाओं में उचित स्थान पर मुहावरों का प्रयोग किया गया है। आत्मकथाओं में उदाहरणों के रूप में प्रयुक्त मुहावरे आत्मकथा–साहित्य के भाव सौन्दर्य में अभिवृद्धि करते हैं। कहावतें (लोकोक्ति) लोकजीवन के व्यापक अनुभव से जन्म लेती है। इसमें भावगत विशेषता होने के कारण कम से कम शब्दों में अधिकाधिक भावों को रोचक ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है। लोकोक्ति का ग्राम्य परिवेश में अधिक प्रयोग होता है। इसलिए इसमें गँवारूपन आ जाता है व्यंग्यार्थ का भाव प्रकट होता है एवं भाषा में व्यंजना शब्द–शक्ति अधिक प्रकट होती है। यहाँ यह कहना अतिश्योक्ति न होगा कि लोकोक्ति गागर में सागर भरने की प्रवृति का काम करती है। इक्कीसवीं सदी की हिन्दी आत्मकथा लेखिकाओं की आत्मकथाओं में उदाहरणों के रूप में प्रयुक्त कहावतें (लोकोक्ति) आत्मकथा–साहित्य के भाव सौन्दर्य में अभिवृद्धि करती है।

शोध–प्रबन्ध का अंतिम पड़ाव उपसंहार के रूप में है। जिसमें शोध–प्रबन्ध का सार व शोध कार्य के निष्कर्ष (मूल्यांकन) प्रस्तुत किया गया है।

मैंने यथासम्भव अपनी समझ व दृष्टि के अनुसार 'स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य : एक अनुशीलन (इक्कीसवीं सदी के विशेष सन्दर्भ में)' पर कार्य करने का लघु प्रयास किया है मैत्रेयी पुष्पा, रमणिका गुप्ता, मन्नू भण्डारी, प्रभा खेतान, सुषम बेदी इत्यादि लेखिकाओं के आत्मकथा–साहित्य के विविध पक्षों का मूल्यांकन करने की मेरी विनम्र कोशिश रही है। अंत में आधार पुस्तकें एवं संदर्भ ग्रंथ सूची का उल्लेख है।

♦ ♦ ♦ ♦

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

आधार ग्रन्थ

क्र.सं.	लेखक का नाम	पुस्तक	प्रकाशन
1.	मैत्रेयी पुष्पा	कस्तूरी कुण्डल बसै	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2002, चौथी आवृति–2014
2.	रमणिका गुप्ता	हादसे	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण–2005
3.	मन्नू भण्डारी	एक कहानी यह भी	राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. – 2008, पाचवाँ सं.–2016
4.	प्रभा खेतान	अन्या से अनन्या	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं.–2010, चौथा सं.–2016
5.	मैत्रेयी पुष्पा	गुड़िया भीतर गुड़िया	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम सं.–2008, पहली आवृति–2009
6.	रमणिका गुप्ता	आपहुदरी	सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण–2016
7.	सुषम बेदी	आरोह–अवरोह	सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण–2017

सहायक ग्रन्थ

8.	डॉ. कमलापति उपाध्याय	हिन्दी आत्मकथा–साहित्य का शैलीगत अध्ययन	साहित्य रत्नालय, कानपुर प्रथम संस्करण, 1992
9.	डॉ. कमलेश सिंह	हिन्दी आत्मकथा स्वरूप एवं साहित्य	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
10.	डॉ. विवेक शंकर	हिन्दी साहित्य	राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर प्रथम सं.–2016

11.	डॉ. सुदेश बत्रा	नारी अस्मिता हिन्दी उपन्यासों में	रचना प्रकाशन, जयपुर सं.–1998
12.	जगदीश्वर चतुर्वेदी	स्त्रीवादी साहित्य विमर्श	अनामिका पब्लि. एण्ड डिस्ट्री. प्रा. लिमि., नई दिल्ली सं.–2011
13.	डॉ. विवेक शंकर	स्त्री अस्मिता के प्रश्न और प्रेमचन्द	राज. पब्लि. हाउस, जयपुर प्रथम संस्करण–2010
14.	डॉ. नगेन्द्र डॉ. हरदयाल	हिन्दी साहित्य का इतिहास	मयूर पेपर बैक्स, नोएडा सं.–2013
15.	डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त	हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास	भारतेन्दु भवन, चण्डीगढ़ सं.–1965
16.	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	हिन्दी साहित्य का इतिहास	प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा, काशी–संवत् 2067 वि.
17.	डॉ. हेतु भारद्वाज	संस्कृति और साहित्य	मंथन पब्लिकेशन, जयपुर सं.–2004
18.	नारायण शर्मा	हिन्दी आत्मकथा	यूनिक ट्रेडर्स, जयपुर, सं.–1998
19.	डॉ. मधुबाला सांखला डॉ. संजू श्रीमाली	समकालीन साहित्य– में स्त्री लेखन	राज. पब्लिशिंग हाउस, जयपुर प्रथम संस्करण–2017
20.	नीरू	प्रतिरोध का दस्तावेजः महिला आत्मकथाएँ	संजय प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण–2009
21.	डॉ. बबनराव बोडके	बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक की कहानियों में नारी	विकास प्रकाशन, कानपुर प्रथम संस्करण–2007
22.	डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी	हिन्दी उपन्यास समकालीन विमर्श	अमन प्रकाशन, कानपुर प्रथम संस्करण–2000
23.	डॉ. वैशाली देशपांडे	स्त्रीवाद और महिला महिला उपन्यासकार	विकास प्रकाशन, कानपुर प्रथम संस्करण–2007

24.	डॉ. दयाकृष्ण 'विजय'	राजस्थान के हिन्दी महाकाव्यों में सांस्कृतिक चेतना	राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
25.	डॉ. कंचना सक्सेना	गिरिजा कुमार माथुर का काव्य–शिल्प	अनुभूति प्रकाशन, जयपुर प्रथम संस्करण–2010
26.	राज नारायण	पुनर्नवा चेतना– और शिल्प	विवेक प्रकाशन, दिल्ली
27.	गजानन माधव, मुक्ति बोध	कामायनी : एक पुनर्विचार	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली संस्करण–1981
28.	मार्क्स एंगेल्स	साहित्य तथा कला	मास्को प्रगति प्रकाशन, इतिहास, हिन्दी अनुवाद–1981
29.	प्रभा खेतान	उपनिवेश में स्त्रीः मुक्ति कामना की दस वर्ताएँ	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण–2003
30.	प्रज्ञा पाठक	सरला : एक विधवा की आत्मजीवनी	परमेश्वरी प्रकाशन, दिल्ली सं.–2008
31.	डॉ. विश्व बंधु व्यथित	हिन्दी का आत्मकथा–साहित्य	राधा प्रकाशन, दिल्ली संस्करण–1984
32.	वसीली क्रापीविन	द्वान्द्वात्मक भौतिकवाद क्या है?	मास्को : प्रगति प्रकाशन, संस्करण–1986
33.	अर्चना जैन	प्रेमचन्द के निबन्ध साहित्य में सामाजिक चेतना	इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली संस्करण–1979
34.	जर्मेन ग्रीयर (उद्धृत)	बधिया स्त्री, (अनुवाद : मधु. बी. जोशी)	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली द्वितीय संस्करण–2005
35.	नरेन्द्र सिंधी	समाजशास्त्र विवेचन	राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, सं.–1973
36.	अज्ञेय	साहित्य और समाज परिवर्तन की प्रक्रिया	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली संस्करण–1985

37.	डॉ. विवेक शंकर, उर्मिला साध	हिन्दी–साहित्य का प्रवृत्ति–मूलक अभिनव इतिहास	राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर प्रथम संस्करण–2017
38.	डॉ. अशोक तिवारी	प्रतियोगिता साहित्य सीरीज	साहित्य भवन, आगरा (उ.प्र.)
39.	डॉ. अरविन्द कुमार	सम्पूर्ण हिन्दी व्याकरण और रचना	ल्युसेंट पब्लिकेशन पटना, संस्करण–2013
40.	डॉ. मधुबाला सांखला डॉ. संजू श्रीमाली	आधुनिक स्त्री–विमर्श : चिन्तन एवं विचारधारा	राज. पब्लिशिंग हाउस, जयपुर प्रथम संस्करण–2015
41.	प्रभा खेतान	स्त्री उपेक्षिता–सीमोन द बोउवार	हिन्दी पॉकेट बुक्स, दिल्ली नवीन संस्करण–2002
42.	राज किशोर	स्त्रीत्व का उत्सव	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
43.	मृणाल पाण्डेय	स्त्री राजनीति से देश की राजनीति तक	राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण–1987
44.	सं. डॉ. मंजु शर्मा	स्त्री विमर्श कल, आज और कल	राजकीय लोहिया महाविद्यालय, चूरू (राज.) प्र.सं.–2014
45.	ऐ. एम. मालती	स्त्री–विमर्श भारतीय परिप्रेक्ष्य (स्त्री–विमर्श समकालीन अर्थ)	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
46.	सं. अरविन्द जैन, लीलाधर मंडलोई	स्त्री मुक्ति का सपना	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण–2004
47.	राधा कुमार	स्त्री–संघर्ष का इतिहास	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली द्वितीय संस्करण–2005
48.	डॉ. सरला देवी	हिन्दी साहित्य में नारी	केरल हिन्दी साहित्य मंडल कोच्चि–25

49.	महादेवी वर्मा	श्रृंखला की कड़ियाँ	भारतीय भण्डार सं.–2015
50.	कामिनी तिवारी	डॉ. प्रभा खेतान के साहित्य में नारी विमर्श	जवाहर पुस्तकालय मथुरा, सदर बाजार
51.	डॉ. कृष्णा जाखड़	प्रभा खेतान के साहित्य में नारी विमर्श	राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर संस्करण–2012
52.	सं. राजेन्द्र यादव	देहरि भई विदेश	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण–2006
53.	आशा आपराद	दर्द जो सहा मैंने	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण–2013
54.	प्रो. गोपीचंद नारंग	सफ़र आशना	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण–2014
55.	विश्वनाथ प्रसाद तिवारी	दिन रैन	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण–2014
56.	डॉ. सत्यपाल चुग	प्रेमचंद्रोत्तर उपन्यासों की शिल्प विधि	इकाई प्रकाशन–इलाहाबाद संस्करण जनवरी –1962
57.	डॉ. सरला अग्रवाल	साहित्य और संस्कृति	साहित्यागार, जयपुर प्रथम संस्करण, 2009
58.	रामधारी सिंह दिनकर	संस्कृति के चार अध्याय	उदयांचल आर्य कुमार, पटना, प्रथम सं.–1962
59.	डॉ. (श्रीमती) ओम शुक्ला	हिन्दी उपन्यासों की शिल्प विधि का विकास	अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर सं. जुलाई–1964
60.	सुखलाल गुप्त	सुगम हिन्दी व्याकरण और रचना	आशा प्रकाशन, दिल्ली संस्करण–1997

पत्र–पत्रिकाएँ

1. आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : उनका दिनांक 3–11–76 का लिखा पत्र
2. कल्याण पत्रिका का हिन्दू संस्कृति अंक, जनवरी–1950
3. स्वामी नहीं, साथी की तलाश–हंस जून, 1667, प्रभा खेतान हंस / जून–1667
4. मासिक पत्रिका समाज कल्याण, फरवरी, 1667 नानक चंद, पृ.सं.–10
5. हंस, संजय सहाय, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली
6. मधुमती, वेदव्यास, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर
7. पाखी, प्रेम भारद्वाज, नोएडा
8. पंचशील शोध समीक्षा, हेतु भारद्वाज, पंचशील प्रकाशन, जयपुर
9. अक्सर, हेतु भारद्वाज, जयपुर
10. वागर्थ, एकांत श्री वास्तव, कुसुम खेमानी, भारतीय भाषा परिषद्, कोलकाता
11. दैनिक भास्कर
12. राजस्थान पत्रिका

कोश एवं विश्व कोश

1. हिन्दी साहित्य कोश, भाग 01, सं. धीरेन्द्र वर्मा
2. आदर्श हिन्दी कोश, भाग 01, सं. रामचन्द्र पाठक
3. मानक हिन्दी कोश, सं. श्री रामचन्द्र वर्मा, प्रथम संस्करण
4. मानविकी पारिभाषिक कोश, सं. डॉ. नगेन्द्र साहित्यिक खंड
5. बृहत् अंग्रेजी–हिन्दी कोश, भाग–01 सं. हरदेव बाहरी, ज्ञानमण्डल लिमि., वाराणसी, सं. –1969
6. बृहत् हिन्दी कोश, सं. कालिका प्रसाद, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, सं.–1971
7. संस्कृत हिन्दी कोश, सं. वामन शिवराम आप्टे
8. मानक हिन्दी कोश, सं. रामचन्द्र वर्मा
9. राजपाल हिन्दी कोश, सं. डॉ. हरदेव बाहरी
10. हिन्दी शब्द सागर, भाग 01, सं. श्याम सुन्दर दास
11. हिन्दी शब्द सागर, पांचवाँ संस्करण
12. हिन्दी रत्न कोश, तीसरा संस्करण

अंग्रेजी शब्द कोश

1. The Encyclopedia America,-vol.IInd
2. Universal English Dictionary
3. The Modern Encyclopedia. (1968)
4. Encyclopedia of Britaincia-vol.IInd
5. The oxford Dictionary-vol.-1
6. Cassel’s Encyclopedia of literature : by Sh. Steinspurg

♦ ♦ ♦ ♦

प्रकाशित शोध–पत्र

क्र. सं.	शोध–पत्र का शीर्षक	प्रकाशन वर्ष	शोध–पत्रिका /पुस्तक का नाम	ISSN NO.	संस्करण	राष्ट्रीय / अन्तर्राष्ट्रीय
01.	मन्नू भण्डारी के आत्मकथा–साहित्य में वेदना के विविध स्वर	2018	शोध मीमांसा	2348–4624 यूजीसी नं. 48923	हिन्दी विशेषांक V, No.:XVII Issues-II जनवरी से मार्च 2018	अन्तर्राष्ट्रीय
02.	इक्कीसवीं सदी के स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य में राजनीतिक चेतना के आयाम	2019	चिन्तन	2229–7227 यूजीसी नं. 41243	विक्रमी सम्वत् 2076 जनवरी 2019 से मार्च 2019	अन्तर्राष्ट्रीय

ISSN : 2348-4624
Year : V, No. : XVII, Issues-II
January-March, 2018

Approved by UGC
Journal No. 48923
IIJ Impact Factor : 2.695

Śodha Mīmāṁsā

An International Refereed Research Journal

Editor in chief
Dr. Rakesh Kumar Maurya
Associate Editor
Dr. Anish Kumar Verma & Dr. Jayant Kumar

Published by :
Kusum Jankalyan Samiti
Deoria, U.P. (INDIA)

उत्तर–प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों से श्रम पलायन की समस्या एवं उसका प्रभाव 67–68
डॉ0 जितेन्द्र बहादुर पाल
यज्ञीय कर्म की सार्वकालिक उपादेयता 69–70
डॉ0 प्रीति राठौर
समय एवं समाज में मानवीय स्पन्दन 71–72
ऋतुराज रमण
प्रयोगधर्मिता : समकालीन कला के सन्दर्भ में 73–75
हिना यादव
ग्यारहवीं–बारहवीं शताब्दी में सामुदायिक भू–स्वामित्व 76–77
सन्तोष कुमार द्विवेदी
मीमांसादर्शन में शब्दस्वरूप 78–81
कौशलेन्द्र त्रिपाठी
बाल पहेलियाँ : अनवरत 82–84
डॉ0 अनीता वर्मा व कृष्णा कुमारी
मन्नू भण्डारी के आत्मकथा–साहित्य में वेदना के विविध स्वर 85–87
डॉ0 (श्रीमती) कंचना सक्सेना व प्रीति दुबे
पंचायती राज व्यवस्था में महिला सशक्तिकरण 88–89
विनय कुमार
उषा प्रियंवदा के साहित्य में सामाजिक चेतना 90–91
डॉ0 संध्या सिंह
लक्ष्मी शर्मा और उनका कहानी संसार 92–93
अनुराधा गुप्ता
तीन तलाक का समाजशास्त्रीय अध्ययन 94–95
राहुल कुमार तिवारी
प्रवासी हिन्दी साहित्य लेखन के विविध सन्दर्भ 96–98
डॉ0 अमित कुमार सिंह कुशवाहा
हिंदी नवजागरण की चेतना के संवाहक : शिवपूजन सहाय 99–101
डॉ0 संदीप रणभिरकर
प्रवासी साहित्य में भारतीय संस्कृति की सौधी महक (सुषम बेदी के साहित्य के विशेष संदर्भ में) 102–104
डॉ0 ममता खांडल
पाणिनीयव्याकरणस्य व्यावहारिकत्वम् 105–106
शैलेन्द्र तिवारी
पूर्वमध्यकाल के वर्ण एवं जाति की स्थिति 107–110
एवर्द राजन
काव्यशास्त्रीय गुणस्वरूपविवेचन परम्परा में आचार्यों के मतभेद का विवेचन 111–113
श्याममोहन मिश्र
प्रारम्भ से गुप्त काल तक की मुद्राओं पर अंकित गज और उसका धार्मिक महत्त्व 114–115
अरविन्द कुमार दूबे
कुल, क्रम, स्पन्द (अन्तः सम्बन्ध एवं साधना प्रक्रिया) 116–121
रमेश चन्द्र नैलवाल
सभी के लिए शिक्षाः एक अध्ययन 122–123
सुश्री रमा सोनी

Śodha Mīmāṁsā - ISSN 2348-4624
Letter No. NSL/ISSN/INF/2014/461
Published by : Kusum Jankalyan Samiti, Deoria, U.P. (INDIA)
UGC Journal No. 48923

IIJ Impact Factor : 2.695
Year : V, Issues-II, January-March, 2018
Page No. : 85-87

मन्नू भण्डारी के आत्मकथा–साहित्य में वेदना के विविध स्वर

डॉ0 (श्रीमती) कंचना सक्सेना* व प्रीति दुबे**

*शोध पर्यवेक्षक, सह–आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा

**शोधार्थी, हिन्दी विभगा, राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा

भारत का एक राज्य मध्यप्रदेश जो अपनी ऐतिहासिक विरासत, कला, साहित्य, संस्कृति एवं पर्यटन की दृष्टि से विश्व प्रसिद्ध रहा है। मालवा के पठार पर अवस्थित यह प्रदेश अफीम की खेती के लिए भारत से प्रसिद्ध है। मध्यप्रदेश का भानपुरा जिला मंदसौर में 30 अप्रैल 1931 को श्री सम्पतराय भण्डारी के घर पांचवी संतान के रूप में मन्नू भण्डारी जन्म लेती हैं। उनके बचपन का नाम महेन्द्र कुमारी था पिता एक लेखक, अध्यापक, समाज सेवक, स्वतन्त्रता सेनानी थे। मन्नू भण्डारी की प्रारम्भिक शिक्षा अजमेर से एवं स्नातक कलकत्ता विश्वविद्यालय से, हिन्दी विभाग में स्नातकोत्तर की उपाधि वाराणसी विश्वविद्यालय से प्राप्त करती हैं। मन्नू भण्डारी को बाल्यकाल से ही लेखन के प्रति रूचि उत्पन्न हो गई थी। लेखन का हुनर उन्हें अपने पूर्वजों से विरासत में ही प्राप्त हुआ था। लेखन के क्षेत्र में जब वह उतरी तो मन्नू भण्डारी के नाम से रचना लिखने लगी और वर्तमान में उनकी पहचान इसी नाम से जानी जाती है।

स्त्रीवादी लेखिकाओं में मन्नू भण्डारी का विशिष्ट स्थान है। उनके लेखन में नारी वेदना का सूक्ष्म चित्रण विशेष रहा है। नारी वेदना को चित्रित करती उनकी कृतियां यथा– 'अकेली', 'नयी नौकरी', 'रानी माँ का चबूतरा', 'यही सच है' इत्यादि प्रमुख हैं। महाभोज राजनीतिक चेतना से सम्पन्न उपन्यास है तो 'आपका बंटी' बाल मनोविज्ञान पर लिखा गया अनूठा उपन्यास है।

'एक कहानी यह भी' (2007 ई.) हिन्दी साहित्य की एक ऐसी स्त्री–आत्मकथात्मक कृति है, जिसमें स्त्री जीवन की घुटन, वेदना, पति की सामन्ती मानसिकता, वैवाहिक जीवन की घुटन को बयां करती हैं। इस आत्मकथा में मन्नू भण्डारी के भोगे हुए जीवन का सच यथार्थ के धरातल पर अभिव्यक्त हुआ है।

यह आत्मकथा एक स्त्री के निरन्तर संघर्ष करते हुए आत्मनिर्भर बनने के साथ–साथ स्त्री–अस्मिता, स्त्री–आत्मसम्मान, स्त्री–स्वावलम्बन, स्त्री–सशक्तिकरण को पिरोए स्त्री–विमर्श के अनेक आयामों को प्रस्तुत करती है।

'एक कहानी यह भी' मन्नू भण्डारी के रूप में एक ऐसी स्त्री की संघर्ष गाथा है, जो अपने अस्तित्व, अपनी–अस्मिता की तलाश में अपना भाग्य खुद लिखने के लिए कटिबद्ध है बालीगंज शिक्षा सदन कलकत्ता में नौ वर्ष अध्यापन कार्य करते हुए इसी विद्यालय के पुस्तकालय की व्यवस्था करने एवं पुस्तकों की सूची तैयार करने के दौरान मन्नू भण्डारी की पहचान राजेन्द्र यादव से होती है और दोनों पंचायती विवाह कर लेते हैं। एक कर्मण्ठ एवं निष्ठावान लेखक की पत्नी होने का अहसास और एक बेहद कुण्ठित जिद्दी पति की संगिनी होने का अवसाद आजीवन भोगती हैं। अपने लेखन के लिए खुले राजमार्ग का स्वप्न देखने वाली मन्नू भण्डारी पारिवारिक उत्तरदायित्वों को पूरा करते–करते इस विवाह से घुटन महसूस करने लगती है अपनी चाह और कुछ विशिष्ट बनने की ललक एवं महत्त्वाकांक्षाओं ने उन्हें जीवन के एक ऐसे अवसाद के मोड़ पर ला खड़ा किया जहाँ पर किसी का भी मानसिक संतुलन गड़बड़ाने लगता, किन्तु यह एक साहसिक और सहनशील स्त्री का दृढ़ संकल्प ही है जिसने उन्हें टूट कर बिखरने नहीं दिया। मन्नू भण्डारी ने अपने जीवनकाल में उतनी मात्रा में नहीं लिखा, किन्तु वे जितना भी लिख पाई वह उनके जीवन की उपलब्धियाँ है, जो बेहद निजी है उनकी सम्पत्ति हैं। इसी संदर्भ में लेखिका लिखती है– "लेखन के कारण ही हमने विवाह किया था... हम पति–पत्नी बने थे। उस समय मुझे लगता था कि राजेन्द्र से विवाह करते ही लेखन के लिए तो जैसे राजमार्ग खुल जाएगा और उस समय यही मेरा एकमात्र काम्य था। उस समय कैसे मैं यह भूल गई कि शादी करते ही मेरे व्यक्तित्व के दो हिस्से हो जायेंगे.. लेखक और पत्नी। इसमें कोई संदेह नहीं कि मेरे लेखकीय व्यक्तित्व को राजेन्द्र ने ज़रुर प्रेरित और प्रोत्साहित किया... इनके साथ मिलने वाला साहित्यिक वातावरण, होने वाली गप्प–गोष्ठियाँ मेरे बहुत बड़े प्रेरणा–स्रोत भी रहे। लेकिन मेरे व्यक्तित्व का पत्नी–रूप? इस पर राजेन्द्र निरन्तर जो और जैसे प्रहार करते रहे उसका परिणाम तो मेरे लेखक ने ही भोगा। निरन्तर और खण्डित होते आत्म–विश्वास से लेखन में आए गतिरोध का जो सिलासिला शुरु हुआ अन्ततः वह उसके पूर्ण विराम पर ही समाप्त हुआ।"[1]

'एक कहानी यह भी' में मन्नू भण्डारी अपनी संघर्षशीलता, कर्मठता, आत्मनिर्भरता और सफल लेखिका बनने की दास्तां को बयां करती हुई राजेन्द्र यादव द्वारा ईर्ष्याग्रस्त, कुंठित एवं असहज होने की घटना के माध्यम से पुरुष प्रधान, सामन्ती विचारधारा और मानसिकता पर प्रश्नचिन्ह उठाती हुई स्त्री–अस्मिता के एक ज्वलंत पक्ष को इस प्रकार व्यक्त करती है–वह लिखती हैं कि "मुझे इनके नौकरी न करने से न कोई शिकायत थी.. न तकलीफ़। तकलीफ़ थी तो केवल इस बात की जब आप नौकरी कर ही नहीं सकते... करना ही नहीं चाहते तो कम–से–कम फिर मेरे नौकरी करने और घर चलाने पर इतनी–इतनी कुंठाएँ पालकर मेरा और अपना जीवन तो इतना असहज और तकलीफ़देह मत बनाइए। पर अपने अहं और सामन्ती संस्कारों से लाचार राजेन्द्र करें भी तो क्या करें? बस, मैं ही अपनी दुखती रगों और खाली कोनों को अपने लेखन से पूरा करने की कोशिश करती रहती थी।"[2]

'एक कहानी यह भी' में मन्नू भण्डारी स्त्री की नियती, सहते रहना, अन्याय के विरुद्ध कोई प्रतिक्रिया व्यक्त न करना गृहस्थी की शान्ति का प्रतीक मानती है किन्तु मन्नू भण्डारी एक आत्मनिर्भर, स्वावलम्बी, स्वतंत्र महिला है ह्रदय की कोमलता एवं सहन की

अपार क्षमता केवल स्त्री में ही होती हैं पुरुष अपने स्वयं के अहम में इतना डूबा रहता हैं की दूसरे के दर्द, वेदनाएँ उसके ह्रदय तक नहीं पहुँच पाते पुरुष के ह्रदय की कठोरता को व्यक्त करती हुई लेखिका लिखती हैं कि– "मैं तो भोगने के लिए अभिशप्त थी ही और अपनी इसी तरह के कुकर्मों को राजेन्द्र विशिष्ट जीवन–पद्धति की आड़ में... रचनात्मकता की आड़ में तर्कसंगत ही नहीं जायज भी ठहराते थे।"[3]

अपने लेखन के प्रति आरम्भ से ही लेखिका मन्नू भण्डारी गंभीर रही है उनकी कलम से व्यक्त उनके अनुभव, भाव, विचार मौलिक हैं।यह उनकी कलम का चमत्कार नहीं अपितु कलम की सफलता का प्रतीक भी है इसी संदर्भ में लेखिका लिखती हैं कि– "ग़नीमत यही है, बल्कि कहूँ कि संतोष की बात है कि मैं अपनी सीमा के प्रति हमेशा सचेत रही हूँ, कुछ ज्यादा ही सचेत, सो अपनी सीमा और सामर्थ्य के बाहर कभी भी कुछ अनर्गल रचने की हिम्मत नहीं की मैंने।"[4] बहुचर्चित कहानियों एवं उपन्यासों की लेखिका मन्नू भण्डारी ने अपने जीवन काल में लगभग पचास कहानियाँ लिखी हैं। 'यही सच है' कहानी पर 'रजनीगन्धा' नाम से 'सुखाने आकाश नाय' कहानी पर 'जीना यहाँ' नाम से फीचर फिल्म एवं चार कहानियाँ–'अकेली', 'त्रिशंकु', 'नशा', और 'रानी माँ का चबूतरा' पर टेलीफिल्म बनी है।

अपने लेखन काल के दौरान मन्नू भण्डारी (जर्मनी) कोलोन के साउथ–ईस्ट एशिया की लेखिकाओं के सम्मेलन में भाग लेने जाती है वहाँ उन्हें कई समस्याओं से जूझना पड़ता है भाषा की समस्या, अपरिचित लोगों से सम्पर्क साधना, खाने–पीने की समस्या एक स्त्री के लिए लेखन की चुनौती भरी दुनिया से टकराना इत्यादि कोई आसान कार्य नहीं था किन्तु मन्नू भण्डारी अपनी लगन, मेहनत, दूरदर्शिता से इन सभी समस्याओं का सामना कर विजय श्री प्राप्त करती है। एक सफल भारतीय लेखिका के तौर पर पाश्चात्य देशों के मध्य भारत का प्रतिनिधित्व कर भारतीय साहित्य की विशालता एवं सौन्दर्य का परचम लहराती हैं।

मन्नू भण्डारी ने इस आत्मकथा में जीवन के एक खण्ड विशेष को कहानी रूप में रचा है लेखिका मन्नू भण्डारी की लेखक–यात्रा का इतिहास, मूल्यों की परायणता भी यहाँ व्यक्त होती है वह लिखती हैं कि– "यहाँ मुझे केवल उन्हीं स्थितियों का ब्योरा प्रस्तुत करना था, वो भी जस का तस, जिनसे मैं गुज़री–दूसरें शब्दों में कहूँ तो जो कुछ मैंने देखा, जाना, अनुभव किया, शब्दशः उसी का लेखा–जोखा है यह कहानी जहाँ मेरे लेखन के क्रमिक विकास, उससे घटनाओं–मुझे सहजते–सँवारते, जोड़ते–तोड़तें सम्पर्को–संबंधों पर ही केन्द्रित रहना इसकी सीमा है, वही इसकी अनिवार्यता भी।"[5]

लेखिका पिताजी से विद्रोह करके राजेन्द्र यादव से विजातीय विवाह करके आकाश को छूने का स्वप्न देखती है राजेन्द्र यादव की शारीरिक कमी (अपंगता) को भी नज़रअंदाज़ कर देती है। पहले से ही सफल लेखन के क्षेत्र में समृद्ध, सफल रहे लेखक की पत्नी होने के सुख से गौरान्वित होती है, किन्तु विवाह के पश्चात् राजेन्द्र यादव का उनके प्रति कठोर, निर्मम और अमानवीय पूर्ण व्यवहार सभी सीमाओं को पार कर क्रूरता की हद तक पहुँच जाता है। गर्भवती पत्नी को पीड़ा में छोड़कर उनका साहित्य संगोष्ठियों में शामिल होना, छोटी–सी बेटी को मीज़ल्स (खसरा) होने पर उसे पत्नी व अन्य लोगों की जिम्मेदारी पर छोड़कर अपने लेखकीय मित्र (उषा प्रियवंदा) से भेंट करना उनके बेहद स्वार्थी, संवेदन शून्य व्यक्तित्व को उजागर करता है।

अन्तरजातीय विवाह, राजेन्द्र यादव के विवाहेत्तर संबंध परिवार के प्रति उनकी बेरुखी गृहस्थी बसाने के नाम पर समानान्तर जिन्दगी जीने की बात मन्नू को स्वतंत्रता देने के पक्ष में रखकर स्वयं के लिए स्वतंत्रता की बात बड़ी चतुराई से रखते हैं। इसी संदर्भ में लेखिक लिखती हैं कि– "जिंदगी शुरु करने के साथ ही लेखकीय अनिवार्यता के नाम पर राजेन्द्र ने 'समानान्तर जिंदगी' का आधुनिकतम पैटर्न थमाते हुए जब कहा कि 'देखो, छत ज़रुर हमारी एक होगी लेकिन ज़िन्दगियाँ अपनी–अपनी होंगी–बिना एक–दूसरे की जिन्दगी में हस्तक्षेप किए बिल्कुल स्वतंत्र मुक्त और अलग तो मैं तो बिल्कुल अवाक्। आधुनिकतम जीवन के इस पैटर्न से मेरा कोई परिचय नहीं था, परिचय तो क्या दूर–दूर तक इसकी कोई कल्पना तक मेरे मन में नहीं थी। राजेन्द्र ने भी मित्रता के दौरान तो ऐसी किसी बात का कभी कोई संकेत तक नहीं किया था। मैं तो साथ आई थी सब तरह से अलगाव को दूर करके एक हो जाने के लिए, पूरी तरह घुलमिल जाने के लिए। यह सब सुनकर तो मुझे लगा कि सिर पर छत का आश्वासन देकर जैसे पैर के नीचे की जमीन ही खींच ली हो। एक ही प्रश्न मेरे मन पर हथौड़े की तरह चोट करता रहा कि फिर इस छत की भी क्या जरुरत थी? क्या प्रयोजन था? छत तो राजेन्द्र के सिर पर भी थी और मेरे सिर पर भी सो इतना तो समझ में आ गया कि राजेन्द्र के दिमाग़ में एकाएक समानान्तर जिन्दगी की जो यह अवधारणा पैदा हुई है, निश्चित ही उसके सूत्र कहीं और ही हैं।"[6] मन्नू भण्डारी की यह आत्मकथा उनके सक्रिय लेखन–यात्रा के साथ–साथ करुणामय जीवन की त्रासदी की कहानी भी है बेहद संवेदनशील भावों को कलम कागज़ों द्वारा मन्नू भण्डारी बयां करती हैं। अपने जीवन की कसावटों को पाठकों के सम्मुख खोलकर रखती है। राजेन्द्र यादव द्वारा दिए गए सभी कष्ट, अपमान झेलती है शायद इसी का परिणाम है राजेन्द्र यादव का आत्मकथ्य **'मुड़–मुड़ के देखता हूँ'**। किसी के पूरे जीवन को कष्टमय बनाकर अन्त में अपने किए पर पश्तावा करना कष्टप्रद व्यक्ति के साथ न्याय करना नहीं होता अपितु स्वयं अपराधी अपनी आत्मशान्ति, स्वहित के वशीभूत होकर यह कार्य करता है यहाँ भी वह स्वयं को महान बनाने की कला का प्रदर्शन बड़ी ही होशियारी एवं चालाकी से करता है। इसी संदर्भ में लेखिका लिखती हैं कि– "आत्मकथ्य की इसी किस्त में राजेन्द्र ने मुझमें भी न जाने कितनी विशेषताएँ गिना दीं जैसे सहज, सरल, विश्वासी, उदार, मानवीय और फिर वही अपराधबोध से त्रस्त होने की बात। यानी कि मेरे प्रति भी थोड़ा–सा ऋण शोध (मेरा ऋण भी तो बहुत थोड़ा–सा ही था) यह क्या हो गया है राजेन्द्र को? उम्र के तक़ाजे ने क्या सबके क़र्ज़े उतारकर ऋण–मुक्त होने की ओर धकेल दिया है? क्या राजेन्द्र सचमुच यह समझते हैं कि आठ–दस पन्नों में लिखी अवराध–बोध की यह आत्म–स्वीकृति (चाहे कितनी ही ईमानदार क्यों न हो) किसी की पूरी ज़िन्दगी की क़ीमत चुका सकती है? खैर, यहाँ तो मैं यह स्पष्ट कर देना चाहती हूँ कि राजेन्द्र के ऊपर कम से कम मेरा कोई ऋण नहीं हैं।"[7]

जिंदगी से जद्दोजहद करती आर्थिक संकटों को झेलते हुए लेखिका उम्र के इस पड़ाव पर रोगों और विश्वासघातों से गुज़र

चुकी हैं उनकी कलम की रफ़्तार धीमी हुई किन्तु पूर्ण रूप से रुकी नहीं स्वयं लेखिका ने अपनी आत्मकथा 'एक कहानी यह भी' में स्पष्ट लिखा है कि उन्होंने अपने जीवनकाल में बहुत कम लिखा किन्तु जो भी लिखा उससे वह पूर्णरूप से सन्तुष्ट है। 'आपका बंटी' और 'महाभोज' जैसे हिंदी को दो सशक्त उपन्यास दिए हैं। मन्नू भण्डारी के लेखन में आए अवरोध से पाठक भी चिन्तित है। इसी संदर्भ में महाश्वेता देवी कहती है कि– "ऐसे दो सशक्त उपन्यास देने के बाद मन्नू इस तरह खामोश क्यों हो गई? वह अपनी प्रतिभा के साथ न्याय नहीं कर रही।"[8]

निःसंदेह मन्नू भण्डारी अपनी कलम से जो भी लिख पाई वह पाठकों के लिए ही नहीं अपितु हिंदी साहित्य के लिए भी अमूल्य धरोहर है।

इस आत्मकथा के अध्ययन के उपरान्त मेरी दृष्टि से कहा जा सकता है कि मन्नू भण्डारी अपने लेखन की कुशलता के कारण रचनात्मकता के क्षेत्र में लगातार सफल हुई। उनकी रचनाओं में सरलता, सहजता का भाव होने के साथ ही साथ सामाजिक जीवन की वास्तविक घटनाओं का चित्रण बड़ी ही ईमानदारी से उभर कर आता है उनकी कृतियाँ पाठकों में एक कौतूहल, आश्चर्य पैदा करती रहती है आगे की घटनाओं को जानने के लिए पाठकों की बैचेनी का बढ़ना ही सिद्ध करता है कि वे एक बेहद सफल लेखिका ही नहीं अपितु एक अच्छी इंसान भी है। कई बार उनकी रचनाएँ साहित्यकार पति राजेन्द्र यादव को भी मात देती है।

इक्कीसवीं सदी में स्त्री–स्वावलम्बन, स्त्री–आत्मसम्मान, स्त्री–सशक्तिकरण से सरोकार करवाती कई आत्मकथाएँ लिखी जा रही हैं। मन्नू भण्डारी की यह आत्मकथा एक स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व की खोज के साथ–साथ पुरुष के साथ बराबरी करती साहसिक, संघर्षरत, सफल रचनाकार के रूप में लिखी स्त्री जीवन की कहानी हैं।

सन्दर्भ :

1. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, नयी दिल्ली, राधा कृष्णन प्रकाशन, 2007, पृ0 10
2. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, 2007, पृ0 67
3. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, 2007, पृ0 99
4. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, 2007, पृ0 130
5. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, 2007, पृ0 8
6. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, 2007, पृ0 56–57
7. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, 2007, पृ0 220–221
8. महाश्वेता देवी : मन्नू मेरे भीतर गर्व और दुःख जगाती है (लेख), कथादेश, पूर्वोक्त, पृ0 20

♦♦♦

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

यतेमहि स्वराज्ये

website : www.chintanresearchjournal.com

ISSN : 2229-7227

Impact Factor : 4.012

International Refereed

चिन्तन

अन्तरराष्ट्रीय मूल्यांकित रिसर्च जर्नल

(कला, साहित्य, मानविकी, समाज-विज्ञान, विधि, प्रबंधन, वाणिज्य एवं विज्ञान विषयों पर केंद्रित)

(Indexed & Listed at : Ulrich's Periodicals Directory ©, ProQuest. U.S.A.)
(Indexed & Listed at : Copernicus Poland)
(Indexed & Listed at : Research Bib, Japan)
(Indexed & Listed at : Indian Journal Index (IJIND EX))
(Indexed & Listed at : UGC Journal List No.41243)

वर्ष : 9 अंक : 33
विक्रमी सम्वत् : 2076
जनवरी–मार्च 2019

संपादक

आचार्य (डॉ०) शीलक राम

यावत् जीवेत् सुखं जीवेत्

आचार्य अकादमी, भारत

ISO 9001 : 2008

- समकालीन कथा साहित्य में नारी–विमर्श
  - अजमेर 779-781
- समकालीन हिन्दी नाटकों में राजनीतिक व्यंग्य
  - सुनीता 782-786
- भारत पर उपयोगितावादी इतिहास लेखन : माऊंटस्टुअर्ट एलफिस्टन के भारतीय समाज–संस्कृति, धर्म व राजनीति पर लेखन का आलोचनात्मक अध्ययन
  - ज्योति 787-792
- भारत का विभाजन : महात्मा गांधी के द्वारा संगठित राष्ट्र एवं सांप्रदायिक सौहार्द स्थापित करने के लिए किए गए प्रयासों का एक अध्ययन
  - जगदीश 793-800
- अध्यापक एक कलाकार और छात्र उसके चित्रफलक
  - डॉ. आरती शर्मा 801-805
- शैक्षिकप्रशासने प्रभावोत्पादकतत्त्वानि : विश्लेषणम्
  - डॉ. अशोक कुमार कछवाह 806-811
- आधारशिक्षायाः विश्लेषणम् : सर्वोदयदर्शनसन्दर्भे
  - डॉ. सोमनाथ साहु 812-816
- अध्यापकों के द्वारा पाठ्य–पुस्तकों का प्रयोग
  - डॉ. सुनील कुमार शर्मा 817-822
- **Obesity and Their Surgical Treatments**
  - Dr. Arushi Chhabra 823-829
- भक्त महाकवि श्रीरूपगोस्वामी का संस्कृत नाट्यशास्त्र और काव्यशास्त्र का योगदान
  - डॉ॰ बाबूलाल मीना 830-833
- **Delayed Justice & Right to Speedy Trial**
  - Dr. Rajesh Kumar Garg 834-836
- **The Relevance of Upanishads in Modern Era**
  - Dr. Leena Sakkarwal 837-842
- **Prisoner's labour and wages - A Human Rights perspective**
  - Dr. Rajesh Kumar Garg 843-847
- काव्यशास्त्र में सृष्टि स्वरूप
  - बलराम आर्य 848-854
- भारत में हिंदी भाषा का महत्व : एक अध्ययन
  - डॉ॰ सुमन लता 855-857
- **Right to food: A Review of the Present Legal Framework in India**
  - Shashank 858-861
- बाल साहित्य की आवश्यकता, उपयोगिता एवं विशिष्टता
  - डॉ. अनीता वर्मा, कृष्णा कुमारी 862-865
- इक्कीसवीं सदी के स्त्री हिन्दी आत्मकथा–साहित्य में राजनीतिक चेतना के आयाम
  - डॉ. (श्रीमती) कंचना सक्सेना, प्रीति दुबे 866-872
- **Education Growth of Scheduled Castes and deprived sections in Haryana (1900-1991)**
  - Sweta Kashyap 873-878
- **Make in India-Boost to Indian manufacturing Sector**
  - Supriya 879-885
- **The Concept of Administration of Justice**
  - Loveneet 886-889
- **Revealed Comparative Advantage; Trade between India and United Kingdom in Post Liberalization Era**
  - Sudesh Kumari , Riya 890-896
- **Swami Vivekananda : An Exceptional Educationist**
  - Dr. Pawan Kumar 897-903

International Refereed | 'चिन्तन' अन्तरराष्ट्रीय रिसर्च जर्नल (ISSN : 2229-7227)
UGC List No.41243 वर्ष 9, अंक 33 पृ.सं. 866-872
Impact Factor : 4.012
वि मी सम्वत्: 2076 जनवरी-मार्च 2019

इक्कीसवीं सदी के स्त्री हिन्दी आत्मकथा-साहित्य में राजनीतिक चेतना के आयाम

डॉ. श्रीमती कंचना सक्सेना
शोध पर्यवेक्षक
सह-आचार्य एवं विभागाध्यक्ष
राज. कला महाविद्यालय, कोटा

प्रीति दुबे
शोधार्थी
हिन्दी विभाग
राज. कला महाविद्यालय, कोटा

शोध-आलेख सार

स्त्री हिन्दी आत्मकथा-साहित्य में राजनीतिक संदर्भों में नारी की स्थिति कुछ खास नहीं रही है। वे स्त्रिया, जो अपने पारिवारिक जीवन की चौखट को लांघकर परम्पराओं से विद्रोह करते हुए राजनीति में प्रवेश करती है उन्हें न केवल अपने समाज से अपितु घर-परिवार से भी नाता तोड़ना पड़ा है। राजनीति में प्रवेश करने वाली स्त्री को समाज हेय दृष्टि से देखता आया है। जहा तक स्त्री हिन्दी आत्मकथा-साहित्य में राजनीतिक चेतना का प्रश्न है। यहा यह कह देना उचित होगा कि स्त्री आत्मकथा-साहित्य में स्त्री-विमर्श की अनुगूंज ज्यादा है राजनीतिक चेतना की कम। इस दृष्टि से रमणिका गुप्ता की आत्मकथा में राजनीतिक चेतना का स्वर बुलंद है। अन्य स्त्री आत्मकथाकारों के साहित्य में राजनीतिक चेतना के स्वर नहीं के बराबर व्यक्त हुए हैं। दृष्ट्व्य है यहा रमणिका गुप्ता के साहित्य में चित्रित राजनीतिक चेतना के विविध स्वर।

मुख्य-शब्द : मताधिकार, स्तंत्रता संग्राम, स्त्री-सशक्तिकरण ।

भारत में स्त्री-मुक्ति का सूत्रपात 19वीं शताब्दी से प्रारम्भ माना गया है। यहा से ही समाज सुधार आन्दोलनों की शुरुआत भी होती है। भारतीय समाज में स्त्री शिक्षा वैषम्य के कारण ही स्त्री का राजनीतिक क्षेत्र में आगमन बहुत लम्बे समय के पश्चात् हुआ है। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान समाज की आधी आबादी का प्रतिनिधित्व करने के तौर पर नारी शक्ति को इस आन्दोलन में शामिल करने के लिए समाज सुधारकों एवं महात्मा गाधी ने पहला कदम उठाया। महिला मताधिकारों की मांग का स्वर भी इस आन्दोलन में उच्च स्वर से गूजा। **'नीरा देसाई'** की पुस्तक **'भारतीय समाज में नारी'** के अन्तर्गत लिखा गया है- भारत का जाग्रत वर्ग भी मानता है कि स्त्रियों को भी सम्मानजनक और जिम्मेदार नागरिक का स्थान मिलना चाहिये, अत: हम जोर देकर निवेदन करते हैं कि जब प्रतिनिधित्व संबंधी विधेयक तैयार किया जाए तब लिंग-भेद के कारण हमें मताधिकार तथा भारत की सेवा करने के अधिकार से वंचित न रखा जाए। [1]

19वीं सदी के मध्य में स्त्री-शिक्षा पर शिक्षाविद् एवं समाज सुधारकों ने अनेक मह वपूर्ण कार्य किए। इसी का परिणाम था प्रथम महिला कॉलेज कलक ाा बेथुन कॉलेज 1849 ई. । भारत में स्त्री-मुक्ति, स्त्री-जागरण की दिशा में पाश्चात्य महिलाओं का भी विशेष योगदान रहा है। इसी काल में सुश्री

'बलावत्स्की' द्वारा **'थियोसोफिकलसोसायटी'** की स्थापना भारतीय महिलाओं को जाग्रत करने के उ`श्य से की गई थी।

20वीं सदी तक आते-आते स्त्री जाग्रत हो चुकी थी। वह अपनी अस्मिता, आत्मसम्मान एवं अधिकारों को पाने के लिए खुलकर राष्टीय आन्दोलनों में भाग लेकर समयानुसार अपनी उपस्थिति दर्ज करवाती रही हैं। 20वीं सदी का काल **'स्त्री-जागरण काल'** के नाम से पहचाना गया। स्त्री जागरण के संदर्भ में **राधा कुमार** लिखती हैं कि- 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध में स्त्री के मा रूप का प्रतीक उभरा। 20वीं सदी की शुरुआत में मैडम कामा तथा सरोजिनी नायडू ने जहा मातृ-शक्ति का बयान देते हुए चेतावनी याद रखो जो हाथ पालना झुलाते हैं वहीं दुनिया पर राज करते हैं दी, वही गाधी ने मातृ-भाव के उद्धारक गुणों का उल्लेख करते हुए स्त्री को भोग की वस्तु समझने की खतरनाक प्रवृति के प्रति भी चेताया। [2]

राष्टीय आन्दोलन के दौरान महिलाओं ने अपनी मह ा को समझा। स्वतंत्र भारत में महिलाओं को मताधिकार जैसे कई संवैधानिक अधिकार भी प्राप्त हुए। यहीं से राजनीति के क्षेत्र में महिलाओं के लिए प्रवेश द्वार खुले।राजनीति के क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी शनै-शनै बढ़ रही थी। ग्रामीण महिलाओं की तुलना में शहरी शिक्षित महिलाओं का रुझान इस ओर अधिक था। महिलाओं का चुनाव में भाग लेने की स्थिति का ब्यौरा व्यक्त करते हुए **श्रीमती लक्ष्मी मेनन** लिखती हैं कि अज्ञानी स्त्रियों के लिए यह प्रसंग एक महान धार्मिक उत्सव के समान होता है कितने इलाकों में तो स्त्रिया चप्पलें उतार कर जैसे मन्दिर में प्रवेश कर रही हैं। इस प्रकार मतदान केन्द्र में प्रवेश कर आदरपूर्वक मतपत्र को मतपेटी में डालती थी। [3]

1927 ई. में 'अखिल भारतीय महिला-सम्मेलन' का आयोजन किया गया, जिसका मुख्य ध्येय भारतीय समाज में स्त्री की पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थिति को सदृढ़ बनाना था। उनके भीतर राजनीतिक चेतना जाग्रत करना था। 20वीं सदी के अन्त तक आते-आते महिलाए घर की चाहरदीवारी से बाहर निकलकर सार्वजनिक मंचों पर पहुच रही हैं देश की स य राजनीति में अपनी क्षमताओं से सफल राजनेता के तौर पर अपनी उपस्थिति निरन्तर दर्ज करवा रही हैं। भूतकाल में कई महिलाए ऐसी भी हुई, जिन्होंने भारतीय राजनीति में कई नए-नए आयाम भी प्रस्तुत किए हैं, जिनमें स्वर्गीय इंदिरा गाधी प्रथम महिला प्रधानमंत्री , श्रीमती प्रतिभा पटेल प्रथम महिला राष्टपति , फातिमा बी, विजय लक्ष्मी पंडित इत्यादि का योगदान सराहनीय है। इन साहसिक राजनीतिक महिलाओं ने देश की राजनीति में स य भागीदारी के रूप में ही नहीं अपितु स्वच्छ एवं स्वस्थ राजनीतिक चेतना का परचम भी लहराया है।

स्त्री हिन्दी आत्मकथा-साहित्य में राजनीतिक संदर्भों में नारी की स्थिति कुछ खास नहीं रही है। वे स्त्रिया, जो अपने पारिवारिक जीवन की चौखट को लांघकर परम्पराओं से विद्रोह करते हुए राजनीति में प्रवेश करती हैं उन्हें न केवल अपने समाज से अपितु घर-परिवार से भी नाता तोड़ना पड़ा है। राजनीति में प्रवेश करने वाली स्त्री को समाज हेय दृष्टि से देखता आया है। जहा तक स्त्री हिन्दी आत्मकथा-साहित्य में राजनीतिक चेतना का प्रश्न है। यहा यह कह देना उचित होगा कि स्त्री आत्मकथा-साहित्य में स्त्री-विमर्श की अनुगूंज ज्यादा है राजनीतिक चेतना की कम। इस दृष्टि से रमणिका गुप्ता की आत्मकथा में राजनीतिक चेतना का स्वर बुलंद है। अन्य स्त्री आत्मकथाकारों के साहित्य में राजनीतिक चेतना के स्वर नहीं के बराबर व्यक्त हुए हैं। दृष्ट्व्य है यहा रमणिका गुप्ता के साहित्य में चित्रित राजनीतिक चेतना के विविध स्वर।

रमणिका गुप्ता की आत्मकथा की पहली किस्त 'हादसे' उनके 'राजनीतिक जीवन की दास्तां है, जिसमें वे सामन्ती समाज के दुमुहपन पर बार-बार प्रहार करती हैं। देश विभाजन की त्रासदी, राजनीति बुटबाजियों का पर्दाफाश करते हुए मानवीय हिंसा, बर्बरता को अपनी आखों से देखती है। 14-15 वर्ष की किशोरी गाधी जी से प्रभावित होकर सत्य बोलने का साहस करती है। आर्यसमाज, कांग्रेस, समाजवादी और कम्युनिस्ट होने की उनकी यह राजनीतिक यात्रा उनके जीवन में भी कई टकराहटें पैदा कर देती है। अन्तत: उनके जीवन में एक ऐसा मोड़ आता है, जहा परिवार व समाज सेवा में से किसी एक का चयन करना पड़ता है।

स्वतंत्रता संग्राम से पूर्व हमारे नेताओं में त्याग और जन-सेवाभाव की भावना प्रबल थी, किन्तु स्वाधीनता के पश्चात् भारतीय राजनीति गुंडागर्दी, भ्रष्टाचार, शोषण, अन्याय, के रूप में उभरी है। देश विभाजन से फैली साम्प्रदायिकता ने ऐसे सच से जनता को रु-ब-रु करवाया जिसकी कल्पना भी जन साधारण ने नहीं की होगी। स्त्री का शोषण, अमानवीय कृत्यों का सिलसिला जब भी बरकरार था और आज तक राजनीति में स्वार्थ और स ाा हथियाने की ललक राजनीतिक विसंगतियों को लगातार बढ़वा दे रही है। देश की आजादी का जो स्वप्न हमने देखा था। उसका परिणाम इतना भयावह होगा किसी ने सोचा भी न होगा। देश में मानवीय मूल्यों का विघटन, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, लूटपाट, नैतिक एवं चारित्रिक पतन इत्यादि गम्भीर समस्या जस की तस बनी रही।

रमणिका गुप्ता बिहार की राजनीति में स्त्री के रूप में उभरती एक ऐसी ान्तिकारी महिला है, जिसने उम्र के इस पड़ाव पर भी राजनीति के क्षेत्र में अपनी पहचान बनाई हुई है। भारत-चीन युद्ध के दौरान अपने देश के सैनिकों के लिए आर्थिक सहायता करने के लिए चैरिटी शो, कविता पाठ, नृत्य जैसे कार्य मों को आयोजित कर चंदा एकत्रित करती है देश प्रेम की भावना से प्रेरित होकर कविता लिखती हैं। उनकी यह कविता युद्ध समाप्ति के बाद भी लोगों के मुख से दोहराई जाती हैं कविता की कुछ पंक्ति इस प्रकार है-

रंग-बिरंगी तोड़ चूड़िया
हाथों में तलवार गहूगी
मैं भी तुम्हारे संग चलूगी
मैं भी तुम्हारे साथ चलूगी।। [4]

समाज सेवा करते-करते राजनीति की डगर पर पहुचती है। बिहार एवं पश्चिमी भारत में बसे नंगे-भूखों को उनका हक दिलवाने के लिए बड़ी-बड़ी राजनीतिक पार्टियों से अकेले ही मुकाबला करती हैं। पंजाब के सम्पन्न परिवार से आई सरकारी अफसर की ये पत्नी सभी सुख-सुविधाओं को छोड़कर बिहार के विभिन्न क्षेत्र, जो प्राकृतिक सम्पदाओं से युक्त थे, किन्तु वहा जमींदार, लठेतों, बाहुबलियों का बोलबाला था। उसी भूमि पर बसे आमजन जो भूख से मर रहे थे। उनको उनका हक दिलवाने के लिए शासन-प्रशासन से सीधे मुटभेड़ करती है। रमणिका गुप्ता का राजनीति में प्रवेश सन् 1960 से होता है। बचपन से ही कांग्रेस में विश्वास रहा, किन्तु धनबाद पहुचकर कांग्रेस पार्टी से मोह भंग हो जाता है। वह लिखती है कि बचपन में आज़ादी की लड़ाई के दौरान कांग्रेस पार्टी की छवि मेरे मन पर इतनी काबिज थी कि मैं कांग्रेस की सदस्य न होते हुए भी अपने को कांग्रेसी मानती थी, बल्कि यू कहू कि मेरी नज़र में मुझे देशभक्त और कांग्रेसी में कोई भेद नज़र नहीं आता था। हर देशवासी को कांग्रेसी ही होना चाहिए कुछ ऐसी मान्यता सम्भवतः हावी थी। हांलाकि मेरे भाई कम्यूनिस्ट थे। यह तो बिहार में आकर पहली बार मुझे कांग्रेसी विरोध के प्रचण्ड रूप से रू-ब-रू होना पड़ा। तभी मैंने अपने गिर्द राष्टीयता के पर्यायी कांग्रेसी आवरण को टूटते देखा। [5]

यू तो रमणिका गुप्ता कई देशों की यात्राए कर चुकी है, किन्तु राजनीतिक जीवन की पहली यात्रा कच्छ यात्रा रही है। वह यह यात्रा 'कंजरकोट' और 'छाड़वेट' को पाकिस्तान को देने के विरोध में करती हैं। पद यात्रा करते, चंदा मागते हुए विभिन्न तरह के संकटों से गुजरते हुए कच्छ की दलदली ज़मीन पर पहुचकर वहा की सरकार के विरोध में नारे लगाती हैं। पुलिस एवं प्रशासन भी लाठिया खाते हुए लहूलुहान होती है। इस दौरान उन पर कई जानलेवा हमले भी होते हैं। संगठन को तोड़ने की सरकार की मंशा विफल करते हुए वहा की जेलों में बंद आन्दोलनकारियों को मुक्त कराने के लिए संसद में जूता फैंकने का साहसिक कार्य करती है। ताकि सरकार के ध्यान को भंग किया जा सके।

सन् 1968 में रमणिका संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी की तरफ से माडुं चुनाव लड़ती है। 700 वोटों से हार जाती हैं। आदिवासियों के घरों में जाकर उनकी भाषा सीखती है प ाों का साग, मकई की रोटी, घट्टा

दलिया उन्हीं लोगों के साथ बैठकर खाती हैं। वे सारे जातिगत भेदभाव मिटा देना चाहती हैं। आदिवासियों के हक के लिए लड़ती है, उनके बीच 'मा', 'रानी मा' या 'गुप्ता रानी' नाम से पहचानी जाती हैं।

झारखण्ड के मजदूर अब तक मालिकों, ठेकेदारों के चंगुल से स्वयं को मुक्त नहीं कर पाए थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् देश ने तरक्की की, नए-नए उद्योग-धंधे खुले। रोजगार की राह आसान हुई है, लेकिन झारखण्ड सहित पश्चिमी भारत के कुछ इलाके आज भी मजदूरों, आदिवासियों, कामगारों का हक छिन रहे हैं। बिहार एवं झारखण्ड जैसे राजनैतिक अराजकता वाले प्रदेशों में संघर्षरत रमणिका वहा की जनता को उनका अधिकार दिलवाने के लिए संघर्ष करती हैं। टाटा कम्पनी से कई मुद्दों पर लड़ाई लड़ती हैं जैसे शिक्षा की लड़ाई, पानी की लड़ाई, जंगल जमीन को मुक्त कराने की लड़ाई इत्यादि। वह लिखती हैं कि हमने टाटा कम्पनी के खिलाफ 'ठेकेदारी खत्म करो', 'ठेकेदारी मज़दूरों को स्थायी और नियमित करो' तथा 'स्थानीय बेरोजगारों को नौकरी दो' का आन्दोलन छेड़ा....................रोजगार के सवाल पर टाटा कम्पनी के रुख को उन्होंने एक चुनौती के रूप में लिया। [6]

रमणिका गुप्ता को समझ में आने लगा कि यहा भ्रष्टाचार नीचे से पर तक फैला है, जिसकी जड़े काफी गहरी हैं, उन्हें लगने लगा इस भ्रष्टाचार को खत्म करने के लिए सि य राजनीति में उतरना होगा। सन् 1968 में माडुं चुनाव लड़ती हैं। वह लिखती हैं कि यूनियन का गठन मेरे जीवन की एक अहम् घटना थी। बाद में मैंने पूरी तरह उस क्षेत्र में जड़े जमालीं और एक के बाद कई आन्दोलनों का ताता लग गया। [7]

'ठेकेदारी खत्म करो' के संदर्भ में सन् 1970 में कुजू की घटना घटित होती है मील-मालिकों, राजनेताओं की मिलीभगत से रमणिका गुप्ता पर जानलेवा हमला होता है। घायल रमणिका की कालरबोन कलाई की हड्डी टूट जाती है, किसी तरह अपनी जान बचाकर वहा से निकलती हैं। अस्पताल में भर्ती होती हैं तभी संसद का ऐतिहासिक फैसला मजदूरों के हक में होने की गूंज अस्पताल में भर्ती रमणिका गुप्ता को सुनाई देती है। इस संदर्भ में वह लिखती हैं कि मुझे तो एक बड़ी लड़ाई लड़ने के लिए मजदूरों को तैयार करना अभी बाकी था। मुक्ति की जंग अभी अधूरी थी। [8]

सन् 1971 में केदला झारखण्ड खदानों के राष्टीयकरण के लिए हड़ताले होती हैं। रमणिका बिहार विधान परिषद् की सदस्या हैं वहा के मजदूरों की बहाली के लिए भी रमणिका संघर्ष करती है। वह लिखती हैं कि मुझसे खाना मत मागना, कफ़न का जुगाड़ मैं कर दूगी। [9]

रमणिका का संघर्ष जारी रहता है। राजनीति में उनकी सफलता की खबरें सुनकर इन्द्रा गाधी उन्हें हजारी बाग जिला के बीस सूत्रीय कार्य मों की सदस्या बना देती हैं। रमणिका गुप्ता की राजनीतिक मह ाा इस पंक्ति से समझी जा सकती है- रमणिका का आप खास ख्याल रखिएगा, ये एक सच्ची और जुझारू महिला हैं और वफादार भी। [10]

कांग्रेस से मोह भंग होने पर कम्यूनिस्ट मार्क्सवादी पार्टी से जुड़ती हैं जनसेवा करते हुए जीवन पथ पर आगे बढ़ती ही जाती है। राजनीति में महिलाओं का शोषण स्त्री होने के कारण ही होता है। इसी संदर्भ में रमणिका गुप्ता लिखती हैं कि स्त्री होने के नाते मुझे दबाने या डराने की चेष्टा की गई। यह अलग बात है कि मैं न तो डरी और ना ही झुकी। मैं तो ऐसा मानती हू कि स्त्री होने के कारण ही मैं माफिया का मुकाबला इतनी मुस्तैदी और सफलता से कर पाईं। पुरुष होने पर इतना शायद सम्भव नहीं होता। [11]

'हादसे' आत्मकथा में रमणिका गुप्ता जीवन के गहरे उतार-चढ़ावों गुजरते हुए कई पुरुषों का सामना करती है, जिसमें नेता, नेता जी के दोस्त, घुटभैये, औहदेदार अफसर इत्यादि की लम्बी फ़ेहरिस्त है। यहा यह कहना अतिश्योक्ति न होगा कि रमणिका गुप्ता का राजनैतिक जीवन सम्पूर्ण भारतीय महिलाओं के लिए प्रेरणास्पद है।

जिस समाज में स्त्रियों के लिए हजारों पाबन्दिया लगी हो, उसी समाज में एक लड़की का देश की आजादी के संघर्षों में भाग लेना, मीटिंगें करना सड़कों पर नारे लगाना, भाषण देना, हड़तालें करना इत्यादि कोई साधारण बात नहीं है। उसी काल में जन्मी मन्नू भण्डारी एक ऐसी लड़की थीं, जिसने गुलाम भारत में जन्म तो लिया था, किन्तु युवावस्था की सीढ़ी पर कदम रखा स्वतंत्र भारत में षाकाल की प्रथम किरण के साथ। बाल्यकाल से ही अपने घर में राजनीतिक चर्चाओं, बैठकों का हिस्सा बनती न्तिकारियों, देशभक्तों, शहीदों की शहादतों के किस्से सुनते-सुनते ही न्ति के भाव मन्नू भण्डारी के मन में घर कर जाते हैं। वह स्वतंत्रता प्राप्ति के सभी अभियानों में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेती है। विरोध झेलती हैं- अरे उस मन्नू की तो मत मारी गई है भंडारी जी, पर आपको क्या हुआ? ठीक है, आपने लड़कियों को आज़ादी दी, पर देखते आप, जाने कैसे-कैसे उल्टे-सीधे लड़कों के साथ हड़तालें करवाती, हुडदंग मचाती फिर रही है वह। हमारे-आपके घरों की लड़कियों को शोभा देता है यह सब? कोई मान-मर्यादा, इ़ज्जत-आबरु का ख्याल भी रह गया है आपको या नहीं? [12]

सन् 1942के स्वतंत्रता संग्राम से उफनता-खोलता देश, जहा सारी वर्जनाए, बंधन टूट रहे थे, वहीं भारत की भूमि पर नवजागरण की लहर तेज होती जा रही थी। घर एवं चूल्हें चौखट को लांघकर स्त्रिया भी देश की आज़ादी में हाथ उठाकर नारे लगा रही थीं। अपने आभूषण बेचकर स्वतंत्रता सेनानियों की मदद कर रही थीं। आजाद हिन्द फौज के मुकद्में के फैसलें के दिन मन्नू भण्डारी भी लड़कों के साथ हड़ताल करवाती अजमेर के चौपड़ मुख्य बाजार का चौराहा पर खड़े होकर उच्च स्वर में गूंज रही थीं। उनके भाषण को सुनकर पिता के घनिष्ठ एवं प्रतिष्ठित मित्र डॉ. अम्बा लाल जी कहते हैं- आओ, आओ मन्नू। मैं तो चौपड़ पर तुम्हारा भाषण सुनते ही सीधा भण्डारी को बधाई देने चला आया। आय एम रिअली प्राउड ऑफ यू.....क्या तुम घर में घुसे रहते हो भंडारी जी.....घर से निकला भी करो। यू हैव मिस्ड समथिंग.....और वे धुआधार तारीफ़ करने लगे वे बोलते जा रहे थे और पिताजी के चेहरे का संतोष धीरे-धीरे गर्व में बदलता जा रहा था। [13]

शताब्दी की सबसे बड़ी उपलब्धि 15 अगस्त 1947 भारत आज़ाद हो गया। सन् 1962 भारत चीन युद्ध, जहा भारतीय जनता एक जुट होकर संघर्ष कर रही थी, वहीं राजेन्द्र यादव 'बर्टेंड रसेल' की पुस्तक से ऐसे प्रभावित होते है कि अपनी कलम से ही चीन युद्ध कासमर्थन करने लगते हैं तभी मन्नू भण्डारी उन्हें देश, राष्ट एवं देशवासियों के चिन्तन की ओर मोड़ती हुए कहती हैं कि यह सच है कि मैं किसी पंथ से न तब जुड़ी थी, न बाद में.....मेरा जुड़ाव अगर रहा है तो अपने देश से....चारों ओर फैली-बिखरी जिन्दगी से जिसे मैंने नंगी आखों से ही देखा है, बिना किसी वाद का चश्मा लगाए और मेरी रचनाए इस बात का प्रमाण है। [14]

लोकतंत्र की स्वतंत्रता का हनन प्रधानमंत्री इन्दिरा गाधी द्वारा आपातकाल की घोषणा किया जाना। सरकार की मनमानी लेखकों, प्रबुद्ध जीवियों को अपने समर्थन में करने के लिए पुरस्कार, फैलोशिप, सम्मान दिए जा रहे थे। मन्नू भण्डारी को भी 'पदम् श्री' सम्मान दिए जाने की सूचना मिलती है, लेकिन बिना किसी भी परिणाम की चिन्ता किए मन्नू भण्डारी उस सम्मान को लौटा देती है।

इन्दिरा सरकार के शासन की ूरता से दिनमान पत्रिका के संपादक रघुवीर सहाय, जे.पी. सिन्हा एवं धर्मवीर भारती जैसे निर्भीक लेखकों की कलम जो अभी तब इनके विरोध में चलती थी, 'मुनादी' जैसी सरकार विरोधी रचना रचने वाले भारती की उसी कलम से आज 'सूर्य के अंश' नामक कविता इन्दिरा-संजय की प्रशंसा करते हुए लिखना ही प्रमाणित करता है कि उस समय कैसी राजनीति देश में फैली हुई थी। इसी संदर्भ में मन्नू भण्डारी लिखती हैं कि मेरी परेशानी का कारण तो यह था कि हमारी कलम से जो भी शब्द निकलते हैं, विशेषकर सृजन के संदर्भ में, उनके पीछे हमारे विचार, हमारे विश्वास, हमारी आस्था,

हमारे मूल्य.....कितना कुछ तो निहित रहता है....तब मुनादी जैसी कविता लिखने वाली क़लम एकाएक कैसे यह कविता लिख पाई? [15] मन्नू भण्डारी अजमेर की सकरी गलियों से होते हुए कलक ाा पहुचती हैं। लेखन एवं अध्यापन कार्य में संलग्न रहते हुए देश की राजनीति में भी सहयोग करती रही हैं। समकालीन राजनीतिक चेतना पर लिखा गया उपन्यास 'महाभोज' इसका प्रखर उदाहरण है।

प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, मन्नू भण्डारी, रमणिका गुप्ता, सुषम बेदी इत्यादि स्त्री आत्मकथा लेखिकाए परतंत्र भारत में जन्मी हैं। अपने समय से लेकर अब तक की देश की राजनीति एवं राजनीति घटनाओं की साक्षी भी रही हैं। 1942 का स्वतंत्रता संग्राम हो या 1947 का आज़ाद भारत, भारत–चीन युद्ध हो या इन्दिरा गाधी द्वारा देश में आपातकाल की घोषणा ये सभी लेखिकाए स्वयं भी भुक्तभोगी रही हैं। देश की स ि य राजनीति में इन लेखिकाओं की भागीदारी की चर्चा की जाए, तो रमणिका गुप्ता का नाम अग्रगणीय है। राजनीति के क्षेत्र में इनके द्वारा किए गए कार्यों की एक लम्बी फे़हरिस्त है। मन्नू भण्डारी स्वयं लिखती हैं, कि जिस आत्मकथा में उसके समय एवं समाज की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक चेतना का चित्रण न हो तो वह रचना आत्मकथा कहलाने के योग्य नहीं है, जहा तक प्रभा खेतान का सवाल है तो प्रभा खेतान एक सफल मारवाड़ी व्यावसायिक 'डॉयनामिक' महिला रही हैं। राजनीति के क्षेत्र में उनकी कोई रूचि नहीं रही हैं। स्वयं को स्वावलम्बी, आत्मनिर्भर बनाने एवं चमड़े के व्यापार में अपनी पहचान बनाने में ही लगी रही।स्वयं प्रभा खेतान लिखती हैं कि स्वाभाविक है कि आज यह आत्मकथा लिखने के पीछे कोई कारण रहा होगा। कुछ ऐसा–वैसा जरुर घटा होगा मेरे जीवन में। हा! मैंने लकीर से हटकर व्यवस्था के प्रति विद्रोह किया, किन्तु वह मुझ अकेले का विद्रोह था। जन–आन्दोलन में मैं कभी नहीं उतरी। कैरियरपरस्ती में लगी हुई स्त्री के किसी जुलूस में शामिल होने का सवाल ही नहीं उठता। हा, अपनी ओर से कम्यूनिस्ट पार्टी के समर्थन में जहा जितना करना सम्भव था वह मैंने किया, किन्तु मार्क्सवादी पार्टिया भी स्त्री से संबंधित मुद्दों को ज्यादा गम्भीरता से नहीं ले रही थी। इसका भी क्षोभ मेरे मन में था। मेरी यह आवाज़ एक भिन्न आवाज है और इस आवाज का खतरा यही था कि यह आवाज अनसुनी रह जाती क्योंकि न मैं पूरी तरह उदारवादी थी और न ही मार्क्सवादी, न परम्परा से चिपकी रही और न ही आधुनकिता को भली–भाति ओढ़ पाई। [6]

निष्कर्षतः अध्ययन के उपरान्त मेरी दृष्टि से कहा जा सकता है इक्कीसवीं सदी की ये सभी आत्मकथा लेखिकाए सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक चेतनाओं के पुनर्जागरण में कहीं पर भी पुरुषों से पीछे नहीं रही हैं। प्रत्येक क्षेत्र में इनका योगदान पुरुषों की तुलना में अधिक ही रहा है। मानव–मूल्यों को एक बार फिर से नए सिरे से परिभाषित करती आज की ये नारिया आर्थिक मोर्चों पर भी आगे रही हैं। घर की चाहरदीवारी को पार कर पुरुषों से बराबरी करते हुए आर्थिक सम्बल प्राप्त कर रही हैं। स्त्री–सशक्तिकरण की दिशा में नारी नित्य नए आयामों को प्राप्त कर रही हैं।

संदर्भ

1. भारतीय समाज में नारी, नारी देसाई, पृ.–158
2. स्त्री संघर्ष का इतिहास, राधा कुमार, पृ.–13
3. नारी अस्मिता, डॉ. सुदेश बत्रा, पृ.–20
4. हादसे,रमणिका गुप्ता, 'मेरी कच्छ यात्रा', पृ.–29
5. हादसे, रमणिका गुप्ता, 'स्वयं सिद्ध होने का संकल्प', पृ.–27
6. हादसे, रमणिका गुप्ता, 'टाटा से टक्कर',पृ.–75
7. हादसे, रमणिका गुप्ता, 'यूनियन का गठन', पृ.–79
8. हादसे,रमणिका गुप्ता, 'कुजू–कूच', पृ.–106

9. हादसे, रमणिका गुप्ता, 'मुझसे खाना मत मांगना, कफ़न का जुगाड़ मैं कर दूगी', पृ.-138
10. हादसे, रमणिका गुप्ता, 'राष्टीय कोलियरी मज़दूर संघ का विवाद', पृ.-183
11. हादसे,रमणिका गुप्ता, 'स्त्री होने के कारण ही', पृ.-245
12. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.-24
13. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.-25
14. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी,पृ.-71
15. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ.-139
16. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान,पृ.-260-261